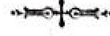
।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

418



भारतीय शक्ति-साधना

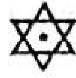
शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त

डॉ० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी



उपक्रमणिका

सर्वं खल्विदं शक्तिः नेह नानास्ति किञ्चन।

भारतीय ऋषियों के हृदयाकाश में आदिकाल से यह प्रश्न गूँजता रहा है कि—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।

उन तत्त्वमनीषियों ने अविराम शोध के बाद यह अनुभव किया कि—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषेति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वमात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः।।

उनका यह अनुभव और उनकी यह शोध-निष्पत्ति भी उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकी; क्योंकि यह निष्पत्ति निषेधात्मक थी, विध्यात्मक नहीं। इसके बाद जब उन्होंने ध्यान-योग का आश्रय लेकर इस शंका का समाधान खोजने का प्रयास किया तब उन्हें इस प्रश्न का जहाँ समाधान मिला, उसे ही उन्होंने 'स्वगुणैर्निगूढ़ा देवात्मशक्ति' कहा—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।।

यह वही शक्ति है, जिसके विषय में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि उसकी सहायता के विना पञ्चक्रियाकर्ता परमेश्वर शिव पञ्चक्रियायें करना तो दूर; हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

क्योंकि—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि।। (वामकेश्वरतन्त्र)

कारण सुस्पष्ट है; यदि शिव शब्द के 'श' में से इकार निकाल दिया जाय तो शिव शवमात्र बनकर रह जायेंगे। यह इकार की मात्रा ही शक्ति है, जो उन्हें 'शव' से शिव बनने की सामर्थ्य प्रदान करती है। इस पुस्तक में इसी शक्ति तत्त्व की विवेचना की गई है। शक्ति क्या है? शक्ति का स्वरूप है—पूर्ण अहंविमर्श। अहंविमर्शात्मक

स्पन्द ही शक्ति है। समस्त जगत शक्ति ही तो है—

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वर:।

विश्व शिव की शक्ति का प्रचय है—

स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्। (शिवसूत्र)

माननीय प्रकाशक महोदय का प्रस्ताव था कि मैं दश महाविद्या पर कोई ग्रन्थ लिखूँ। इसके पूर्व मैं श्रीविद्या साधना तथा महाविद्या बगलामुखी पर पुस्तकें लिख चुका था। एक अज्ञात प्रेरणा ने मुझे उत्प्रेरित किया कि मैं कोई ऐसी पुस्तक लिखूँ, जिसमें दश महाविद्यायें ही नहीं; प्रत्युत उसमें भगवती सीता, राधा, सरस्वती, महालक्ष्मी, मातृका शक्ति, पद्मावती, प्रज्ञा एवं नवदुर्गा आदि सभी जनोपास्या शक्तियों का समावेश हो जाय तथा भगवान् की शक्ति के रूप में उल्लिखित चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छा-शक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति आदि के स्वरूप के साथ ही साथ शक्तिसम्बन्धिनी साधनाओं का भी समावेश हो जाय। इसी दृष्टि से मैंने पुस्तक का नामकरण इस प्रकार किया— भारतीय शक्ति-साधना (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त)।

चूँकि यह पुस्तक केवल शक्तियों को ही नहीं; प्रत्युत शक्ति-विज्ञान को भी चिन्तन और विवेचना का विषय बनाकर लिखी जानी थी; अत: इसमें शक्ति के भौतिक स्वरूपों की भी विवेचना की गयी है।

चूँकि अन्तर्निविष्ट विषयों का आयाम बहुत व्यापक था; अत: विवेच्य सामग्री को एक भाग में प्रस्तुत करना सम्भव न होने के कारण इस पुस्तक के दो भाग कर दिये गये हैं। मैंने पहले सोचा था कि पुस्तक का प्रथम भाग सिद्धान्तपक्ष एवं द्वितीय भाग साधना-पक्ष के रूप में रक्खा जाय; किन्तु माननीय प्रकाशक महोदय के यह बताये जाने पर कि लोग सिद्धान्तपक्ष में कम; किन्तु साधनापक्ष में अधिक रुचि रखते हैं—मैंने पुस्तक के इस भाग में भी साधनापक्ष पर थोड़ा-बहुत प्रकाश डाल दिया है; किन्तु साधनात्मक विज्ञान के लिए मुख्य सामग्री तो पुस्तक के द्वितीय भाग में ही उपलब्ध हो सकेगी।

मैंने इस पुस्तक में 'शक्ति' शब्द को तीन अर्थों में गृहीत किया है और उसी अर्थत्रय की धुरी पर विवेचना-विश्लेषण के चक्र घूमते रहे हैं। शक्ति को इन अर्थों में गृहीत किया गया है—

- ब्रह्मस्वरूपिणी परात्पर महाशक्ति (त्रिदेवों की भी माता) के अर्थ में।
- त्रिदेवों की आत्मभूता, निजा, अभिन्ना एवं समवायिनी शक्ति के अर्थ में (किन्तु त्रिदेवों की प्रियतमा के रूप में)।
- समस्त प्राकृतिक शक्तियों, यौगिक सिद्धियों, तान्त्रिक शक्तियों, साधनाजन्य सामर्थ्यों एवं विश्वाहन्ता (पराहन्ता, पूर्णाहन्ता) स्वरूप परा सिद्धियों एवं चक्रेश्वरत्व

तथा भैरवत्वस्वरूप शक्तियों की प्राप्ति के अर्थ में।

यदि यह प्रश्न उठाया जाये कि शैवों-शाक्तों-योगियों और तान्त्रिकों की साधनाओं को तो शक्ति-साधना कह सकते हैं; किन्तु ज्ञानियों की ज्ञान-साधना को शक्ति की साधना कैसे स्वीकार किया जाय? तो इस सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि ज्ञान का सम्बन्ध शुद्धविद्या एवं भगवान् की ज्ञानशक्ति से है; अत: ज्ञान की साधना को शक्ति की साधना मानने में क्या आपत्ति है?

यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि शैवों, शाक्तों, योगियों एवं तान्त्रिकों की साधना तो शक्ति-साधना कही जा सकती है; किन्तु भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति (नारदीया भक्ति), ज्ञानोत्तरा काश्मीरीय शैव भक्ति एवं गलदश्रुभावुकतानिलीन रागात्मिका भक्ति को शक्ति-साधना कैसे स्वीकार किया जा सकता है? तो उत्तर सुस्पष्ट है। भगवान् की पाँच शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति। इसमें परमात्मा की जो ज्ञानशक्ति है, उसी से सम्बद्ध है—ज्ञान-साधना।

चूँकि भक्ति भगवान् की आनन्दशक्ति से सम्बद्ध है; अत: भक्ति की साधना भी शक्ति की ही साधना है। भक्ति भगवान् की आनन्दशक्ति की निष्पत्ति है, आनन्दशक्ति का स्वभाव है, इसीलिये भक्ति को रस एवं आनन्द भी कहा गया है। यह रसात्मिका आनन्दशक्ति ही अपने उच्चतम विकास-शृंग पर महाभाव और प्रेम बन जाती है। यह प्रेम ही तो भक्ति है। भगवान् की आह्लादिनी शक्ति का रूपान्तर ही भक्ति है; अत: भक्ति की साधना भी शक्ति की ही साधना—आह्लादिनी शक्ति की साधना है—भगवान् की आनन्द-शक्ति की साधना है।

मैंने अध्यात्म-विज्ञान को आधुनिक विज्ञान के आलोक में पर्यालोचित करने के उद्देश्य से ही सृष्टिविज्ञान, मनोविज्ञान एवं तत्त्वविज्ञान आदि विषयों पर प्रकाश डालते हुए और उनका शक्ति-साधना से सम्बन्ध स्थापित करते हुए विज्ञान की आधुनिकतम दृष्टियों के साथ उनकी तुलना भी की है। दोनों में साम्य के भी बिन्दु हैं। वैषम्य तो स्वाभाविक है; क्योंकि भौतिक विज्ञान फल को छिलके से बीज तक ही देखता है, किन्तु अध्यात्म विज्ञान बीज में निहित अदृश्य शक्ति के स्रोत की भी खोज करता है। यह वह खोज है, जिसके विषय में अध्यात्म विज्ञानी भी कहते हैं—

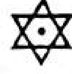
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो।

मैं इस पुस्तक के प्रकाशक एवं 'चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन' वाराणसी के सञ्चालक माननीय श्री वल्लभदास जी गुप्त एवं श्री नवनीतदास जी गुप्त का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने भारतीय शक्ति-साधना (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त) को प्रकाशित करने के दुर्वह दायित्व के निर्वहण हेतु सहमति प्रकट करके मुझे अनुगृहीत किया है।

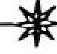
जिन शक्तिस्वरूपा भवगती ने भारतीय शक्ति-साधना (शक्ति-विज्ञान : स्वरूप एवं सिद्धान्त) का प्रणयन करने की मुझे प्रेरणा दी, उन भगवती को नमन करते हुए मैं देशिकेन्द्र दुर्वासा के शब्दों में कहना चाहता हूँ कि—

गेहं नाकति गर्वित: प्रणतति स्त्रीसङ्गमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वपादसंवेदनात्
त्वां वन्दे भवभीतिभञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम्।।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'



विषयानुक्रमणिका

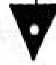


पूर्वखण्ड : अध्याय 1-6

शक्ति-साधना के विविध सिद्धान्त

उत्तर खण्ड : अध्याय 7-30

❁ शक्ति-साधना के विभिन्न स्वरूप ❁




पूर्व खण्ड
शक्ति-साधना के
विविध सिद्धान्त



प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्।

(बह्वृचोपनिषद्)

यदि भारतीय संस्कृति और साधना के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो हमें सारा इतिहास शक्ति का ही इतिहास दिखाई पड़ता है। नीत्शे का Will to Power भी इसी सत्य का एक अंग है। शक्ति प्राप्त करने के इस इतिहास की अनेक दिशायें हैं; उसके अनेक साधन हैं और उसके अनेक मार्ग हैं।

शक्ति-प्राप्ति की विभिन्न साधनायें एवं उनके साधन

6. भक्ति, ज्ञान, योग की एकीकृत साधना (मध्ययुगीन निर्गुणपन्थीय सन्तों की साधना)।

5. योगमार्गीय साधना : अष्टांग या षडंग योग की साधना।

4. ज्ञानमार्गीय साधना : अहं ब्रह्मास्मि की साधना। प्रणव (ॐ) की साधना।

3. भक्तिमार्गीय साधना : वैधी, रागात्मिका, भाव, प्रेमा आदि भक्तिभेदों की साधना।

2. उपासनाकाण्डीय साधना : देवोपासना : इन्द्रादिक विभिन्न देवों की उपासना।

1. कर्मकाण्डीय साधना (यज्ञ, दान, स्वाध्याय, व्रत, ब्रह्मचर्य, हवन, देवोपासना)।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम्।
प्रभवाम शरदः शतं दीनां स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः सतात्।।

(शुक्लयजुर्वेद-36.24)

शं नो द्यावा पृथिवी पूर्वहुतौ शमन्तरिक्षं ह शये नो अस्तु।
शं नो औषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु विष्णुः।
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।

(ऋग्वेद-7.35.5.9)

—आदि सांसारिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सामान्य शक्ति की कामनाओं से प्रारम्भ करके एक भारतीय ऋषि 'अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अहं देवी न चान्योऽस्मि, शिवोऽहं' के उच्चतम स्तर तक पहुँचने एवं 'अहं, अहमस्मि, अहमिदं, इदमहं' एवं 'पूर्णाहन्ता' की परकाष्ठा तक की लोकोत्तर भूमिकाओं पर आरूढ़ होकर स्वयं पशु से पशुपति एवं जीव से परमशिव बनने का प्रयास करता है। यह पशुपतित्व, चक्रेश्वत्व, परमशिवत्व और परभैरवत्व की प्राप्ति ही इस विश्व की सर्वोच्च शक्ति-प्राप्ति है, सिद्धि की सर्वोच्च भूमिका है। भारतीय साधक इसी सर्वोच्च शक्तिशृंग पर आरूढ़ होने की साधना करता है।

'येनाऽहं नामृत स्याम् तेनाऽहं किम् कुर्याम्' की घोषणा करके मैत्रेयी (वैदिक काल की ऋषि) ने संसार के वित्त (आर्थिक शक्ति), स्वास्थ्य (शारीरिक शक्ति), यश (प्रतिष्ठा शक्ति), पद एवं ऐश्वर्य आदि सर्वोच्च भौतिक शक्तियों को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इससे भी महत्तर शक्ति प्राप्त करने की कामना की। वह शक्ति है—अमृतत्त्व की शक्ति।

कठोपनिषद् के उपाख्यान वाले नचिकेता को ही ले लीजिए। यमराज ने नचिकेता को संसार के समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करने का वरदान देना चाहा—

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व, बहून् पशून् हस्तिहिरण्मयाश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि।।

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि।।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्रक्षीः।।

किन्तु नचिकेता ने इन सारी ऐश्वर्य-सामग्रियों की प्राप्ति एवं अनन्त भोगात्मिका शक्तियों को प्राप्त करने को तुच्छ मानकर कहा—

- न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो।
- वरस्तु मे वरणीयः स एव।

सारांश यह कि नचिकेता विश्व की अनादि, अनन्त शक्तिस्वरूप आत्मा के ज्ञान का वरदान माँगता है, न कि भौतिक एवं क्षणभंगुर सांसारिक शक्तियों की प्राप्ति का। यमराज भी नचिकेता को ऐसे ही परमतत्त्व (परम शक्ति) की शिक्षा देते हैं, जो कि सुनने पर भी ज्ञात नहीं हो पाती और जो तर्कातीत तथा बुद्ध्यातीत है—

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।।[1]

1. कठोपनिषद्

जो अणु से भी अणुतर है और महान् से भी महत्तर है और जो जन्तुओं, प्राणियों की अन्तर्गुहा (ह्रदय) में गुप्त रूप से निवास करता है—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्माय जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

जो प्रवचन एवं मेधा से प्राप्य नहीं है—

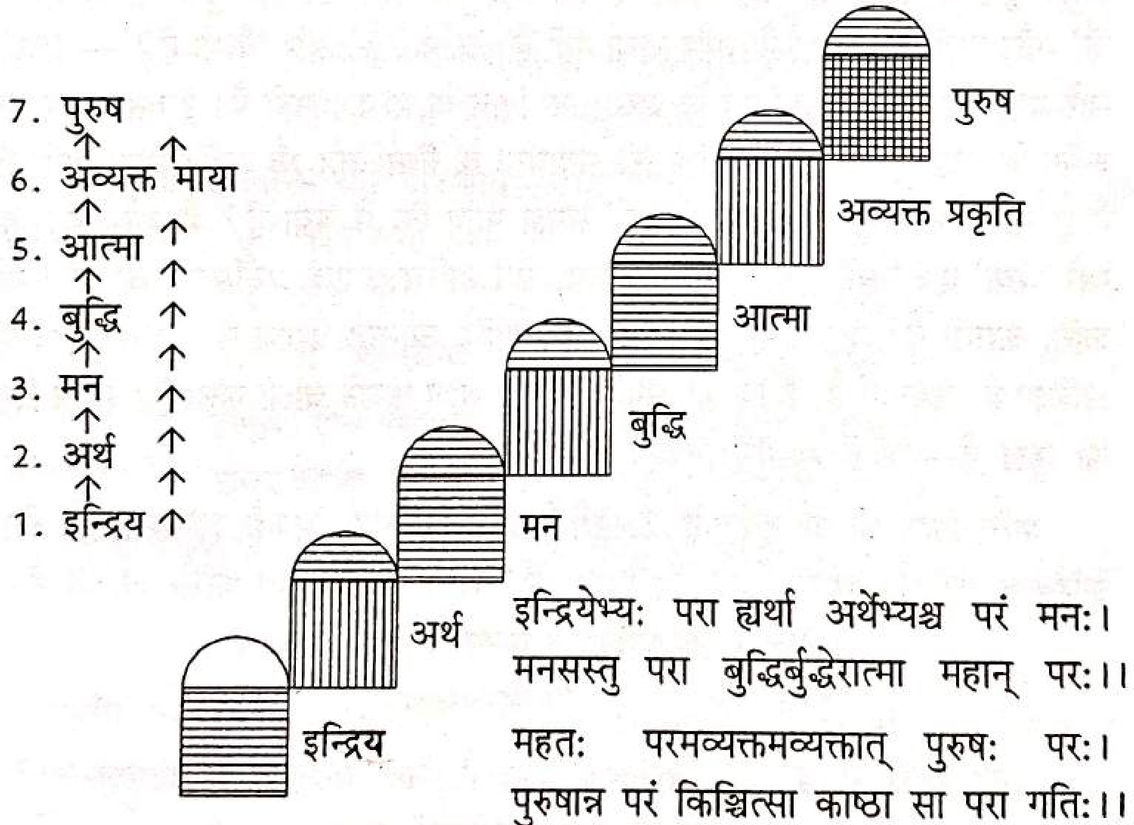
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्।।[1]

यह कौन-सा तत्त्व है? यही सर्वशक्ति-अधिष्ठान एवं विश्वमूल तत्त्व है।

यमराज समझाते हैं कि वह तत्त्व शरीर के रथ पर आसीन रथी है। यह उस रथ पर आसीन है, जिसका सारथी बुद्धितत्त्व, लगाम मनस्तत्त्व, घोड़े इन्द्रियतत्त्व, मार्ग इन्द्रियों के विषय एवं भोक्ता शरीर, इन्द्रिय एवं मन हैं—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।[2]

यमराज शक्तियों की शक्ति एवं शक्तिमानों के शक्तिमान का भी परिचय बताते हुए उनकी महनीयता (शक्तिमत्ता) का उत्तरोत्तर क्रम इस प्रकार बताते हैं—पुरुष ही पराकाष्ठा एवं परागति है। यही विश्व की परम शक्ति है और उपनिषदों तथा योगियों की इसी पराशक्ति की कामना रही है।



इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।

---

1. कठोपनिषद्-2.23 2. कठोपनिषद्-3.3-4

साधना के धरातल पर प्रत्येक साधक का काम्य शक्ति है। शक्ति अपने तात्त्विक स्वरूप में क्या है? यह ध्यातव्य है। शक्ति शिव की स्फुरत्ता है, उसका आत्मदर्पण है और उसका हृदय है। महेश्वरानन्द ने शक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है—

यदा स्वहृदयवर्तिनमुक्तरूपमर्थतत्त्वं बहिःकर्तुमुन्मुखो भवति तदा शक्तिरिति व्यवह्रियते।

(परिमल)

विश्वसिसृक्षु परमेश्वर की आदि सिसृक्षा या प्रथम स्पन्द की शक्ति है। परमेश्वर की बाह्योन्मुख क्रिया ही शक्तितत्त्व है। महार्थमञ्जरीकार का कथन है कि जब परमेश्वर अपने हृदयवर्ती अर्थतत्त्व को बाहर प्रकाशित करने के लिए उन्मुख होते हैं तब वही उनकी बाह्योन्मुख अवस्था शक्ति कही जाती है।

शिव की जो स्वाभिन्ना स्वातन्त्र्य शक्ति है, उसे ही त्रिकदर्शन में शक्ति की संज्ञा प्रदान की गयी है। शक्ति स्फुरत्ता है, अहं विमर्श है, हृदय है; सार है, परावाक् है, शिव की आत्मा है और शिव की पहचान है। परमशिव में शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व का युगपत् स्फुरण होता है। दोनों में अभिन्न अविनाभाव सम्बन्ध है।

शक्ति का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के अनेक उत्तर हो सकते हैं; क्योंकि दृष्टि-भेद एवं प्रयोजन-भेद से शक्ति की व्याख्या एवं उसके स्वरूप में भेद अवश्यमेव हो जायेगा। यदि हम शैव सृष्टि-प्रक्रिया की दृष्टि से देखें या तत्त्वों की दृष्टि से देखें तो स्थूल दृष्टि से हम यही कह सकते हैं कि जो कुछ है, वह सब कुछ शक्ति ही है। 'है' और 'नहीं है', 'क्या है' और 'क्या नहीं है' 'कौन है?' और 'कैसा है?'—इत्यादि सारे प्रश्नों का उत्तर परमशिव के पास (या शिव के पास) नहीं है। इनका उत्तर मात्र शक्ति के पास है। शिव तो शक्ति की सहायता के विना यह भी नहीं समझ पाता कि मैं हूँ या मैं नहीं हूँ। वह यह भी नहीं समझ पाता कि मैं क्या हूँ? मैं कौन हूँ? इन सारे 'क्या' एवं 'क्यों', सारे नाम एवं रूप, सारे अस्तित्व एवं अनस्तित्व का बोध मात्र शक्ति कराती है। शिव चित् प्रधान है और शक्ति आनन्द-प्रधान है। शक्ति शिव की अभिज्ञा है, पहचान है, शिव को अपने अहं का बोध कराने वाली सत्ता है। शक्ति शिव का मुख है—'शैवी मुखमिहोच्यते।'

शक्ति शिव का वह दर्पण है, जिसमें शिव अपने अहं, अपनी अस्मिता एवं अपने अस्तित्व का साक्षात्कार करते हैं। शिव और शक्ति चन्द्रचन्द्रिकयोरिव अभिन्न हैं—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

जगत् शक्ति के हृदय में बीजवत् स्थित है; यथा वटबीज में वटवृक्ष—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।

आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि—

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते।।

आचार्य सोमानन्द की दृष्टि में शिव एवं शक्ति में कोई भेद है ही नहीं—

शक्तिमानेव शक्तिः स्याच्छिववत्करणार्थतः।
शक्तेः स्वातन्त्र्यकार्यत्वाच्छिवत्वं न क्वचिद्भवेत्।।

क्या हिम से शैत्य एवं अग्नि से ऊष्णता को पृथक् किया जा सकता है? यदि नहीं तो इसी प्रकार शिव से शक्ति को भी पृथक् नहीं किया जा सकता—

न हिमस्य पृथक् शैत्यं नाग्नेरौष्ण्यं पृथग्भवेत्।

क्या तरंगों के पैदा होने पर जल नष्ट हो जाता है? इसके विपरीत होता यह है कि वायु के न रहने पर तरंगें नष्ट हो जाती हैं, जल नहीं—

तत्र वीचित्वमापन्नं न जलं जलमुच्यते।
न च तत्राम्बुरूपस्य वीचिकाले विनाशिता।
निश्चलत्वेऽपि हि जलं वीचित्वे जलमेव तत्।।

जल तरंगाकार होकर भी अपने अस्तित्व को नहीं मिटा देता। तरंगें तो मिट जाती हैं; किन्तु जल निश्चल बना रहता है।

पराशक्ति शिव से अभिन्न है—

शिवाभिन्ना पराशक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।
वामादीच्छाभेदेन मिथुनत्रयतां गता।।

शिव और शक्ति की परिभाषा—षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह में शिव एवं शक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है—

यदयमनुत्तरमूर्ति निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
परस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।।

इच्छा सैव स्वच्छा सन्ततसमवायिनी सती शक्तिः।
सचराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।।

शक्ति निजनिलीन जगत् का बीज है। वह शिव की इच्छात्मिका समवायिनी शक्ति है।

शक्ति का स्वरूप-लक्षण

शक्ति का यथार्थ स्वरूप क्या है? उसका स्वरूप-लक्षण क्या है? शक्ति के तटस्थ लक्षण तो अनेक हैं, वह उद्भव-स्थिति-संहारकारिणी है (यतो वा इमानि भूतानि .... जायन्ते .... आदि)। वह सृष्टिस्वरूपा है (सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)। वह परमशिव की आत्मभूता निजा शक्ति है। वह परमशिव के अहं (अस्मिता) या

आत्मप्रत्यभिज्ञा का दर्पण है। वह उनका मुख है—'शैवीमुखमिहोच्यते। वह शिव का विमर्श, प्रत्यवमर्श, स्वातन्त्र्य, हृदयसार है। ये तटस्थ लक्षण हैं; किन्तु शक्ति का स्वरूप-लक्षण क्या है?

शक्ति विश्व का परम सत्य है; किन्तु सत्य का मुख स्वर्णपात्र से ढका हुआ है—'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।' अत: उसका यथार्थ स्वरूप आच्छादित है। छान्दोग्योपनिषद् में एक उपाख्यान आता है, उससे शक्ति के स्वरूप-लक्षण पर थोड़ा प्रकाश डाला जा सकता है।

छान्दोग्योपनिषद् में उद्दालक की दृष्टि—आरुणि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा कि सामने वाले वटवृक्ष से एक बड़ का फल ले आओ। श्वेतकेतु लाया। उद्दालक ने कहा—इसे फोड़ो। श्वेतकेतु ने उसे फोड़ दिया।

वार्तालाप का सारांश—

उद्दालक—इसमें क्या देखते हो?

श्वेतकेतु—भगवन्! इसमें अणु के समान बहुत-से दाने हैं।

उद्दालक—इसमें से एक को फोड़ो।

श्वेतकेतु—फोड़ दिया भगवन्।

उद्दलक—इसमें क्या देखते हों?

श्वेतकेतु—कुछ नहीं भगवन्।

उद्दालक—हे सौम्य! इस वटबीज की जिस अणिमा को तू नहीं देखता, उस अणिमा का ही यह इतना विशाल वटवृक्ष है। हे सौम्य! तू इस कथन में श्रद्धा कर। वह जो यह अणिमा है, एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है। वह आत्मा है और श्वेतकेतो! वही तू है—'तत्त्वमसि।'

उद्दालक ने आत्मा, मधु, नदी, वृक्ष, वटबीज, नमक एवं मुमूर्ष—आदि सभी दृष्टान्तों में एक बात समान रूप से कही कि वह जो अणिमा है, एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है। हे श्वेतकेतो! वही तू है। हे सौम्य! इस वटबीज की जिस अणिमा को तू नहीं देखता, उस अणिमा का ही यह इतना बड़ा वटवृक्ष खड़ा हुआ है।

छान्दोग्योपनिषदोक्त सनत्कुमार की दृष्टि—महर्षि नारद ने अपने अग्रज सनत्कुमार से कहा कि भगवन्! मुझे उपदेश दीजिए। इस उपाख्यान के वार्तालाप का सारांश इस प्रकार है—

सनत्कुमार—तुम जो कुछ जानते हो, उसे बताओ।

नारद—भगवन्! मैं इतिहास, पुराण, वेद, व्याकरण, श्राद्ध, कल्प, गणित, उत्पात-ज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या,

सर्पविद्या, देवजन नृत्य-संगीतविद्या एवं मन्त्रविद्या जानता हूँ।

सनत्कुमार—चारो वेद, इतिहास, पुराण, गणित आदि जो कुछ भी तुम जानते हो, वह सब कुछ नाम ही है। सनत्कुमार ने कहा—तुम नाम की ब्रह्म के रूप में उपासना करो। नारद ने उपासना करने के बाद में पूछा—

नारद—क्या नाम से भी बढ़कर कुछ है?

सनत्कुमार—तुम वाक् की ब्रह्म के रूप में उपासना करो।

नारद ने वाक् की उपासना करने के बाद पूछा—क्या वाक् से भी बढ़कर कुछ है?

सनत्कुमार—तुम मन की ब्रह्म के रूप में उपासना करो।

नारद ने मन की उपासना करने के बाद पूछा—क्या मन से भी बढ़कर कुछ है?

सनत्कुमार—संकल्प की ब्रह्म के रूप में उपासना करो।

नारद—(संकल्पोपासना करने के बाद) संकल्प से भी बढ़कर कुछ है?

सनत्कुमार ने इसी प्रकार नारद को शनैः-शनैः चित्त की ब्रह्म के रूप में उपासना, ध्यान की ब्रह्म के रूप में उपासना, विज्ञान की ब्रह्म के रूप में उपासना, बल की ब्रह्म के रूप में उपासना, अन्न की ब्रह्म के रूप में उपासना, जल की ब्रह्म के रूप में उपासना, तेज की ब्रह्म के रूप में उपासना, आकाश की ब्रह्म के रूप में उपासना, स्मरण की ब्रह्म के रूप में उपासना, आशा की ब्रह्म के रूप में उपासना, प्राण की ब्रह्म के रूप में उपासना का उपदेश देकर भी और नारद उनकी उपासना करके भी सत्य के स्वरूप-लक्षण को समझ नहीं सके, तब सनत्कुमार ने नारद से कहा—

सत्य ही जिज्ञास्य है, विज्ञान ही जिज्ञास्य है, मति ही जिज्ञास्य है, श्रद्धा ही जिज्ञास्य है, निष्ठा ही जिज्ञास्य है, कृति ही जिज्ञास्य है, सुख ही जिज्ञास्य है, भूमा ही जिज्ञास्य है, भूमा ही अमृत है, भूमा ही सर्वत्र सब कुछ एवं आत्मा है। भूमा ही आत्मा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बड़े-बड़े महर्षियों को भी सत्य के स्वरूप-लक्षण प्रस्तुत करने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है—कितने सोपान, कितनी ऊँचाइयाँ, कितने पर्वत और कितने साधना-पर्वतों के शृंग चढ़ने पड़े हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण की दृष्टि—तैत्तिरीयोपनिषद् में भृगु की ब्रह्म-जिज्ञासा के समाधानार्थ पिता वरुण ने भृगु को अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी को ब्रह्म की उपलब्धि का द्वार बताया है। वरुण ने भृगु से ब्रह्म के स्वरूप को क्रमशः इस प्रकार बताया है—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्, प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्, मनो ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति, सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता।

इस प्रकार तैत्तिरीय श्रुति भी उस अवाच्य एवं हिरण्मय पात्र से ढके सत्य को अनावृत करने की दिशा में कोई तात्कालिक निर्णय नहीं कर पाती। कारण सुस्पष्ट है—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः नैषा तर्केण मतिरापनेया।
श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।।

क्योंकि—

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्। (कठो.)

शक्ति का समग्र स्वरूप

● शक्ति न तो स्त्रीतत्त्व है और न तो पुरुषतत्त्व। वह लिङ्गातीत है। वह स्त्री होते हुए भी पुरुष है और पुरुष होते हुए भी स्त्री है। यथार्थतः वह स्त्री-पुरुष दोनों लिङ्ग-भेदों से अतीत है; क्योंकि वह आत्मा है, चैतन्य है, संवित् है और आत्मा, चैतन्य एवं संवित् का कोई लिङ्ग नहीं है। वह विमर्श है और शास्ता शिव की शिष्या है। शिव ने अपने स्वरूप को ही दो भागों में विभाजित कर लिया। ये दोनों भाग हैं—गुरु (शिव) = प्रकाश एवं शिष्य (पार्वती) = विमर्श।

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।। (स्वच्छन्दतन्त्र)

अमृतानन्दनाथ कहते हैं—'इह खलु भगवान् प्रकाशमूर्तिः परमशिवः स्वात्मानं विमर्शांशेन विभज्य पश्यन्त्यादिक्रमात् पृच्छति।'

● शक्ति विश्वगुरु की विमर्शरूपिणी शक्ति है। यद्यपि यह एक है तथापि अनन्त नाम एवं अर्थों के रूप में विभक्त हो गई है। यही पश्यन्ती आदि वाक् बनकर शिष्या (पार्वती) की भूमिका का भी निर्वहन करती है—

विमर्शरूपिणी शक्तिरस्य विश्वगुरोः परा।
परिस्फुरति सैकापि नानानामार्थरूपिणी।।

पश्यन्त्यादिक्रमादेतौ जातौ प्रश्नोत्तरात्मना।
तन्त्रावतारं तन्वाते सर्वत्रानुजिघृक्षया।। (योगिनीदीपिका)

● शक्ति ब्रह्मस्वरूपा है और उसी से प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप एवं असद्रूप जगत् का आविर्भाव है—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।

● यह शक्ति अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका एवं अनेका है—

1. यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया।
2. यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता।
3. यस्या लक्ष्यं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या।

4. यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा।
5. एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका।
6. एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका।

अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति। (अथर्वशीर्ष)

● शक्ति स्त्री-पुरुष आदि सभी लिङ्गों से परे है—

नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये।(देवीभागवतपुराण)

● शक्ति मन्त्रों में मातृका (मूलाक्षर रूप से रहने वाली) शब्दों में ज्ञानरूप से एवं ज्ञानों में चिन्मयातीता एवं शून्यों में शून्यसाक्षिणी एवं दुर्गा है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।।

● शक्ति ही आनन्द एवं अनानन्द, विज्ञान एवं अविज्ञान, ब्रह्म एवं अब्रह्म, पञ्चीकृत-अपञ्चीकृत भूत है और वही अखिल जगत् है। शक्ति का एक प्रत्यक्ष रूप जगत् है—

अहमानन्दानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूता-न्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्। स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्। (शिवसूत्र)

● शक्ति ही वेद और अवेद, विद्या और अविद्या, अजा एवं अनजा, अध-ऊर्ध्व एवं तिर्यक् सभी कुछ है—

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्, अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्।

● अकेली एक शक्ति ही 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, सोमप-असोमप विश्वेदेव, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, ज्योति, कला, काष्ठा और काल आदि सभी कुछ है—

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशदिव्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा ब्रह्मविष्णुरूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी।

● क्या जड़ प्रकृति उससे पृथक् है? नहीं। वह गुणत्रय एवं तद्रूपा प्रकृति भी है। वह जड़ और चेतन दोनों है—

सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। (अथर्ववेद)

● शक्ति ही जगदाधार पृथ्वी एवं जलतत्त्व है। शक्ति ही वैष्णवी, विश्वबीज और माया है। वही मोहिका भी है और वही मुक्ति का हेतु भी—

आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये।।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।।

● स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम् (शिवसूत्र) कहकर शिवसूत्रकार ने जगत् को शक्ति का प्रत्यक्ष रूप कहा है।

● शक्ति ही विश्व की समस्त नारियों एवं विद्याओं के रूप में अवस्थित है—
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

● शक्ति ही बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि एवं महा अविद्या भी है—

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे।।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोस्तु ते।।

● शक्ति सर्वस्वरूपा है। वह सर्वशक्तिसमन्विता है—
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।

● शक्ति ही मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकाररूप अन्तःकरणचतुष्टय है। वही सर्व-मन्त्रमयी एवं सत्यानन्दस्वरूपिणी है।

मनोबुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः।
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।।

● एक ही शक्ति शाम्भवी, देवमाता (अदिति), सर्वविद्या, वनदुर्गा, मातंगी, ब्राह्मी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, कौमारी, वैष्णवी, चामुण्डा, वाराही, लक्ष्मी, ज्ञान और क्रिया आदि सब कुछ है—

शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या...।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः।।

● शक्ति ही शिवा, विष्णुमाया, रौद्रा, नित्या, गौरी, सुख, सिद्धि, शर्वाणी, दुर्गा, सारा, सर्वकारिणी, ध्याति, विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति आदि सभी कुछ है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।

या देवी सर्वभूतेष बुद्धिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेणा संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।(मार्कण्डेयपुराण)

यथा सा प्रकृतिः पूर्णा दक्षकन्याभवत्पुरा।
यथा च तां हरः प्राप पत्नीं ब्रह्मस्वरूपिणीम्।।

(देवीभागवतपुराण)

● शक्ति ही मूल प्रकृति और परब्रह्म दोनों है—

या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी।
सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च।।

(देवीभागवतपुराण)

● शक्ति ही सृष्टि-स्थिति-संहारिणी है—

तथा महेश्वरश्चाहं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्री सा महेश्वरी।।

(देवीभागवतपुराण)

● शक्ति शिव की भी देवता है—

सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च।

● एक ही शक्ति सती, पार्वती, लक्ष्मी, सावित्री एवं सरस्वती सभी है। वही सृजन, पालन एवं संहाररूपा भी है—

अरूपा सा महादेवी लीलया देहधारिणी।
तयैतत्सृज्यते विश्वं तयैव परिपाल्यते।।

विनाश्यते स्वलीलया पूर्णा दक्षकन्याभवत्पुरा।
तथा हिमवतः पुत्री तथा लक्ष्मी सरस्वती।
अंशेन विष्णोर्वनिता सावित्री ब्रह्मणस्तथा।।

● शक्ति सच्चिदानन्दविग्रहा, सुनिष्कला, नित्यानन्दमयी प्रकृति है—

स्थिता प्रकृतिरेका सा सच्चिदानन्दविग्रहा।
शुद्धज्ञानमयी नित्या वाचातीता सुनिष्कला।।

दुर्गम्या योगिभिः सर्वव्यापिनी निरुपद्रवा।
नित्यानन्दमयी सूक्ष्मा गुरुत्वादिभिरुज्झिता।।

(देवीभागवतपुराण)

● जो कुछ भी है, वह सब कुछ शक्ति ही है। भगवती सती पूछती हैं कि बताओ मैं क्या नहीं हूँ—

किं नाहं पश्य संसारे यद्वियुक्तं किमस्ति हि।
सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज।।

(देवीभागवतपुराण)

● 'शक्ति' शक्ति भी है और अशक्ति भी है। भगवती स्वयमेव कहती हैं कि मैं विद्या भी हूँ और अविद्या भी, मैं शक्ति भी हूँ और अशक्ति भी—

विद्याऽविद्या स्पृहा वाञ्छा शक्तिश्चाशक्तिरेव च।

(देवीभागवतपुराण)

शक्ति का ब्रह्मस्वरूप

देवीभागवतपुराण (अध्याय-2) में एक कथा आती है। महर्षि नारद ने महादेव से पूछा कि 'महेश्वर! स्वयं आप, भगवान् विष्णु एवं जगत् पिता ब्रह्मा की उपासना से तो परमपद की प्राप्ति होती है, फिर तप के द्वारा आप किसकी उपासना करते हैं? आप लोगों का उपास्य कौन है—

युष्माकं तपसोपास्यं दैवतं किं महेश्वर।
त्वं यथा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मापि जगतां पतिः।
एतान् सम्भजते भक्त्या जायते परं पदम्।।

नारायण ने कहा—उस देवता से आपका क्या प्रयोजन है? आप सबके देवता तो हम हैं ही। हमारी ही आराधना करके आप परमपद प्राप्त कर लेंगे। अतः हम सबके देवता से आपका क्या प्रयोजन हो सकता है?

नारद के अत्यन्त स्तुति करने पर भगवान् शिव ने (भगवान् विष्णु की अनुशंसा पर) समाधि लगाकर भगवती श्रीदुर्गा के चरणकमलों का अपने हृदय में ध्यान किया और उन्हें पूर्ण ब्रह्म जानकर नारद से कहा—

श्रीदुर्गाचरणाम्बुजं हृदि मुहुर्ध्यायन्यदेकं परम्।
पूर्णं ब्रह्म तदेव निर्मलमतिर्वक्तुं समारब्धवान्।।

जो शुद्ध, शाश्वत और मूलप्रकृतिस्वरूपिणी जगदम्बा हैं, वे ही साक्षात् परब्रह्म हैं और वे ही हमारी देवता भी हैं। जिस प्रकार ये ब्रह्मा, ये विष्णु और स्वयं मैं शिव, इस जगत् की उत्पत्ति-पालन-संहार के कार्य में नियुक्त हैं, उसी प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों

में निवास करने वाले करोड़ों प्राणियों के सृजन, पालन एवं संहार का विधान करने वाली वे महेश्वरी ही हैं। वे ही साक्षात् परब्रह्म हैं और वे ही हमारी देवता भी हैं—

या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी।
सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च।।

अयमेको यथा ब्रह्म तथा चायं जनार्दनः।
तथा महेश्वरश्चाहं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः।।

एवं हि कोटिकोटीनां नानाब्रह्माण्डवासिनाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्री सा महेश्वरी।।

शक्ति का परात्पर स्वरूप

एक समय की बात है, मन्दराचल पर्वत पर सभी देवगणों एवं भगवान् विष्णु की उपस्थिति में नारद ने भगवान् शिव से पूछा—भगवन्! आप सबका देवता कौन है? आप किस अविनाशी देवता की आराधना करते हैं?

भगवान् शंकर ने समाधिस्थ होकर पराम्बा भगवती का पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में दर्शन किया और बोले—नारद! शुद्ध, शाश्वत, प्रकृतिस्वरूपिणी भवगती जगदम्बा ही साक्षात् परब्रह्म हैं और वे ही हमारी देवता भी हैं। वे महादेवी निराकार रहते हुए भी अपनी लीला से देह धारण करती हैं। उन्हीं के द्वारा इस विश्व का सृजन-पालन-संहार किया जाता है। उनके द्वारा ही जगत् मोहग्रस्त होता है। प्राचीन काल में पूर्ण भवगती ही अपनी लीला से दक्षकन्या सती के रूप में, हिमवान की पुत्री पार्वती के रूप में, अपने ही अंश से विष्णुभार्या लक्ष्मी के रूप में, ब्रह्मा की भार्या सरस्वती तथा सावित्री के रूप में प्रकट हुईं। उन पूर्णा प्रकृति ने ही त्रिदेवों को सृष्टि-कार्य में नियुक्त किया। वे ही सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, गंगा एवं सती के रूप में प्रकट होकर त्रिदेवों की भार्या बनीं। वे ही भगवती सारे प्राणियों में नारी रूप धारण करके अवस्थित हैं। वे 'परा प्रकृति' भगवती महाविद्या ही सृष्टि का आदि कारण हैं।[1]

शाक्तपरम्परा का ऐतिहासिक विकास-क्रम : एक विहंगमावलोकन

शाक्त-परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि मानव-सभ्यता, मानव-संस्कृति एवं मानव-चिन्तन। शाक्त-परम्परा का इतिहास केवल भारत तक ही सीमाबद्ध होकर नहीं रह गया है; अपितु यह समस्त मानव जाति के सांस्कृतिक इतिहास में सर्वत्र समाविष्ट है, प्रसृत एवं व्याप्त है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्रकृति देवी या जगन्माता के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[2] एक सील पर एक ओर यन्त्र अंकित है तो दूसरी ओर देवी की मूर्ति

1. देवीभागवतपुराण
2. Mohan Jodaro and the Indus Civilization : Sir John Marshall.

है। एक दूसरी सील है, जिस पर सिंह अंकित है। यह देवी दुर्गा की प्रतीत होती है। एक अन्य सील पर 'शिवा' शब्द अंकित है। इसमें देवी शयनमुद्रा में दिखाई गई हैं। यह शिव-शक्ति सम्प्रदाय से सम्बद्ध प्रतीत होती है। मिस्र देश की मूर्तियों के समान एक सील पर देवी का मुख स्त्री का एवं शरीर सिंह का दिखाया गया है।[1]

इससे सिद्ध होता है कि भारत के समान ही एशिया माइनर, मिस्र, फिनीशिया एवं यूनान में भी शक्ति की उपासना प्रचलित थी। इन देशों का भी भारतीय शक्त्युपासना से सम्बन्ध रहा है। उनकी प्रकृति देवी स्वयं अपने अंश से अपने सहयोगी देव का ठीक उसी प्रकार सृजन करती हैं, जिस प्रकार महेशानी महेश को उत्पन्न करके और उसके साथ एक होकर सृष्टि करती हैं—Their central figure is as a mother or nature goddess who out of her own being creates her partner god just as the Indian mother goddess creates Shiva and then in union with him becomes the mother of all beings.[2]

इसके बावजूद भी भारत के समान मातृशक्ति की उपासना अन्यत्र कहीं दृढ़ नहीं थी। भारत के प्राय: सभी प्रदेशों में मातृ-मन्दिर एवं मातृ-मूर्तियाँ हैं। शक्ति को ही शिव की भी जन्मदात्री मानने से शिव से अधिक शक्ति की महत्ता स्थापित हो गयी और शक्ति सभी देवियों से श्रेष्ठतर मानी गयी है।[3] वैदिक युग का प्रत्येक देव 'शक्ति' से समन्वित माना गया है।[4]

ऋग्वेद में सर्वप्रथम हमें वेदवाणी सरस्वती का वर्णन मिलता है। यह नदी एवं देवता दोनों रूपों में प्राप्त होता है। सरस्वती विद्यारूपा देवी के रूप में मिलती हैं। ये सृष्टि के कण-कण में व्याप्त दिखाई गयी हैं। वे ज्ञानप्रदात्री, यज्ञ, श्रेष्ठकर्म एवं देवोपासना की धारिका हैं। (ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, अ.-2.3.10-12; मण्डल-6, सूक्तमन्त्र-61; मण्डल-10, सूक्त-17, मन्त्र-7-9)।

यदि हम भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो सिन्धु घाटी से प्राप्त ताम्रलेखों, प्रस्तर-मूर्तियों, मुद्राओं (मोहरों) एवं मृतिका-विग्रहों के अध्ययन से इस घाटी के निवासियों के धर्म और उनकी शक्तिसम्बन्धिनी आस्था एवं दृष्टि का पता चलता है।

सर जॉन मार्शल का कथन है कि सिन्धु घाटी के देवगणों में माता भवगती (Mother Goddes) का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। सिन्धु घाटी से प्राप्त मृत्तिका-विग्रहों (मूर्तियों) की विशाल सामग्री में से जो भी मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वे प्राय: सभी माता भगवती के ही विभिन्न प्रतिरूप हैं। इसी प्रकार की मूर्तियाँ दक्षिणी बलोचिस्तान की कुल्ली संस्कृति से और उत्तरी बलोचिस्तान की झोब की घाटी (Zhob

1. सैक्श्न प्राचीन भारत का इतिहास (प्रो. हाजनि)।

2-3. Mohan Jodaro and the Indus Civilization : Sir John Marshall.

4. Shakti or Divine Power

Valley) से प्राप्त हुई हैं। झोब घाटी से प्राप्त मूर्तियों के सिर पर वस्त्र हैं और कुल्ली से प्राप्त मूर्तियों के कण्ठ में अनेक हार हैं।

सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया में माता भगवती की मूर्तियाँ पाई गयी हैं। मार्शल एवं अन्य पुरातत्त्वविदों की मान्यता है कि किसी समय माता भगवती की पूजा का क्षेत्र सिन्धु से नील नदी तक फैला हुआ था। सर जान मार्शल का कथन है—

माता भगवती की पूजा ने जितना अधिक भारत को प्रभावित किया, उतना अधिक और किसी देश को नहीं। इतना ही नहीं; प्रत्युत यहाँ के निवासियों ने तो उसे प्रकृति का स्वरूप और उस पुरातन पुरुष परमात्मा की अर्धांगिनी भी स्वीकार कर लिया। मातृक समाज में प्रारम्भ से उसकी पूजा ने शक्तिवाद की नींव रक्खी। वेदों में देवियों का स्थान गौण और देवताओं का स्थान मुख्य बना रहा है।

इतिहासकारों का मत है कि माता भगवती और धरती माता की परिकल्पना वैदिक आर्यों में भी पायी जाती है। प्रारम्भ में वह पृथ्वी के रूप में आयी; किन्तु तदनन्तर उसे प्रकृति, दुर्गा, गौरी और काली आदि आख्यायें दी गईं।

वैदिक आर्यों ने देवताओं को प्रमुख स्थान दिया और देवियों को गौण स्थान दिया। सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी देवता प्रधान थे और देवियाँ गौण थीं। सिन्धु घाटी से प्राप्त मुद्राओं पर पुरुष देवताओं का भी आकार अंकित है।

सिन्धु घाटी की मूर्तियाँ प्रायः खड़ी हुई मुद्रा में प्राप्त होती हैं। पीपल, देवता, शक्ति एवं शिव सभी इस घाटी-सभ्यता में पाये जाते हैं। वृक्षों में दैवी आत्माओं के निवास, पीपल के पेड़ की उत्पत्ति एवं ज्ञान के स्रोत के रूप में कल्पना, शमी वृक्ष की पूजा, पीपल या शमी की शाखाओं को मुकुट या शिरोवस्त्र में लगाने से ज्ञानप्राप्ति की परिकल्पना, शमी वृक्ष को प्राप्त करने हेतु देवासुर-संग्राम, सर्प-रक्षित बैल, वृष-भरक्षित बबूल का वृक्ष, बबूल एवं पीपल की पूजा, इन वृक्षों की जीवनवृक्ष के रूप में परिकल्पना तथा लिंग-योनि की पूजा आदि प्रमाण सिन्धु घाटी के वासियों की धार्मिक दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं।

शिव—एक मोहर पर तीन मुखों वाले नर-देवता का चित्र अंकित है, जिसके प्रत्येक मुख की तीन-तीन आँखें हैं और वह भारतीय योगियों की भाँति आसनस्थ है। इसे ऐतिहासिक शिव का प्रतिरूप स्वीकार किया गया है। इस आकृति के सिर पर सींग है और यह चतुर्दिक पशुओं से घिरा हुआ है।

लिङ्ग और योनि की पूजा—सिन्धु घाटी के निवासी शिवलिङ्ग एवं योनि की भी उपासना करते थे, जो कि आजतक प्रचलित है। लिङ्ग शिव एवं योनि पार्वती का प्रतीक है।

यह सभ्यता (सर जान मार्शल के अनुसार) ईसापूर्व तीसरी सहस्राब्दी की है।

मेसोपोटामिया की सभ्यता भी इतनी ही पुरानी मानी जाती है। भगवती सरस्वती से इला एवं मही के साथ सुख उत्पन्न करने वाली होकर स्वगृह में आने की प्रार्थना ऋग्वेद के प्रथम मण्डल (सू.-13, मन्त्र-9) में की गयी है। ऋग्वेद (1-142-9) में होत्रा एवं भारती देवियों के साथ सरस्वती का भी वर्णन मिलता है। अथर्ववेद (काण्ड-7, सूक्त-57, मन्त्र-1) में लोककल्याण का कार्य करते समय प्रतिपक्षियों के घात-प्रतिघात से होने वाले मन:क्षोभ की स्थिति में देवी से ज्ञान एवं स्नेहलेप लगाकर घाव भरने की भी प्रार्थना की गयी है।

वेदों में द्वितीय सर्वाधिक चर्चित देवियों में ऊषा देवी का उल्लेख मिलता है। वे अविनाशिनी, अत्यन्त दीप्तिमयी, शक्तिसम्पन्ना, ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। वे ब्रह्मचारिणी के समान तेजस्विनी ऊषा सूर्य का आश्रय ग्रहण करती हैं। (ऋग्वेद मण्डल-1, सूक्त-30, मन्त्र-20-22; सूक्त-92, मन्त्र-1-15)।

भगवती अदिति को भूतों की माता, आदित्य की जननी, समस्त जगत् की उद्भाविका एवं जगत् को अपने में लयीभूत करने वाली शक्ति कहा गया है। (ऋग्वेद मण्डल, सूक्त-72, 89, मन्त्र-9-10)।

यद्यपि शक्तिवाद का पूर्ण विकास मध्ययुग में हुआ तथापि इसका अंकुरण तो प्रागैतिहासिक काल में अर्थात् सिन्धु घाटी की सभ्यता एवं वैदिक काल में ही हो चुका था। मोहनजोदड़ो एवं हडप्पा के उत्खनन के समय सम्प्राप्त सीलें, यन्त्र, देवी की मूर्तियाँ एवं सिक्कों के अध्ययन से यह बात सम्पुष्ट भी है। सीलों एवं यन्त्रों पर देवी की उत्कीर्ण आकृतियाँ एवं वेदों में वर्णित ऊषा, सरस्वती, वाक् आदि देवियाँ इन दोनों संस्कृतियों के सेतु हैं।

ऋग्वेद में ऊषा, सरस्वती वाक् आदि देवियों के सूक्त पाये जाते हैं तो अथर्ववेद में तान्त्रिक देवताओं, मन्त्रों, यन्त्रों एवं तान्त्रिक साधनाओं के पुष्कल उपादान प्राप्त होते हैं।

उपनिषदों में भी तान्त्रिक शक्तियों एवं तान्त्रिक साधनाओं के अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं। उपनिषदों में हैमवती (ब्रह्मविद्या) शक्ति के रूप में उपस्थित होती है।

अथर्ववेद (देव्यथर्वशीर्षम्) में एक कथा आती है कि समस्त देवताओं के समक्ष एवं ज्योतिर्मयी शक्ति के प्रकट होने पर देवताओं ने उनसे परिचय पूछा तो देवी ने कहा—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्त: प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत् वेदोऽवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवै:। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि।

अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ। अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्मणमुत प्रजापतिं दधामि।

एषात्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या।

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च।

'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशांकुशधनुर्बाणधरा। एषा श्री महाविद्या।' के अतिरिक्त वह शक्ति—'सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्र-ज्योतींषि। कलाकाष्ठादि कालरूपिणी भी है।

सारांश यह कि शक्ति ब्रह्म है। वह प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् है। वह शून्याशून्य, आनन्दानानन्द, विज्ञानाविज्ञान, ब्रह्माब्रह्मणी, पञ्चभूत-अपञ्चभूत, अखिल जगत्, वेद-अवेद, विद्याविद्या, अजानजा, अधश्चोर्ध्व एवं तिर्यक्, रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वेदेव, मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि, अश्विनी, सोम, त्वष्टा, पूषा, भग, विष्णु, प्रजापति, आत्म-शक्ति, विश्वमोहिनी, महाविद्या, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, विश्वेदेव, सोम-पासोमपा, आत्मशक्ति, विश्वमोहिनी, महाविद्या, यातुधान, असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष, सिद्ध, ब्रह्म-विष्णु-रुद्र, सतोगुण-तमोगुण-रजोगण, प्रजापति, इन्द्र, मनु, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष्मान तारे, कला, काष्ठा एवं काल आदि सब कुछ है। स्पष्ट है कि एक ही पराशक्ति अनन्त रूपों में अभिव्यक्त हो रही है। इसीलिए कहा गया है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

ऋग्वेद में वर्णित रात्रिदेवी

ऋग्वेद में रात्रिदेवी की स्तुति करते हुए उनकी प्रशंसा में निम्न बातें कही गयी हैं—

1. वे जगत् के जीवों के सभी शुभाशुभ कर्मों को देखती हैं और उन्हें फल देने के लिए समस्त विभूतियाँ धारण करती हैं।

2. वे अमर हैं। वे सभी को व्याप्त करके स्थित हैं। वे अपनी ज्योति से अन्धकार को दूर करती हैं।

3. परा चिच्छक्तिरूपा रात्रि देवी अपनी बहन ऊषा देवी को प्रकट करती हैं, जिससे अविद्यान्धकार दूर हो जाता है।

4. वे रात्रिदेवी हम पर प्रसन्न हों, जिनके आने पर हम सब उसी प्रकार सुखपूर्वक सोते हैं, यथा पक्षी वृक्षों पर।

5. हे ऊषा देवि! हे रात्रि की अधिष्ठात्री देवि! सर्वत्र प्रसृत यह अज्ञानान्धकार मेरे निकट आ पहुँचा है, आप उसे दूर करें।

6. हे परम व्योमस्वरूप परमात्मा की पुत्री! आपकी अनुकम्पा से मैं कामादिक शत्रुओं को जीत चुका हूँ, आप स्तोमवत् मेरे इस हविष्य को स्वीकार कीजिए—

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभि:। विश्वा अधिश्रियोऽधित। ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्वत:। ज्योतिषा बाधते तम:। निरुस्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती अपेदु हासते तम:। सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वय:। .... यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा न: सुतरा भव। उप आ पेपिशत्तम: कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय। उप ते इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिव। रात्रिस्तोमं न जिग्युषे।

उपनिषदों में कहा गया है कि स्वगुणनिगूढ़ा देवात्मशक्ति को लोगों ने ध्यानयोग के द्वारा प्रत्यक्षीकृत किया—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

कुमारी योषिता एवं पतिव्रता रूप में स्थित भगवती कुलशक्ति पिण्ड में कुलकुण्डलिनी एवं ब्रह्माण्ड में महाकुण्डलिनी के स्वरूप में स्थित हैं। प्राणियों के शरीर में यही कुलकुण्डलिनी चैतन्य एवं शब्दब्रह्म के रूप में भी स्थित है—

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मति:।
तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।। (शारदातिलक)

सारे वर्णों में भी शक्ति ही स्थित है—

अवर्गे तु महालक्ष्मी कवर्गे कमलोद्भवा।
चवर्गे तु महेशानि तवर्गे तु कुमारिका।।
नारायणी टवर्गे तु वाराही तु पवर्गिका।
ऐन्द्री चैव यवर्गस्था चामुण्डा तु सवर्गिका।।
एता: सप्त महामातृ: सप्तलोकव्यवस्थिता:।।
(स्वच्छन्दतन्त्र, पटल-1)

तन्त्रयुग में तो शक्तितत्त्व को इतनी प्रमुखता एवं महत्ता प्रदान की गयी कि यह कहा गया कि शक्ति के विना तो (शक्ति की सहायता के विना तो) शिव हिल भी नहीं सकते—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।।(सौन्दर्यलहरी)

वह शक्ति इतनी महान् है कि हरि, हर एवं विरञ्चि सभी उनकी ही आराधना करते रहते हैं—

अतस्त्वामाराध्यां हरि-हर-विरिञ्चादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्य: प्रभवति।। (सौन्दर्यलहरी)

शक्ति के विना तो परात्पर परमात्मा भी सृष्टि-स्थिति-लय करने में समर्थ नहीं हैं—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि।।
(वामकेश्वरतन्त्र : चतुश्शती)

यदि शिव शब्द के 'शि' वर्ण से इकार की मात्रा हटा दी जाय तो शिव शवमात्र बनकर रह जायेंगे। 'श' में 'इकार' शक्ति होती है; अतः शिव को श बनने से रोकने वाली पराशक्ति ही इकाररूपा शिवा शक्ति है। अतः शक्तिमान शिव में शक्ति ही प्राण-शक्ति है।

अनन्त ब्रह्माण्डों को गर्भीकृत करके स्थित एवं विश्वरूप में स्थित श्रीचक्र भी शक्ति-विस्तार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। श्रीचक्र में चार शिवचक्र एवं पाँच शक्तिचक्र स्थित हैं; अतः श्रीचक्र शक्ति एवं शिव का शरीर है—

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।।

निर्गुण, निराकार, निष्काम, निरीह, निःस्पृह परब्रह्म तो सृष्टि कर ही नहीं सकता; इसीलिए कहा गया है कि समस्त सृष्टि केवल कुण्डलिनी शक्ति का अपना व्यक्त स्वरूपमात्र है—

सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।

सुधासिन्धु के मध्य सुरविटपिवाटीपरिवृत मणिद्वीप के चिन्तामणिगृह में चिदानन्दलहरी शक्ति के पर्यंक में शिवादिक पञ्चदेव पाये बनकर स्थित हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते,
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां,
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।
(सौन्दर्यलहरी-8)

भैरवयामल में इसे इन शब्दों में वर्णित किया गया है—

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यः सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्।।

तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे।।

अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः।।

तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।।

वही परा शक्ति मूलाधार चक्र के पृथ्वीतत्त्व में, मणिपूरक चक्र के जलतत्त्व में,

स्वाधिष्ठान चक्र के अग्नितत्त्व में, अनाहत चक्र के आकाशतत्त्व में और आज्ञाचक्र के मनस्तत्त्व में पञ्चतत्त्व एवं मनस्तत्त्व बनकर और सहस्रार में पराशक्तिस्वरूप में विहार कर रही है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।(सौन्दर्यलहरी-9)

वही जगदम्बिका पराशक्ति मूलाधार चक्र में गुञ्जायमान कुण्डलिनी शक्ति के रूप में सो रही है—

स्वात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।
(सौन्दर्यलहरी-10)

वही जगज्जननी है और जगत् उसी के स्वरूप में स्थित है—

सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्।

यही शक्ति समया भी है और आनन्दभैरवी भी; शिवा भी है और महालक्ष्मी भी; महासरस्वती भी है और दशमहाविद्या भी। यही प्रकाश की विमर्शशक्ति भी है और काश्मीरियों की स्वातन्त्र्य शक्ति भी; यही महामाया भी है और विद्या भी। शक्ति ही स्फुरत्ता है, स्पन्द है, विमर्श है। इसी विमर्श शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय की क्रियायें निष्पादित होती हैं—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।
(वरिवस्यारहस्यम्-4)

यही शिवात्मिका शक्ति अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी सृष्टि के रूप में परिणत होकर विश्वाकार होकर सर्वत्र प्रसृत है—

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।
(वरिवस्यारहस्यम्-5)

वही वामा, ज्येष्ठा, शान्ता एवं अम्बिका भी है। वही चितिशक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति भी है। वही वागीश्वरी भी है और वर्ण भी। वही मातृकामयी भी है और मातृका भी। वही नाद भी है और नादान्त भी। वही समना भी है और उन्मना भी। वह षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा भी है और षट्त्रिंशत्तत्त्व भी। वही विश्वमयी भी है और विश्वातीता भी। वही गणेशी भी है और ग्रह भी। वही नक्षत्र भी है और राशि भी—

1. आवरणदेवतामामीशत्त्वादुच्यते गणेशीति।
2. एवं नवभिर्योगाद् ग्रहरूपेत्युच्यते माता।

3. प्रकृतिपुरुषगुणतत्त्वैर्जाता नक्षत्ररूपिणी माता।

4. जीवात्मपरमात्माभ्यां चैषा राशिस्वरूपिणी।

5. घटिता च परादिवाग्गणैरिति विद्यापि गणेशरूपिणी। (वरिवस्यारहस्यम्)

एक ही शक्ति ऐं (सरस्वती), ह्रीं (महालक्ष्मी) एवं क्लीं (काली) भी है। वही जगदात्मा भी है और जगत् भी। वही वैष्णवी भी है और रुद्राणी भी। वही ब्रह्माणी भी है और सावित्री भी। वही भुवनेश्वरी भी है और बगलामुखी भी। वही शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, दुर्गा, छिन्नमस्ता, तारा, काली, धूमावती, मातंगी, भैरवी, कमला, षोडशी एवं सीता भी हैं। वही सभी प्राणियों के भीतर विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, भ्रान्ति, चिति एवं माता आदि के रूप में भी स्थित है—

या देवीसर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।। (देवीसूक्त)

वही देवी (शक्ति) अनन्तवीर्या वैष्णवी शक्ति, विश्व का बीज माया, विद्या तथा जगत् की समस्त नारी बनकर स्थित है—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।
विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु।।
(मार्कण्डेयपुराण)

वही शक्ति विश्वेश्वरी, जगद्धात्री, स्थितिसंहारकारिणी, निद्रा, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, स्वर, सुधा, अक्षर, अर्धमात्रा, सन्ध्या, सावित्री, परा जननी, सृष्टिरूपा, स्थितिरूपा, संहृति-रूपा, महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा, महादेवी, महासुरी, प्रकृति, गुणत्रयप्रसविनी, कालरात्रि-महारात्रि-मोहरात्रि, श्री, ईश्वरी, ह्री, बुद्धि, बोध, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, परात्परा परमेश्वरी आदि सभी कुछ है।[1]

वही शक्ति मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चिता, चिति के साथ सर्वमन्त्रमयी, सत्ता, सत्यानन्दस्वरूपिणी, अनन्ता, शाम्भवी, सर्वविद्या, अपर्णा, ब्राह्मी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, लक्ष्मी, पुरुष आदि सभी कुछ है।[2]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' कहकर इस शक्ति को माया या प्रकृति के नाम से पुकारा गया है।

शक्तितत्त्व भारतीय दर्शन और धर्म में उतना ही प्राचीन है, जितना कि भारतीय

1. रात्रिसूक्त 2. विश्वसारतन्त्र

दर्शन एवं भारतीय धर्म। N. Barth महोदय का कथन है कि भारत में शक्ति की उपासना उतनी ही प्राचीन है, जितना कि भारत। ईसा से लगभग 2000 ई. पूर्व (प्रागैतिहासिक काल में स्थित) सिन्धु घाटी की सभ्यता के काल में भी प्रकृति देवी, जगन्माता के अवशेष उत्खनन में प्राप्त हुये हैं। एक सील पर एक ओर यन्त्र है तो दूसरी देवी की मूर्ति उत्कीर्ण है। एक सील पर सिंह अंकित है। शायद यह देवी दुर्गा से सम्बद्ध है। एक सील पर 'शिवा' शब्द अंकित है और इसमें देवी को शयनमुद्रा में दिखाया गया है। एक सील पर देवी का मुख नारी का; किन्तु शरीर सिंह का दिखाया गया है। एशिया माइनर, मिस्र, फिनीशिया एवं यूनान में भी शक्ति की उपासना प्रचलित थी।

शाक्तवाद की महत्ता के उत्तरोत्तर बढ़ते जाने के साथ ही साथ शक्ति को भी महादेवी कहा जाने लगा।

वेदकाल और शक्तितत्त्व

भारतीय ऋषियों ने ध्यानावस्था में यह अनुभव किया कि सृष्टि का कारणतत्त्व निर्गुण, निराकार ब्रह्म नहीं; प्रत्युत उसमें निगूढ़ शक्ति है—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

शक्ति अपने मूल रूप में परमात्मा में ही उसकी इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रिया-शक्ति के रूप में प्रकट हुई; किन्तु उसके भी पूर्व यह चितिशक्ति एवं आनन्द शक्ति के रूप में उदित हुई।

श्वेताश्वतर उपनिषद् (4.3) में इस शक्तितत्त्व को स्त्री, पुमान्, कुमार एवं कुमारी कहकर सर्वरूप एवं लिंगभेद से अतीत स्वीकार किया गया—'त्वं स्त्री त्वं पुमानमसि त्वं कुमार उत वा कुमारी'। शक्ति लिंगातीत है। वह नारीतत्त्व (मात्र) नहीं है; प्रत्युत पुरुष तत्त्व भी है। वह मूलतः तो सर्वान्तरात्मा है। सृष्टि के पूर्व आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था—'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत् किञ्चनमिषत्। (ऐतरेय-1.1)

बृहदारण्यकोपनिषद् (1.4.3, 1.4.7) में कहा गया है कि प्रारम्भ में आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। अतः अकेले होने के कारण वह रमण नहीं कर सका। अतः उसने दूसरे की इच्छा की। वह स्त्री एवं पुरुष का सम्मिलित रूप था। उसने अपने इस रूप के दो भाग किये और वे दोनों पति-पत्नी जैसे हो गये—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्। सहैतावानास। यथा स्त्रीपुरुष सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वैधायातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

प्रारम्भिक रूप में शक्ति माया या प्रकृति रूप में तथा महेश्वर मायी रूप में स्थित थे—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।[1]

उपनिषदों में इस ब्रह्मशक्ति को उमा एवं हेमवती के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।[2] बह्वृचोपनिषद् आदि उत्तरवर्ती उपनिषदों में उस शक्ति को सच्चिदानन्दलहरी, महात्रिपुरसुन्दरी आदि का सुस्पष्ट स्वरूप प्राप्त हुआ—'सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति'।

इस स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा भी आत्मा के रूप में ही की गई और उसे ब्रह्मसंवित्ति स्वीकार किया गया—'सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा चिदाद्या द्वितीयब्रह्मसंवित्ति:'। (बह्वृचोपनिषद्)

14-15 उपनिषदों में शाक्त मत का पुष्कल विवेचन मिलता है। इनमें त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद् एवं भावनोपनिषद् विशेष रूप में उल्लेख्य है।

मैत्रेय्युपनिषद् (5.3) को देखें तो वहाँ ब्रह्म के दो रूपों का उल्लेख किया गया है—मूर्त्त एवं अमूर्त्त। जो अमूर्त रूप है, वही सत् एवं ज्योति कहा गया है—'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चामूर्त्तं चाथ यन्मूर्त्तं तदसत्यं, यदमूर्त्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म, यद् ब्रह्म तद् ज्योति:'। यह ज्योति ही शक्ति है।

बृहज्जाबालोपनिषद् (2.8,2.9,3.1) में कहा गया है कि जिस प्रकार अग्नि सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार चिति शक्ति भी सर्वत्र व्याप्त है। उसे वहाँ सरस्वती, श्री, गौरी, प्रकृति एवं विद्या के अभिधानों से उल्लिखित किया गया है।

त्रिपुरोपनिषद् में शक्ति को चिच्छक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरत्रय में, देवयान-पितृयान-महायान पथत्रय में तथा अ से क्ष पर्यन्त वर्णमाला की मातृकाओं में तथा जीवों में स्थित कहा गया है—

तिस्र: पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा: सन्निविष्टा:।
अधिष्ठायैना अजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्।।

सीतोपनिषत् में भगवती सीता को प्रणव और मूल प्रकृति के रूप में वर्णित किया गया है—

सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन:।।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (1.1) में शक्ति को ह्रींकारस्वरूपा, हृल्लेखा, त्रिपुरात्मिका त्रिपुरा कहा गया है—'ह्रींकारेण हृल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटावसाने निलये विलये धाम्नि महसा घोरेण प्राप्नोति। सैवायं भवगती त्रिपुरेति व्यापद्यते'।

सरस्वतीरहस्योपनिषद् (ऋग्वेदसंहिता) में शक्ति को ब्रह्मशक्ति के रूप में प्रस्तुत

1. बृहदारण्यकोपनिषद् 2. केनोपनिषद्-3.25-26

किया गया है—'अद्वैता ब्रह्मण: शक्ति: सा मां पातु सरस्वती'।

यही भवगती सरस्वती हैं।

भगवती त्रिपुरा और उनका स्वरूप

भगवान् प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराऽभिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या भूर्भुवःस्वस्त्रीणि स्वर्गभूपातालानि त्रिपुराणि हरमायाऽऽत्मकेन ह्रींकारेण हल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटावसाने निलये विलये धाम्नि महसा घोरेण व्याप्नोति। सैवेयं भवगती त्रिपुरेति व्यापठ्यते। (त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

पुराणों में शक्तितत्त्व

कूर्मपुराण में अर्द्धनारीश्वर के पुरुष-अंश से रुद्र एवं स्त्री-अंश से अन्य शक्तियों के प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है। नारदीय महापुराण में महालक्ष्मी, राधा, ललिता, दुर्गा एवं यक्षिणी आदि अनेक शक्तियों के वर्णन के साथ ही साथ मन्त्रसिद्धि, दीक्षा-पद्धति, जप, यन्त्रविधि, देवी-मन्त्र, गणेशमन्त्र तथा तान्त्रिक पूजा-पद्धति का वर्णन किया गया है। मत्स्यपुराण में शिव-शक्ति के माहात्म्य के साथ शिव-शक्ति की आराधना का भी वर्णन किया गया है।

वामनपुराण में शिव-शक्ति के समवेत स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। पद्मपुराण में वैष्णवी एवं चामुण्डा शक्तियों के द्वारा दैत्यों के वध, कामाक्षा देवी एवं (कृष्ण की शक्ति के रूप में) राधा का वर्णन किया गया है। देवीभागवतपुराण में देवीगीता तथा देवी के स्वरूप का विवेचन शाक्त-मत की महनीय विभूति है। देवीगीता पर नीलकण्ठ-रचित टीका भी एक महनीय शाक्त सम्पदा है। कालिकापुराण शाक्त सम्प्रदाय का एक अनूठा ग्रन्थ है। महाभागवतपुराण में भी शक्तितत्त्व एवं शक्ति के रहस्य की विशद विवेचना मिलती है। ब्रह्माण्डपुराण में ललितासहस्रनाम नामक सहस्रनाम एवं भगवती ललिता के स्वरूप की सारगर्भित विवेचना मिलती है।

मार्कण्डेयपुराण में सप्तशती अन्तर्निहित है। शाक्त साहित्य में इसका अतीव महत्त्व है। इसमें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, चामुण्डा आदि शक्तियों द्वारा मधु-कैटभ, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ एवं महिषासुर आदि दैत्यों के वध का वर्णन मिलता है। इसमें इन शक्तियों के स्वरूप की भी मार्मिक एवं सारगर्भित मीमांसा प्राप्त होती है। विष्णुपुराण में भगवती लक्ष्मी या श्री के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। उन्हें वेदगर्भा, यशगर्भा, सूर्यगर्भा, देवगर्भा एवं दैत्यगर्भा आदि कहकर वर्णित किया गया है। शिवपुराण में सती, पार्वती की अनेक कथाओं का समावेश तो है ही; साथ ही उसके उमासंहिता में देवी के अलौकिक चमत्कारों का भी वर्णन मिलता है। सूतसंहिता में शक्तिस्तोत्र है। देवीभागवतपुराण में देवीगीता है। ये शक्तिसाहित्य की अद्वितीय निधि

हैं। महाभारत में शाक्त सम्प्रदाय एवं पाशुपत सम्प्रदाय पर यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। विराट पर्व में युधिष्ठिर द्वारा दुर्गा देवी की उपासना करने का वर्णन मिलता है। भीष्मपर्व में उमा, चण्डी, कात्यायनी, शाकम्भरी, महाकाली, भद्रकाली, कपाली, कपिला एवं कुमारी आदि का वर्णन किया गया है। यहीं देवी को कीर्ति, धैर्य, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा एवं लक्ष्मी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहीं भानुमती दिन की देवी, राका रात्रि की देवी, सिनीवाली अमावस्या एवं कुहू शुद्ध अमावस्या के रूप में वर्णित की गयी हैं। महाभारत के शल्यपर्व में देवी को परा शक्ति या निर्घोषा वाक् के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुराणों एवं महाभारत में माता या मातृशक्ति को पिता से अधिक महत्ता प्रदान की गयी है। सरस्वतीरहस्योपनिषद् (49.53) में माया एवं माया की शक्तियों पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है—

मायाशक्ति—

शुद्धसत्त्वप्रधानायां मायायां बिम्बितो ह्यजः।
सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपाद्यते।।

सा माया स्ववशोपाधिः सर्वज्ञस्येश्वरस्य हि।।

माया की दो-दो शक्तियाँ—

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिंगादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।।

अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्।।

हरिवंशपुराण में शक्ति का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यहाँ शक्ति के दो स्वरूपों का समन्वय दिखाई पड़ता है। यह सर्व-व्यापिनी मातृशक्ति के रूप में स्थित है।

शक्ति के विभिन्न रूप

1. (शक्ति का प्रथम रूप) कृष्ण की बहन एकानंशा और योगमाया (हरि.-2.3;1.32; 2.4.36-45)।

2. (शक्ति का द्वितीय रूप) शिव की सहचरी भवानी (हरि.-2.107; 6-13; 2.120; 6.33)।

यहाँ प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के द्वारा आर्या के स्तवन एवं कंस के एकानंशा को मारने के प्रयास में दुर्गा एवं योगमाया का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है।

विष्णुपर्व के प्रारम्भ में कृष्णावतार के पूर्व योगमाया के जन्म का वृत्तान्त मिलता है। हरिवंशपुराण में योगमाया को योगनिद्रा से सम्बद्ध दिखाया गया है। निद्रा को कालरूपा एवं काली कहा गया है—

लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी।
उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी।।[1]

योगनिद्रा एवं योगमाया—योगनिद्रा ही विष्णु के आदेश से देवकी के गर्भ में योगमाया के रूप में जन्म ग्रहण करती है।[2] योगनिद्रा अपनी शक्ति से समस्त जगत् को आक्रान्त कर लेती है।[3]

विदेशी विद्वान् फरक्युहर का कथन है कि दुर्गा का आरम्भिकतम रूप महाभारत में मिलता है। यहाँ दुर्गा विनय पर्वत पर निवास करने वाली कौमारी देवी के रूप में स्थित हैं। यहाँ दुर्गा का सम्बन्ध कृष्ण से तो स्थापित है; किन्तु शिव के साथ नहीं है।

श्रीमद्भागवतपुराण में योगमाया को नारायणी शक्ति कहा गया है। इसे दुर्गा, चण्डिका आदि नाम भी दिए गये हैं; किन्तु भागवतपुराण में योगमाया के साथ शिव की सहचरी के स्वरूप में समन्वय नहीं हो पाया है।[4]

हरिवंशपुराण में एकानंशा एवं पार्वती के व्यक्तित्त्व के समन्वय का आदिरूप देखा जा सकता है। आर्या एकानंशा एवं पार्वती के समन्वित स्वरूप के दर्शन इस प्रसंग के दो प्रकार के विशेषणों में होते हैं। महाभारत के अनन्तर सर्वप्रथम दुर्गा का व्यापक व्यक्तित्व प्रस्तुत करने के कारण शक्तिपूजा के विकास की दृष्टि से हरिवंश पुराण का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

फरक्युहर ने महाभारत में एकानंशा एवं योगमाया के अनुल्लेख (अनुपस्थिति) की ओर संकेतित किया है। अत: उनके अनुसार एकानंशा (योगमाया) का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम हरिवंशपुराण एवं विष्णुपुराण में हुआ है। इसीलिये वे कहते हैं कि हरिवंश-पुराण की शक्तिविषयक सामग्री महाभारत से उत्तरकालीन है—

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च।
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणीशानीशारदेत्यम्बिकेति च।।
(म. भा.-2.11-12)

महाभारत एवं हरिवंशपुराण के शाक्त विषयों का अध्ययन करने पर फरक्युहर महोदय के कथन की सत्यता प्रमाणित भी हो जाती है।[5]

योगनिद्रा की कहानी महाभारत में उल्लिखित नहीं है; किन्तु हरिवंशपुराण में है

---

1. हरिवंशपुराण-1.50.8
2. हरिवंशपुराण-2.2.34-55
3. हरिवंशपुराण-1.50.29-30
4. श्रीमद्भागवतपुराण (1.25; 2.6.15; 3.45-53; 4.1-13,29)
5. हरिवंशपुराण-काल में शक्ति का स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो गया है।

एवं विष्णुपुराण में भी है। इसी का समर्थन विदेशी विद्वान् फरक्युहर ने भी किया है।

हरिवंशपुराण में शक्ति का प्रारम्भिक स्वरूप श्रीकृष्ण के जन्म-प्रसंग में प्राप्त होता है। यहाँ देवी के व्यक्तित्व में एकानंशा (योगमाया), दुर्गा एवं अन्य देवियों के अतिरिक्त शिवपत्नी के स्वरूप का समन्वय नहीं हुआ है।

शिव की सहचरी, नवमातृ एवं अन्य देवियों के समन्वय के कारण विष्णु के व्यक्तित्व की भाँति शक्ति का स्वरूप व्यापक बन गया है। शक्ति इस व्यापक स्वरूप की प्रसिद्धि के कारण कदाचित् उससे सम्बद्ध स्वतन्त्र सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव है।[1]

हरिवंशपुराणोक्त आर्यास्तव में शक्ति का सम्बन्ध शिव से स्थापित नहीं हुआ है। देवी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व कृष्ण एवं महेन्द्रभगिनी नारायणी एवं कौमारी के रूप में प्रचलित दृष्टिगत होता है।[2] शबर, बर्बर और पुलिन्दों द्वारा पूजित तथा कुक्कुट, अजा (बकरी), भेंड़, सिंह एवं व्याघ्र से आवृत्त देवी का स्वरूप यहाँ पर निश्चित हो चुका है।[3]

एक स्थल में देवी को सिद्धसेन की माता कहा गया है। देवी के इस मातृरूप से उसके शिव की पत्नी का भ्रम हो जाता है; किन्तु शिवपत्नी के रूप में उनका अनुल्लेख देवी के मातृरूप की प्राचीनता का साक्ष्य प्रदान करता है।

इस प्रसंग में देवी को 'नारियों में प्राचीन तथा पार्वती' के विशेषणों से सम्बोधित किया गया है—

नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः।

देवी के प्रति यह सम्बोधन उनके शिव-साहचर्य का नहीं है। देवी का 'पार्वती' नाम सम्भवतः उनके पार्वतीय निवास का सूचक है एवं 'पौराणी' शब्द देवी की अतिप्राचीनता का सूचक है।

आर्या के प्रसंग में शक्ति का स्वरूप हरिवंशपुराण के भीतर के अन्य प्रसंगों से प्राचीनतर है। सम्भवतः आर्या के प्रसंग में देवी का व्यक्तित्व महाभारत की कौमारी देवी का निकटवर्ती है।

महाभारत में देवी का कृष्ण से भगिनी का सम्बन्ध स्थापित नहीं दिखाई पड़ता। हरिवंशपुराण में कृष्ण तथा इन्द्र के भगिनीत्व के द्वारा कृष्णचरित्र के साथ देवी का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

महाभारत में 'मारिष' नामक दैत्य का वध करने वाली देवी हरिवंशपुराण (2.2.51) में शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों की वधकर्त्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी है।

महाभारत में विन्ध्यवासिनी देवी, कौमारी देवी तथा हरिवंशपुराण में उल्लिखित

1. M. Williams : Hinduism
2. हरिवंश (2.2.46-48)
3. हरिवंशपुराण (2.3.3-8)

आर्यास्तव की आर्या के तुलनात्मक अनुशीलन द्वारा हरिवंशपुराण में देवी के स्वरूप का यह स्वरूप-विकास द्रष्टव्य है।

हरिवंशपुराण में प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के द्वारा किये गये देवी के स्तवन में शक्ति का रूप आर्यास्तव की आर्या से भिन्न एवं विकसित रूप में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर देवी का सम्बन्ध शिव की प्रियतमा के रूप में स्थापित हो चुका है। देवी की स्तुतियों में प्रयुक्त अन्य विशेषण आर्यास्तव में प्रयुक्त विशेषणों से साम्य रखते हैं। प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के देवीस्तव के प्रसंग में उनका स्वरूप आर्यास्तव की देवी के रूप से उत्तर-कालीन है।

वैष्णव पुराणों में कृष्णचरित्र का जो विकास हुआ है, हरिवंशपुराण उसका मूल स्रोत है। वेणुगीत, राधा एवं रास की कल्पना विष्णुपुराण में प्रारम्भिक रूप में मिलती है। भागवतपुराण में यह पर्याप्त विस्तृत रूप में मिलता है। हरिवंशपुराण में वेणुगीत एवं राधा का उल्लेख नहीं किया गया है तथा वे वहाँ महत्त्वहीन हैं।

पद्मपुराण (पातालखण्ड-39.81.52-55) में रासक्रीड़ा व्यापक रूप धारण करती है और अध्यात्मवादानुप्रेरित है। गोपियों में श्रीकृष्ण का स्वरूप विष्णु की शक्तियों एवं राधा उनकी चित्शक्ति के रूप में वर्णित है। उन्हें यहाँ कृष्णमयी एवं परादेवता कहा गया है।

रास का सरल एवं नृत्यप्रधान स्वरूप हरिवंश से चलकर उत्तरवर्ती काल में अध्यात्ममय होता हुआ परमरसमय हो गया है।

हरिवंशपुराण में राधा अज्ञात व्यक्तित्व है। श्रीमद्भागवतपुराण एवं बाद में पद्मपुराण में उनका व्यक्तित्व यथेष्ट व्यापक हो गया है। अब राधा कृष्ण की सहचरी ही नहीं; प्रत्युत नारायणरूप श्रीकृष्ण की लक्ष्मी, नारायणी एवं चित् शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी हैं। भगवद्भक्ति का व्यापक रूप हरिवंशोत्तरकालीन है। आगे चलकर भक्ति को आह्लादिनी या चिति शक्ति की अभिव्यक्ति भी स्वीकार किया गया और उसे राधा, सीता एवं षोडशी के रूप में स्वीकार किया गया।

भावनोपनिषद् में शक्ति को एक नया अर्थ प्रदान करते हुए कहा गया है कि श्री गुरु ही परम कारणभूता शक्ति है—'श्रीगुरुः परमकारणभूता शक्तिः।' इसके बाद उसमें क्रियाशक्ति, कुण्डलिनीशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं परात्पर शक्ति महात्रिपुरसुन्दरी का उल्लेख किया गया है—

1. क्रियाशक्तिः पीठम्।
2. कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्।
3. इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।

इसके अतिरिक्त 'षोडश शक्तयः' कहकर भी शक्ति का परिचय दिया गया है।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में भगवती त्रिपुरभैरवी का स्वरूप—उपर्युक्त उपनिषद् में भगवती को 'कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कृष्टां सर्वमन्त्रासनगतां पीठोपपीठ-देवतापरिवृतां सकलकलाव्यापिनीं सामोदां सपरागां सहृदयां सामृतां सकलां सेन्द्रियां सदोदितां परां विद्यां त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां वैष्णवीं .... हृदयकमल-कर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां महावश्यकरीं मदनोन्मादनकारिणीं, धनुर्बाणधारिणीं, वाग्विजृम्भिणीं चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां सप्तदशीं महानित्योपस्थितां पाशाङ्कुशमनोज्ञपाणिपल्लवां समुद्यदर्कनिभां त्रिनेत्रां .... देवीं महालक्ष्मींसर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसम्पन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादिश्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेनेयमेवं' कहा गया है।[1]

वामकेश्वरतन्त्र की दृष्टि—वामकेश्वरतन्त्र में कहा गया है कि भगवती त्रिपुरा महेश्वरी, आद्या, परमाशक्ति, त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका एवं कवलीकृतनि:शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी परा शक्ति है—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका।
कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।।

सच्चिदानन्दवासना की दृष्टि—सच्चिदानन्दवासना में भगवती त्रिपुरा को विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा दोनों कहा गया है—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

अर्थात् भगवती त्रिपुरा विश्वात्मिका, विश्वोत्तीर्णा, प्रकाशामर्शरूपिणी, परापरमयी एवं आत्मा हैं।

कामकलाविलास की दृष्टि—आचार्य पुण्यानन्द कामकलाविलास में कहते हैं कि भगवती त्रिपुरा आद्याशक्ति है। वह आत्मसुखविश्रान्त, शाश्वतसत्ताक, अनुपमेयाकारा, चराचर जगत् का बीज एवं शिव के लिए दर्पण है—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श:।।

वरिवस्यारहस्यम् की दृष्टि—आचार्य भास्करराय कहते हैं कि भगवती त्रिपुरा नैसर्गिकी स्फुरत्ता, विमर्श एवं सृष्टि-स्थिति-संहार की सूत्रधार हैं—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्ति:।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।

1. प्रथमोपनिषत् (39)

प्रलय की स्थिति में भी यह शक्ति अविद्यमान नहीं रहती; बल्कि यह अन्तर्लीन रहती है—

अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः।

शक्ति और शक्तिमान शिव अभिन्न हैं। आगम में कहा गया है—

शिवाभिन्ना पराशक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता।।

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।

शिवदृष्टिकार ने भी इसी अद्वैतभाव की पुष्टि करते हुए कहा है कि शक्ति ही शक्तिमान है। शिव कभी शक्ति से पृथक् नहीं रहते और न तो शक्ति·शिव से पृथक् रहती है—

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते।।

इसीलिए शक्तिमान ही शक्ति है—

शक्तिमानेव शक्तिः स्याच्छिववत्करणार्थतः।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की विद्या (मन्त्र) का नाम पञ्चदशी या पञ्चदशाक्षरी विद्या है। इनके यन्त्र का नाम श्रीयन्त्र है। श्रीचक्र शिव और शक्ति का शरीर है—'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः।'

इस श्रीचक्र में नौ योनियाँ हैं, जिनमें पाँच शाक्त त्रिकोण एवं चार शिव त्रिकोण अन्तर्निविष्ट हैं। यह (श्रीयन्त्र) शिव-शक्तिमय, विश्वाकार और अहन्ता-इदन्तामय है। सुभगोदयवासना में इसी बात की पुष्टि की गयी है—

अहन्तेदन्तयोर्बीजमविभागरसात्मकम् ।
शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम्।।

इसके नौ आवरण हैं; यथा—बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार एवं तीन चतुरस्रात्मक भूपुर। बिन्दु एवं त्रिकोण में भी अविनाभाव सम्बन्ध है—

त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपः परः शिवः।
अविनाभावसम्बन्धस्तस्माद् बिन्दुत्रिकोणयोः।।

श्रीचक्र शिव-शक्ति का शरीर है, शक्ति आसन है और विराट विश्व का मानचित्र है।

ललितासहस्रनाम की दृष्टि—ललितासहस्रनाम की दृष्टि से भगवती त्रिपुरसुन्दरी 'इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति-स्वरूपिणी, प्रेमरूपा, नटेश्वरी, चित्कलानन्दकलिका, गुरुमण्डलरूपिणी, सच्चिदानन्दरूपिणी, ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी, निर्द्वैता, द्वैतवर्जिता, पराशक्तिः-परानिष्ठा-प्रज्ञानघनरूपिणी, मातृकावर्णरूपिणी, आत्मविद्या, महाविद्या, श्रीविद्या,

विमर्शरूपिणी विद्या, श्रीषोडाक्षरी विद्या, नित्याषोडशिकारूपा, मूलप्रकृतिरव्यक्ता, परा-प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता, मध्यमा वैखरीरूपा, वह्निमण्डलवासिनी, वाग्वादिनी, चिच्छक्तिश्चेतनारूपा, विद्याविद्यास्वरूपिणी, वेदजननी, विश्वाधिका, विश्वरूपा, ध्यानध्यातृ-ध्येयरूपा, महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना, सर्वयन्त्रात्मिका, सर्वमन्त्रस्वरूपिणी, महा-लक्ष्मी, महाशक्ति, कुण्डलिनी, मनोन्मनी, सर्वचक्रनिवासिनी, सर्वग्रन्थिविभेदिनी आदि हैं।

बह्वृचोपनिषद् और शक्तितत्त्व—बह्वृचोपनिषद् में कहा गया है कि एकमात्र देवी (शक्ति) ही सृष्टि से पूर्व थीं। उन्होंने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की। वे ही कामकला एवं शृंगारकला कही जाती हैं। उन्हीं देवी (शक्ति) से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र उत्पन्न हुए। उन्हीं से मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरायें, किन्नर, भोग सामग्री एवं सब कुछ उत्पन्न हुआ। सब कुछ शक्ति से ही उत्पन्न हुआ। उन्हीं से अण्डज, स्वेदज, उद्भिज एवं जरायुज स्थावर-जंगम उत्पन्न हुये। उन्हीं से मानवों की सृष्टि हुई। वे अपरा शक्ति हैं। वे ही शाम्भवी विद्या हैं। वे ही कादि, हादि एवं सादि विद्या हैं।

वे भवगती (शक्ति) रहस्यरूपा, प्रणववाच्य अक्षरतत्त्व और सच्चिदानन्दस्वरूपा हैं। वे ही जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं एवं स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीरों को व्याप्त करके भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश फैला रही हैं। भवगती (शक्ति) देशकालातीता प्रत्यक् चेतना हैं, महात्रिपुरसुन्दरी हैं। भवगती (शक्ति) ही सर्वान्तरात्मा हैं। उनके अति-रिक्त सब कुछ असत्य एवं अनात्म है। भवगती (शक्ति) ब्रह्मविद्या, चिन्मयी विद्याशक्ति, ब्रह्मबोधकारयित्री शक्ति हैं।

वे भवगती ही सत्, चित् और आनन्दरूप तरंगों वाली महात्रिपुरसुन्दरी बाहर एवं भीतर प्रविष्ट होकर अकेली ही विराजमान हैं। उनके अस्ति-भाति-प्रिय—इन तीनों रूपों में जो अस्ति है, वह सन्मात्र का; भाति चिन्मात्र का एवं प्रिय आनन्द का बोधक है। समस्त आकारों में भवगती महात्रिपुरसुन्दरी ही विद्यमान हैं।

ललिता (शक्ति) ही एकमात्र सत्य है, अद्वितीय है और अखण्ड परब्रह्म तत्त्व है। अस्ति-भाति-प्रिय-नाम-रूप के परित्याग से अधिष्ठानरूप जो एक सत्ता बच जाती है, वही परमतत्त्व-शक्तितत्त्व एवं महात्रिपुरसुन्दरी है।

देव्युपनिषद् में शक्ति ने अपना स्वरूप सुस्पष्ट करते हुए कहा है कि मैं ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। मुझसे ही यह प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूपासद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दों का आनन्द हूँ। मैं विज्ञानाविज्ञान हूँ। मैं ही ब्रह्माब्रह्म हूँ। मैं पञ्चीकृत एवं अपञ्चीकृत महाभूत एवं निःशेष जगत् हूँ।

भावनोपनिषद् (अथर्ववेद) में देवी के उनके अपने परस्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ श्रीचक्र को स्थूल देह के रूप में भावित किया गया है। कहा गया है कि श्रीचक्र नवशक्तिरूपात्मक है—'नवशक्तिरूपं श्रीचक्रम्।' यहाँ क्रियाशक्ति को पीठ-

तत्त्व, कुण्डलिनी को ज्ञानशक्ति एवं इच्छाशक्ति को महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है— 'क्रिया शक्तिपीठम् कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्, इच्छाशक्तिर्महात्रिपुरसुन्दरी।' यहीं ज्ञाता को होता, ज्ञान को अर्घ्य एवं ज्ञेय को हवि कहा गया है—'ज्ञाता होता, ज्ञानमर्घ्यम्, ज्ञेयं हविः।'

वेदान्त दर्शन में उसी शक्ति को माया (तूला माया, मूला माया, विद्या माया, अविद्या माया आदि) कहा गया है। **मीमांसा दर्शन** में उसी शक्ति को धर्म एवं मन्त्र के रूप में स्वीकार किया गया है। **सांख्यों** की प्रकृति एवं **बौद्धों** की तारा, प्रज्ञा, करुणा आदि भी महाशक्ति के विविध स्वरूपों के रूप में ही वर्णित हैं।

तान्त्रिक युग का मुख्य काल (या तन्त्र युग) 500 ई. से 900 ई. तक है।[1] गोपीनाथ जी कविराज इसका काल 1200 ई. तक स्वीकार करते हैं।[2]

तन्त्रयुग की विशेषतायें—तान्त्रिक युग की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं—

1. शक्ति (देवी) की महत्ता में वृद्धि।
2. मन्त्र-विज्ञान एवं तान्त्रिक-साधना।
3. कुण्डलिनी योग : सिद्धान्त और साधना।
4. पञ्च मकारोपासना में वृद्धि।[3]

सम्मोहनतन्त्र के साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग (तन्त्र-युग) में निम्न प्रधान ग्रन्थों का प्रणयन हुआ—

(क) शाक्तों के 63 तन्त्र, (ख) 327 उपतन्त्र, (ग) यामल, डामर, संहिता, तन्त्र आदि, (घ) शैवों के 32 तन्त्र, (ङ) 125 उपतन्त्र और उनके (च) यामल, डामर, पुराण आदि, (छ) वैष्णवों के 75 तन्त्र, (ज) 205 उपतन्त्र, (झ) उनके यामल, डामर, संहिता आदि, (ञ) गाणपत्य सौर सम्प्रदायों की अनेक रचनायें।

इसी समय बौद्ध, जैन, पाशुपत, कापालिक, पाञ्चरात्र एवं भैरव आदि 22 आगमों के 500 तन्त्रग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इस काल में तन्त्र-साहित्य की विपुल राशि ने आगम वाङ्मय को विकास के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठापित किया।

भगवती सरस्वती और उनका स्वरूप

भगवती सरस्वती के स्वरूप का अनेक ग्रन्थों एवं उपनिषयों में निर्वचन किया गया है; किन्तु सरस्वतीरहस्योपनिषद् इनमें अन्यतम रचना है।

बीजत्रय में ह्रीं लक्ष्मी का, क्लीं काली का एवं ऐं सरस्वती का बीजाक्षर है। नवार्ण मन्त्र में प्रथम बीज के रूप में 'ऐं' सरस्वती को ही प्रस्तुत किया गया है;

1. The Religious Qest of India. फर्क्युहर
2. History of Philosophy : Eastern and Western
3. The Religious Qest of India

यथा—'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।'

इस उपनिषद् में प्रारम्भ में तो यह कहा गया है कि 10 श्लोकों वाले सरस्वती के इस स्तोत्र को जो छः मास तक नित्य पढ़ेगा, वह भवगती सरस्वती की कृपा का अधिकारी बन जाएगा। इसके अनन्तर उनके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि भवगती सरस्वती चतुर्मुखी और शुक्लवर्णा हैं। वे काश्मीरपुरवासिनी हैं। वे ब्रह्मा की प्रेयसी हैं। वे अक्षसूत्रांकुशधरा और पाशपुस्तकधारिणी हैं। वे श्रद्धा, धारणा, मेधा, वाणी, भवसन्तापनिर्वापणसुधानदी, भुक्ति-मुक्ति-कवित्वदायिनी हैं। उनसे ही वाणी प्रवृत्त होती है। कहा गया है—

या श्रद्धा धारणा मेधा वाग्देवी विधिवल्लभा।

❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊ ❊

यः कवित्वं निरातङ्कं भुक्तिमुक्ती च वाञ्छति।
सोऽभ्यर्च्यैनां दशश्लोक्या नित्यं स्तौति सरस्वतीम्।।

भक्तिश्रद्धाऽभियुक्तस्य षण्मासात् प्रत्ययो भवेत्।
ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया ललिताक्षरा।।

ऋषि आश्वलायन ने समागत ऋषियों से (सरस्वतीरहस्योपनिषदोक्त) जिन दस मन्त्रों को बताया है, उन्होंने उस प्रत्येक मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, विनियोग एवं न्यास का पृथक्-पृथक् निर्वचन किया है।

भगवती सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं और उनका एक प्रख्यात नाम शारदा भी है। भगवती सरस्वती एवं तत्त्वज्ञान की प्राप्ति एवं कवित्वादि सामर्थ्य-प्राप्ति के लिए 10 मन्त्रों का पाठ अनिवार्य है। उक्त दस मन्त्रों में से कतिपय मन्त्र निम्नांकित हैं—

1. ॐ प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। धीनाम वित्र्यवतु।
2. ह्रीं आनो दिवो बृहतः पर्वतादा, सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।
   हवं देवी जुजुषाणा घृताची, शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु।।
3. ब्लूं चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।
4. सौः महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।
5. ऐं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
   गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।
6. क्लीं यद्वागवदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
   चतस्त्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम।। आदि।

भवगती महासरस्वती के रूप-भेद—प्राधानिक रहस्य में निरूपित महासरस्वती एवं वैकृतिक रहस्य में निरूपित महासरस्वती में रूपभेद है। प्राधानिक रहस्य की महा-

सरस्वती चतुर्भुजा हैं एवं वैकृतिक रहस्योक्त महासरस्वती अष्टभुजा हैं। वैकृतिक महासरस्वती—

गौरी देहात् समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी।।
दधौ चाष्टभुजा वाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शंखं घण्टां लांगलञ्च कार्मुकं वसुधाधिप।।

यद्यपि सरस्वती तो एक ही हैं तथापि लीलाभेद की दृष्टि से पृथक्-पृथक् हैं। भवगती सरस्वती अनादिनिधना हैं और वर्ण, पद, वाक्यार्थ से अभिन्न हैं—

या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणैव वर्तते।
अनादिनिधनाऽनन्ता सा मां पातु सरस्वती।।

व्याकरणागम के अनुसार वाक्तत्त्व चैतन्य का बहिर्गामी वेग है। व्याकरणागम भी शक्तिवादी तान्त्रिक आगम है। शक्तिसूत्र तो दो ही मिलते हैं—अगस्त्य-प्रणीत शक्तिसूत्राणि एवं हयग्रीव-प्रणीत शाक्तदर्शनम्। इन पर बाद में सविस्तार विचार किया जाएगा।

महर्षि अगस्त्य-प्रणीत शक्तिमहिम्नस्तोत्र और उनके द्वारा ही प्रणीत श्रीविद्यादीपिका और उसमें वर्णित पञ्चदशी मन्त्र विशेष उल्लेख्य हैं।

जहाँ बादरायण व्यास ब्रह्मसूत्र (वेदान्त-सूत्र) में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' द्वारा ब्रह्म की जिज्ञासा की ओर अग्रपद हैं, वहीं अगस्त्य एवं हयग्रीव अपने शक्तिसूत्रों में 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' द्वारा शक्ति की जिज्ञासा की ओर अग्रपद हैं।

दत्तात्रेय की दत्तसंहिता (अट्ठारह हजार श्लोकों वाली रचना) एवं परशुराम द्वारा 6000 सूत्रों में संक्षिप्तीकृत परशुरामकल्पसूत्र (50 काण्डों में विभक्त), ऋषि सुमेधा द्वारा प्रणीत (दत्तात्रेय, परशुराम-संवाद के रूप में रचित) ग्रन्थ, त्रिपुरारहस्य आदि शाक्त मत की विशिष्ट कृतियाँ हैं और इनमें भगवती त्रिपुरा के स्वरूप का बड़ा ही सूक्ष्म एवं तात्त्विक विवेचन किया गया है। उमानन्दनाथ का नित्योत्सव एवं उस पर रामेश्वर-प्रणीत वृत्ति विशेषोल्लेख्य है।

शक्तिसूत्र एवं प्रत्यभिज्ञाहृदयम् शाक्त मत की तात्त्विक रचनायें हैं। सोमानन्दपाद ने शाक्तविज्ञानम् भी लिखा हैं। स्पन्दकारिका भी शक्तिप्रमुख रचना है। कामकलाविलास, सुभगोदय, तन्त्रराजतन्त्र, सौन्दर्यलहरी आदि सभी रचनायें भवगती महात्रिपुरसुन्दरी के परात्पर ब्रह्मत्व को प्रमाणित करने वाली कालजयी रचनायें हैं। वामकेश्वतन्त्र, योगिनीहृदय आदि रचनायें भी शाक्त मत की अद्वितीय रचनायें हैं।

गौड़पाचार्य-प्रणीत श्रीविद्यारत्नसूत्र शक्ति-साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। इनके द्वारा प्रणीत सुभगोदयस्तुति भी शक्तिसम्बन्धिनी विशिष्ट रचना है।

सौन्दर्यलहरी शंकराचार्य-प्रणीत वह भक्ति-सम्बन्धिनी रचना है, जिसमें प्रारम्भ में

ही शक्ति की सर्वोच्चता स्थापित करते हुए कहा गया है कि शक्ति की सहायता के विना शिव तो हिल भी नहीं सकते। इसमें कौलमत एवं समयमत दोनों का विवेचन किया गया है। लक्ष्मीधर के मतानुसार इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य मत तो समयमत (समयाचार) ही है—'इह खलु शङ्करभगवत्पूज्यपादा: समयमततत्त्ववेदिन: समयाख्यां चन्द्रकलां श्लोकशतेन प्रस्तुवन्ति।' शंकराचार्य ने इस परात्परा शक्ति (महात्रिपुरसुन्दरी) को कुलकुण्डलिनी, महामाया एवं परब्रह्ममहिषी आदि कहा है—

स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि।

वे उसी शक्ति के चरणनिर्णेजन जल को पीने की तीव्रोत्कण्ठा रखते हैं—

कदा काले मात: कथय कलितालक्तकरसं,
पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्।। (सौन्दर्यलहरी)

सौन्दर्यलहरी पर लक्ष्मीधरा, सौभाग्यवर्धनी आदि टीकायें भी शक्ति-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनमें भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के तात्त्विक स्वरूप का बहुत सूक्ष्म विवेचन किया गया है। सौन्दर्यलहरी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी पर प्रकाश डालते हुए भगवान् शंकराचार्य ने जगत् को भगवती शक्ति का परिणाम बताते हुए परिणामवाद की स्थापना की है—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारै: शिवयुवतिभावेन विभृष।।

(सौन्दर्यलहरी-35)

परात्पर महाशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी

सृष्टि का परम तत्त्व देवीतत्त्व है—'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्।' यही परात्पर ब्रह्मतत्त्व पराशक्ति है—'सैषा पराशक्ति:' (बह्वृचोपनिषद्)। यही महाशक्ति है।

सृष्टि के आदि में केवल एक ही शक्ति थी। उसे ही हम 'देवी' कह सकते हैं। उसी देवी ने जगत् रूपी अण्ड की सृष्टि की। इसी देवी या पराशक्ति को कामकला एवं शृंगारकला कहते हैं—'सैव कामकलेति विज्ञायते, शृङ्गारकलेति विज्ञायते।'

बह्वृचोपनिषद् की शक्तिसम्बन्धिनी दृष्टि—यह परात्पर महाशक्ति या परा देवी अद्वितीय, एका एवं सृष्टि के आदि में सबसे पहले (अग्र) विद्यमान थी—'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्।' यही सृष्टिकर्त्री शक्ति है; न कि ब्रह्मा—'सैव जगदण्डमसृजत्।' यही परात्परा शक्ति शृंगारकला एवं कामकला कहलाती है—'कामकलेति विज्ञायते। शृंगारकलेति विज्ञायते।' अन्यत्र ईंकार को ही कामकला कहा गया है। श्रुति में 'कामो

योनि: कामकला' इस प्रकार कहा गया है। 'शृंगेष्वशृंगं संयोज्य' के श्रुत्युक्त कथन द्वारा यह कहा गया है कि अकार, उकार एवं मकार ही शृंगत्रय हैं। उनकी अग्रवर्तिनी अर्ध-मात्रा ही शृंगारकला है। इसी कामकला या शृंगारकला या सृष्टि के आदि में वर्तमान अद्वैत एवं सर्वाग्रवर्ती देवी ने ब्रह्मा को भी उत्पन्न किया, विष्णु को भी उत्पन्न किया एवं रुद्र को भी उत्पन्न किया अर्थात् यह ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र तीनों की माता है—'तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्।'

यही त्रिदेवों की माता, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरावर्ग, किन्नर, यक्ष (वादित्र), सारे भोग्य पदार्थ एवं सभी सत्ताओं की उत्पादिका एवं जननी है—'सर्वे मरुद्गणा: अजीजनत्। गन्धर्वाप्सरस: किन्नरा वादित्रवादिन: समन्तादजीजनत्।'

उस देवी (शृंगारकला या कामकला) ने केवल यज्ञ, किन्नर, गन्धर्वों को ही नहीं; प्रत्युत उसने समस्त शाक्त, अण्डज, स्वेदज, जरायुज, स्थावर, जंगम, मनुष्य आदि सभी को जन्म दिया।[1]

प्रश्न उठता है कि यह कौन-सी शक्ति है? उपनिषदकार कहते हैं कि यही पराशक्ति है। यही शाम्भवी विद्या है। यही कादिविद्या है। यही हादिविद्या है। यही सादिविद्या है।

(क) क ए ई ल ह्रीं = कादि विद्या : प्रथम खण्ड
(ख) ह स क ह ल ह्रीं = हादि विद्या : द्वितीय खण्ड
(ग) स क ल ह्रीं = सादि विद्या : तृतीय खण्ड

सैषा परा शक्ति:। सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यमोमोंवाचि प्रतिष्ठा।

वही परा पञ्चदशाक्षरी विद्या वाणी में प्रतिष्ठित ॐकार है। वही रहस्य (निर्विशेष ब्रह्म) तुरीय ओंकाररूपिणी होकर वाणी में शब्द एवं अर्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। वही व्यष्टि-समष्टि, स्थूल-सूक्ष्म एवं बीजरूप सत्ताओं, पुरत्रय एवं शरीरत्रय में व्याप्त है। उसी ने बाह्य एवं अन्तर को अवभासित किया है। वही महात्रिपुरसुन्दरी एवं प्रत्यक् चिति है—'सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य .... महात्रिपुरी वै प्रत्यक् चिति:।'[2]

क्या वह शक्ति मात्र इतना ही नहीं है? नहीं; उसकी व्यापकता अपरिमेय एवं अनन्त है।

वही आत्मा भी है। उसके अतिरिक्त जो भी पृथकवत् दृष्टिगोचर होता है, वह सब कुछ असत्य एवं अनात्मा है। अतएव वह ब्रह्मसंवित्ति भावाभाव कलाओं से विनिर्मुक्त

1. सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत् किञ्चैतत् प्राणि स्थावरजंगमं मनुष्यमजीजनत्। (बह्वृचोपनिषद्)
2. बह्वृचोपनिषद्

है। वह चिद्विद्या है, अद्वितीया है; ब्रह्मसंवित्ति है; सच्चिदानन्दलहरी है और वही पराशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी है।

वही परा शक्ति बाहर एवं भीतर सर्वत्र व्याप्त है; किन्तु है एक ही और वही एक होकर भी सबमें तथा सर्वत्र विभासित हो रही है।[1] जो है, वह सत् है, सन्मात्र है। जो भी कुछ भासित एवं उद्भासित हो रहा है, वह चित् है, चिन्मात्र है और जो कुछ भी प्रियकर है, वह आनन्द है। यही है—अस्ति, भाति, प्रिय। भवगती महात्रिपुरसुन्दरीस्वरूपा परासत्ता अस्ति-भाति-आनन्द सभी कुछ है।[2]

भवगती महात्रिपुरसुन्दरी ही जगत् के सारे रूपों में विद्यमान है; क्योंकि वह सर्वाकारा है—'सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।' हम तुम एवं सब कुछ वही शक्तिमात्र है। वही समस्त विश्व एवं समस्त देव-समुदाय है।[3]

उपर्युक्त सारी सत्ताओं के अतिरिक्त भी यदि कोई सत्ता है तो वह भी महात्रिपुर-सुन्दरी ही है।[4] सारी नारियाँ एवं विद्यायें भी देवी के ही रूप हैं—

स्त्रियः समस्तास्तव देवि! भेदाः विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः।

सारांश यह कि इस विश्व में केवल एक ही वस्तु (या सत्ता) सत्य है। वही अद्वितीय एवं अखण्ड परम तत्त्व है। वही निष्प्रतियोगिक, अद्वय सत्ता है। उसी परा सत्ता का नाम है—ललिता। यही ललिता नामक सत्य, एक एवं अखण्ड सत्ता परब्रह्म है—'सत्यमेकं ललिताऽख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म।'[5]

बह्वृचोपनिषद् में एक प्रश्न भी उठाया गया है कि यदि महात्रिपुरसुन्दरी परब्रह्म है तो यह क्यों कहा गया कि—'प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, ब्रह्मैवाहमस्मीति।'

इस प्रश्न के समाधान में यह गया गया है कि—जो यह कहा गया कि 'योऽह-मस्मीति, सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा' वे सभी वाक्य इसी निहितार्थ में समाविष्ट हैं (उनका निहितार्थ यही है) कि—वह सारा कथन भी षोडशी के लिए ही है[6]—

योऽहमस्मीति वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ।
सोऽहमस्मीति वा या भाव्यते सैषा षोडशी।।

---

1. सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्याऽ-द्वितीया ब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव।
2. यदस्ति सन्मात्रम्। यद्भाति चिन्मात्रम्। यत् प्रियमानन्दम्। तदेतत् सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।
3. त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता।
4. इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। (बह्वृचोपनिषद्)
5. बह्वृचोपनिषद्
6. बह्वृचोपनिषद्

महात्रिपुरसुन्दरी या पराशक्ति का व्यापक स्वरूप—भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ही भगवती प्रत्यक् चिति, ललिता, शृंगारकला, कामकला, परब्रह्म, आत्मा, ब्रह्मसंवित्ति, चिद्विद्या एवं सच्चिदानन्दलहरी हैं। वे ही षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बाला, अम्बिका, बगला, मातंगी, स्वयंवरकल्याणी, भुवनेश्वरी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, तिरस्करिणी, राजमांतगी, अश्वारूढ़ा, प्रत्यंगिरा, धूमावती, सावित्री, गायत्री एवं ब्रह्मानन्दकला आदि सभी कुछ हैं।[1]

महादेवी का स्वरूप (अथर्ववेदीय देव्यथर्वशीर्ष)—अथर्ववेद में देव्यथर्वशीर्ष की बड़ी महिमा बतायी गयी है। इसके पाठ से देवी की कृपा शीघ्र प्राप्त होती है। इसमें एक पुरावृत्त का उल्लेख किया गया है। सभी देवता देवी के पास जाकर पूछने लगे कि हे महादेवि! आप कौन हैं—'सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति'?

देवी ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप एवं असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्द और अनानन्द हूँ। मैं ही विज्ञान और अविज्ञान हूँ। मैं ही ब्रह्म एवं अब्रह्म के रूप में वेदितव्य हूँ। मैं ही वेद एवं अवेद हूँ। मैं विद्या और अविद्या हूँ। मैं अजा और अनजा हूँ। मैं नीचे-ऊपर, तिरछे, अगल-बगल हूँ। मैं ही पञ्चभूत-अपञ्चभूत एवं अखिल जगत् हूँ।

भवगती कहती हैं कि मैं रुद्रों एवं वसुओं में सञ्चार करती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वेदेवों के रूप में भ्रमण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों का, इन्द्र एवं अग्नि का एवं दोनों अश्विनीकुमारों का भरण-पोषण करती हूँ। मैं सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग को धारण करती हूँ। मैं त्रैलोक्य को आक्रान्त करने के लिए विस्तीर्ण पादक्षेप करने वाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापति को धारण करती हूँ। मैं देवों को हवि पहुँचाने वाले एवं सोमरस निकालने वाले यजमान के लिए हविद्रव्यों से युक्त धन धारण करती हूँ। मैं सर्वेश्वरी, उपासकों को धन देने वाली हूँ।

देवताओं ने उन्हें गुणसाम्यावस्थारूपिणी मंगलदेवी प्रकृति कहा—'नमः प्रकृत्यै भद्रायै'। देवों ने उन्हें दुर्गा देवी के नाम से पुकारा—'दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहे।' देवों ने उनका स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया—

1. वे भगवती दुर्गा, कालरात्रि, ब्रह्मस्तुता, वैष्णवी, स्कन्दमाता, सरस्वती, अदिति, दक्षदुहिता (सती), पावना, शिवा, महालक्ष्मी एवं सर्वशक्तिस्वरूपा हैं।

2. वे विश्वमाता एवं आदि विद्या हैं।

3. उनका मन्त्र (विद्या) निम्नांकित है—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्।।

1. बह्वृचोपनिषद्

अर्थात् उनका मन्त्र निम्नानुसार है—

'क' (काम) 'ए' (योनि) 'ई' (कमला) 'ल' (वज्रपाणि) 'ह्रीं' (गुहा) 'ह, स' (हसा) 'क' (मातरिश्वा) 'ह' (अभ्र) 'ल' (इन्द्र) 'ह्रीं' (गुहा) 'स', 'क', 'ल' (सकला) 'ह्रीं' (माया)—यही सर्वात्मिका जगन्माता की मूलविद्या है। यह ब्रह्मरूपा है।

शक्ति : नारी या नर

1. क्या शक्ति नारी है? नहीं।
2. क्या शक्ति नारी नहीं है? है।
3. क्या शक्ति पुरुष नहीं है? है।

उपनिषत्-काल के ऋषियों ने शक्ति को किसी सीमा की लक्ष्मणरेखा में बाँधकर नहीं देखा। उसे उसके व्यापक, समग्र (विश्वमय एवं विश्वातीत) रूप में, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन के रूप में और सर्वाकार, सर्वरूप एवं सर्वात्मा के रूप में देखा; अत: उन्होंने कहा—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।[1]

प्रश्न उठता है कि क्या वह सर्वेश्वरी, सर्वरूपा, सर्वभूतात्मा, सर्वप्रतिष्ठिता और जगदात्मा शक्ति स्त्री है? यदि वह स्त्री नहीं है तो क्या पुरुष है? यदि वह दोनों नहीं है तो क्या नपुंसक है? नहीं। वह इनमें से एक भी नहीं है—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।।[2]

मैंने उसी सर्वाकारा, सर्वरूपा, विश्वमयी एवं विश्वातीता परा जगदम्बिका को अपने चिन्तन के केन्द्र में रक्खा। चूँकि वह जगदात्मा है और आत्मा का कोई रूप, आकार, योनि, लिंग नहीं होता; अत: वह लिंगातीत है। वह शक्ति अपने से पृथक् कोई पराई वस्तु नहीं है; प्रत्युत वह सदानन्दघना, पूर्णा, कामेश्वरी शक्ति स्वात्मैक्यरूपा देवता है—'कामेश्वरी सदानन्दघना पूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता।'[3]

वह अनन्तरूपा होकर भी एक है; क्योंकि वही षोडशी भी है और वही बगलामुखी भी, वही मातंगी भी है और भुवनेश्वरी भी, वही चामुण्डा भी है और वाराही भी, वही तिरस्करिणी भी है और राजमातंगी भी, वही शुकश्यामला भी है और लघुश्यामला भी; वही अश्वारूढ़ा भी है और प्रत्यंगिरा भी; वही धूमावती भी है और सरस्वती भी और वही गायत्री भी है और ब्रह्मानन्दकला भी।

क्या शक्ति मात्र चिद्घन है, जड़ नहीं है? ऐसा नहीं है। यदि वह जड़रूप नहीं होती तो सर्वरूप, अद्वैत एवं चराचर स्वरूप कैसे कहलाती? इसीलिए तो कहा गया

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् 2. श्वेताश्वरोपनिषद् 3. भावनोपनिषद्

है कि शक्ति चेतन तो है ही; किन्तु जड़ सत्ता भी है।

'सैषा सत्वरजस्तमांसि।' वह जड़ गुणत्रय भी है। तो क्या शक्ति चैतन्यात्मिका आत्मा नहीं है? ऐसा भी नहीं है। वह सारे प्राणियों के हृदय में अवस्थित आत्मा है—'एषात्मशक्तिः' (अथर्वशीर्ष)। जड़ प्रकृति एवं चेतन पुरुष—दोनों उसी से उत्पन्न हुए हैं—'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्' (अथर्वशीर्ष)। यदि वह विद्या है तो क्या अविद्या की सत्ता उससे पृथक् है? नहीं। वह विद्या, अविद्या और महा-विद्या तीनों हैं—'विद्याहमविद्याहम्। एषा श्रीमहाविद्या।' (अथर्व)।

क्या वह नारीरूपा है? नहीं। वह ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप पुरुष भी है—'सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणी' (अथर्व.)। वह विश्वरूपिणी है—'एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका' (अथर्व.)। शक्ति सर्वरूपमयी है और जगत् देवीमय है; अतः शक्ति विश्वरूप है—

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्।। (मूर्तिरहस्य)

प्रश्न यह उठता है कि सामान्यतया तो शक्ति को सभी लोग स्त्रीतत्त्व ही मानते हैं तो क्या शक्ति स्त्री नहीं है? ऐसा नहीं है। वह स्त्री भी है और वह ऐसी स्त्री है कि संसार की समस्त स्त्रियों में वही स्त्रीरूप से अवस्थित है तथा संसार की सारी स्त्रियाँ उसी शक्ति का स्वरूपान्तर हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

देवीभागवतपुराण में आदिशक्ति (मूल प्रकृति एवं पराशक्ति) ने यहाँ तक कहा है कि 84 लाख योनियों में जितनी भी नारियाँ हैं; चाहे वे मनुष्य हों या देवता, पशु हों या सरीसृप, खेचर हों या जलचर—वे जिस भी योनि में हों, वे सभी नारियाँ मेरा ही स्वरूप हैं और उन सबमें मैं ही निवास करती हूँ।

नारी-तत्त्व—नारी तत्त्व का तात्त्विक स्वरूप क्या है? इस विषय पर भी विचार कर लेना चाहिए। महाकाल शिव के वक्षःस्थल पर खड़ी महाकाली क्या नारी नहीं है? सती-प्रसंग में दश महाविद्याओं का स्वरूप धारण करके दसों दिशाओं को अवरुद्ध करके अवस्थित एवं शिव को भी भयभीत कर देने वाली मूल प्रकृति (सती) क्या नारी नहीं है? यमराज को भी परास्त कर देने वाली सावित्री क्या नारी नहीं है? सूर्य पर त्राटक करके उनकी गति को रोक देने वाली माद्री क्या नारी नहीं है? महारावण का वध करने वाली भवगती सीता क्या नारी नहीं है। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करके ब्रह्मा-विष्णु आदि सारे देवताओं को दण्डित करने वाली सती क्या नारी नहीं है?

'येनाऽहं नामृतं स्याम् तेनाहं किं कुर्याम्' कहने वाली ब्रह्मवादिनी ऋषि मैत्रेयी क्या नारी नहीं है? अपनी योगमाया से अपने तपस्वी पति को अज्ञान से ऊपर उठाकर उनका उद्धार करने वाली मदालसा क्या नारी नहीं है? अपने तपोबल से ब्रह्मा-विष्णु

एवं शिव को भी स्तनपायी शीशु बना देने वाली सती अनसूया क्या नारी नहीं है?

फिर स्त्रीत्व और नारीत्व क्या है? वह जगन्मातृत्व भी है और मूल प्रकृतित्व भी। वह शक्तिमान की शक्ति भी है और विश्व का बीज भी। वह विश्व भी है और विश्वातीत भी। वह विश्वाधार भी है और विश्व भी।

वह शक्ति स्पन्द है, शिव का अहंविमर्श है। शिव अपनी ही शक्ति के प्रसाररूप विश्व को अहंरूप में विमर्श करता है। भारतीय मनीषियों ने इसी शक्ति को नारीतत्त्व कहा है।

नारी अपनी तात्त्विक पृष्ठभूमि में विश्व का एक निगूढ़ रहस्य है। भारतीय चिन्तन इसे और अधिक रहस्यात्मक एवं निगूढ़ बना देता है। सृष्टि के अन्तस्तल में जो मूलाधार के रूप में कार्य कर रही है, सृष्टि-सौध के नींव का जो पत्थर है, सिसृक्षा का जो मूल स्वरूप है, विश्व-रचना का जो मूल उत्स है, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-आनन्द और चिति का जो मूर्तिमान रूप है, जो आद्य सर्जनेच्छा है, जो सोऽकामयत ऋचा का कामतत्त्व है और जो एकोऽहं बहु स्याम की विश्वाकार परिणति है, वही नारी-तत्त्व है।

निस्पन्द, निष्क्रिय, गतिहीन और निर्गुण शिव के वक्ष:स्थल पर जो स्पन्द, क्रिया, गति एवं गुण का विलास बनकर लास्य कर रही है, वही आद्य शक्ति नारी-तत्त्व है। निस्पन्दता की सत्ता में जो स्पन्द की धड़कन है, निष्क्रियता के अस्तित्त्व में जो क्रिया का विलास है, गतिहीनता के कलेवर में जो प्राणिक सञ्चार है, वही नारी-तत्त्व है।

वह, जिसके पृथक् हो जाने पर परम शिव शव बन जाता है, जिसकी सहायता के विना अन्य क्रिया-कलाप करना तो दूर रहा, यहाँ तक कि शिव हिल भी नहीं सकता, वही परमात्मिक आद्य शक्ति नारी-तत्त्व है—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यं हरिहरविरञ्चादिभिरपि,
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्य: प्रभवति।।

शिव 'हं' है तो शक्तिस्वरूपा नारी 'स:' है। सृष्टि के अहमस्मि, अहमिदं एवं इदमहं के विकास-स्तर की मूल शक्ति नारी-तत्त्व है।

जब अनीह, निष्क्रिय, ज्ञानशून्य एवं आनन्दापगत आद्य निर्गुण तत्त्व में ईहा, क्रिया, ज्ञान एवं आनन्द का आद्यतम सञ्चार होता है तो उसी स्थिति एवं उसी शक्ति को नारी-तत्त्व कहते हैं।

'सृष्टिस्तु कुण्डलीरूपा' कहकर योगियों ने परात्पर तत्त्व की विश्वातीतावस्था से विश्वाकारावस्था में जिस वैश्विक परिणति की ओर इंगित किया है, वही कुण्डलीरूपा तत्त्व नारी-तत्त्व है।

जो अनस्तित्व की गुह्य गुहा से अस्तित्व बनकर निकलती है, जो असत् के कलेवर में सत् का सञ्चार करती है, जो निष्क्रियता के अम्बर में क्रिया की सौदामिनी बनकर चमक उठती है, जो गतिहीनता के शव में गति बनकर कलरव करने लगती है, जो निरानन्द शून्य में आनन्द की क्रीड़ा बनकर मनोहर लास्य करने लगती है, वैश्विक रचना की वही आद्यतम शक्ति नारी-तत्त्व है।

जो सृष्टि का विश्वाकार विलास है, जो निर्गुण की गुणात्मक चेतना है, जो निष्क्रिय में क्रिया का मूल उत्स है, जो निरानन्द में आनन्द का सञ्चार है, वही नारी-तत्त्व है।

'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं सर्वश्रेयस्करीं सीतां' कहकर जिसकी वन्दना की गई है, जो 'गिरा' का अर्थ है और जो सृष्टि का आद्य स्पन्द है, वही नारी-तत्त्व है।

जो वेदों की हैमावती, विष्णु की माया, नारायण की नारायणी, शिव की शक्ति, ब्रह्मा की ब्रह्माणी, कामेश्वर की कामेश्वरी, भैरव की भैरवी, समय की समया और प्रकाश का विमर्श है, वही नारी-तत्त्व है।

जो वैभवों की अधिष्ठात्री एवं धन की देवी महालक्ष्मी है, जो ज्ञान की देवी सरस्वती एवं संहार की देवी महाकाली है, जो वैष्णवी चक्षुओं की योगमाया है, जो पिण्ड की कुण्डली एवं ब्रह्माण्ड की महाकुण्डली है, जो अहम् का 'हं' है, जो पिण्डों में जीव-शक्ति, चेतनाशक्ति एवं प्राणशक्ति है, जो विश्वाकारा, वर्णाकारा, सृष्ट्याकारा, मन्त्राकारा, मातृकाकारा एवं सिसृक्षाकारा है, वही पराभट्टारिका महामाया आद्यशक्ति नारीतत्त्व है। कहीं वही त्रिपुरसुन्दरी (ललिता) के रूप में तो कहीं शैजला शैवी के रूप में, कहीं वह श्रीं के रूप में, तो कहीं ह्रीं के रूप में; कहीं वह 'क्री' के रूप में तो कहीं क्लीं के रूप में; कहीं वह 'ऐं' के रूप में तो कहीं 'दुं' के रूप में स्थित है। कहीं वह दुर्गा के रूप में अभिव्यक्त होती है तो कहीं कालरात्रि के रूप में, कहीं कूष्माण्डा के रूप में तो कहीं चन्द्रघण्टा आदि नवदुर्गा श्री के रूप में। सामी धर्मों में तो वह पुरुष के पसली की हड्डी मात्र बनकर रह गयी—

So, the lord god caused a deep sleep to fall upon the man, and while he slept took one of his ribs and closed up its place with flesh and the rib which the lord god had taken from the man he made into a woman and brought her to the man. Then the man said- this at last is bone of my bones and flesh of my flesh; she shall be called women because she was taken out of man.

सामी धर्मों में उसे पुरुष के अध:पतन का कारण, शैतान और सांप की मित्र, लालच की मूर्ति, स्वर्ग से मर्त्यलोक में ढकेलने का आदि कारण, परमात्मिक आज्ञा के अतिक्रमण की मूल प्रेरणा, अशरीरता से शरीर-धर्मिता एवं शरीररूपता की मांसल अनुभूति की ओर ढकेलने वाली अध:पतन की शक्ति तथा ज्ञान का फल खाकर परमात्मा

बनने के दु:साहस का मूर्तिमान विग्रह बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

स्पष्ट है कि सामी धर्मों में नारी के केवल माया स्वरूप को ही अभिव्यक्त किया गया है। विद्यामाया एवं अविद्यामाया दोनों के स्वरूप में विद्यमान नारीतत्त्व को मात्र मोहात्मिका माया के रूप में चित्रित करना उसके पूर्ण स्वरूप की नहीं; प्रत्युत उसके आंशिक स्वरूप मात्र की अभिव्यक्ति है, अत: अपूर्ण है। माया की आवरण शक्ति एवं विक्षेप शक्ति तो नारी की शक्तियाँ हैं ही, किन्तु वह तूलामाया, मूलामाया एवं अविद्या-माया के अतिरिक्त विद्यामाया भी है और उससे ऊपर उठकर विद्यातीता भी है। वह शिवजाया भी है; किन्तु उससे ऊपर उठकर वह शिव की माता भी है। वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ब्रह्माणी, वैष्णवी एवं गौरी की जन्मदात्री परमा शक्ति भी है। वह एक ओर लास्य द्वारा सृष्टि-विधान का निष्पादन करती है तो दूसरी ओर शिव के वक्ष:स्थल पर, महाकाल के सीने पर खड़ी संहारकारिणी महाकाली के रूप में भी स्थित है।

रामायण में एक ओर शूर्पणखा का चरित्र-विधान है तो दूसरी ओर भगवती सीता का भी। वेदों में एक ओर कात्यायनी का चरित्र-विधान है तो दूसरी ओर उस ज्ञानमूर्ति मैत्रेयी का भी, जो कहती है कि 'येनाऽहं नामृतं स्याम् तेनाऽहम् किम् कुर्याम्।' पुराणों में ज्ञान का साक्षात् विग्रह मदालसा नवजात शिशुओं को भी ब्रह्मोपदेश करती हुई कहती है कि 'शुद्धोसि बुद्धोसि सुरंजनोसि, संसार-मायां परिवर्जितोसि, संसार-मायां त्यज मोहनिद्रां, मदालसा शिक्षयतीति बालम्। शुद्धोऽसि रे तात! न तेस्ति नाम' इत्यादि। मदालसा अपने वाणप्रस्थी एवं विरक्त संन्यासी पति का भी उद्धार करती हुई उन्हें अज्ञान के तिमिर-लोक से मुक्त करके मुक्ति प्रदान करती है। यही है—नारी का विद्यास्वरूप।

ऋग्वेद में वर्णित श्रद्धा एवं इड़ा का कथानक नारी के दोनों पक्षों को प्रस्तुत करता है। एक ओर जहाँ भौतिक वैभवों, सांसारिक अभ्युदयों की चकाचौंध से अन्धी एवं मायापाश में जकड़ी एवं मायात्मक बन्धन को अपने गले का हार बनाकर उसे धारण करने वाली इड़ा मनु को भौतिक, बन्धनग्रस्त एवं पतनोन्मुख मार्ग की ओर अग्रसर करके उनके जीवन को निराशा, कुण्ठा, सन्ताप, मनोव्यथा एवं विषाद के निरय-लोक में पहुँचाकर उनका घोर अध:पतन करती है, तो वहीं दूसरी ओर चिरोपेक्षिता श्रद्धा मनु को क्षमा करके उनका उद्धार करती हुई उन्हें आनन्दलोक में प्रवेश कराकर प्रेय से श्रेय के अभ्रंलिह उत्तुंग शिखरों पर पदासीन भी करती है।

पद्मावत की नागमती जहाँ रत्नसेन को सांसारिक बन्धनों में जकड़कर नफ़्स के शैतानी लोक में बाँधकर रखना चाहती है, वहीं पद्मावती उसे इश्कमजाजी से इश्क-हकीकी के उत्तुंग शिखरों पर आरूढ़ करके शरीयत से तरीकत, तरीकत से हकीकत, हकीकत से मारफत और वस्ल तथा बका के सोपानों से ऊपर आरूढ़ करके फना के उच्चतम सोपान तक पहुँचाती है।

'विद्या समस्तास्तव देवि भेदा:' कहकर समस्त विद्याओं को परात्पर नारी का स्वरूप

व्यक्त किया गया है। पुराणों में ठीक ही कहा गया है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवतागण निवास करते हैं।

नारी के तीन रूप हैं—अपर रूप, पररूप एवं परात्पर रूप। नारी अपने परात्पर रूप में विश्वेश्वरी, जगद्धात्री, स्वाहा, स्वधा, वषट्, स्वर, सुधा, मात्रा, अक्षर, अर्ध-माया, सन्ध्या, सावित्री, सृष्टि, स्थिति, संहति, महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा, महादेवी, महासुरी, प्रकृति, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, श्री, ईश्वरी, ह्री, बुद्धि, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति तो है ही; इसके साथ ही वह ब्रह्म, शून्य-अशून्य, आनन्द-अनानन्द, विज्ञान-अविज्ञान, ब्रह्मा-ब्रह्माणी, पंचीकृतापंचीकृत महाभूत, दृश्य जगत्, वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा, अध:-ऊर्ध्व-तिर्यक्, वैष्णवी, सरस्वती, महालक्ष्मी, आत्मशक्ति, विश्वमोहिनी, महाविद्या, मातृका, शब्दों में ज्ञान, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी आदि सभी कुछ है।

इसके अतिरिक्त वह विश्वातीता और विश्वाकारा भी है तथा वह अपने अनन्त रूपों में रौद्री, शिवा, गौरी, धात्री, ज्योत्स्ना, विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति, चिति आदि सभी कुछ है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।।

इतना ही नहीं; वह पिण्ड के चक्रों में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध एवं आकाश-पवन-अग्नि-जल एवं पृथ्वी तत्त्व भी है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

उसकी स्थिति निम्नानुसार है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

साधना के स्तर पर यदि कोई पुरुष नारी नहीं बनता तो उसकी मुक्ति सम्भव नहीं। इस तथ्य को यूरोपीय साधक न्यू मैन भी मानते हैं और भारतीय दर्शन भी। इसीलिए साधना के स्तर पर साधक पुरुष अपनी प्रत्यभिज्ञा नर के रूप में नहीं; नारी के रूप में करता हुआ कहता है—'अहं देवी न चान्योऽस्मि'। ठीक भी है; क्योंकि यह देवी शिव का मुख है—'शैवी मुखमिहोच्यते।' वह शिव के आत्म-साक्षात्कार का दर्पण है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः—जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है—यह आर्ष कथन भारतीय समाज में नारियों के प्रतिष्ठा, उनके सम्मान, उनके निरतिशय गौरव एवं उनके धार्मिक व सामाजिक मूल्यों को रेखांकित करता है। भारतीय समाज में नारियों का क्या स्थान है? इन प्रश्न का समाधान एवं नारियों की वरीयता का प्रमाण इस तथ्य से ही सुस्पष्ट है कि जगत् के जो सर्वोपरि एवं सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक मूल व्यापार हैं, उनका मूलाधिष्ठान भी नारियाँ ही हैं; यथा—विश्व-सृजन-व्यापार की अधिष्ठात्री ब्रह्माणी, विश्व-पालन-व्यापार की अधिष्ठात्री नारायणी लक्ष्मी, विश्व-संहार-व्यापार की अधिष्ठात्री पार्वती-महाकाली-त्रिपुरसुन्दरी तथा जागतिक व्यवहार का मूलाधार धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी वैभव, सम्पत्ति, श्री, सम्पदा; विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती-ज्ञान-विद्या आदि।

लक्ष्मी मात्र स्थूल, भौतिक एवं क्षर धन-सम्पत्ति की ही देवी नहीं हैं; प्रत्युत वे श्री भी हैं। इसीलिए उनका मूलमन्त्र 'श्रीं' है। वे महामाया भी हैं, अत: स्त्री भी हैं, लज्जा-बीज भी हैं। वे 'ऐं' भी हैं, महासरस्वती और सरस्वती भी हैं, प्रज्ञा भी हैं और मनीषा भी हैं; वे सर्वमय भी हैं और सर्वातीत भी, वे सीमा भी हैं और सीमातीत भी हैं; वे ज्ञान भी हैं और ज्ञानातीत भी। ये समस्त पक्ष नारियों के विराट व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष हैं।

जो समाज नारियों का सम्मान नहीं करता, वह नष्ट हो जाता है। रामायण एवं महाभारत में भगवती सीता एवं द्रौपदी का अपमान भारतीय इतिहास की भयंकरतम ट्रेजेडीज है। ओडिसी महाकाव्य की यूनानी सांस्कृतिक परम्परा भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है।

अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश, महाभारत का युद्ध, कुरुक्षेत्र का भयानक महासमर एवं तत्कालीन भारतीय राजनीति व प्रशासनतन्त्र की मूल्यहीनता का महा-ध्वंस मात्र द्रौपदी के अपमान की प्रतिक्रिया थी। सोने की लंका एवं राक्षसी संस्कृति का महाविनाश मात्र भगवती सीता के अपमान का प्रतिफल था। 'पलंग पीठ तजि गोइ हिंडोरा, सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा'—ऐसी कुसुम कोमल सीता भी अपने रौद्र रूप में हाथ में खड्ग एवं खप्पर लेकर 'महावरणा' का वध कर डालती है।

भगवती सीता किसी राजमहल की पुत्रवधू होने के कारण असूर्यम्पश्या राजकुमारी भी है और इतनी कोमलांगी है कि कमलदल छूने पर उनकी ऊँगलियों में छाले पड़ जाते हैं; किन्तु समय आने पर वे यह कठोर निर्णय लेने में भी संकोच नहीं करतीं कि—'अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमम्।' इतना ही नहीं; वे महाकाली का रौद्र रूप धारण करके भगवान् राम की सेना को भी पराजित करने वाले महावरणा का भी वध कर डालती हैं।

भारतीय नारी योरप की मेम नही है, वह पुरुषों के हाथ की खिलौना नहीं है।

वह सहचरी, अर्द्धाङ्गिनी, वामा, जाया और गृहलक्ष्मी तो है ही; साथ ही वह शिव की शिवा, ब्रह्मा की ब्रह्माणी एवं नारायण की नारायणी भी है।

लोग कहते हैं कि वर्तमान समाज, वर्तमान राजनीति, वर्तमान प्रशासनतन्त्र नारियों को उनका उच्च स्थान लौटा रहा है। नारियाँ ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन होकर नारी जाति को भविष्य के स्वर्णिम युग में पदार्पित करा रही हैं; मैं इस बात से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। वह समाज, जो विधानसभा एवं संसद में नारी-सम्मान की रक्षा, समान अधिकार, समान राजनीतिक प्रतिनिधित्व की बात करता है—क्या संसार का कोई भी देश इन थोथे आदर्शों को पूरा कर पाया है या कभी कर पायेगा?

जिस देश में आज की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में भी सभी प्रदेशों में लाखों की संख्या में नारियाँ बलात्कार, छेड़खानी, हत्या, आत्महत्या की शिकार हों और जिस देश में नारी को आत्मजा, अर्द्धाङ्गिनी, भगिनी एवं माता के रूप में पूजे जाने की दुहाई दी जाती हो और दुर्गोत्सव पर नव कन्याओं को देवी मानकर प्रतिवर्ष पूजन किया जाता हो, वहीं उन्हें दहेज की लालच में जला दिया जाता हो—यह कैसी विडम्बना है कि संसद में नारी उद्धार का नाटक दिखाने वाली और विधानसभाओं में नारी को समान अधिकार दिलाने के लिए भाषण देने वाली सांसद एवं विधायक नारियाँ और नारी मन्त्री भी यह भूल जाती हैं कि उनकी ही लाखों बहनें भारत की स्वतन्त्रता के पचास वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद भी आज पेट की ज्वाला मिटाने के लिए कतिपय वेश्यालयों में अपना शरीर बेचने को विवश हैं। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल और कलेक्टर बन जाने मात्र से नारियों का उद्धार नहीं हो जायेगा, न उन्हें समान अधिकार मिल पायेगा और न उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा आकाश का संस्पर्श कर पायेगी। यह तो तभी होगा, जबकि देश की समस्त नारी जाति को प्रतिष्ठा के आसन पर बिठाया जाय।

जिस्मफरोशी, विज्ञापनों में नारियों के नग्न चित्रों के प्रदर्शन, टी. वी. फिल्मों एवं सीरियल्स में नारियों को नग्न प्रदर्शन करने की प्रेरणा एवं बाध्यता पर कठोर अंकुश लगाया जाय। नारी मात्र मनोरञ्जन का साधन नहीं है; वह मात्र प्रेमिका ही नहीं, वह माँ, बहन, पुत्री और पत्नी भी है।

नारी विज्ञापन का आधार क्यों? नारी विक्रय की वस्तु क्यों? क्या विभिन्न सरकारें एवं उनके ये मंत्री यह नहीं देखते कि सड़कों, चौराहों, फुटपाथों पर विज्ञापनों के माध्यम से जिन नारियों के अपमान हो रहे हैं, वे उन्हीं में से किसी एक नारी के पुत्र भी हैं, भाई भी हैं और पिता भी हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों को अपने दायित्व का बोध कब होगा?

भारत में इंदिरा गाँधी, इंगलैण्ड में थैचर, इजरायल में गोल्डामायर, लंका में भण्डारनायके एवं कुमारतुंगे के प्रधानमंत्री बन जाने मात्र से ही नारी जाति का समग्र

विकास सम्भव नहीं, प्रत्युत समस्त नारी-जाति को एक संघर्ष करके अपने उच्च स्थान पर सम्मानित होने के लिए एक अखण्डित, सार्वभौम, सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय महासंघर्ष करना पड़ेगा; तभी जाकर नारी अपनी अस्मिता एवं आत्मगौरव की रक्षा कर पायेगी; अन्यथा नहीं। ऋषियों ने ठीक ही कहा था—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' अर्थात् उठो, जागो और महान् तत्त्व—मनीषियों की सहायता से यथार्थ सत्य को जानो।

किसी नारी के प्रधानमन्त्री एवं राष्ट्रपति बन जाने मात्र से ही उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो जाता; प्रत्युत उसे और ऊपर उठना होगा। उसे मैत्रेयी, घोषा, अपाला, मदालसा, अनसूया, पार्वती एवं सीता के दर्पण में नारीत्व के यथार्थ स्वरूप को देखना होगा और नारीत्व के आदर्शों को अपने जीवन में उतारना होगा। किसी भारतीय नारी ने ही यह प्रश्न उठाया था कि—'यन्नु म इयं भगो: सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति' अर्थात् हे भगवन्! यदि यह धन से सम्पन्न समस्त पृथ्वी मेरी हो जाय तो क्या मैं उनसे किसी प्रकार अमर हो सकती हूँ? याज्ञवल्क्य के यह कहने पर कि नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है। मैत्रेयी ने विश्व के सारे वैभव, धन-सम्पत्ति, मान, पद, प्रतिष्ठा आदि यभी को तिरस्कृत एवं अस्वीकार्य मानकर कहा था—'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।'

उन्होंने प्रापञ्चिक भोग-विलास, ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठा को अस्वीकार करके अमृतत्व की आकांक्षा व्यक्त की और उसी दिशा में याज्ञवल्क्य ने कहा—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्य:' (बृहदा.-2.4)। उपनिषदों में 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा. उप.-7.25.2) यह सबकुछ आत्मा ही है, 'ब्रह्मेदं सर्वम्' (बृ. उप.-2.5) यह सबकुछ ब्रह्म ही है—तो कहा ही गया है; किन्तु यह भी कहा गया है कि सृष्टि के आदि में जब कुछ भी नहीं था—न असत् था, न सत् था, न रज था, न मृत्यु थी, न अमृत था, न रात्रि थी, न दिन था—

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमवरीव: कुह: कस्य धर्मन्नम्भ: किमासीद् गहनं गभीरम्।।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि ना रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत:।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किञ्चनाऽऽस।।

तब भी सृष्टि के उस आदिकाल में एक तत्त्व था। उपनिषत्कारों ने कहा कि वह तत्त्व शक्ति था—ॐ देवी ह्येकाऽग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्। कामकलेति विज्ञायते। शृंगारकलेति विज्ञायते (बह्वृचोपनिषद्)।

यह वही शक्ति है, जिसके हृदय-भित्ति पर निखिल विश्वप्रपञ्च कलरव कर रहा है और समस्त जगत उन्मीलित है—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)।

जो शक्ति चिति, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, आह्लादिनी शक्ति, संवित् शक्ति, विमर्श, स्वातन्त्र्य शक्ति, स्फुरत्ता आदि अनन्त रूपों में ब्रह्माण्ड के कण-कण में आत्मा के रूप में गुञ्जार कर रही है; वही सर्वोच्च तत्त्व है। मैं याज्ञवल्क्य जी के शब्दों में थोड़ा-सा परिवर्तन करके कहना चाहूँगा—'शक्तिः वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यः।'

आज भारत को शक्ति-साधना की सर्वाधिक आवश्यकता है। नैपोलियन बोनापार्ट जैसे सेनापति एवं मिलिट्री राष्ट्राध्यक्ष तक ने भी कहा था—A moral to the physical is as ten to one. आज का भारत अपने यथार्थ शक्तिस्वरूप को भूल चुका है। आज भारत एक ओर नाभिकीय शक्ति (पारमाण्विक शक्ति) की दिशा में अपनी शक्तिमत्ता स्थापित करके शक्ति के शिखर पर आरूढ़ होने की दिशा में अग्रपद है तो दूसरी ओर अपनी स्थायी, नित्य एवं चिरन्तन शक्ति को नष्ट करने की होड़ में इतना आगे बढ़ चुका है कि उसे संसार में सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में छठवाँ देश माना जा रहा है। अपने को संसार के सबसे बड़े प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र कहकर अपने को गौरवान्वित करने मात्र से हम गौरवान्वित नहीं हो सकेंगे। हमें अपने को गौरवान्वित करने के लिए यह तथ्य भी याद रखना होगा—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (मनुस्मृति)

भारत के इसी गुरुत्व और चारित्र्य के उत्कर्ष ने उसे गौरवान्वित किया है; किन्तु बड़े दुःख की बात है कि स्वतन्त्रता के बाद भारत उत्तरोत्तर (उत्कर्ष प्राप्ति करने के विपरीत) अविश्रान्त नैतिक अधःपतन की दिशा में बढ़ रहा है और हमारी राष्ट्रीय राजनैतिक संस्थायें एवं राजनैतिक दल इस अधःपतन को सामयिक काल का सत्य कहकर और आत्मवञ्चना की पैरवी (Defence) करके भावी भारत को विद्रूपता के कीचड़ में घसीट रहे हैं।

हम अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं, अपने उच्चादर्शों एवं नैतिक प्रतिमानों को भूलते जा रहे हैं। भारत नयी स्थापनाओं, नवीन मौलिक आविष्कारों, नयी दार्शनिक दृष्टियों, नव्य आदर्श प्रतिमानों की स्थापनाओं की दिशा में उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख दिशा में बढ़ता जा रहा है। देश में शासकीय एवं राजनैतिक घोटालों की बाढ़ आ गयी है। रिश्वत मानों शिष्टाचार का पर्याय बन गया है। शासन-प्रशासन उत्तरदायित्वों एवं जवाबदेही (Responsibility and Accountability) से अपने को उत्तरोत्तर दूर रखकर पारदर्शिता के उच्चादर्शों से लगातार किनारा कस रहा है। ऐसी स्थिति में भारत की भावी पीढ़ी का क्या होगा?

क्या केवल नाभिकीय शक्ति प्राप्त कर लेने मात्र से कोई देश शक्तिशाली बन सकता है? यदि हाँ तो विश्व का सर्वोच्च शक्तिशाली एवं नाभिकीय शक्तिक्षेत्र में

शिखरस्थ देश रूस क्यों टूट गया? उसके दर्जनों टुकड़े क्यों हो गये? शीतयुद्ध समाप्त होने के बाद तथा नाभिकीय अस्त्र नियन्त्रण की बार-बार दुहाई दिये जाते रहने पर भी आज संसार में 36 हजार से अधिक पारमाण्विक अस्त्रों का भण्डार क्यों सुरक्षित है? अमेरिका आदि नाभिकीय शक्तियाँ अब भी क्यों और अधिक नाभिकीय अस्त्र बनाने एवं नाभिकीय शक्ति प्राप्त करने की दौड़ में और आगे बढ़ते रहने के लिए बेचैन एवं प्रयत्नशील हैं? कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलता। पारमाण्विक अस्त्र पूरी पृथ्वी एवं मानव जाति का संहार तो कर सकते हैं; किन्तु मानव जाति के आँसू नहीं पोंछ सकते, घावों पर मरहम नहीं लगा सकते। गरीबी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, शोषण, अत्याचार, भाई-भतीजावाद, लालफीताशाही, भूख, निर्धनता, भुखमरी और नैतिक अध:पतन को नहीं रोक सकते। क्या Lord Bryce की प्रजातन्त्र की यह परिभाषा भारत में कहीं भी देखने को मिलती है—Democracy is the government of people, for the people and by the people. फिर भी हम (अपनी जनसंख्या के बल पर) अपने को सर्वोच्च प्रजातन्त्रवादी देश कहकर आत्म-प्रवञ्चना कर रहे हैं। सर्वोच्च प्रजातन्त्र तो वह है, जहाँ हम प्रजातन्त्र के उच्चतम प्रतिमानों एवं आदर्शों को स्थापित कर सकें। क्या भारत के प्रजातन्त्र में ऐसा कोई असामान्य प्रजातान्त्रिक मूल्य स्थापित है, जो संसार के अन्य प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रों में नहीं है? फिर हम अपने को संसार का सर्वोच्च प्रजातन्त्रवादी देश कहकर मिथ्या स्वाभिमान में क्यों जी रहे हैं।

न तो हमें अपनी भाषा पर गर्व है, न साहित्य पर; न दर्शन पर गर्व है और न तो अपनी दार्शनिक मौलिक दृष्टियों पर; न तो अपनी संस्कृति पर गर्व है और न तो अपने चिरन्तन नैतिक मूल्यों पर। इतने पर भी हम अपने को एक राष्ट्र कहते हैं (देश नहीं)—यह भी एक विडम्बना है। यदि राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति नहीं तो राष्ट्रीयता कहाँ? यदि राष्ट्रीयता नहीं तो राष्ट्र कैसा?

महात्मा गांधी ने भारत के राजनीतिज्ञों को स्वतन्त्र भारत की बागडोर सौंपते हुये उन्हें दिशानिर्देश देते हुये कहा था कि—'यदि हम स्वतन्त्रता चाहते हैं तो हमें अंग्रेजी में लिखना और बोलना छोड़ देना चाहिये। सच्ची राष्ट्रीयता का मूल भी यही है।' उन्होंने बी. बी. सी. से कहा था—'दुनिया से कह दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता।' इन वाक्यों में भाषा-प्रेम, भारत की भाषिक शक्ति, भाषीय अस्मिता एवं वागात्मक अस्मिता की शक्ति अभिव्यञ्जित होती है; किन्तु महात्मा गाँधी की बात किसी ने भी नहीं मानी। क्या यह अवमानना हमारी शक्ति का द्योतक है या कि हमारी गुलामी और नि:शक्तता का?

गाँधी जी ने भारतीय स्वातन्त्र्य को स्वराज्य कहा था। क्या आज की भारतीय प्रजातान्त्रिक प्रणाली में भारतीय जनता किसी भी अंश में इसे स्वराज्य मानती है? क्यों नहीं मानती?

कोई भी राष्ट्र यदि किसी भी व्यक्ति, संस्था, पार्टी या सरकार को निरंकुश अधिकार

दे देता है तो सरकारों की शक्ति तो बढ़ती है; किन्तु जनता लगातार नि:शक्त, असहाय, शोषित, अपमानित और सन्त्रस्त होती जाती है। यही स्थिति भारतीय समाज की है। यदि नैतिक मूल्यों की अवहेलना की जाती है तो सर्वत्र यही स्थिति होती है।

हमें अपनी आत्मा में झाँकना होगा। हमें अपने तुच्छ स्वार्थों की बलिवेदी पर अपने चिरन्तन मूल्यों की जघन्य हत्या करना रोकना होगा। यह तभी सम्भव होगा जब हमारा प्रशासन और सरकार नैतिक मूल्यों की शक्ति का वरण करे; क्योंकि—If wealth is lost, nothing is lost. If health is lost, somthing is lost. If character is lost. everything is lost.

इसी चारित्र्य के बल पर भारत विश्वगुरु था और विश्वगुरु बनकर उसने संसार के अन्य देशों को अपना छोटा भाई मानकर उन्हें चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनका आह्वान करते हुए कहा था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:।।

आज भारत के लोग राजनैतिक दिशा-निर्देशों एवं शासकीय नीतियों के कारण पाश्चात्यदेशोन्मुखी होकर वह पाना चाहते हैं, जो भारत में नहीं है; किन्तु पाश्चात्य जगत् के कष्टापन्न, उदास, निराश, कुण्ठाग्रस्त एवं जीवन से हताश लोग भारतोन्मुखी होकर वह पाना चाहते हैं, जो पाश्चात्य देश में नहीं है। उन्होंने इसे पाया भी है। मैडम ब्लैवेटस्की, पाल ब्रंटन, ऐनी वेसेण्ट, सिस्टर निवेदिता एवं होली मदर आदि ने उसे भारत में ही पाया है। यह उनकी तपस्थली एवं कर्मस्थली भी रहा है। विश्वविख्यात पामिस्ट कीरो ने भी भारत में आकर पञ्चाङ्गुली देवी की साधना एवं भारतीय ज्योतिष का अध्ययन करके हस्तसामुद्रिक शास्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता एवं ख्याति प्राप्त की है। जर्मनी को भारत में उस ज्ञान, साहित्य, दर्शन, मूल्य एवं उस शक्ति का दर्शन हुआ, जिसका शतांश भी यूरोप में नहीं मिल पाया था। जर्मनी के एक दार्शनिक ने भारत के बारे में जो कुछ कहा, वह प्रत्येक भारतीय के चिन्तन-मनन का विषय होना चाहिए और भारत की सरकार के लिए दिशा-निर्देश। जर्मनी के महान् दार्शनिक Max Muller ने विक्टोरिया के यह पूछने पर कि What can India teach us? कहा था कि भारत यूरोप और संसार को जो कुछ दे सकता है, वह संसार का कोई भी राष्ट्र नहीं दे सकता। उन्होंने कहा—

(I) If I were to look over the whole world to findout the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow in some parts a very paradise on earth—I should point to India.

(II) If I were asked under what sky the human mind has fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on

the greatest problems of life and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India.

(III) And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of the Greeks and Romans, and of one semitic race, the jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not far this life only, but a transfigured and eternal life—-again I should point to India.

इतनी सारी प्रशंसायें करने के बाद भी Max Muller इस सत्य की भी अनदेखी नहीं कर सके कि वह भारत, जिसकी वे प्रशंसा कर रहे हैं, आज के कलकत्ता, मद्रास की सड़कों और वहाँ के बाजारों में मिलने वाला नहीं है। वह प्रशंसनीय भारत आज के राजनीतिज्ञों की देन नहीं है; प्रत्युत यह वह भारत है, जो आज से हजार-दो हजार एवं तीन हजार वर्ष पूर्व था। मैक्समूलर कहते हैं कि बाइबिल में सोलोमन की बौद्धिक क्षमता को अद्वितीय प्रतिमान माना जाता है; किन्तु उसकी बुद्धिमानी की सुप्रसिद्ध वह घटना, जिसमें कि वह एक बच्चे के दो टुकड़े करके दोनों स्त्रियों में बाँटने का निर्णय सुनाता है, उसके भी पहले बौद्धों के धर्मग्रन्थों में लगभग उसी रूप में प्रस्तुत की जा चुकी है। अत: Solomen की बुद्धिमानी की घटना भी भारत के बौद्ध ग्रन्थों से उधार ली गई है। मैक्समूलर ने भारत को Wounderful Country कहा है और इसके कतिपय अंचलों को स्वर्ग कहा है—In some parts a very paradise on earth—I should point to India.

ऐसे स्वर्गीय देश की स्वर्गीय परम्पराओं, जीवनमूल्यों, सांस्कृतिक धरोहरों, उच्चादर्शों, दार्शनिक दृष्टियों को हम भूलते जा रहे हैं। अत: हम शक्तिहीन और खोखले होते जा रहे हैं। पाप सौंग शास्त्रीय संगीत का; बाल डान्स, कैवरे डान्स भरतनाट्यम् का स्थान लेता जा रहा है। फ्रायड का Libidology सिद्धान्त हमारी चिर प्रतिष्ठित आस्थाओं एवं आदर्शों पर स्वामित्व जमाता जा रहा है।

ऐसी ही शक्तिहीन अवस्था में हमें शक्ति की आवश्यकता है। यह वही शक्ति है, जो परमाणु के नाभिक को, उसके चतुर्दिक परिक्रमा करने वाले एलेक्ट्रानों के ऋणाणु को, जीवन-कोषिकाओं के प्रोटोप्लाज्म को, R.N.A./D. N. A को, ब्रह्माण्डीय गुरुत्वाकर्षण को, ग्रहों-नक्षत्रों-तारों और मन्दाकिनियों को, हमारे हृदय की धड़कनों को, हमारे ब्रह्माण्डीय जीवन को और हमारे प्राणों को गति, स्पन्दन और ऊर्जा प्रदान कर रही है। वह शक्ति, जो शिव को उसकी शिवता का भान कराती है, उनको उनके अहं का स्मरण कराती है, जो शिव में अहं, शक्ति में अहमस्मि, सदाशिव में अहमिदं

एवं ईश्वर में इदमहं की संवेदना प्रदान करती है, वही शक्ति हमारी काम्य है—उपास्य है; क्योंकि—'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते'। यही कहीं शक्ति कही गयी है—

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता।। (देवीभागवत)

अर्थात् ऐश्वर्य-पराक्रमप्रदात्री सामर्थ्य ही शक्ति है। हमें अपने आन्तरिक बल के लिए इसी शक्ति की अपेक्षा है। यही कहीं प्रकृति कही गयी है—

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।। (देवीभागवत)

यही कहीं देवी कही गयी है—

देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्। (बह्वृचोपनिषत्)

यही कहीं बीज कही गयी है—

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता। (देवीभागवतपुराण)

यही कहीं ब्रह्म कही गयी है—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्।
एकमेवाद्वितीयं यद् ब्रह्म वेदा वदन्ति वै।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति खलु विभ्रमात्।

यही कहीं सीता कही गयी है—

(क) उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।।[1]

(ख) निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादिसर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते। (सीतोपनिषद्)

अर्वाची सुभगे भव सीते! वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि।।(ऋग्वेद-3.8.9)

यही कहीं परब्रह्म कही गयी है—

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या त्वेमका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।।

यही कहीं महाबिन्दु एवं विमर्श, स्फुरत्ता, हृदय, सार, स्वातन्त्र्य, स्पन्द आदि कही गयी है। अपनी शक्ति में प्रतिबिम्बित ब्रह्म में शक्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने से सर्वप्रथम पूर्णाहंभावविमर्श उत्पन्न होता है। वही समस्त विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है। वही शब्दार्थसृष्टि का बीज है। अहं का अकृत्रिम (स्वाभाविक) स्फुरण (ज्ञान)

1. रामतापनीयोपनिषद्

ही विमर्शशक्ति है। पूर्णाहंभाव या शुद्धाहन्ता ही ब्रह्म है। पूर्णाहन्ता ही शिवभाव या मोक्ष है। बिन्दु (अहंभाव) में बीजरूप से सारा प्रपञ्च अवस्थित है। विमर्शशक्ति सिसृक्षावश बिन्दुरूप में प्रकट होती है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्।

इसी बिन्दु में जगत् न्यग्रोध के बीज में स्थित वटवृक्ष की भाँति स्थित है—

यथा न्यग्रोधबीजस्थ: शक्तिरूपो महाद्रुम:।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।

यह बिन्दु ही परावाक् है। यही कारणबिन्दु है और पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी आदि कार्यबिन्दु हैं। इन चारो को शान्ता शक्ति, वामा शक्ति, ज्येष्ठा शक्ति, रौद्री शक्ति, अम्बिका शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति भी कहा गया है। कारणबिन्दु ही 'रव' है और 'रव' ही शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म जगत् का आदि स्रष्टा है। शक्तियाँ तो अनन्त हैं; किन्तु परात्पर एवं ब्रह्मस्वरूपा अद्वितीय महाशक्ति तो एक ही है और वह सर्वमयी है—

'सेयं सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधार-कार्यकारणामयी, महालक्ष्मी तद्गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा देवर्षिमनुष्यगन्धर्वरूपा, असुर-राक्षस-भूत-प्रेत-पिशाच-भूतादिभूतशरीररूपा भूतेन्द्रियमन:प्राणरूपेति विज्ञायते'।

वही सर्वदेवीरूपा है; क्योंकि एक ही अनेक बनकर सर्वत्र फैल गया है और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति योऽहमस्मीति वा सोऽहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाव्यते सैषा षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बालाऽम्बिकेति, बगलेति वा मातंगीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातंगीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यंगिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति।'

त्रिकोणाकार मञ्च पर, परमशिव के पर्यङ्क पर विराजमान उसी चिदानन्दलहरी शक्ति का लोग भजन किया करते हैं—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

शक्ति की साधना का लक्ष्य है—'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति। शक्ति के साथ सामरस्य अद्वैत, एकीकरण या तादात्म्यभाव ही शाक्त साधना की सिद्धि है।

शाक्त मत अद्वैतवादी है; अत: यहाँ सिद्धि अद्वैतसिद्धि है—

अद्वैतभावनारूपनिर्विकल्पसमाधिपर: प्रपञ्चत्रयवासनारहित: स्वानन्दभवनम्।

(10.4.14)

अद्वैतावस्थानरूपनिर्विकल्पसम्पन्नो ब्रह्मीभूतः। (10.4.15)

इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी। (18.4.24)

यहाँ जो शक्ति काम्य है, वह ब्रह्मरन्ध्रवासिनी है—'ब्रह्मरन्ध्रे पराशक्तिः' (13.2.13)। ध्यान द्वैतात्मक नहीं है; प्रत्युत—'अहं ब्रह्म इत्यखण्डाकारवृत्यां निश्चलस्थितिर्ध्यानम्' (13.1.20)। यहाँ ध्यान साध्य नहीं, साधन है। साध्य है समाधि—'ध्यानसिद्ध्या समाधिः' (13.2.21)। 'त्रिपुटिराहित्याखण्डाकारवृत्तिः समाधिः' (13.1.21)। यहाँ परमार्थ ब्रह्म है—'ब्रह्म वा इदमग्र आसीदिति परमार्थम्' (12.3.19)। अतः 'परमार्थं ब्रह्म इदमग्र आसीदिति' (12.3.34)। अद्वैतभवनारूपनिर्विकल्पसमाधिपरः प्रपञ्चत्रयवासनारहितः स्वानन्दभवनम्' (10.3.14)। स्वानन्द क्या है? 'स्वसंवेद्यमानमानन्दं स्वानन्दम्। तद्भवनं निजलोकः' (10.2.14)। 'आनन्दाधिक्यं निजलोके' (10.4.17)।

गर्गाचार्य का मत—'प्रपञ्चत्रयवासनायुक्तमणिद्वीपवासो न भुक्तिरिति गर्गः।' (10. 4.17)

गाणपों का मत—चिन्तामणि गृह एव चिन्तामणिद्वीपमिति गाणपाः।

यहाँ सृष्टि एक क्रीड़ा है—'सृष्ट्यादिक्रीड़ासक्ता देवी जगत्सृष्टेः पूर्वमासीदिति' (11.3.19)।

बादरि-मत—बादरिमत में मणिद्वीपवास मुक्ति नहीं हे—'न मुक्तिर्मणिद्वीपवासः। न तेन मुक्तिरिति बादरिः' (9.3.11)।

प्रजापति-मत—न शक्तिलोकवासो मुक्तिः। ब्रह्मलोकवासैव मुक्तिरिति प्रजापतिः।' (9.2.2) 'अविद्या मणिद्वीपे' (9.1.16)।

शाक्ताचार्य हयग्रीव का मत—मणिद्वीपवासो मुक्तिरेवेति हयग्रीवः' (9.3.19)। हयग्रीव ने भुवनेश्वरी को ही शक्ति कहा है—'शक्तिशब्दवाच्या भुवनेश्वरी' (3.2.3)।

समस्त जगत् का मूल कारण शक्ति है—'अतः कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीवः' (3.2.9)। यहाँ मुक्ति शक्ति के मणिद्वीप में निवास है। यह द्वीप आनन्दमय है—'तदानन्दभवनम्। तदानन्दं मणिद्वीप एव' (10.4.15)। यहाँ मोक्ष की दूसरी दृष्टि भी है—'जन्ममरणादिदुःखरूपसंसृतिनाशो मोक्षः' (5.4.1)।

आचार्य अगस्त्य की दृष्टि (शक्तिसूत्रम्)—'अहंता प्रकृतिः। प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथ्यो विलाप्य तत एकोवशिष्यते' (3.53)। 'मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।' (3.54)।

मोक्ष की सामान्य परिभाषा भी है—'सर्वदुःखोपरमः श्रेयान् मोक्षः' (2.56)।

मोक्ष की यथार्थ परिभाषा—'स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति' (1.1.26)।

सबसे बड़ी शक्ति क्या है? महती वीर्यभूमि क्या है? आचार्य क्षेमराज कहते हैं—'एषैव अहन्ता सर्वमन्त्राणाम् उदयविश्रान्तिस्थानत्वात् एतद्बलेनैव च तत्तदर्थक्रियाकारित्वात् महती वीर्यभूमिः।' फिर यह अहन्ता क्या है?

प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः।
उक्ता च सैव विश्रान्तिः सर्वापेक्षनिरोधतः।
स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च।।

प्रकाश अर्थात् नील, सुख आदि की आत्मा में विश्रान्ति या लय को अहंभाव या पराहन्तापरामर्श कहा गया है। समस्त अपेक्षाओं के विरुद्ध होने पर वही विश्रान्ति रूप आत्मतृप्ति स्वातन्त्र्य मुख्यकर्तृत्व एवं ऐश्वर्य के नाम से कही जाती है।

शाक्त-साधना का लक्ष्यान्तर है—पूर्णाहन्तावेश द्वारा चक्रेश्वरत्व की प्राप्ति—'तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहारकारिनिजसंविद्देवताचक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीति शिवम्।' (शक्तिसूत्र-20)

शाक्त दर्शन जीवन्मुक्ति को ही परा सिद्धि, साधना की परा उपलब्धि, चरम लक्ष्य स्वीकार करता है। जीवन्मुक्ति क्या है? स्पन्दशास्त्र कहता है—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीड़ात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।।

जीवन्मुक्ति के साधन क्या हैं? इसके निम्न साधन हैं—1. विकल्पक्षय 2. शक्ति-संकोच एवं शक्ति-विकास 3. वाहच्छेद 4. आदि और अन्त कोटि का निभालन आदि—'विकल्पक्षय-शक्तिसंकोच-विकास-वाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादय इहोपायाः'।
(शक्तिसूत्र-18)

जब देहादिक अनात्म प्रत्ययरूप अहं का क्षोभ (देहादि के आकार वाला अहमात्मक क्षोभ) नष्ट हो जाता है तब जीवन के परम लक्ष्य परमपद में आत्मा प्रतिष्ठित हो जाती है—

यदाः क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात् परमं पदम्। (स्पन्दसूत्र)

यही परमपद ही तो साधना की सर्वोच्च काम्य उपलब्धि है। जब वह शक्ति अपने स्वरूप का गोपन करके पशुदशा (जीवदशा) में प्राण, अपान, समान शक्ति की दशाओं; जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति भूमियों; देह-प्राण-पुर्यष्टकात्मक कलाओं द्वारा व्यामोहित करती है तब उसी से व्यामोहितातास्वरूप संसारित्व (संसरणरूप बन्धन) उत्पन्न होता है। जब वह ऐश्वर्य शक्ति सुषुम्ना पथ के उल्लासरूप उदान शक्ति एवं विश्वव्याप्तिसारभूत व्यान शक्ति को, जिसे क्रमशः आनन्दघनस्वरूप तुर्यदशा और चिद्घनस्वरूप तुर्यातीतावस्था को उन्मीलित करती है तब देहादिक अवस्था में भी पतिदशात्मक जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाती है। चित्प्रकाश जब संकोच ग्रहण करता है तब संसारी (पशु/

मायाबद्ध जीव) बन जाता है; अन्यथा तो वह शिव है ही।

एक ही भगवती चिति शक्ति विश्व वमन करने के कारण वामेश्वरी, खेचरी, गोचरी, दिक्चरी, भूचरी आदि स्वरूपों को धारण कर लेती है।

साधक का लक्ष्य है—अपनी विस्मृत महेश्वरता या पराशक्तित्व प्राप्त करना और इसकी प्रक्रिया इस ज्ञान की अनुभूति है—

सर्वो ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता।।

(उत्पलदेवाचार्य : प्रत्यभिज्ञाकारिका)

एक ही शक्ति देहप्रमाता, बुद्धिप्रमाता, प्राणप्रमाता, शून्यप्रमाता, विज्ञान-केवली, मन्त्र, मन्त्रेश्वर एवं मन्त्रमहेश्वर आदि सारे विकल्पों को जन्म देती है। वही शिव (पति) को पशु भी बना देती है। वही विमर्श भी है और स्वातन्त्र्य भी; वही शुद्ध विद्या भी है और महामाया भी; वही माया भी है और प्रकृति भी। शक्ति ही जगत् है—'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।' शक्ति ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, चिति, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया आदि सभी कुछ है। जैसा कि भगवती के पादपद्मों में नमन-क्रम में कहा भी गया है—

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।





द्वितीय अध्याय

अथातो शक्ति-जिज्ञासा

वेदान्ती 'ब्रह्म' की तो शाक्त 'शक्ति' की जिज्ञासा प्रकट करता है। उद्भव-स्थिति-संहार व्यापारों की आदि कर्त्री ही 'शक्ति' है। शिव इसी शक्ति की सहायता से जगत् की सृष्टि करते हैं। वे इसी के द्वारा जगत् का पालन एवं संहार भी करते हैं—

त्रिधा तिसृष्ववस्थासु रूपमास्थाय शक्तिमान्।
उद्भवस्थितिसंहारान्कृत्स्नविश्वस्य शक्तितः।। (नेत्रतन्त्र-1.2)

शक्ति का यथार्थ स्वरूप—शक्ति क्या है? शक्तिमान का सामर्थ्य। शक्तिमान का सामर्थ्य क्या है? वह सामर्थ्य, जिससे शक्तिमान 'शक्तिमान' कहलाता है। उसी सामर्थ्य को 'शक्ति' भी कहते हैं। उस सामर्थ्यात्मक शक्ति का स्वरूप क्या है? वह चिति, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियास्वरूपा है। 'मैं' (अहं) के साथ जो 'यह' (इदम्) का भाव उदित होता है, वही शक्ति है।

विमर्श—विश्वाकार होने, विश्व को प्रकाशित करने एवं विश्व का संहार करने का जो मूल कारणस्वरूप अकृत्रिम अहंभाव है, उसके स्फुरण को ही 'विमर्श' कहते हैं और विमर्श ही शक्ति है। विमर्श के मुख्यतः चार व्यापार हैं—

1. विश्वाकार होना (विश्वमयता)—विमर्शो नाम विश्वाकारेण।
2. विश्व को प्रकाशित करना—विश्वप्रकाशनेन।
3. विश्व का संहार करना—विश्वसंहारेण वा।
4. अकृत्रिम अहं का स्फुरण—अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्।

वेदान्त के निष्क्रिय, निष्कल, शान्त, निरञ्जन, अव्यय, अक्षर परब्रह्म स्पन्दशून्य है। सृष्टि के आदि में माया की तमोमयी मलिनता का प्रादुर्भाव होता है। इस माया को ही ब्रह्म की शक्ति कहा गया है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र (1.4.3) में कहा है कि अविद्यात्मिका शक्ति ही बीजशक्ति है। इसी मायामयी महासुप्ति में स्वरूप-ज्ञानशून्य जीव सोते रहते हैं। इसी शक्ति को कहीं प्रकृति कहा गया है, कहीं मूल प्रकृति कहा गया है और कहीं माया कहा गया है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायेनं तु महेश्वरम्।
(श्वेताश्वतर उप.-4.10)

गीता की दृष्टि—श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि भगवान् की दो शक्तियाँ हैं—अपरा (अष्टधा प्रकृति) एवं परा (चैतन्य, जीव) शक्ति।

पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यही अष्टधा 'अपरा' प्रकृति कहलाती है। अपरा प्रकृति ही सांख्य की 'मूल प्रकृति' या श्वेताश्वतरोपनिषद् की 'माया' है। गीता में प्रकृति को 'महद् ब्रह्म' भी कहा गया है। यह महद् ब्रह्म ही सम्पूर्ण विश्व की 'योनि' है।

शक्ति का विमर्शत्व—कालीकुल में कहा गया है कि देवाधिदेव एवं परबोध-स्वरूप भगवान् शिव की जो सर्वज्ञा, ज्ञानशालिनी परमा शक्ति है, वही विमर्श है अर्थात् विमर्श ही परमा शक्ति है—

तस्य देवादिदेवस्य परबोधस्वरूपिण:।
विमर्श: परमा शक्ति: सर्वज्ञा ज्ञानशालिनी।।

शक्ति : भगवान् की इच्छाशक्ति—श्रीपूर्वशास्त्र में कहा गया है कि जगत् के स्वामी भगवान् महेश्वर की जो इच्छाशक्ति है, वही शक्ति है। शब्दान्तर में इसे इस प्रकार कहा गया है कि परमेश्वर की स्वसमवेता निजा परमा शक्ति ही परमात्मा के सिसृक्षु होने पर उनकी इच्छाशक्तिस्वरूपा देवी के रूप में उदित होती है और उसी से जगत् की सृष्टि होती है—

या सा शक्तिर्जगद्धातु: कथिता समवायिनी।
इच्छात्वं तस्य सा देवी सिसृक्षो: प्रतिपद्यते।।[1]

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि 'मम सम्बन्धिनी परा शक्ति: इच्छा, इच्छारूपतां प्राप्ता। कीदृगिच्छा स्वभावजा सहजा शक्तियुक्ता गर्भीकृताशेषविश्वशक्त्यभेदविमर्शेति।'[2]

भगवान शिव कहते हैं—'सा ममेच्छा परा शक्ति:।[3]

शक्ति : विश्व का परम कारण तत्त्व—नेत्रतन्त्र के प्रथम पटल में कहा गया है कि 'स्वा शक्ति: कारणात्मिका।'

'जिज्ञासा' ही खोज का प्रेरक सूत्र है। जिज्ञासा (Curiosity) ही दर्शन (Philosophy) का बीज (Seed) है। जिज्ञासा के विना खोज सम्भव नहीं है और विना खोज किये कुछ मिल नहीं मिलता। सन्त कबीरदास जी ने बहुत सही कहा था कि—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ।।

मैं मानता हूँ कि वैज्ञानिकों ने बहुत बड़ी-बड़ी खोजें कीं और उन खोजों एवं

1. मा.वि. (3.5)
2. नेत्रोद्योत
3. नेत्रतन्त्र (प्रथम पटल)

आविष्कारों से बहुत बड़ी-बड़ी शक्तियाँ भी प्राप्त कीं, किन्तु उनकी सारी खोजें सतह की खोजें हैं, अन्तस्तल की नहीं; फल के छिलके एवं गूदे की खोजें हैं, बीज की नहीं; भौतिक पदार्थों की खोजें हैं (किन्तु उनके अन्तस्तल में अदृश्य रूप से चिर-प्रतिष्ठित) उनमें स्थित शाश्वत शक्ति की नहीं। कोई भी पदार्थ स्वान्तगर्भित शक्ति के विना न तो अस्तित्व रख सकता है और न तो गतिमान, सञ्चालित, सुनिर्दिष्ट नियम-चक्र से आबद्ध, व्यवस्था-तन्त्र से संश्लिष्ट एवं आन्तर व्यवस्थाक्रम का अत्रुटित एवं नियमित अनुगामी ही हो सकता है। सञ्चालक के विना सञ्चालन का अस्तित्व कैसे सम्भव है? सञ्चालन के विना सञ्चालित वस्तु में किसी भी गति या क्रिया का अस्तित्व कैसे सम्भव है।

फ्रांस के प्रसिद्ध (यूरोपीय) दार्शनिक डेकार्टे (Decartes 1569-1650) ने कहा था कि संसार एक मशीन है और उसका सञ्चालक परमात्मा है। इसी प्रकार संसार के प्रत्येक जड़ एवं चेतन, भौतिक एवं अभौतिक, स्थूल एवं सूक्ष्म, भौतिक शरीर एवं संवित् चेतना का भी कोई सञ्चालक होना चाहिये। ऐसी पराशक्ति होनी चाहिये, जो कि जड़ एवं चेतन दोनों की सञ्चालिका हो और दोनों को किसी 'ऋत' (Cosmic order) से सञ्चालित, नियमित एवं गतिशील रखती हो। यही शक्ति आत्मा और परमात्मा है और यह आत्मा ही सब का मूल है—

आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं कोऽप्यर्थयते। (महार्थमञ्जरी)

इसीलिए वेद ने भी कहा—'आत्मलाभान्न परं विद्यते।'

तान्त्रिकों की जिज्ञासा केवलाद्वैतवादियों की जिज्ञासा से भिन्न है। वेदान्त में जिज्ञास्य ब्रह्म है तो मीमांसा में कर्म या धर्म; किन्तु शाक्तदर्शन में जिज्ञास्य है—शक्ति। जिज्ञासा के अनेक रूप हैं; यथा—

1. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदान्त-सूत्र)।
2. अथातो धर्मजिज्ञासा (मीमांसा-सूत्र)।
3. अथातो शक्तिजिज्ञासा (शक्ति-सूत्र)।

भारत के सारे तान्त्रिक दार्शनिक शक्ति के जिज्ञासु, उपासक, अनुसन्धायक एवं भक्त रहे हैं। तन्त्र की ऐसी कोई शाखा नहीं है, जहाँ शक्ति की महनीय भूमिका या शक्तिवाद स्वीकृत न हो।

शाक्तों का चरम लक्ष्य है—शक्ति का आयत्तीकरण। शक्ति को जागृत करके ही साधक कुण्डलिनी से महाकुण्डलिनी के स्तर तक पहुँचता है।

तान्त्रिक मानते हैं कि प्रत्येक प्राणी की शक्ति मूलाधार चक्र में सो रही है। जब तक इसे जगाया नहीं जाता तब तक साधक मूलाधार की पाताल नगरी से ऊपर नहीं उठ सकता और न तो शक्ति ही प्राप्त कर सकता है। साधक का लक्ष्य है—अपनी

सोती शक्ति को जगाना। शक्ति की सुषुप्ति ही बन्धन है। यही अज्ञान, अविद्या, मोह एवं अन्धकार है।

'जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' का श्रुतिनिर्देश अपने को जगाना है, अपनी सोती शक्ति को जगाना है, अपने अन्तःकरण-चतुष्टय को जगाना है और जागृत शक्ति के साथ परम जागृत एवं पूर्ण चैतन्य परमशिव के साथ समरसत्व प्राप्त करके अपने शिवत्व का साक्षात्कार करना है। कुण्डलिनी का जागरण ही जीव का शक्ति-जागरण है; किन्तु इस जागृति को तब तक पूर्णता नहीं प्राप्त हो पाती, जब तक कि सुषुप्ति एवं जागृति का महाजागृतिस्वरूप परमशिव में लय न हो जाय, शक्ति और जीव का शक्तिमान (परमशिव) के साथ सामरस्य न हो जाय और इस प्रकार पशु 'पशुपति' न बन जाय या जीव 'शिव' न बन जाय। यह शिवत्वाभिव्यक्ति ही शक्ति-जागरण है या अपनी सोती शक्ति का सुषुप्ति-भंग है।

दर्शन शास्त्र में जिसे 'शक्ति' कहा जाता है, वह पादार्थिक, मानसिक, बौद्धिक, सांवेगिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक शक्ति नहीं है; वह शिव की शक्ति है।

सत्, चित् एवं आनन्दरूप ऐश्वर्य से पूर्ण सगुण परमेश्वर से (सच्चिदानन्दविभव सकल परमेश्वर से अर्थात् निष्कल परमशिव के प्रकृति से संयुक्त होने पर उनके सफल हो जाने पर) शक्ति का आविर्भाव हुआ। उस शक्ति से नाद का आविर्भाव हुआ और नाद से बिन्दु का आविर्भाव हुआ।

सारांश—

1. निष्कल शिव का प्रकृति (कला) से संयोग।
2. कला-संयुक्त (सकल) शिव से शक्ति का आविर्भाव।
3. शक्ति से नादतत्त्व का आविर्भाव।
4. नादतत्त्व से बिन्दु का आविर्भाव।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः।।[1]

परमशिव
↓
सदाशिव
↓
ईश्वर
↓
रुद्र
↓
विष्णु
↓
ब्रह्मदेव

अथ बिन्द्वात्मन शम्भोः कालबन्धोः कलात्मनः।
अजायत जगत्साक्षी सर्वव्यापी सदाशिवः।।
सदाशिवाद् भवेदीशस्ततो रुद्रसमुद्भवः।
ततो विष्णुस्ततो ब्रह्मा तेषामेवं समुद्भवः।।
(शारदातिलक 1.15-16)

1. शारदातिलक (प्रथम पटल 1.2)

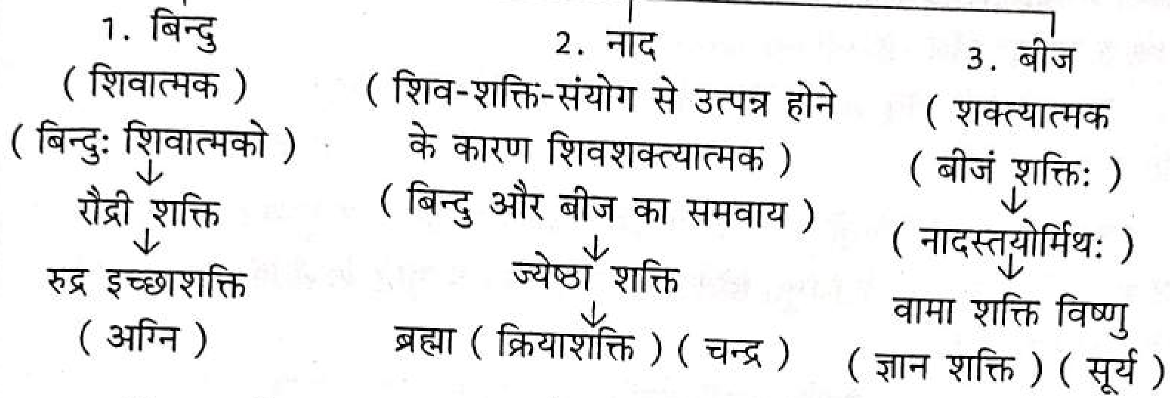
परमेश्वर की कला का परमेश्वर से संयोग

↓

शक्ति

↓

नाद



परमशिव की शक्तियाँ—ब्रह्माण्ड-नायक, पञ्चकृत्यकारी, महेश्वर परमशिव की अनन्त शक्तियाँ हैं; किन्तु यदि उनकी समस्त शक्तियों को वर्गीकृत करके (उन्हें पाँच भागों में) विभाजित किया जाय तो उन शक्तियों का नाम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—चित्शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, एवं क्रियाशक्ति।

भट्ट वामदेव कहते हैं कि 'इस खलु निखिलजगदात्मा सर्वोत्तीर्णश्च सर्वमयश्च विकल्पासङ्कुचितसंवित्प्रकाशरूपः अनवच्छिन्नचिदानन्दविश्रान्तः प्रसरदविरलविचित्रपञ्च-वाह वाहवाहिनीमहोदधिनिरतिशयस्वातन्त्र्यसीमनि प्रगल्भमानः सर्वशक्तिखचित एक एव अस्ति संविदात्मा महेश्वरः।'

1. तस्य प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः = चित् शक्ति।
2. स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः = आनन्दशक्ति।
3. तच्चमत्कारः इच्छाशक्तिः = इच्छा शक्ति।
4. आमर्शात्मकता ज्ञानशक्तिः = ज्ञानशक्ति।
5. सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः = क्रियाशक्ति।

इच्छाशक्ति ही गौरी है। क्रियाशक्ति ब्राह्मी है और ज्ञानशक्ति वैष्णवी है।

परबिन्दु (शक्त्यवस्था-स्वरूप)—'आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः'—वाला बिन्दु[1]।

वर्णविशेषशून्य अखण्ड नाद : शब्दब्रह्म (बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्)।

शब्द ब्रह्म : चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः। (शारदातिलक)

ध्यातव्य बिन्दु—शब्दब्रह्म स्वयं पराशक्ति का ही तो स्वरूप है। कोई शब्दार्थ

1. ये 'नाद' एवं 'बिन्दु' शक्ति से उत्पन्न पूर्ववर्ती नाद, बिन्दु से पृथक् हैं।

को शब्दब्रह्म कहता है तो कोई अखण्ड स्फोटात्मक शब्द को शब्दब्रह्म कहता है; किन्तु शारदातिलककार कहते हैं कि—उपर्युक्त दोनों ही जड़ हैं, अतः सृष्टि करने के योग्य नहीं हैं। अतः बिन्दु से समुत्पन्न एवं सम्पूर्ण प्राणियों में चैतन्यरूप से विद्यमान अखण्डानन्द ही शब्दब्रह्म है—'चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।' वही चैतन्य-स्वरूप शब्दब्रह्म प्राणियों के शरीर में कुण्डलिनी के रूप में स्थित है। आशय यह है कि शब्दब्रह्म और कुण्डलिनी अभिन्न हैं—

तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।

(शारदातिलक-1.14)

वही शब्दब्रह्म प्राणियों के शरीर में कण्ठ आदि स्थानों में पहुँचकर गद्य-पद्य आदि भेद से वर्ण के रूप में आविर्भूत होता है। इसीलिये यह सृष्टि प्राथमिक स्तर पर शब्द-सृष्टि कहलाती है—

वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।(शारदातिलक-1.14)

प्रकृति-संवलित एवं बिन्दुरूप शरीर वाले परमशिव से (काल की सहायता से) सृष्टि-स्थिति-ध्वंस-निग्रह-अनुग्रह में समर्थ (जगन्निर्माण के बीज एवं जगत् के साक्षी) सदाशिव का आविर्भाव हुआ—

अथ बिन्द्वात्मनः शम्भोः काल बन्धोः कलात्मनः।

शक्ति तत्त्व

शक्ति शिव की अहमाकार अभिज्ञा है। वह शिव का मुख है। 'शक्ति' शब्द शक् धातु से क्तिन् प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है। शक्ति का अर्थ है—शिव की स्व-समवेत सामर्थ्य।

देवीभागवतकार की दृष्टि—देवीभागवत पुराण में कहा गया है कि शक्ति में 'श' शब्द मंगल-वाचक होने के कारण ऐश्वर्यवाचक है और 'क्ति' शब्द पराक्रम का बोधक है।

सारांश यह कि 'शक्ति' शब्द के ऐश्वर्य एवं पराक्रम का बोधक होने के कारण शक्तितत्त्व वह परासत्ता है, जो ऐश्वर्य एवं पराक्रम दोनों प्रदान करती है। शक्ति शिव का वह आत्मदर्पण है, जिसमें अपने को देखने के बाद ही शिव यह समझ पाते हैं कि 'मैं हूँ।' शक्ति शिव की सिसृक्षा है। शक्ति का रूपायन ही विश्व है। शक्ति की अभिव्यक्ति ही सृष्टि है—'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'

शक्ति शक्तिमान (शिव) का धर्म है—उसका स्वभाव है—उसका गुण है। शाक्तों ने उसे शिव का दर्पण माना है। शि. ,जो शक्तिरूपी दर्पण में अपनी अहन्ता का साक्षात्कार करते हैं। शिव का 'अहं' विमर्श (शक्ति) में ही प्रतिफलित हो पाता है। शक्ति शिव का मुख है—'शैवी मुखमिहोच्यते।'

शिव 'प्रकाश' है तो शक्ति 'विमर्श' है।

शक्ति शिव का विमर्श है। शिव का चैतन्य, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया आदि सभी तत्त्व शक्ति ही तो है। शिव की कर्त्तुं-अकर्त्तुं-अन्यथाकर्तुं आदि सारी क्षमतायें उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति ही तो है। शिव चन्द्रमा है तो शक्ति चन्द्रिका है। शिव अग्नि है तो शक्ति उसकी दाहकता है। शक्ति शिव का अहं-बोध है, उनकी आत्म-प्रत्यभिज्ञा है। अपने स्वरूप एवं अपने 'मैं' की पहचान है। शक्ति शिव का दर्पण है, जिसके सामने खड़े होकर वे अपने को पहचान पाते हैं कि 'मैं कौन हूँ।' शिव के मैं (अहं) का आइना ही शक्ति है। वही शक्ति सृष्टि के पूर्व अव्याकृत एवं नाम-रूपातीत स्वरूप में देवी के नाम से वेदों की ऋचाओं में वर्णित की गई है—

यथा प्रकरणात्तु सैव देवी शक्तिरव्याकृतनामरूपा। नामरूपयोः प्रागवस्थानेनापि मन्त्रेणाम्नायत।

वही वैष्णवी माया है—

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

वही शक्ति सुधासिन्धु के मध्य कल्पवृक्षों की वाटिका से परिवृत (घिरे हुये) मणिद्वीप में नीपवृक्षों के उपवन के मध्य चिन्तामणि मणियों से निर्मित घर में त्रिकोणाकृति वाले मञ्च पर परमशिव के पर्यङ्क पर विराजमान चिदानन्दलहरी है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।[1]

यह वही शक्ति है, जिसके दोनों चरण किसी भौतिक पादपीठ पर नहीं; प्रत्युत जिसके चरणयुगल पृथ्वी के 56, जल के 52, अग्नि के 62, वायु के 54, आकाश के 72 एवं मन के 64 रश्मियों पर विराजमान हैं।[2] ये रश्मियाँ पञ्चतत्त्व, वर्णमाला एवं उनकी अधिष्ठात्री का स्वरूप हैं; अतः भगवती के चरणकमल तत्त्वों, तत्त्वों की रश्मियों, वर्णों एवं वर्णाधिष्ठात्री शक्तियों पर स्थित हैं। उसी शक्ति के नामाक्षरों के अंग के रूप में शिव, शक्ति, काम, क्षिति, रवि, चन्द्र, काम, हंस, चक्र, पराशक्ति, मार (काम) एवं हरि तथा तीन हृल्लेखायें स्थित हैं।[3]

बिन्दु, बीज एवं नाद में बिन्दु तो शिव है; किन्तु बीज शक्ति है और नाद (शिव-शक्ति-सम्बन्धस्वरूप नाद) भी शक्ति ही है—

---

1. सौन्दर्यलहरी
2. सौन्दर्यलहरी (13)
3. सौन्दर्यलहरी (32)

बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः।।

शक्ति शिव का शरीर है—'शरीरं त्वं शम्भोः।' एवं सूर्य और चन्द्रमा ही उसके स्तन हैं; क्योंकि शक्ति सर्वरूप, सर्वात्मक, सर्वातीत, ज्ञात-अज्ञात, विश्वमय एवं विश्वातीत, सर्वमय एवं सर्वोपरि तथा अवाङ्मनसगोचर परात्पर परतत्त्व है; अतः उसे किसी सीमा, आख्या, नाम-रूप आदि एवं किसी निश्चित आकार या परिभाषा के चौखट में नहीं रक्खा जा सकता। न तो उसे कोई नाम-रूप दिया जा सकता है और न ही किसी सुनिश्चित शब्द या अर्थ से पारिभाषित किया जा सकता है। इसीलिये उपनिषदकारों ने कहा था—

अविज्ञातं केन विजानीयात्।

दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो सारे स्वरूप उसी के हैं। सारे नाम-रूप उसी के हैं। सारे गुण एवं सारी विशेषतायें उसी की हैं। सारी सत्तायें उसी की हैं; अतः वह सर्वरूप है। किन्तु वह उतना भर ही नहीं है, उससे भी ऊपर है; अतः सर्वातीत भी है।

उस परात्पर तत्त्व को जिसने जिस रूप में देखा, उसे वह उसी रूप में एवं तन्मय दिखाई पड़ा—

येन येन स्वरूपेण भाव्यते तस्य तन्मयी।

माहेश्वरों को वही शक्ति के रूप में, सांख्यानुयायियों को प्रकृति के रूप में, सौरों को महाराज्ञी के रूप में, सुगतों को तारा के रूप में, पाशुपतों को शान्ता के रूप में, अर्हतों को श्री के रूप में, हैरण्यगर्भों को श्रद्धा के रूप में, वेदवादियों को गायत्री के रूप में और अज्ञान से अन्धे लोगों को वही मोहिनी के रूप में दिखाई पड़ती है—

माहेश्वराणां शक्तिः सा साङ्ख्यानां प्रकृतिः परा।
महाराज्ञी च सौराणां तारा सुगतवन्दिनाम्।।

लोकायतिकमुख्यानां तदात्वा सा प्रकीर्तिता।
शान्ता पाशुपतादीनामर्हतां श्रीश्च तद्विदाम्।।

श्रद्धा हैरण्यगर्भाणां गायत्री वेदवादिनाम्।
अज्ञानतिमिरान्धानां सर्वेषां मोहनी स्मृता। (महार्थमञ्जरी)

शक्ति वह तत्त्व है, जिसके विना (पञ्चकृत्यकारी एवं विश्व के सर्वोच्च कर्त्ता) शिव हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।

शक्ति विमर्श है। विमर्श क्या है? 'विमर्षो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन, विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्।'

अर्थात् विश्वाकार होने, विश्व को व्यक्त करने एवं विश्व का संहार करने वाला जो आदिकारणरूप अकृत्रिम अहंभाव है, उसके स्फुरण को ही विमर्श कहते हैं। इस अहं की स्फुरणा में अपने से अतिरिक्त किसी अन्य का (इदम् का) बोध नहीं होता। मैं और यह (अहं और इदम्) दोनों भाव युगपत ही उदित और अस्त होते हैं—दोनों का जोड़ा है। अहं और इदम् में यह 'इदम्' ही शक्ति है।

'ह्रीं' में हकार आकाश है, रकार अग्नि (या सृष्टि का आद्य स्पन्द) है और ईकार शक्ति है। अनुस्वार ब्रह्मतेज है।

उसी शक्ति के प्रकाश से सभी कुछ प्रकाशित होता है—

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

शक्ति स्वाहा, स्वधा, वषट्, स्वर, अकार, ईकार, उकार एवं मकार और अक्षरों में अमृत और अर्धमात्रा सभी कुछ शक्ति ही तो है—

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार: स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत:।।

स्पन्द ही शक्ति है। स्पन्द ही सृष्टि का बीज है। स्पन्दात्मिका शक्ति ही नि:स्पन्द शिव को कर्त्ता बनाती है। शक्ति के विना शिव सृष्टि कर ही नहीं सकते। शंकराचार्य शारीरक भाष्य (ब्रह्मसूत्र-1.43) में कहते हैं—'न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति।'

शक्ति शक्तिमान के सामर्थ की अभिव्यक्ति है। शिव अहंभाव है तो शक्ति इदंभाव है। अहंभाव अपरिणामी है और इदंभाव परिणामी है। शक्ति का परिणाम ही जगत् है।

शक्ति के विविध स्वरूप

शक्ति विश्वमयी एवं विश्वातीता दोनों है। शक्ति विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा उसी प्रकार है, जिस प्रकार वेदान्तियों का ब्रह्म 'सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्' भी है और 'अपाणिऽपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु: स श्रृणोत्यकर्ण:' भी है अर्थात् वह साकार और सर्वाकार भी है एवं निर्गुण और निराकार भी है। किन्तु ये तो शक्ति के तटस्थ लक्षण हैं और ये ही तटस्थ लक्षण श्रुतियों में भी हैं—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञास्व तद् ब्रह्मेति। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

उपर्यूक्त श्रुति-वचन के अनुसार वह परात्पर सत्ता स्रष्टा, पालक एवं संहारक (विश्रान्तिदायक) तीनों है। किन्तु यह सृष्टि-पालन-संहार जगत् के व्यावहारिक अर्थ में नहीं है; क्योंकि यहाँ जगत् भी शक्ति है, जगत् की सृष्टि भी शक्ति है, जगत् का

पालन भी शक्ति है और जगत् का संहार भी शक्ति है। कारण सुस्पष्ट है—

स एव देव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति स्वान्त:स्थितं प्रपञ्चं बहुस्याम प्रजायेयेति। तदात्मानं स्वयमकुरुत।

जगत् उस एकोऽहं की ब्राह्मी स्फुरणा का बहुस्याम रूप वाला संकल्प है अर्थात् जगत् एकोऽहं की ज्ञानशक्ति का बहुस्यामरूप क्रियाशक्ति में अभिव्यक्त्यात्मक रूपायन है। भट्टवामदेव ने ठीक ही कहा है कि—

एकस्यैव आदिदेवस्य स्वातन्त्र्यमहिम्ना संसारे संसरत: परिमितप्रमातृताम् अवलम्ब-मानस्य तत्त्वप्रसर:। उक्तं च—

भूतानि तन्मात्रगणेन्द्रियाणि मूलं पुमान् कञ्चुकयुक्सुशुद्धम्।
विद्यादिशक्त्यन्तमियान् स्वसंवित् सिन्धोस्तरङ्गप्रसरप्रपञ्च:।।

शक्ति का तात्त्विक स्वरूप दूसरा है।

विमर्श शक्ति—आखिर शक्ति है क्या उसे शिव की पत्नी कहना या सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी आदि कहना तो उसका तटस्थ लक्षण है। उसका स्वरूप-लक्षण क्या है?

शक्ति सच्चिदानन्द है। वह ब्रह्माण्ड की समस्त व्यष्टि-समष्टि शक्तियों की केन्द्र-बिन्दु है और जगत् की आत्मा है।

शक्ति 'विमर्श' है। विमर्श क्या है? जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-लय के कारणभूत अकृत्रिम अहंभाव का परामर्श ही विमर्श है—जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताहंकृत्रिमाहंभाव-परामर्शो विमर्श:।[1]

नागानन्द विमर्श की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा, विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहम-मिति स्फुरणम्।

अर्थात् वह अकृत्रिम पूर्ण अहमाकार स्फुरण जो विश्वाकार, विश्वप्रकाशन एवं विश्वोपसंहार से सामरस्यापन्न होकर, एकीभूत होकर या एकाकार होकर उदित होता है, वही सहजसम्भूत एवं विश्वाहन्तात्मक स्फुरण शिव की 'विमर्श' नाम्नी शक्ति है। यह शक्ति विश्व के सृजन, विश्व के अस्तित्व एवं विश्व के लय (प्रलय-काल में विश्व को अन्तर्निलीन करने की संहारात्मक क्रिया) तीनों को अपने अहं का अंग मानती है। ठीक भी है क्योंकि वह—

(क) स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।[2]

(ख) स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि।

(ग) यथोर्णनाभि: सृजते गृह्यते च।

---

1. चिद्वल्ली—नटनानन्दनाथ। 2. शक्तिसूत्र।

(घ) चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।[1]

आचार्य उत्पलदेव की दृष्टि—शक्ति के तात्त्विक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए त्रिक दर्शन के महान् दार्शनिक आचार्य उत्पलदेव ने कहा है कि शक्ति चैतन्य है। वह प्रत्यवमर्श है, आत्मा है, स्वरसोदिता परा वाक् है, स्वातन्त्र्य है, परमात्मा का मुख्य ऐश्वर्य है, स्फुरत्ता है, देशकालाविशेषिणी महासत्ता है, सार है, परमेष्ठी परमशिव का स्वात्मप्रतिष्ठास्वरूप हृदय है—

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।।

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।[2]

विमर्श और प्रत्यवमर्श को शक्ति का स्वरूप बताया गया है; किन्तु ये हैं क्या? प्रकाश (परमशिव) की मुख्य आत्मा ही प्रत्यवमर्श है और यही विमर्श भी है—

(क) प्रकाशस्य मुख्य आत्मा प्रत्यवमर्शः।
(ख) स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।।[3]

यदि मात्र प्रकाश ही रहे और विमर्श न हो तो स्वच्छता (निर्मलता) का अस्तित्व तो रहेगा, किन्तु विमर्श के विना प्राणियों में जो चेतना है (अजाड्य है), उसका अभाव हो जायगा। इसी दृष्टि से शक्ति को शक्तिमान शिव का हृदय, आत्मा, सार या मुख्य ऐश्वर्य कहा गया है।

शक्ति विमर्श है। विमर्श का अर्थ क्या है? 'विमृश्यते परामृश्यते इदमिति विमर्शः प्रपञ्चः। इदमित्येव हि परमात्मना सृष्टस्य जगतः प्रसिद्धपरामर्शः।'[4]

शक्ति विमर्श तो है, किन्तु किस प्रकार का विमर्श है? इस विमर्श का स्वरूप क्या है? यह शिव का विमर्श है, किन्तु इसमें शिव कौन-सा विमर्शन करते हैं?

आचार्य नटनानन्दनाथ कहते हैं कि जिस विमर्शन-व्यापार में परमेश्वर 'इदम्' के रूप में (जगत् के रूप में) चिन्तन करते हैं, वह इदमाकार चिन्तन ही विमर्श है—

(क) विमृश्यते परामृश्यते इदमिति विमर्शः प्रपञ्चः।
(ख) इदमित्येव हि परमात्मना सृष्टस्य जगतः प्रसिद्धपरामर्शः।
(ग) इयं शिरः, अयं दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा

---

1. चिद्वल्ली में उद्धृत।
2. उत्पलदेव—प्रत्यभिज्ञाकारिका। (1.44-45)
3. प्रत्यभिज्ञाकारिका/प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति। (उत्पल)
4. चिद्वल्ली। (नटनानन्दनाथ)

इत्यादि वाक्येन इदमिदमित्येव (यह ऐसा ही है) प्रपञ्चपरामर्शो दृश्यते। एवम्भूतो विमर्श: प्रपञ्च:।

(घ) जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयहेतुभूताकृत्रिमाहं भावपरामर्शो विमर्श:।

(ङ) विमर्श: पूर्णाहम्भावना।

(च) विश्वस्य स्वरूपमहमित्येवमाकारं तस्य विमर्श:।

(छ) विमर्शो रक्तबिन्दुरूपम्। तत: सा विमर्शशक्तिरपि स्वान्तर्गतप्रकाशमयबिन्दुमनुप्रविशति। ततश्च बिन्दुरुच्छूनो भवति। विमर्शो रक्तबिन्दुरूपम्।

(ज) अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्ति:।

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि विमर्श शक्ति ही चिद्रूप परमात्मा का स्वभाव है—

स परमात्मा चिद्रूपो विमर्शाख्येनैव मुख्यस्वभावेनाव्यभिचारिणा महेश्वरश्चित्तत्त्वस्य विश्वात्मन: शिवसंज्ञस्याहंविमर्शनमेव।[1]

शक्ति का तात्त्विक स्वरूप—शक्ति सामान्यत: तो स्त्री-तत्त्व को संसूचित करती है, किन्तु वह सारे लिंगों, जातियों, अवस्थाओं से परे है। इसीलिये कहा गया है कि—

न बाला न च त्वं वयस्या न वृद्धा न च स्त्री न षण्ढ: पुमान्नैव च त्वम्।
सुरो नासुरो नो नरो वा न नारी त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।।

वही सृष्टिरूपा भी है और स्थितिरूपा भी। वही इन दोनों के विपरीत संहतिरूपा भी है और जगत् भी है—

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।।

क्योंकि— त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि! त्वमस्यन्ते च सर्वदा।।

शक्ति ही मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि और समस्त विश्व भी है अर्थात् शक्ति सब कुछ है। आचार्य शंकर कहते हैं—

मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृषे।।

शक्ति अचिन्त्य होकर भी साकार मूर्त्ति है, समस्त प्राणियों के हृदय में सतोगुण के रूप में विद्यमान होकर भी गुणातीत है—यद्यपि तुम गुणातीत और बोधैकगम्या मात्र हो, फिर भी यदि तुम्हें शब्दों की सीमा में व्यक्त करना हो तो तुम परब्रह्म हो—

---

1. उत्पलदेव। (प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति-1.88)

अचिन्त्यापि साकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वैकमूर्त्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।।[1]

देवीभागवतकार की दृष्टि—सम्पूर्ण प्राणियों में शक्ति ही सर्व रूप से स्थित है। शक्तिहीन प्राणी तो शववत् हो जाता है—

वर्त्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप।
शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा।।

शक्ति ही परमाराध्या है। उससे परे परतर कोई सत्ता है ही नहीं। शुकदेव कहते हैं—

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः।
नातः परतरं किञ्चिदधिकं भुवनत्रये।।

शक्ति मूलतः तो एक है, किन्तु व्यवहार जगत् में अनेक सुनाई पड़ती है, जो सत्य नहीं है; क्योंकि वह एक एवं अद्वैत है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।[2]

पुरुष-बोधक कृष्ण एवं नारी-बोधिका दुर्गा—दोनों एक ही हैं; अतः परात्पर सत्ता लिंगातीत है—

यः कृष्णः सैव दुर्गास्या या दुर्गा कृष्ण एव सः।

एक ही सत्ता कान्त (कृष्ण) भी है, शक्ति भी है और महाविष्णु भी—

जानात्येका परा कान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका।
या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी।।[3]

नामों के वैविध्य से तत्त्वभेद नहीं हो जाता। तत्त्व तो एक ही रहा करता है, चाहे उसे किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाय—'मृतिकेव सत्यं'। इसी प्रकार दुर्गा, भद्र-काली, विजया, वैष्णवी आदि नामवैविध्य रहने पर भी मूल सत्ता (शक्ति) अद्वैत एवं एक ही है—

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि न नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च।।

(श्रीमद्भागवत पुराण-10.2.10-11)

समस्त विद्यायें एवं स्त्रियाँ सभी उस शक्ति के ही रूप हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

शक्ति तत्त्वतः सर्वगत ब्रह्म है—

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।

---

1. महाकालसंहिता—महाकाली की स्तुति।
2. श्वेताश्वतरोपनिषद् (6.8)।
3. नारदपाञ्चरात्र।

यही शक्ति ही इच्छा रूप में व्यक्त होकर विश्वबीज बनी और इसी से चराचर जगत आविर्भूत हुआ—

इच्छा सैव स्वच्छा सन्ततसमवायिनी सती शक्तिः।
स चराचरस्य जगतो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य।।[1]

शक्ति—सर्वोच्च एवं निरपेक्ष सृष्टि-विधायिनी (सृष्टिकर्त्री) महाशक्ति—शक्ति वह सर्वोपरि परात्पर महासत्ता है, जो अशेष ब्रह्माण्डों, प्रकृत्यण्डों, मायाण्डों आदि की सृष्टि (विना किसी अन्य की सहायता के) करती है।

शाक्तमतावलम्बियों ने तो यहाँ तक कहा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रुद्र, गणेश, सदाशिव, शिव, शिवा, महाकाली, काली, महासरस्वती, सरस्वती एवं लक्ष्मी आदि सभी को जन्म देने वाली ब्रह्मसत्ता केवल शक्ति ही है। शाक्तों के मत में शक्ति ही परात्पर ब्रह्म है। वही निष्कल ब्रह्म भी है और कलासंयुक्त सकल ब्रह्म भी। वही सृष्टि भी है और वही सृष्टि के मूल उपादान छत्तीस तत्त्व भी। वही सृष्टि का (व्यष्टिरूप) कण-कण भी है और वही (समष्टिरूप) मायाण्ड और शाक्ताण्ड भी। वही चैतन्य का समुद्र भी है और जड़ता का पर्वत भी। वही योगनिद्रा, महामाया, कालरात्रि और अविद्या भी है और वही विद्या, सद्विद्या एवं पराविद्या भी है।

वैष्णव दर्शन के अनुयायी सृष्टि का विधाता ब्रह्मा को मानते हैं; किन्तु शैवों एवं शाक्तों को सृष्टि-विधान के लिए ब्रह्मा की अपेक्षा भी स्वीकार नहीं है। शैव और शाक्त शक्ति सिसृक्षा (सृष्टि करने की इच्छा) को ही सृष्टि का मूल मानते हैं। शैव मानते हैं कि परमशिव की 'सोऽकामयत, एकोऽहं बहुस्याम' में निहित इच्छा एवं संकल्प ही सृष्टि का मूल है; किन्तु यह इच्छा एवं संकल्प है क्या? शिव की सिसृक्षा (Desire to create) एवं संकल्प (Resolve to create the world) ही शक्ति है। इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति, जिसका आश्रय लेकर शिव सृष्टि आदि व्यापार निष्पन्न करते हैं, शक्ति ही तो है। अर्थात् इच्छा, ज्ञान और क्रिया परात्पर महाशक्तिरूप हैं और उनके विना शिव सृष्टि करने की तो बात ही छोड़िये' हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

जहाँ तक शाक्तों की बात है वे तो कहते हैं कि शक्ति शिवाश्रित भी नहीं है, प्रत्युत इसके विपरीत शिव शक्त्याश्रित हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश (शिव) शक्ति के पुत्र हैं। शक्ति शिव के वक्षःस्थल पर स्थित हैं। शक्ति ही विश्वमूल, विश्वाश्रय विश्वोत्पादिका, विश्वमय और विश्वरूप है। उसे विश्व के सृजन हेतु किसी पराये बीज (पाँच महाभूत या 36 तत्त्वों) की भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उसी के रूपान्तर ही तो हैं—पञ्चतन्मात्रायें, पञ्चभूत, प्रकृति, माया एवं 36 तत्त्व। उसे सृष्टि के लिए

1. तत्त्वसन्दोह।

किसी भी अन्य सहकारी, निमित्त एवं उपादान कारण की आवश्यकता या अपेक्षा नहीं है। वह इस अनन्तात्मक विश्व की सृष्टि एवं सृष्ट्यभिनय को निरपेक्ष रूप में, स्वेच्छया अपनी आत्मभित्ति पर उन्मीलित करती है। शक्तिसूत्रकार कहते भी हैं—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।'[1]

आचार्य क्षेमराज ने इसी बात की अपने शब्दों में इस प्रकार पुष्टि की है—'स्वेच्छया न तु ब्रह्मादिवदन्येच्छया तयैव च न तु उपादानाद्युपेक्षया—एवं हि प्रागुक्तस्वातन्त्र्यहान्या चित्तमेव न घटेत—स्वभित्तौ न तु अन्यत्र क्वापि, प्राक् निर्णीतं विश्वं दर्पणे नगरवत् अभिन्नमपि भिन्नमिव उन्मीलयति उन्मीलनं च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्। इत्यनेन जगत: प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम् उक्तम्।[2]

तात्पर्य यह है कि शाक्तों की दृष्टि में शक्ति के द्वारा जो सृष्टि की जाती है, उसकी विशेषतायें निम्नांकित हैं—

1. सृष्टि के लिए ब्रह्मादिक की अपेक्षा नहीं होती।
2. सृष्टि के लिए उपादानान्तर की अपेक्षा नहीं होती।
3. सृष्टि के लिए किसी बाह्य देश की अपेक्षा नहीं होती।
4. सृष्टि उत्पादन नहीं, उन्मीलन है।
5. सृष्टि का स्वरूप शक्ति के साथ दर्पणनगरवत् भिन्न-भिन्न है।

शिवसूत्रकार की दृष्टि यह है कि शक्तितत्त्व सदाशिव से लेकर भूमिपर्यन्त समस्त जगत् को जन्म देने का मूल कारण है—'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:।'[3] आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि सदाशिव से भूमिपर्यन्त समस्त प्रस्तार या प्रपञ्च ही विश्व है। सदाशिव से लेकर भूमिपर्यन्त इस विश्व की सिद्धि (निष्पत्ति), स्थिति एवं परप्रमाता (परमशिव) में विश्रान्ति (संहार) स्वरूप लय के लिए स्वतन्त्र अनुत्तरविमर्शमयी शिव-भट्टारक से अभिन्न, परा शक्ति भगवती चिति ही मूल कारण है—

विश्वस्य सदाशिवादे: भूम्यन्तस्य सिद्धौ निष्पत्तौ प्रकाशने स्थित्यात्मनि परप्रमातृ-विश्रान्त्यात्मनि च संहारे, पराशक्तिरूपा चिति: एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारकाभिन्ना हेतु: कारणम्।[4]

परमशिव को छोड़कर सभी प्रमाता शक्ति के पुत्र हैं, जो निम्नांकित हैं। उनमें सर्वोच्च प्रमाता परप्रमाता शिव हैं।

1. सदाशिव प्रमाता 'मन्त्रमहेश्वर' हैं।
2. ईश्वरतत्त्वास्थित प्रमाता 'मन्त्रेश्वर' हैं।

---

1. शक्तिसूत्र या प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
2. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (क्षेमराज)।
3. शक्तिसूत्र(1)।
4. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

3. शुद्धविद्यातत्त्वावस्थित प्रमाता 'मन्त्र' है।
4. शुद्धविद्या से नीचे किन्तु माया से ऊपर अवस्थित प्रमाता 'विज्ञानाकल' है।
5. मायातत्त्वावस्थित प्रमाता 'प्रलयाकल, प्रलयकेवली' है।
6. मायाप्रमाता, परिमित प्रमाता, सङ्कुचित प्रमाता 'सकल प्रमाता जीवात्मा' है।

शक्ति अनुत्तर, अनाख्य परमशिवरूप अकार से 'ह' तक के समस्त वाचक वर्णों का विमर्शन करती है। शक्ति वाच्य-वाचकात्मक इस निःशेष जगत् की उद्भाविका, जन्मदात्री एवं जननी है—'शक्तिस्त्रिजननी'[1]

शक्ति के विषय में विभिन्न दृष्टियाँ

महर्षि अगस्त्य की दृष्टि—ऋषि अगस्त्य कहते हैं कि शक्ति समस्त विश्व की कर्त्री है—यत्कर्त्री (1) सूत्र—वह अजा है—'यदजा च' (सूत्र—2)। वह मनोयोनि है—'मनोयोनित्वात्' (4)। वह ऊर्णनाभि (अपने भीतर से पदार्थान्तर के विना विश्व को जन्म देने वाली) मकड़ी की भाँति है। वह सर्वव्यापार-निष्पादन में निरपेक्ष होने के कारण परम स्वतन्त्र है—'अतोस्याः स्वातन्त्र्यम्' (70)। वह निर्विकार है—'निर्विकारे क्रियाभावात्' (71)। वह बन्ध-मोक्ष व्यापार की निष्पादिका है—'बन्धमोक्षयोश्च' (72)। उसके साथ योग ही योग (मोक्ष) है—'तद्योगात्तद्योगः' (76)। यह योग सायुज्य मुक्ति है।

भास्करराय ने सुभगोदय में ठीक ही कहा है—

यस्तु नामसहस्रेण शुक्लवारे समर्चयेत्।
चक्रराजे महादेवी तस्य पुण्यफलं शृणु।।
सर्वान् कामानवाप्येह सर्वसौभाग्यसंयुतः।
पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
अन्ते श्रीललितादेव्याः सायुज्यमतिदुर्लभम्।।

उस भगवती के जप, उपासना आदि के द्वारा भी भगवती के साथ सायुज्यात्मक मोक्ष (योग) प्राप्त होता है—'तद्योगात्तद्योगः' निर्गुणस्वरूपा शक्ति की आनन्दानुगता समाधिस्वरूप भोग से भी भगवती के साथ सायुज्य (मोक्ष का एक विशिष्ट प्रकार) प्राप्त होता है—'तद्भोगात्तद्भोगोऽपि' (79)। देवी भोग (समाधिजन्य आनन्द) से भोग (भगवती में सायुज्य होने से आनन्दातिरेकरूप) प्राप्त कराने का भी साधन है। महर्षि नारद उस शक्ति को माता मानते हैं—'मातरं नारदः' (103) और व्यास शक्ति के कामित्व पक्ष का प्रतिपादन करते हैं—'तत्कामित्वात् व्यासः (93)। जैमिनि ने तन्निष्ठ होकर उन्हें परात्पर सत्ता माना है (94) और हयानन (हयग्रीवाचार्य) उन्हें स्वाभिन्न आत्मशक्ति मानते हैं—'तत्स्वाभिन्नो हयाननश्च' (95) आचार्य कठ उन्हें मुख्यतः विश्वकर्त्री के रूप में स्वीकार करते हैं—'कठः कर्तृत्वम्' (शक्तिसूत्र-98)

1. शाक्तदर्शनम् (1.3.1)।

तो आचार्य पराशर उन्हें मुख्यत: परम सामर्थ्यवान के रूप में देखते हैं—'पराशर: प्राबल्यम्' (श. सूत्र-99) और आचार्य वसिष्ठ उन्हें परममोहिनी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं—'वसिष्ठो मोहम्' (100)।

शक्ति निर्गुण है—'निर्गुणत्वात्' (शक्तिसूत्र-92)। शक्ति माता-पिता है—'यन्मातापितरौ' (शक्तिसूत्र-99)। शक्ति ऐन्द्रजालिक है—'बीजोत्पत्तेरैन्द्रजालिकवत्' (श. सूत्र)।

परमेष्ठी भी शक्ति को मोहात्मिका शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं—'परमेष्ठ्यपि मोहम्' (101)। शुकमुनि उन्हें अपनी आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं—'शुक: स्वात्मानम्' (102) तो नारद मुनि उन्हें अपनी माता के रूप में स्वीकार करते हैं—'मातरं नारद:' (103)।

पराशक्ति—यह विश्वाश्रया, भूताश्रया, सर्वप्रोता, सर्वव्यापिका, सर्वमूला एवं सर्वपरिणामाश्रया है—1. यामेव भूतानि विशन्ति(1.16), 2. यदोतम्(1.17), 3. यत्प्रोतम्-(1.18) 4. तद्विष्णुत्वात्(19) 5. ततो जगन्ति कियन्ति(1.20) 6. तन्मूलत्वात्-(1.21) 7. परिणामो लब्धे:(1.22)।

शक्ति अतथा विद्या है—अतथाविद्या (श. सूत्र-1.31)। वह ऊर्णनाभि है—'ऊर्णनाभि: इव' (1.44) यथोर्णनाभिस्त्र:.................. विश्वम्। वह इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूपा है—'यत्कृति:' (1.32) 'इच्छाज्ञानक्रियास्वरूपत्वात्' (1.33)।

शांकर वेदान्त में अनिर्वचनीया मायाशक्ति जगत् का उपादान कारण है, किन्तु शाक्तदर्शन में सत्स्फुरणरूपा भुवनसुन्दरी चिच्छक्ति ही उपादान कारण है। शक्तिसूत्रकार कहते हैं—1. यत् सत् (1.37) 2. न सन्नासत् (1.34) 3. सदसत्त्वात् (1.35)।

शिवसूत्रकार उस शक्ति को सृष्टि, स्थिति, लय (संहार), भोग, मोक्ष—सभी सिद्धियों का मूल स्रोत स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि यह पराशक्तिरूपा चिति ही भगवती स्वातन्त्र्य शक्ति है, जो कि अनुत्तर विमर्शमयी एवं शिवभट्टारक से अभिन्न एवं समस्त कारणों का परम कारण है—'पराशक्तिरूपा चिति: एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारकाभिन्ना हेतु: कारणम्।'[1]

चिति के चेष्टा करने पर जगत् का उद्भव एवं स्थापन होता है तथा प्रसार के निवृत्त होने पर जगत् का लय होता है। चित्प्रकाश से भिन्न अप्रकाशमान; अत: असत् होने से अन्य माया, प्रकृति आदि कहीं भी कारणरूप नहीं है। यदि उन्हें प्रकाशमान माना जाय तो प्रकाश के साथ ऐक्य होने के कारण प्रकाशरूप चिति ही सृष्टि का कारण है, माया आदि नहीं। अतएव देश, काल एवं आकार इसके द्वारा रचित तथा अनुप्राणित होने के कारण इसके स्वरूप को खण्डित नहीं कर सकते। अत: चिति शक्ति व्यापक, नित्य, उदित एवं परिपूर्ण है।

---

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (आचार्य क्षेमराज)।

जगत् क्या है? चिति ही जगत् है; क्योंकि 'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति' (आचार्य क्षेमराज)। यहाँ यही पारमार्थिक कार्य-कारणभाव है—'परमार्थोऽयं कार्य-कारणभावः।' यह कार्य-कारणभाव न्याय, वैशेषिक या वेदान्त का कार्य-कारणभाव नहीं है; क्योंकि यहाँ कार्य-कारणभाव का स्वरूप ऊर्णनाभि है।

(क) यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च .... तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।[1]

(ख) स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति एवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणा व्युच्चरन्ति।[2]

(ग) ऊर्णनाभिर्यथा तन्तून् सृजते संहरत्यपि।
जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः।।

शंका—यदि जगत् चित् शक्ति से एकाकार एवं अभिन्न है तो इस अभेदावस्था को मानने पर तो कार्य-कारणभाव सम्भव ही नहीं होगा।

उत्तर—यहाँ पारमार्थिक कार्य-कारणभाव है। यथा मकड़ी अपने अन्दर से ही जाला निकालती है और अपने अन्दर ही निगल लेती है। जाला कार्य है, किन्तु मकड़ी से अभिन्न भी है; क्योंकि उसका जन्म अन्य पदार्थ से हुआ ही नहीं है।

चिति ही प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय (विश्व) के प्रकाशन का कारण है—'इयमेव प्रमातृ-प्रमाणप्रमेयस्य विश्वस्य सिद्धौ प्रकाशने हेतुः।'[3]

स्वात्मदेवता ही जगत् की प्रत्येक भावाभाव सत्ता का मूल कारण है—स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वम्।[4]

यह शक्ति ही अद्वय परतत्त्व परमशिव के साथ सामरस्यरूप विश्वसंहार की भी निष्पादिका है—'इयं विश्वस्य सिद्धौ पराद्वयसामरस्यापादनात्मनि च संहारे हेतुः अतएव स्वतन्त्रा'[5]। यह परिज्ञात होने पर सुखोपाय (भोग-मोक्षात्मक सिद्धि का साधन) भी है।[6]

चिति शक्ति महेश्वरता का सार है और यह ब्रह्मवादियों की माया शक्ति नहीं है। यह चिति शक्ति ब्रह्मवादियों की माया शक्ति से विलक्षण है—'स्वतन्त्रशब्दो ब्रह्मवादवैलक्षण्यम् आचक्षाणः चितो माहेश्वर्यसारतां ब्रूते।'[7]

शक्ति अशेषशक्तित्व, सर्वकारणत्व, सुखोपायत्वरूप महाफल का प्रतीक है—'अशेषशक्तित्वं, सर्वकारणत्वं सुखोपायत्वं महाफलं च आह'[8]।

शक्ति मूलतः तो एक है, किन्तु अनेकरूपात्मक, सर्वात्मक एवं सर्वरूप होने

---

1. मुण्डकोपनिषद् (1.7)।
2. बृहदारण्यकोपनिषद् (2.1.20)।
3. आचार्य क्षेमराज—प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
4. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
5. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।
6. तत्रैव।
7. तत्रैव।
8. तत्रैव।

के कारण (एक होकर भी) अनेक प्रकार की सुनाई पड़ती है—'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (उपनिषद्)।

शक्ति तत्त्व की अनेकरूपता

शक्ति : शिव का दर्पण—सर्वातीत, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-हीन, निराकार, निरीह, निराकांक्ष परमशिव शिव शक्ति का आश्रय लिए विना आत्मज्ञान (अपना परिचय, अपने अहं की अनुभूति, आत्म-अभिज्ञा, अपनी पहचान, अपने स्वरूप की पहचान, 'मैं कौन हूँ?' का ज्ञान) नहीं प्राप्त कर पाते। शक्ति ही शिव का परिचय है—उनके अहंबोध का माध्यम या साधन है—उनकी अस्मिता का परिचय-केन्द्र है।

जैसे कोई व्यक्ति अपने सामने स्थित दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर अपने को पहचान लेता हैं कि मैं कौन हूँ? ठीक उसी प्रकार परमशिव अपनी शक्ति को देखकर अपने स्वरूप को पहचान लेते हैं कि मैं कौन हूँ या मेरा स्वरूप क्या है?

शक्ति शिव के आत्मदर्शन का आइना है। शिव का अपने अहं का साक्षात्कार, अपने स्वरूप का ज्ञान, आत्मज्ञान, अपने अहं की प्रतीति शक्ति है।

संसार के प्रत्येक प्राणी को यह ज्ञान है कि 'मैं कौन हूँ', किन्तु शिव को इसका ज्ञान नहीं रहता। हनुमान को भी अपनी विराट शक्ति का बोध नहीं था। लोगों को अपने को जानने के लिए दूसरों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती; किन्तु शिव को आवश्यकता पड़ती है। वे अपनी शक्ति में ही अपने को पहचान पाते हैं। जैसे प्रत्येक प्राणी बुद्धि के दर्पण में ही अपने को पहचान पाता है कि मैं कौन हूँ? उसी प्रकार परमशिव अपनी विमर्श शक्ति के दर्पण में ही (अपनी शक्ति के अपने सामने स्थित होने पर ही) अपने स्वरूप को पहचान पाते हैं।

'पूर्णाहन्ता चमत्कार' के नाम से प्रसिद्ध आत्मज्ञान (अपनी पूर्णता का ज्ञान, अपने परिपूर्ण अहं का बोध, अहमस्मि-अहमिदम्-इदमहम् का ज्ञान) ही पूर्णाहन्ता है।

पूर्णाहन्ता और शक्ति—शक्ति शिव को पूर्णाहन्ता का बोध कराने वाली उनकी अपनी स्वातन्त्र्यात्मक निजा शक्ति है। शिव अपने पूर्ण अहं (अपने विश्वमय विराट स्वरूप) का साक्षात्कार केवल शक्ति में प्रतिबिम्बित होकर ही कर पाते है। पूर्णाहन्ता चमत्कार (सच्चिदानन्द की घनीभूत अभिव्यक्ति)—मैं पूर्ण हूँ का बोध—ही नित्य सिद्ध आत्मज्ञान है। विशुद्ध आत्मज्ञान का स्वरूप यही है कि मैं विश्व हूँ, मैं विश्वातीत हूँ। अहमिदं और इदमहम् दोनों पूर्णाहन्ता चमत्कार की अनुभूतियाँ हैं।

जिस प्रकार प्रकाश के विना दर्पण किसी भी आकार को ग्रहण नहीं कर पाता—उसे प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रकाश के न रहने पर विमर्श के दर्पण में भी कुछ प्रतिम्बित नहीं हो पाता अर्थात् परा शक्ति भी प्रकाश (परमशिव) के

सान्निध्य के विना अन्तःस्थित विश्वप्रपञ्च को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हो पाती। इसी कारण शुद्ध शिव एवं शुद्ध शक्ति परस्पर सम्बन्धरहित रहकर जगन्निर्माण नहीं कर सकते। तथापि ये दोनों पृथक्-पृथक् नहीं हैं—

शिव-शक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।

इतना होने पर भी शक्ति सृष्टि-व्यापार में प्राधान्य रखती है एवं शिव संहार-व्यापार में प्राधान्य रखते हैं।

परा शक्ति सृष्टि को क्रमिक सोपानों पर अभिव्यक्त करने हेतु परा वाक् आदि के रूप में परिणत होकर (उनका अवलम्बन लेकर) सृष्टि के (विश्वप्रपञ्च के) केन्द्र में अवस्थित होती है। शक्ति (स्वातन्त्र्य शक्ति) इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति का आकार ग्रहण करके बैचित्र्य (वैभिन्न्य) पूर्ण विश्व का आविर्भाव करती है और विश्वरूप धारण करती है। शक्ति ही विश्व है—शक्ति की अभिव्यक्ति ही विश्व है।

शिव क्या करते हैं? शिव तो तटस्थ उदासीन एवं साक्षी हैं। वे साक्षी बनकर आत्मशक्ति की लीला का दर्शन करते हैं। विश्व ही परा शक्ति का स्फुरण है। शक्ति स्पन्दरूपा है।

शक्ति की एक अनिर्वाच्या अवस्था है—एकाकार होकर शिवरूप में अवस्थित अव्यक्तावस्था। परा शक्ति के द्वारा अपने स्फुरण का साक्षात्कार और विश्व का आविर्भाव—दोनों अभिन्न हैं। चक्र का सम्भव और जगत् का सम्भव भी एक ही है। चक्र का सम्भव देखिए—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।[1]

परा शक्ति ही वेद भी है—

ममैवाज्ञा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते।।

शक्तिपञ्चक और सृजन-व्यापार—विना शक्तिपञ्चक के सृष्टि सम्भव ही नहीं है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाचक्रसम्भवः ।।[2]

अव्यक्त एवं निराकार परा सत्ता ही महाशक्ति—सृष्टिप्राक् अवस्था एवं सृष्टि के आदि काल में जो तत्त्वातीत सत्ता विद्यमान है, वही शाक्तों की महाशक्ति एवं शैवों का परमशिव है। यही अनुत्तर तत्त्व है। यह तत्त्व अवर्ण्य है, क्योंकि इसे प्रकाश कहें तो अन्तर्लीनविमर्श होने पर यह अप्रकाशित (अनभिव्यक्त) है और इसे विमर्श कहें

1. योगिनीहृदय (चक्रसंकेत-1.9)।
2. योगिनीहृदय (1.8)।

तो प्रकाश के अभाव में इसे विमर्श कहना ही स्वतोविरोध है। यही तत्त्वातीतावस्था यही अनुत्तर पद, 'अ' (प्रकाश) और 'ह' (विमर्श) का साम्यभाव है, अग्नि और सोम का साम्यभाव है। यही काम एवं रवि है तथा यही अग्नीषोमात्मक बिन्दु है।

शिव (अ) और शक्ति (ह) बिन्दुरूप में अहं या पूर्णाहन्ता हैं। साम्यभंग → बिन्दु में प्रस्पन्दन → (क) शुक्ल बिन्दु (ख) रक्त बिन्दु का आविर्भाव।

शक्ति सारे प्रमाताओं, सारे प्रमेयों एवं सारी प्रमाओं में अन्तर्निविष्ट है।

प्रमाताओं के मुख्य भेद—

1. शून्य प्रमाता (अनाश्रित शिव)
2. बुद्धि प्रमाता (सदाशिव)
3. प्राण प्रमाता (ईश्वर)
4. देह प्रमाता (विद्या)

अनाश्रितः शून्यमाता बुद्धिमाता सदाशिवः।
ईश्वरः प्राणमाता च विद्या देहप्रमातृता।। (तन्त्रालोक)

शुद्धविद्या में इदन्ता-अहन्ता का सामानाधिकरण्य है।

सदाशिव परापररूप हैं। सदाशिव दशा में इदन्ता अस्फुट रूप से स्थित है, तथापि यह अहन्ताप्रधान है; अतः अहन्ताच्छादित है। अहं की प्रधानता के कारण यह पररूप, किन्तु इदन्ता के (गौण रूप में रहने के कारण) यह अपररूप भी है; अतः परापर रूप है।

सप्त प्रमाता (शैवशास्त्र में 7 प्रमाता)—

1. सत्य प्रमाता परप्रमाता = शिव।
2. सदाशिव तत्त्व में अवस्थित प्रमाता = मन्त्रमहेश्वर।
3. ईश्वरतत्त्व में स्थित प्रमाता = मन्त्रेश्वर।
4. शुद्धविद्या तत्त्व में अवस्थित प्रमाता = मन्त्र।
5. विज्ञानाकल शुद्ध विद्या से नीचे, किन्तु मायातत्त्व से ऊपर अवस्थित प्रमाता = विज्ञानाकल।
6. मायातत्व में अवस्थित प्रमाता = प्रलयाकल या प्रलयकेवली।
7. माया प्रमाता। पारेमित प्रमाता। संकुचित प्रमाता = जीवसकल।

सदाशिव भट्टारक = ये सदाशिव के अधिकारी (रूप) हैं।

मन्त्रमहेश्वर (अणु सदाशिव)। ये सदाशिव के निवासी हैं। ये मुक्त पुरुष हैं। ये मलहीन होने के कारण शिवत्व या परा मुक्ति प्राप्त नहीं किए रहते। इनका अहंबोध सदाशिवात्मक ही रहता है। इनमें कुछ आणवमल शेष ही रहता है।

ईश्वरतत्त्व—भुवन एवं ईश्वर नामक क्षेत्र। ईश्वरभट्टारक—परमशिव का अधिकारी रूप। यह सदाशिव का उन्मेषात्मक या बहिर्मुखात्मक रूप है।

आत्मा (आत्मा के दो अंश हैं)—

1. अहं (ग्राहक)। (प्रमाता)। शिव शक्ति दशा = अहंरूप (पर अवस्था)।
2. इदम् (ग्राह्य)। (प्रमेय)। सदाशिव दशा। (इदन्ता बोध)।

चित्प्राधान्य में (प्रकाशमात्र का प्राधान्य होने के कारण) विज्ञानाकलता का विकास होता है एवं प्रकाश तथा विमर्श दोनों के प्राधान्य की स्थिति में विद्यातत्त्व में अवस्थित प्रमातृता प्राप्त होती है। जब परमशिव अनाश्रित शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, विज्ञानाकलप्रमातृतापर्यन्त चित्प्रधान अध्वा का आभासन करते हैं तब सृष्टिक्रम-जन्य चित्प्राधान्य सहज या स्वाभाविक होता है।

विमर्शरहित केवल प्रकाश की प्रधानता में विज्ञानाकल प्रमातृता निष्पन्न होती है। प्रकाश एवं परामर्श या विमर्श दोनों की प्रधानता में शुद्ध विद्यातत्त्व में स्थित मन्त्र-प्रमातृता सिद्ध होती है।

प्रकाश एवं विमर्श की प्रधानता में भी क्रमशः संकोच के क्षीण होने पर आत्मा को ईश्वर, सदाशिव और अनाश्रित शिवरूपता प्राप्त होती है। समाधिबल से अर्जित चित् प्राधान्य होने पर शुद्धाध्वप्रमातृता उत्कृष्ट होती जाती है।

चित्संकोच की प्रधानता होने पर शून्यप्रमातृता अर्थात् प्रलयाकलरूपता एवं सकल-प्रमातृता का विकास होता है। चिति शक्ति ही संकुचित ग्राहकरूपता धारण करके अर्थ-ग्रहण की ओर उन्मुख होती हुई नील-सुख आदि चेत्यों (विषयों) द्वारा उभयरूप संकोच से संकुचित होकर ही चित्त का रूप ग्रहण करती है। कहा भी गया है कि अपने अंगभूत सांसारिक पदार्थों के विषय में पति अर्थात् विश्वरूप परमेश्वर की जो ज्ञान, क्रिया एवं माया नामक तीन शक्तियाँ हैं, वे ही पशुदशा में क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण कही जाती हैं—

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।
मायातृतीये ते एव पशोः सत्त्वं रजस्तमः।। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञा)

मायाप्रमाता जीव चित्तस्वरूपी है, किन्तु चित्त भी तो शक्ति ही है—'चितिरेव चेतनपदादवरूढ़ा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्'। (सूत्र-5)

शिव से सकलपर्यन्त सप्तप्रमातास्वरूप और चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, ज्ञान-शक्ति एवं क्रियाशक्तिरूप होने पर भी अज्ञान के कारण कला, विद्या, राग, काल एवं नियति से युक्त पञ्चकञ्चुकयुक्त आत्मा पञ्चकस्वभाव कहा जाता है। शक्तिपञ्चक की भूमिका सर्वत्र है। ये निम्नांकित हैं—

1. चिति शक्ति	3. इच्छा शक्ति	5. क्रिया शक्ति
2. आनन्द शक्ति	4. ज्ञान शक्ति	

सारांश यह है कि इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति ही सतोगुण, रजोगुण

एवं तमोगुण और प्रकृति को जन्म देती हैं। साथ ही शुद्ध चैतन्य को पञ्चकञ्चुकों से संयुक्त करके उन्हें पञ्चकस्वभाव बनाती हैं। सारे व्यापार केवल महाशक्ति के हैं। स्वातन्त्र्यात्मा चिति शक्ति ही अपनी ज्ञान-क्रिया-मायाशक्ति के रूप में संकोच-प्रकर्ष की दशा में सत्त्व, रज एवं तम बनकर प्रत्यक् चैतन्य को पशु बना देती है। आचार्य क्षेमराज कहते भी हैं—'स्वातन्त्र्यात्मा चितिशक्तिरेव ज्ञान-क्रिया-मायाशक्तिरूपा पशुदशायां सङ्कोचप्रकर्षात् सत्त्वरजस्तम:स्वभावचित्तात्मतया स्फुरति।'[1]

पशुत्व और शक्ति—माया-प्रमाता के पशुत्व का कारण भी शक्ति ही है; क्योंकि पाशविक वृत्तियों के लोगों को अज्ञानावरण से आच्छादित करने के जो कारक तत्त्व हैं, वे भी शक्तियाँ ही हैं। स्पन्दशास्त्र कहता है—

स्वरूपावरणे चास्य शक्तय: सततोद्यता:।
यत: शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भव:।।

शक्ति ही जीव को बन्धन भी प्रदान करती है। स्पन्दशास्त्र कहता है—

सेयं क्रियात्मिका शक्ति: शिवस्य पशुवर्त्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।।

विश्वरूप शरीरधारी शिव से अभिन्न ही है। केवल उसकी मायाशक्ति से स्वरूप के अभिव्यक्त न होने से संकुचित के सदृश प्रतीत होता है और संकोच भी चिदैक्य रूप से विकसित होने के कारण चिन्मय ही है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अत: सभी जीव विश्वशरीरी शिवभट्टारक ही हैं। संकोच (ख्याति) के प्रथित न रहने पर चिति शक्ति ही शेष रहती है। संकोच के क्रियाशील होने पर भी चिद्रूप होने के कारण चिति शक्ति ही शेष रहती है। इसीलिए स्पन्दशास्त्र में कहा गया है कि—'यस्मात्सर्वमयो जीव:' (जीव सर्वात्मक है)। शब्द और घट-पटादि अर्थ की चिन्ताओं में ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है, जो शिवस्वरूप न हो—

तेन शब्दार्थचिन्तासु न साऽवस्था न य: शिव:।

अत: 'शिवजीवयोरभेद:' अर्थात् शिव एवं जीव में कोई भेद नहीं है। दोनों अभिन्न एकरूप हैं। इस अभेदात्मकता का परिज्ञान ही मुक्ति है तथा इसका अपरिज्ञान ही बन्धन है—'एतत् तत्त्वपरिज्ञानमेव मुक्ति:। एतत्तत्त्वापरिज्ञानमेव च बन्ध:।' ग्राहक तो विकल्पमय है और विकल्पना का कारण है—चित्त।

शंका—चित्त के रहते ग्राहक शिवात्मक कैसे बन सकता है?

उत्तर—चित्त भी कोई पृथक् वस्तु नहीं है; प्रत्युत चिति शक्ति ही तो है—'न चित्तं नाम अन्यत् किञ्चित्, अपितु सैव भगवती तत्।'

वही चिति शक्ति अपने स्वरूप को छिपाकर जब संकोच ग्रहण करती है तो उसकी

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

दो प्रकार की गति होती है—कभी वह (संकोचावलम्बन को स्थिति में) संकोच को गौण करके चित्प्राधान्य को लेकर स्फुरित होती है और कभी संकोच को प्रधानता देकर स्फुरित होती है।

माया में प्रलयकेवली शून्य प्रमाताओं का उनके अनुरूप प्रलीन सदृश प्रमेय रहता है। भूमिपर्यन्त अवस्थित सकल नामक प्रमाताओं का, जो परिमित और पूर्णत: भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रमेय भी है। इन सप्त प्रमाताओं से परे प्रकाशैकशरीर शिवभट्टारक प्रमाता के लिए प्रमेय भी प्रकाशैकरूप है।

विश्वातीत एवं विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघन श्रीमान् परमशिव का उसी प्रकार शिव से धरापर्यन्त सम्पूर्ण प्रमेय है और उनसे अभिन्नतया स्फुरित होता है।

तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो कोई अन्य ग्राह्य-ग्राहक है ही नहीं। परमशिव (परा शक्ति) ही इन अनन्त वैचित्र्यों के रूप में स्फुरित हो रहे हैं; अत: 'भगवान् विश्वशरीर:।' जैसे भगवान् का शरीर ही विश्व है, ठीक उसी प्रकार संकुचित चिति शक्तिरूप जीवात्मा भी संकुचित विश्वमय शरीर धारण करता है।

श्री परमशिव अपने स्वरूप से एकीभूत विश्व को सदाशिव आदि रूप से व्यक्त करने की इच्छा करते हुए चिदैक्य संकोचमय अनाश्रित शिव या शून्यातिशून्य रूप में प्रकाशात्मक एवं प्रकाशमान रूप से स्फुरित होते हैं।

इसके पश्चात् घनीभूत चिद्रसमय सम्पूर्ण तत्त्व, भुवन, भाव एवं भिन्न-भिन्न प्रमाताओं के रूप में अपने को विकसित करते हैं।

जिस प्रकार भगवान् विश्वरूप शरीर वाले हैं, उसी प्रकार संकुचित चिद्रूप प्रमाता भी वटबीज के समान संकुचित समस्त विश्वरूप होता है। इसीलिए कहा गया है कि वह पृथक् रूप से शरीर भी है और शरीरी भी एवं समष्टि रूप से समस्त शरीरों का शरीरी आत्मा है—

विग्रहो विग्रही चैव सर्वविग्रहविग्रही।
त्रिशिरो भैरव: साक्षाद् व्याप्य विश्वं व्यवस्थित:।।

मन्त्रेश्वर वर्ग—ईश्वर तत्त्व या ऐशपुर में अनेक अन्य पुर भी विद्यमान है। यथा—

1. शिखण्डी	3. त्रिमूर्त्ति	5. एकरुद्र	7. सूक्ष्म
2. श्रीकण्ठ	4. एकनेत्र	6. शिवोत्तम	8. अनन्त

ये आठ विद्येश्वर गुणों की अधिकता के कारण ऊर्ध्व एवं ऊर्ध्वतर भुवनों में निवास करते हैं।

शिखण्डी नीचे के भुवन में रहते हैं। अनन्त सर्वोपरि भुवन में रहते हैं। ये विद्येश्वर साढ़े तीन कोटि मन्त्रेश्वरों के नायक हैं। इन सभी में शक्ति का ही विलास है।

विद्यापद या शुद्धविद्या—यह वह अवस्था है, जहाँ इदन्ता और अहन्ता दोनों में सामानाधिकरण्य है—'समानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदन्धियो' (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी अ.-3 वि.-1/आगमाधिकार)।

सदाशिव तत्त्व में अहमिदं विमर्श होता है। यहाँ अहं का प्राधान्य है। ग्राहक (अहं) में ग्राह्य (इदं) प्रक्षिप्त रहता है।

ईश्वर तत्त्व में इदमहं विमर्श होता है अर्थात् इदमहं का बोध होता है।

यहाँ स्फुटीकृत ग्राह्य (इदंभाव) में अहं (ग्राहक) के प्रक्षेप रहने से सामानाधिकरण्य रहता है। ये सभी शक्ति की ही भाव-क्रीड़ायें हैं।

अधिकरण क्या है? शुद्ध संवित्तत्त्व ही तीनों में अधिकरण है। सारांश यह कि—

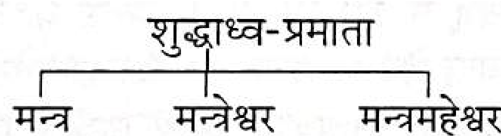
1. यदा तुम ध्यकोटौ समधृततुलावत् विश्राम्यत: तया अहमिदमिति ग्राहके ग्राह्यस्य प्रक्षेपोऽत एव ध्यामलग्राह्यांशो विमर्श: सदाशिवनाथे।

2. .... इदमहमिति ग्राह्ये स्फुटीभूतेऽहमिति प्रक्षेपात् सामानाधिकरण्यविमर्श: ईश्वरभट्टारके। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग-3)

अनन्त भट्टारक—ये प्रधान विद्येश्वर हैं। ये सात विद्येश्वरों एवं मन्त्रेश्वरों के नायक हैं।

अनाश्रित—अनाश्रित शिव : स्वशक्ति का आश्रय होने के कारण शिव को अनाश्रित कहते हैं। शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या—इन पञ्च कारणरूप शिवों में आश्रयरहित होने के कारण ही शिव को अनाश्रित कहते हैं। अनाश्रित शिव भी शून्य-प्रमाता है।

शुद्धाध्वप्रमातृता—शुद्ध विद्या से लेकर अनाश्रित शिवपर्यन्त शुद्धाध्वा है।



शुद्धाध्वा, अशुद्धाध्वा, सप्तप्रमाता, 36 तत्त्व, 118 या 224 भुवन, मलत्रय, गुणत्रय, प्रकृति, माया, महामाया, पञ्चकञ्चुक, वर्ण, वर्णमाला, कुण्डलिनी, नाद, बिन्दु आदि कोई भी ऐसी सत्ता नहीं है, जिसमें महाशक्ति की क्रीड़ा न चलती हो। ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जहाँ शिव न हो—'न सावस्था न य: शिव:' तथा ऐसी कोई स्थिति नहीं है, जहाँ कि शिव हो; किन्तु शक्ति न हो। शिव एवं शक्ति तो एक ही सिक्के दो पहलू हैं या गुणी के गुण, धर्मी के धर्म एवं भाव के भावत्व हैं। अत: जहाँ-जहाँ शिव है, वहाँ-वहाँ शक्ति भी है।

जीवत्व और शक्तितत्त्व की भूमिका—शिव ही अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति का आश्रय लेकर जीव बन जाता है; अत: शिव के जीवत्वभाव की सञ्चालिका या सूत्रधार

भी शक्ति ही है। क्रियात्मिका शक्ति ही बन्धन का कारण है। चिदात्मा अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के चमत्कार से अपनी अभेदता को छिपाकर मलों से आवृत होकर संसारी जीव बन जाता है। इसीलिये शिवसूत्रकार कहते हैं—

चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचात् मलावृतः संसारी।

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि जब चिदात्मा परमेश्वर अपने स्वातन्त्र्य से अभेदव्याप्ति को संकुचित करके भेदव्याप्ति का अवलम्बन ग्रहण करते हैं तब उनकी इच्छादिक शक्तियाँ असंकुचित होने पर भी संकुचित प्रतीत होती हैं। तभी यह मलों से आवृत होकर संसारी हो जाता है और अप्रतिहत स्वातन्त्र्य शक्तिस्वरूपा इच्छाशक्ति संकुचित होकर अपूर्णम्मन्यात्मक 'आणवमल' के नाम से पुकारी जाती है।

मल और शक्तितत्त्व की भूमिका—बन्धन के बीजभूत तत्त्व तीन हैं, जिन्हें 'मल' कहते हैं। वे त्रिविध हैं—आणव मल, मायामल एवं कार्ममल। ये भी शक्ति के ही रूप हैं।

आणव मल—स्वातन्त्र्यात्मा इच्छाशक्ति ही संकुचित होकर आणवमल बन जाती है—'अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः सङ्कुचिता सती अपूर्णम्मन्यतारूपम् आणवं मलम्।' ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार भी कहते हैं—

स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।
द्विधाणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः।। (आगमाधिकार)

मायामल—ज्ञानशक्ति ही संकुचित होकर, भेददशावस्थित होकर एवं सर्वज्ञता के सोपान से अल्पज्ञता के निम्न सोपान पर उतरकर एवं अन्तःकरण तथा ज्ञानेन्द्रियों के साथ एकरूप होकर अत्यन्त संकोच ग्रहण करती हुई तथा देह आदि भिन्न-भिन्न वेद्यों (पदार्थों/प्रमेयों) के रूप में परिणत होकर मायीय मल कही जाती है। आचार्य क्षेमराज अपने प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

ज्ञानशक्तिः क्रमेण सङ्कोचात् भेदे सर्वज्ञत्वस्य किञ्चिज्ज्ञत्वाप्तेः अन्तःकरणबुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वं अत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं मायीयं मलम्।

कार्ममल—जब क्रियाशक्ति की सर्वकर्तृता शक्ति अल्पकर्तृत्व प्राप्त करती है एवं कर्मेन्द्रियरूप संकोच ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती है तब उसे ही शुभाशुभ कर्ममय कार्ममल कहते हैं। आचार्य क्षेमराज इसी को व्यक्त करते हुये प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहते हैं—

क्रियाशक्तिः क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रियरूपसङ्कोचग्रहणपूर्वम् अत्यन्तं परिमितततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं कार्मं मलम्।

स्वरूप के अज्ञान के अनन्तर सांसारिक पदार्थों को भिन्न-भिन्न समझना या भेदप्रथा ही मायामल है—'भिन्नवेद्यप्रथात्रैव मायाख्यं' तथा जन्म और भोग देने वाले शुभाशुभ कर्मों की पराधीनता 'कार्म मल' कहा जाता है—

....जन्म भोगदम्।
कर्तर्यबोधे कार्मं तु मायाशक्त्यैव तत्त्रयम्।।

आणव मल—

गोपितस्वमहिम्नोऽस्य सम्मोहाद्विस्मृतात्मनः।
यः सङ्कोचः स एवास्य आणवो मल उच्यते।।

मायीय मल—

तत् षट् कञ्चुकव्याप्तिविलोपितनिजस्थितेः।
भूतदेहे स्थितिर्यासौ मायीयो मल उच्यते।।

कार्म मल—

यदन्तःकरणाधीनबुद्धिकर्मेन्द्रियादिभिः ।
बहिर्व्याप्रियते कार्ममलमेतस्य तन्मतम्।।

पञ्चकञ्चुक और शक्तितत्त्व की भूमिका—पञ्चकञ्चुक वे पाँच तत्त्व होते हैं, जो जीवात्मा को केंचुल की भाँति आच्छादित करके उसके पूरे शरीर, मन एवं समस्त अन्तःकरण को अपने अधिकार में कर लेते हैं।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि क्रियाशक्ति का सर्वकर्तृत्व, ज्ञानशक्ति का सर्वज्ञातृत्व एवं महाशक्ति की अन्य शक्तियाँ, यथा—पूर्णत्व, नित्यत्व एवं व्यापकत्व आदि जब संकोच (पारमित्य) ग्रहण कर लेती हैं तब वे पञ्चकञ्चुकों के रूप में यथाक्रम—कला, विद्या, राग, काल एवं नियति बन जाती हैं—'तथा सर्व-कर्तृत्व-सर्वज्ञत्व-पूर्णत्व-नित्यत्व-व्यापकत्वशक्तयः सङ्कोचं गृह्यमाना यथाक्रमं कला-विद्या-राग-काल-नियतिरूपतया भान्ति'। षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह में इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

1. सम्पूर्णकर्तृताद्या बह्व्यः सन्त्यस्य शक्तयस्तस्य।
सङ्कोचात्सङ्कुचिताः कलादिरूपेण रूढ्यन्त्येनम्।।

2. सर्वकर्तृता का संकोच = कलातत्त्व—
तत्सर्वकर्तृता सा सङ्कुचिता कतिपयार्थमात्रपरा।
किञ्चित्कर्त्तारममुं कलयन्ती कीर्त्यते कला नाम।।

3. सर्वज्ञता का संकोच = विद्यातत्त्व—
सर्वज्ञताऽस्य शक्तिः परिमिततनुरल्पवेद्यमात्रपरा।
ज्ञानमुत्पादयन्तीं विद्येति निगद्यते बुधैराद्यैः।।

4. नित्यपरिपूर्णतृप्ति का संकोच = रागतत्त्व—
नित्यपरिपूर्णतृप्तिः शक्तिस्तस्यैव परिमिता तु सती।
भोगेषु रञ्जयन्ती सततममुं रागतत्त्वतां याता।।

5. नित्यता का संकोच = कालतत्त्व—

सा नित्यताऽस्य शक्तिर्निकृष्य निधनोदयप्रदानेन।
नियतपरिच्छेदकरी क्लृप्ता स्यात्कालतत्त्वरूपेण।।

6. सर्वव्यापक का संकोच = नियतितत्त्व—

याऽस्य स्वतन्त्रताख्या शक्तिः सङ्कोचशालिनी सैव।
कृत्याकृत्येष्ववशं नियतममुं नियमन्त्यन्नियतिः।।

प्रकृति और शक्तितत्त्व की भूमिका—सृष्टि-विधान में गुणत्रय, प्रकृति, पञ्च-तत्त्व, पञ्चतन्मात्रा, ब्रह्म आदि किसी की भी अपेक्षा नहीं है। सृष्टि का सारा व्यापार अकेले भगवती संवित् शक्ति या स्वातन्त्र्य शक्ति (इच्छाशक्ति) ही स्वेच्छापूर्वक (बाह्योपादानों की अपेक्षा के विना) अपनी आत्मभित्ति पर निष्पादित कर डालती है; क्योंकि सृष्टि नव्योत्पादन, नवीन पदार्थों की रचना, उत्पत्ति, प्रादुर्भाव आदि नहीं है; प्रत्युत अन्तर्निहित अव्यक्त का अभिव्यक्तिकरण है—उन्मीलन है। उन्मीलन है—पूर्वावस्थित का प्रकटीकरण—'उन्मीलनं च अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम्।'

सारांश यह कि जगत् प्रकाश के साथ एकात्मभाव से स्थित है—'जगतः प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम्।'

स्वात्मशक्ति देवता ही सबका कारण है—'स्वात्मदेवताया एव सर्वत्र कारणत्वम्।'

शक्ति ही जगत् के अनन्त पदार्थों के रूप में स्फुरित हो रही है—'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति।' शक्ति एवं जगत् में कर्त्री एवं कार्य का सम्बन्ध नहीं है; प्रत्युत पारमार्थिक कार्य कारणभाव होने से यहाँ सृष्टि भी महाशक्ति ही है—'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'

यह महाशक्ति ही संवित्तत्त्व, स्पन्द, इच्छा-ज्ञान-क्रिया, चिति-आनन्द, विमर्श, परावाक्, कुण्डलिनी, नाद, माया, महामाया, विद्या, अविद्या, चैतन्य, आत्मा एवं शिव की शक्ति आदि सभी कुछ है। यही महाशक्ति प्रकृति भी है।

प्रकृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह में कहा गया है कि—

'यास्य स्वतन्त्रताख्या शक्तिः सङ्कोचशालिनी सैव इच्छादित्रिसमष्टिः शक्तिः शान्तास्य सङ्कुचद्रूपा सङ्कलितेच्छाद्यात्मकसत्त्वादिकसाम्यरूपिणी तु सती बुद्ध्यादिसामरस्यस्वरूपचित्तात्मिका मता प्रकृतिः। इच्छाऽस्य रजोरूपाऽहंकृतिरासीदहम्प्रतीतिकरी। ज्ञानमपि सत्त्वरूपा निर्णयबोधस्य कारणं बुद्धिः। तस्य क्रिया तमोमयमूर्तिर्मन उच्यते विकल्पकरी वामादिपञ्चभेदः स एव सङ्कुचितविग्रहो देवः।'

सारांश यह कि इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति ही अपने रूपान्तरित एवं विकसित रूप में प्रकृति के नाम से जानी जाती है।

प्रकृति के आधारतत्त्व (मूल तत्त्व) गुणत्रय हैं। उनका भी विकास शक्ति के द्वारा

ही हुआ है; यथा—

(क) इच्छाशक्ति ही रजोगुण बन गई।

(ख) ज्ञानशक्ति ही सतोगुण बन गई।

(ग) क्रियाशक्ति ही तमोगुण बन गई।

वामा, रौद्री आदि शक्तियों का विकास ही तो सृष्टि एवं जगत् है।

इच्छाशक्ति है क्या? 'सा ममेच्छा परा शक्तिः' (नेत्रतन्त्र)।

कामकलाविलास में आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं कि जो विश्व का आदि (आद्या) है, आत्मानन्द विश्रान्त है, शाश्वत है, अनुपमेयाकृति है, भविष्योत्पन्न निःशेष स्थावर-जंगमात्मक विश्व का बीज है और शिव का दर्पण है, वही शक्ति है—'सा जयति शक्ति-राद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः।'

शक्ति स्वात्मा है। चिदानन्दवासना में कहा गया है कि जो प्रकाशामर्शरूपिणी है, विश्वात्मिका है, विश्वोत्तीर्णा है, परापरमयी देवी है, उस पराशक्तिस्वरूपा देवी को मैं अपनी आत्मा के रूप में स्वीकार करके उसी में प्रवेश करके विश्राम करता हूँ—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्।।

त्रिपुरा ही परमा शक्ति है। विश्व की अनन्त शक्तियों की कारणाभूता मूल शक्ति को ही वामकेश्वर तन्त्र में परमा शक्ति कहा गया है। यह परमा शक्ति ही भगवती त्रिपुरा हैं—'त्रिपुरा परमाशक्तिराद्या जाता महेश्वरी'।

बन्धन और मोक्ष तथा शक्तितत्त्व की भूमिका—शक्ति ही जीव को बन्धन एवं पशुत्व दोनों प्रदान करती है। प्रत्यक् चैतन्य, मायातीत एवं विशुद्ध आत्मा या शिव पशु कैसे बन जाता है? शिव अपनी स्वरूपगोपनात्मिका क्रीड़ा के द्वारा जो अपने को छिपाकर जीव बन जाता है, उस समय उसे अपने सत् स्वरूप का तो बोध रहता है कि मैं तत्त्वतः एवं स्वरूपतः शिव हूँ; किन्तु मैंने विश्वरंगमञ्च पर प्रमोदनार्थ (क्रीड़ा या लीला हेतु) जो जीव का स्वरूप धारण कर लिया है, उसका वह संकुचित स्वरूप जीवत्व मेरा यथार्थ स्वरूप नहीं है; फिर वह शिव से पशु कैसे बन जाता है? इसपर शैवशास्त्र कहता है कि उसका कारण भी शक्ति ही है। स्पन्दकारिका में इस पशुत्व के दो सुस्पष्ट कारण बताये गये हैं—क्रियाशक्ति एवं शब्दशक्ति।

1. सेयं क्रियात्मिका शक्तिः शिवस्य पशुवर्तिनी।
बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।।

2. शब्दराशिसमुत्थस्य शक्तिवर्गस्य भोग्यताम्।
कलाविलुप्तविभवो गतः सन् स पशुः स्मृतः।।

ये शक्तियाँ जीव को बन्धनग्रस्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। ये

ही आत्मा या जीव के सत्स्वरूप पर माया का आवरण डालती हैं, जिससे शिव (प्रत्यक् चैतन्य) पशु बन जाता है—

स्वरूपावरणे चास्य शक्तय: सततोद्यता:।
यत: शब्दानुवेधेन न विना प्रत्ययोद्भव:।।

शक्ति ही बन्धन तोड़कर मुक्ति (सिद्धि) प्रदान करती है। स्पन्दशास्त्र कहता भी है—

बन्धयित्री स्वमार्गस्था ज्ञाता सिद्ध्युपपादिका।

जगत् तो शक्ति की क्रीड़ा है। जीव की साधना का आदर्श रूप है। शक्ति बनकर अपने एवं जगत् को देखना उसका साधना-सूत्र है—'अहं देवी न चान्योऽस्मि।' देवी बनना या शक्ति के साथ सायुज्य प्राप्त करना ही शाक्त साधना का परम लक्ष्य है। जब साधक शक्ति बन जाता है तो वह भी शक्ति की ही भाँति अनुभव करने लगता है कि जगत् कोई माया या भ्रम नहीं है और न तो मुझसे पृथक् कोई वस्तु है; प्रत्युत यह मेरी क्रीड़ा है। जगत् शक्ति की क्रीड़ा है। जब शक्ति की भाँति साधक भी जगत् को अपनी क्रीड़ा मानने लगे तो वही उसकी मुक्ति है। 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति' की दृष्टि रखना ही अर्थात् सर्वत्र शक्ति की व्याप्ति का अनुभव करना ही साधना है।

स्पन्दशास्त्र कहता है कि जगत् को शक्ति की क्रीड़ा मानकर उसके साथ एकत्व-स्थापना करना एवं जगत् को अपनी क्रीड़ा मानना ही मुक्ति है। स्पन्दकारिका में जगत् को अपनी क्रीड़ा मानने को ही जीवन्मुक्ति कहा गया है—

इति वा यस्य संवित्ति: क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सर्वतो युक्तो जीवन्मुक्तो न संशय:।।

सृष्टि आत्मविनोद है अर्थात् शक्ति का मनोरञ्जन है—

1. सदा सृष्टिविनोदाय सदा स्थितिसुखासिने।[1]

2. एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीड़ारसोत्सुक:।
विचित्रान् सृष्टिसंहारान् विधत्ते युगद्विभु:।।[2]

रूसी साहित्यकार लियो टाल्सटाय ने कहा था कि मुझमें मैं नहीं, प्रत्युत ईसा जीते हैं। अपने में एवं शक्ति तथा उसके जगत् में सर्वत्र शक्ति की व्यापकता या अनुस्यूतता ही यथार्थ साधना है—

सर्वं देहं चिन्मयं हि जगद्वा परिभावयेत्।

विज्ञानभैरव की दृष्टि में भी शक्ति चैतन्य स्वरूप के साथ एवं उसके जगत् के साथ एकता की अनुभूति है। जगत् शक्ति का देह है (शरीर है); अत: साधक को शक्ति बनकर जगत् के साथ एकात्मभाव, एकत्व या अभिन्नता की अनुभूति करनी

1. 30 स्तो-22.9 2. श्रीबोधपञ्चदशिका

चाहिए—

सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।
युगपत स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्।।

शैव-शाक्त दर्शन में बन्धन-मुक्ति एवं शक्तिवाद—शैव और शाक्तदर्शन अद्वैत में विश्वास रखने के कारण यह पूछते हैं कि यदि केवल एक (शिव या शक्ति) ही तत्त्व है तो ये बन्धन और मोक्ष कहाँ से आ गये? यदि ये भी यथार्थसत्ताक हैं तो फिर अद्वैत ही कहाँ रह गया? जहाँ द्वैत है, वहाँ अद्वैत कैसा?

आचार्य अभिनव गुप्त कहते हैं कि बन्धन-मोक्ष तो परमेश्वरेच्छा—इच्छाशक्ति द्वारा मात्र कल्पित हैं; अतः ये दोनों तत्त्वतः हैं ही नहीं। इनकी कोई सत्ता ही नहीं है—

एतौ बन्धविमोक्षौ च परमेशस्वरूपतः।
न भिद्येते न भेदो हि तत्त्वतः परमेश्वरे।।

संसार ही बन्धन है। जब संसार ही नहीं है (शिव-शक्ति के स्वस्वरूप से पृथक् सत्ता के रूप में संसार की कोई पृथक् सत्ता ही नहीं है)। तो फिर बन्धन की तो बात ही क्या है—

संसारोऽस्ति न तत्त्वतस्तनुभृतां बन्धस्य वार्त्तैव का?

जब बन्धन ही नहीं है तो फिर मुक्ति का अस्तित्व कैसा? फिर तो मुक्ति की कल्पना भी व्यर्थ ही है—

बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्ति क्रिया।

विज्ञानभैरवकार कहते हैं—

न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैता विभीषिकाः।
प्रतिबिम्बमिदं बुद्धेर्जलेष्विव विवस्वतः।।

पलालपुरुष (घास-फूस का बनाया गया मुझौस आदमी) पक्षियों को तो डरा सकता हैं; किन्तु वनकुञ्जरों को कैसे डरायेगा? बन्ध-मोक्ष बन्धनग्रस्तों को तो डरा सकता है, किन्तु मुक्त पुरुषों को क्या डरायेगा?

शालीन् पलालपुरुषोऽवति यः कृशानुर्दग्धाननन.................................किं तत्र भञ्जनकृतां वनकुञ्जराणाम्।।[1]

सारांश यह कि—शक्ति को छोड़कर संसार में अन्य कोई सत्ता है ही नहीं। यदि बन्धन-मोक्ष की सत्ता मान भी ली जाय तो ये दोनों भगवती स्वातन्त्र्य शक्ति की कल्पनायें मात्र हैं। इसके अतिरिक्त इनका कोई भी पृथक् अस्तित्व है ही नहीं।

बन्धन और मोक्ष भगवती स्वातन्त्र्य शक्ति की स्वरूपगोपनात्मिका विश्वक्रीड़ायें

1. कल्हण

हैं। ये दोनों भी विश्व-क्रीड़ा के पात्र (अभिनेता—Actor) हैं। अतः ये शक्ति के ही दो रूप हैं। स्वरूपगोपन क्रिया या तिरोधान भी तो शक्ति की ही क्रीड़ा है; अतः तज्जन्य बन्धन भी शक्ति की क्रीड़ा है। स्वस्वरूपाच्छादन बन्धन है और स्वस्वरूपोद्घाटन मुक्ति है। ये दोनों स्वस्वरूप की आँखमिचौली की दो क्रीड़ायें मात्र हैं; इनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

परा शक्ति महामाया एवं माया बनकर ही स्वस्वरूपाच्छादन (स्वस्वरूगोपन) की क्रीड़ा करती है; अतः माया और कुछ नहीं, केवल स्वस्वरूपगोपनात्मिका शक्ति है।

आचार्य उत्पलदेव इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहते हैं—'माया नाम शक्तिः शिवस्य शक्तिमतोऽव्यतिरेकिणी स्वरूपगोपनात्मिका क्रीड़ा।'[1] फिर बन्धन क्या है? अपनी अपरिच्छिन्न शक्ति के विकास का अप्रथन (विकासाभाव) ही बन्धन है। यही जीवत्व भी है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं—'केवलमपरिच्छिन्नस्वशक्तिविकासस्याप्रथनमेव बन्धकत्वपर्यायं जीवत्वम्।'[2]

जीव और शक्ति तत्त्व की भूमिका—जब जीव शिव ही है तो शिव जीव कैसे बन गया? 'शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं' तथा 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अनुभूति यदि सत्य है तो फिर इस सत्य की अनुभूति करने वाला प्रत्यक् चैतन्य शिव जीव एवं पशु कैसे बन गया?

आचार्य उत्पलदेव अजड़प्रमातृसिद्धि (16) में कहते हैं कि आत्मा के दो प्रकार हैं—मितात्मा अणु (प्राणादिनिरुद्ध) एवं अमितात्मा परमात्मा (अखण्डित)—

द्विधा स एष एवात्मा मितोऽपरिमितस्तथा।
प्राणादिना निरुद्धोऽणुः परमात्मा त्वखण्डितः।।[3]

आचार्य उत्पलदेव कहते हैं कि संविदात्मा परमेश्वर स्वेच्छया (अपनी इच्छा से) विश्वक्रीड़ा को उल्लसित करने के लिए प्राणादिक को आत्मवत् अवभासित करते हुये उसका प्रमाता बनकर और अपने असीम स्वस्वरूप को संकुचित (परिच्छिन्न) करके जीवभाव को अंगीकृत कर लेता है—'स एव संविदात्मा परमेश्वरः स्वेच्छया विश्वक्रीडोल्लिलासयिषायां प्राणाद्यात्मनामवभास्य तत्प्रमातृत्वेन सङ्कुचीभूय जीवतामेति .... पूर्णः स्वतन्त्रश्चिदात्मैवेति परिमितापरिमितत्वेन द्विविधत्वम्।'

प्रश्न उठता है कि पूर्ण एवं स्वतन्त्र चिदात्मा शिव ने जीवत्व भाव क्यों ग्रहण किया? उत्तर है कि उन्होंने विश्वक्रीड़ा की लालसा से अपनी इच्छा से एवं उल्लिलासा के कारण ऐसा किया। पुनः प्रश्न उठता है कि यह स्वेच्छा' उल्लिलासा है क्या? यह स्वेच्छा एवं उल्लिलासा ही तो महाशक्ति है और उसकी परिणति ही सृष्टि एवं जगत् है। यही जीवत्व का भी कारण है।

1. अजडप्रमातृसिद्धिवृत्ति (श्लोक 24)
2. अजडप्रमातृसिद्धिवृत्ति (श्लोक 21)
3. अजडप्रमातृसिद्धि श्लोक 16 की वृत्ति।

माया और शक्ति—उत्पलदेवाचार्य कहते हैं कि संवित्प्रकाश परमशिव स्वात्मोच्छलत्तया स्वमायाशक्ति से विश्वोल्लासन करते हैं—'संवित्प्रकाश एव स्वात्मोच्छलत्तया स्वमायाशक्त्युल्लासिते विश्ववैचित्र्ये जड़ाजड़भावराशिद्वयेन वेद्यवेद्यकात्मकेन स्वरूपानतिरेक्तानातिरिक्तेनेव प्रस्फुरेत् इति स्वातन्त्र्यवादस्य प्रोन्मीलनं सूचितवान्।'[1] इस कथन पर ध्यान दें तो ये निष्कर्ष निकलते हैं कि परमशिव—

1. अपनी आत्मा के उच्छलन के कारण मायाशक्ति की सहायता से विश्लोल्लासन करता है।

2. माया शक्ति विकास-प्रक्रिया में जड़ एवं चेतन, वेद्य एवं वेदक (प्रमेय एवं प्रमाता) के रूप में विश्व को विभाजित करके उसे प्रस्तुत करती है।

3. यद्यपि जड़ाजड़ एवं वेद्य-वेद्यक शिव एवं शक्ति से अभिन्न हैं, फिर भी मायाशक्ति उन्हें भिन्नवत् अवभासित करते हुए प्रस्तुत करती है।

4. इस समस्त विकास-प्रक्रिया में शैवदर्शन के स्वातन्त्र्यवाद की पुष्टि होती है।

निष्कर्ष—

1. स्वमायाशक्त्या मायाशक्ति परमशिव की अपनी शक्ति है; वेदान्तियों की माया की भाँति चतुष्कोटिविनिर्मुक्त, सत्-असत् से परे अनिर्वचनीय नहीं है। अत: यह मिथ्या प्रतीति नहीं है।

2. परमशिव स्वयं कुछ नहीं करते। वे तटस्थ रहते हैं। उनकी अपनी माया शक्ति ही सब कुछ करती है। माया शिव की अपनी निजा शक्ति है।

3. माया स्वतन्त्र है और इसी स्वातन्त्र्य के कारण परमेश्वर शिव की शक्ति का नाम—माया शक्ति का नाम—स्वातन्त्र्य शक्ति है। यही स्वातन्त्र्य शक्ति उनकी इच्छाशक्ति एवं मायाशक्ति भी है। माया शिव से पृथक् नहीं है। शक्ति शक्तिमान से भिन्न नहीं है।

माया क्या है? शुद्ध विद्या और माया में से शुद्ध विद्या अभेददृष्टि की पोषिका है—

सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेदमति:।

माया भेददृष्टि की पोषिका है—

माया विभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलेव वारिधिं रुन्धे। स तया परिमितमूर्त्ति: सङ्कुचितसमस्तशक्तिरेष पुमान् रविरिव सन्ध्यारक्त: संहृतशक्ति: स्वभासमानेऽयपटु:।

माया शक्ति शिव को पुरुषरूप में परिणत करने के लिए पाँच उपाधियों की सृष्टि करती हैं, इन्हें ही पञ्चकञ्चुक कहते हैं। ये हैं—कला, विद्या, राग, काल और नियति।

1. अजडप्रमातृसिद्धिवृत्ति

अब अहं और इदं को माया शक्ति पृथक्-पृथक् कर देती है। अहमंश हो जाता है—पुरुष एवं इदमंश हो जाती है—प्रकृति। मायाशक्ति के प्रभाव के पूर्व अहं और इदम् पृथक् नहीं रहते; जैसे कि शिवतत्त्व में अहंविमर्श होता है, सादिवतत्त्व में अहमिदं विमर्श होता है एवं ईश्वरतत्त्व में इदमहं विमर्श होता है। तीनों में अहं के साथ इदम् (ज्ञाता के साथ ज्ञेय, द्रष्टा के साथ दृश्य, ग्राहक के साथ ग्राह्य अर्थात् अहं के साथ इदम् या आत्मा के साथ जगत्) अभिन्न रूप में दृष्टिगोचर होता है; किन्तु मायाशक्ति का स्पर्श होते ही दोनों भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। यही मायाशक्ति का व्यापार है, जो वह पञ्चकञ्चुकों के माध्यम से करती है।

आचार्य क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहते हैं कि शिव से लेकर सकलपर्यन्त समस्त पदार्थ (तत्त्व) यद्यपि शक्ति अर्थात् चित् शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति के ही रूप हैं अर्थात् सारे पदार्थ एवं तत्त्व केवल शक्ति के रूपान्तर हैं तथापि मायाशक्ति, क्रियात्मिका शक्ति के द्वारा उत्पन्न अज्ञान के कारण शिव कला, विद्या, राग, काल एवं नियतिरूप पञ्चकञ्चुकों के वशीभूत होकर पञ्चकस्वभाव पशु कहा जाने लगता है—

शिवादिसकलान्तप्रमातृसप्तकस्वरूप: चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपत्वेऽपि अख्यातिवशात् कला-राग-काल-नियति-कञ्चुकवलित्वात् पञ्चकस्वरूप:।

समस्त भूमिकायें भगवती स्वातन्त्र्य शक्ति की ही भूमिकायें हैं—'एकस्यैव चिदात्मनो भवगत: स्वातन्त्र्यावभासिता: सर्वा इमा भूमिका:।' इनमें पारस्परिक भेद का कारण भी स्वातन्त्र्य शक्ति के प्रच्छादन एवं प्रोन्मीलन के तारतम्य से उदित होते हैं—'स्वातन्त्र्य-प्रच्छादनोन्मीलनतारतम्यभेदिता:।'

जब शक्ति का बहिर्मुखी स्वरूप स्वस्वरूप में आत्मविश्रान्त होता है तब बाह्य संसार का भी उपसंहार हो जाता है। शक्ति संहाररूपा भी है; क्योंकि प्रलय के समय वह समस्त वस्तु-जगत् को कवलित करके—अन्तर्गर्भनिलीन करके स्थित रहती है और इस प्रकार शक्ति सृष्टिरूपा, स्थितिरूपा एवं संहाररूपा—तीनों है। वह तिरोधानरूपा एवं अनुग्रहरूपा भी है; क्योंकि वह 'ज्ञाता सिद्ध्युपपादिता' है।

संसारित्व क्या है? शक्तिसूत्रकार कहते हैं—'तदपरिज्ञाने स्वशक्तिभिर्व्यामोहितता संसारित्वम्।'

मृत्यु और सुख-दु:ख तथा शक्तितत्त्व की भूमिका—जब अशेष सृष्टि स्वयं शक्ति ही है तो इस सृष्टि में घटित जन्म-मरण, सुख-दु:ख आदि की घटनायें भी शक्ति के ही अभिनयांश हैं। मृत्यु और दु:ख का कारण क्या है?

पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त दर्शन एवं पाञ्चरात्र, त्रिक, रसेश्वर, कापालिक, कालामुख, वीर शैव, वसवेश्वर, लिंगायत,

शैव, शाक्त, स्मार्त, गाणपत्य एवं सौर आदि सम्प्रदाय तथा नास्तिक दर्शनों में बौद्ध एवं जैन तथा इसी प्रकार सारे पन्थ (कबीर पन्थ, नानक पन्थ, बाबालाली, दादू, दरिया, रैदासी आदि दर्जनों पंथ)—सभी यह मानते हैं कि पूर्वजन्मों के शुभाशुभ कर्मों के परिणामों के कारण ही मृत्यु, शोक, दु:ख-सुख आदि भोगने पड़ते हैं।

पुनर्जन्म में विश्वास न रखने वाले यहूदी, ईसाई एवं मुस्लिम आदि धर्म पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म मानते ही नहीं; अत: उन्हें मृत्यु, दु:ख एवं विभिन्न कष्टों के मूल कारण पर नये सिरे से विचार करना पड़ा। इन सामी धर्मों को मृत्यु, दु:ख एवं स्वर्गीय सुखों से वञ्चित होने का मूल कारण 'अवज्ञा' में मिला।

अंग्रेजी साहित्य के महान् कवि Milton की कालजयी रचना Paradise Lost में इसका सविस्तार वर्णन किया गया है और कहा गया है—

Of man's first disobedience and the fruit of that forbidden tree whose mortal taste brought death into the world, and all our woe with loss of eden.

Bible के अनुसार दु:ख और मृत्यु का मूल कारण—मिल्टन ने Bible के कथनों एवं मान्यताओं का अनुसरण करते हुए कहा कि मानव जाति के दु:खों का, मृत्यु का, स्वर्ग से निकाले जाने एवं परमात्मसंसर्ग से वञ्चित होने का मूल कारण तो केवल एक है और वह है—अवज्ञा (Disobedience)।

अवज्ञावाद का सिद्धान्त—Of man's first disobedience and the fruit of that forbidden tree whose mortal taste brought death into the world, and all our woe with loss of eden, till one greater man restores us and regain the blissful seat.

अवज्ञा (परमात्मा के आदेश की अवज्ञा) ही मानव-जाति की मृत्यु, दु:ख-परम्परा, स्वर्ग से पतन, परमात्मानुग्रह से वञ्चित होने की स्थिति एवं परमात्मा के शाप का कारण बनी। इसके उत्प्रेरक एवं सहयोगी कारण हैं—शैतान के परामर्श को मानना, पत्नी के परामर्श को मानना, ज्ञान के फल को खाने का लालच एवं परमात्मा के विरुद्ध विद्रोह (Revolt)।

यदि और सूक्ष्मता से विचार करें तो मानव जाति के पतन (Fall of the man), दु:ख (Woe) एवं मौत का अन्य कारण भी है और वह है—निषिद्ध वृक्ष के ज्ञान के फल खाकर ईश्वर के समान बनने की महत्त्वाकांक्षा = ईश्वर के साथ बराबरी की लालसा या अनल हक की भावना और फल का आस्वादन। इस प्रकार—मानव जाति के पतन, दु:ख, मृत्यु एवं शापग्रस्तता का कारण है—

1. परमात्माज्ञा की अवज्ञा (परमात्मा के विरुद्ध विद्रोह),
2. शैतान के परामर्श पर अमल (शैतान द्वारा परमात्मा से बदला लेने एवं उनसे

ईर्ष्या करने के कारण रचित षडयन्त्र में सहभागिता)।

3. पत्नी के परामर्श पर अमल।

4. ज्ञान के फल को खाने का लालच एवं उसके परिणाम की जिज्ञासा।

5. मनुष्यत्व से ऊपर ईश्वरत्व के स्तर पर आरोहरण की महत्त्वाकांक्षा।

6. ज्ञानफल का आस्वादन।

बौद्धों की दृष्टि—बौद्ध पुनर्जन्मवादी तो थे, किन्तु ईश्वर को मानते ही नहीं थे; अत: परमात्मा के शाप की कहानी या मान्यता तो उन्हें स्वीकार हो ही नहीं सकती थी (तथा बुद्ध इस्लाम एवं ईसाई धर्म की उत्पत्ति के सैकड़ों वर्ष पूर्व जन्म ले चुके थे। अत: इन धर्मों एवं उनकी मान्यताओं का बुद्ध के काल में अस्तित्व भी नहीं था); अत: उन्होंने दु:खों का कारण 'अविद्या' बताया।

दु:खों का कारण और बौद्ध-दृष्टि—भगवान् बुद्ध ने कहा कि हमारे दु:खों का मूल कारण अविद्या है। उनके अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद एवं दु:खों की कार्य-कारण परम्परा इस प्रकार है—

1. अविद्या से संस्कार	7. वेदना से तृष्णा
2. संस्कार से विज्ञान	8. तृष्णा से उपादान
3. विज्ञान से नामरूप	9. उपादान से भव
4. नामरूप से षडायतन	10. भव से जाति
5. षडायतन से स्पर्श	11. जाति से जरा
6. स्पर्श से वेदना	12. जरा से मरण (मृत्यु)

दु:खों का कारण और जैन-दृष्टि—जैन दर्शन के अनुसार जीव का कार्माण वर्गणा (कर्मपुद्गलों का आत्मा से लिपट जाना। आस्रव) के माध्यम से अजीव से संयोग होना ही दु:ख का कारण है।

शाक्त दर्शन की दृष्टि—शाक्त दर्शन मृत्यु, दु:ख-सुख, स्वर्ग से पतन, महत्त्वाकांक्षा, लालसा एवं लालच, परमादेश की अवज्ञा को कारण-कार्य (Causation) मानता ही नहीं। इस सब में अन्त:सम्बन्ध भी नहीं मानता। शाक्त दर्शन तो सुख-दु:ख, जीवन-मृत्यु एवं उन्नति-अवनति आदि को स्वेच्छया कल्पित विश्वनाट्य के स्वाभिनय की भूमिकायें मानता है। वह इन्हें सत्य मानने को तैयार नहीं है। वह तो सुख-दु:ख, बन्धन-मोक्ष, जन्म-मृत्यु आदि सभी को आत्मगोपनात्मक विश्वक्रीड़ा या अभिनय के कल्पित अंशमात्र मानता है। ठीक भी है, आनन्दकन्द की सृष्टि में (विदेशी) दु:ख कहाँ से आ गया? अमरत्व (अमृतत्व) की अमरावती में मृत्यु-जैसी पराई वस्तु कैसे प्रवेश कर सकती है? चिन्मय जगत् में जड़ता को प्रवेश कैसे प्राप्त हो सकता है? जब रंगमञ्च पर अभिनेता सुरेश 'राम' का अभिनय करते हुए सीता के विरह में रोता है तो क्या वह दु:ख की अनुभूति करता है? जब वह अयोध्या के राजसिंहासन पर

अभिषिक्त होता है तो क्या आनन्दातिशय में डूब जाता है? नहीं। वह जानता है कि ये सब तो अभिनय की भूमिकायें हैं। न सीता का मुझसे कोई सम्बन्ध ही है, न उनसे कभी वियोग ही हुआ और न तो मैं अयोध्या का राजा ही बना। ये सारा बनना-बिगड़ना, सुख-दु:ख एवं संयोग-वियोग आदि तो मेरे मूल व्यक्तित्व एवं अस्तित्व से पूर्णतया अछूते (अस्पृष्ट) हैं। मैं राम नहीं, सुरेश हूँ। शाक्त दर्शन एवं त्रिक शैव दर्शन इसी सिद्धान्त में विश्वास रखता हुआ कहता है कि सारा वैश्विक जीवन एवं उसकी सारी संवेदनायें मात्र अभिनय हैं।

1. नर्तक आत्मा (आणवोपाय) 3.9 (शि. सू.)
2. रङ्गोऽन्तरात्मा (आणवोपाय) 3.10 (शि. सू.)

आचार्य क्षेमराज इसी बात को अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्ति देते हैं—

नृत्यति अन्तर्निगूहितस्व-स्वरूपावष्टम्भमूलं तत्तज्जागरादिनानाभूमिकाप्रपञ्चं स्वपरिस्पन्द-लीलयैव स्वभित्तौ प्रकटयति इति नर्तक आत्मा।

श्री भट्टनारायण भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

विसृष्टशेषसद्बीजगर्भं त्रैलोक्यनाटकम्।
प्रस्ताव्य: हरसंहर्तुं त्वत्त: कोऽन्य: कवि: क्षम:।।

प्रत्यभिज्ञा में भी कहा गया है—

संसारनाट्यप्रवर्तयिता सुप्ते जगति जागरूक: एक एव परमेश्वर:। एवंविधस्य अस्य जगन्नाट्यनर्तकस्य भूमिकाग्रहणपदबन्धस्थानमाह—रङ्गोऽन्तरात्मा। रज्यतेऽस्मिन् जगन्नाट्य-क्रीड़ाप्रदर्शनाशयेतात्मना इति रङ्ग:। तत्तदभूमिका ग्रहणस्थानम् अन्तरात्मा, सङ्कोचावभास-सतत्त्व: शून्यप्रधान: प्राणप्रधानो वा पुर्यष्टकरूपो देहापेक्षया अन्तरो जीव:। ....स्पन्द-क्रमेण जगन्नाट्यमाभासयति।

ये विश्वाभिनेता अपने (अभिनयातीत) स्वस्वरूप को जानते भी हैं—

योगिनश्चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि हि संसारनाट्यप्रकटनप्रमोदनिर्भरं स्वस्वरूपम् अन्तर्मुखतया साक्षात्कुर्वन्ति।

परमात्मा शैलूष (रंगमञ्च का नट = अभिनेता) है। महेश्वरानन्द कहते हैं—

विश्वोद्यानविरूढानि गन्धप्रमुखानि सुगन्धीनि पुष्पाणि पञ्चाप्याजिघ्रन् क्रीड़ति त्रैलोक्यधूर्तो शिव:।[1]

अर्थात् त्रैलोक्यधूर्त शिव विश्वोद्यान में पञ्चविषयों का आस्वादन करता हुआ अपनी विश्वाभिनयात्मक लीला में धूर्त अभिनेता की भाँति आनन्दित होकर सानन्द खेल खेल रहा है। आशय यह है कि विश्वजीवन एक रंगमञ्चीय लीला या अभिनय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

1. महार्थमञ्जरी।

उमानन्दनाथ की दृष्टि—महान् तान्त्रिक आचार्य उमानन्दनाथ ने परा शक्ति को एक ऐसी महत्तम सत्ता बताया, जिसके लिए विश्व में कोई अदृष्ट न हो; एक ऐसी साम्राज्ञी बताया, जिसका कोई गुलाम न हो एवं एक ऐसी अप्रतिम एवं लोकोत्तर ज्ञान शक्ति बताया (या सर्वज्ञ बताया), जिसे कि ऐसा कोई शास्त्र ही नहीं हो, जो कि उसे परिज्ञात न हो—

यस्यादृष्टो नैव भूमण्डलांशो यस्यादासो विद्यते न क्षितीशः।
यस्याज्ञातं नैव शास्त्रं किमन्यैः यस्याकारः सा पराशक्तिरेव।।[1]

शक्तिसङ्गमतन्त्रकार की दृष्टि—शक्तिसङ्गमतन्त्र में तो यहाँ तक लिखा गया है कि महेशानी परा शक्ति वह परात्परा शक्ति है एवं ऐसी जनयित्री महाशक्ति है, जिसकी सृष्टि-क्रिया से अस्पृष्ट इस जगत् में कोई सत्ता ही न हो। यहाँ तक कि स्वयं परात्पर शिव अर्थात् शक्ति के प्रियतम एवं आदिनाथ सदाशिव भी उसकी सृष्टि-क्रिया के ही एक अंग हों। उस महाशक्ति ने ही जगत् की सृष्टि हेतु अपने मन से स्वयं अपने पति आदिनाथ शिव को भी जन्म दिया—

तं विलोक्य महेशानि! सृष्ट्युत्पादनकारणात्।
आदिनाथं मानसिकं स्वभर्त्तारं प्रकल्पयेत्।।

शक्ति ही सर्वोद्भाविका, सर्वजनयित्री, सर्वप्रभवा एवं सर्वजननी है। वही विश्व की अप्रतिम सृजनकर्त्री, सृष्टि का आदिकारण, सृष्टिस्वरूपा, सृष्टिसञ्चालिका, सृष्टि का आधार, स्थितिकर्त्री, संहारिका, अपनी इच्छा को ही सृष्टि के रूप में रूपान्तरित करने वाली, सृष्टिगर्भा, सर्वव्यापिका, सर्वानुस्यूत, अणु-अणु में स्पन्दायमान, जगन्माता एवं परम तत्त्व है। वह सर्वावस्थित है—

ततो हि तिष्ठे भुवनानु, अहं सुवे, अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।
अहं सोममाह्नसंविभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम। (देवीसूक्त)

शिव और शक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध

शिव और शक्ति के द्वैत में अद्वैतावस्थान—महाराष्ट्र के महान् नाथपन्थी योगी ज्ञानेश्वर ने अपनी एक प्रसिद्ध रचना में शिव-शक्ति के अद्वैतभाव को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

परमेश्वर के कारण ही शक्ति परमेश्वरी है, किन्तु उस परमेश्वरी के विना परमेश्वर की कोई सत्ता ही नहीं है। शिव और शक्ति इतने विराट हैं कि उनके (शिव और शक्ति के) रहने के लिए यह अनन्त एवं विराट विश्व छोटा है, किन्तु वे इतने छोटे भी हैं कि छोटे से अणु में भी बड़े आनन्द से रहते हैं। वे एक-दूसरे को अपना जीवन समझते हैं और पारस्परिक सहयोग के विना घास के पत्ते की भी रचना नहीं करते। जब परमेश्वर

1. नित्योत्सव

सोने चले जाते हैं तब शक्ति जागती रहती है और दोनों की भूमिकाओं का निष्पादन करती है। 'एक' ही ने द्वैत के लिए अपने को दो भागों में विभाजित कर लिया है। दोनों अपने स्वेच्छावश विभिन्नीकृत स्वरूपों को एक में लय करने का प्रयास कर रहे हैं। दोनों एक-दूसरे के ज्ञेय पदार्थ हैं; दोनों एक-दूसरे के लिए ज्ञाता हैं। समस्त विश्व इसी एक तत्त्व की मिथुनाकार परिणति (युगलभाव दाम्पत्यभाव) का परिणाम है।[1]

दो वीणायें (शिव-शक्ति) केवल एक ही स्वर छेड़ रही हैं। पुष्प (शिव-शक्ति) तो दो हैं; किन्तु उन दोनों पुष्पों का सौरभ एक है। यद्यपि दीपक तो दो हैं; किन्तु दोनों का प्रकाश एक है। दोनों ओष्ठ केवल एक ही शब्द बोलते हैं। हैं तो दो आँखें (शिव और शक्ति); किन्तु दृष्टि केवल एक है। दोनों का दृश्य एवं दर्शन एक है। इसी प्रकार दोनों ही मिलकर केवल एक ही विश्व का सृजन करते हैं। दोनों परतत्त्वों का एक दम्पति द्वैत को व्यक्त तो कर रहा है, किन्तु वह उसी प्रकार का द्वैत है, जैसे कि भोजन में विविधान्नों की अनेकता में भी एकता। सती शक्ति विना पति शिव के नहीं रह सकती। उसके (शक्ति के) विना सर्वक्रियावान का कोई अस्तित्व ही नहीं है। दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता; क्योंकि उसके स्वामी का अस्तित्व उसके कारण एवं उसका अस्तित्व उसके स्वामी के कारण है।

हम शर्करा एवं उसकी मिठास को पृथक्-पृथक् नहीं कर सकते। हम कपूर और उसकी सुगन्ध को एक-दूसरे से पृथक् नहीं कर सकते। किरणों को एकत्रित करने में उसके ताप को कोई उससे पृथक् नहीं कर सकता। हम शक्ति को पकड़ना चाहें तो शिव अपने-आप पकड़ में आ जायेगा। सूर्य केवल अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है; किन्तु उसका प्रकाश मात्र सूर्य ही है, उससे पृथक् कोई अन्य नहीं। एक सर्वोच्च सौन्दर्य सत्ता सारे वैविध्यों एवं अनेकताओं को निगलकर ही चमकती है।

पदार्थ ही अपने प्रतिबिम्ब का कारण है। प्रतिबिम्ब ही पदार्थ के अनुमान का साधन या कारण है। इसी प्रकार एक सत्ता ही दो के रूप में प्रकाशित होती है। शक्ति द्वारा ही समस्त शून्य का सार 'पुरुष' बन सका। शक्ति ने शिव के माध्यम से ही अपनी सत्ता प्राप्त की। शिव ने स्वयमेव अपनी प्रियतमा को स्वरूप प्रदान किया; क्योंकि शक्ति के विना शिव अपने अस्तित्व को खो देता है।

यद्यपि शक्ति का स्वरूप ही शिव का कारण है और शिव का समस्त वैभव (Glory) विश्व के रूप में व्यक्त हुआ है, तथापि शक्ति का रूप शिव के द्वारा अपने भीतर से निर्मित किया हुआ है—Her form itself is created by him out of himself. उस शक्ति ने अपने स्वरूप-हीन (निराकार) पति को स्वरूप एवं नाम-रूप प्रदान किया।

---

1. अमृतानुभव

शक्ति ने अपने पति के यश-गौरव को अपने शरीर को गलाकर (निमज्जित करके विश्वरूप में परिणत करके) बढ़ाया, जबकि शिव ने अपने को छोटा बनाकर शक्ति को सर्वत्र ख्याति प्रदान की।

शिव अपनी प्रियतमा को (प्रेम के कारण) देखने हेतु स्वरूप धारणा करता है। यदि वह शक्ति को नहीं देख पाता तो अपने को दूर फेंक देता है। वह शक्ति के द्वारा ही विश्व का रूप धारण करता है। वह शक्ति के विना नंगा है।

वह (शिव) इतना सूक्ष्म है कि व्यक्त होने पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता; किन्तु वह शक्ति के द्वारा समस्त विश्व का स्वरूप धारण कर लेता है।

शिव और शक्ति का अपृथक्त्व—ज्ञानेश्वर कहते हैं कि जब शक्ति का पति (शिव) सोता है, तब शक्ति समस्त चराचर जगत् को जन्म देती है; किन्तु जब शक्ति विश्राम करती है तब स्वयं शिव भी लुप्त हो जाता है।

जब शिव अपने को छिपा लेता है तब उसको शक्ति के विना ढूँढ़ा नहीं जा सकता। दोनों एक-दूसरे के दर्पण हैं।

शिव अपने आनन्द का आस्वादन शक्ति को ही आलिंगित करके करते हैं। यद्यपि वह सर्वानन्दभोक्ता है, किन्तु विना शक्ति किसी भी आनन्द का आस्वादन नहीं कर सकता।

शक्ति शिव का रूप (Form = स्वरूप = आकार) है; किन्तु शक्ति का सौन्दर्य केवल शिव के कारण है। वे किसी भी महाभोज का आनन्द आपस में विलीन होकर ही करते हैं।

शिव एवं शक्ति दोनों आपस में मिलकर उसी प्रकार एक सत्ता के रूप में अवस्थित हैं, जैसे कि वायु एवं उसकी गति, स्वर्ण एवं उसकी चमक।

शक्ति शिव से उसी प्रकार अपृथक् है, जैसे कि कस्तूरी से उसकी सुगन्ध एवं अग्नि से उसकी दाहकता।

यदि रात्रि एवं दिन सूर्य के घर जायँ तो दोनों का अस्तित्व नष्ट हो जाएगा, ठीक इसी प्रकार उन दोनों का द्वैत भी अपने तात्त्विक स्वस्वरूप में लुप्त हो जाता है।

शिव और शक्ति नाम-रूप के सुस्वादु व्यञ्जन को निगलकर स्वनिहित सत्ता को प्रकाशित करते हैं।

शिव और शक्ति दोनों परस्पर एक-दूसरे का आलिंगन करके अद्वैतात्मक ऐक्य में लयीभूत हो जाते हैं। यह लयीभूतता उसी प्रकार की है, जैसे कि रात्रि की तमिस्रा सूर्योदय के प्रकाश में रूपान्तरित हो जाती है।

जब द्रष्टा उसे देखने चलता है तब द्रष्टा एवं उसकी दृष्टि दोनों लुप्त हो जाती है।



तृतीय अध्याय

शाक्त सम्प्रदाय और शक्ति-साधना : एक विहंगमावलोकन

यदि प्राचीन तान्त्रिक सम्प्रदायों पर दृष्टिपात करें तो उनके लगभग सत्रह भेद मिलते हैं। निम्नांकित ये सभी सम्प्रदाय किसी न किसी प्रकार शक्तिवादी अवश्य थे—

1. कुल मार्ग (कौलमत)
2. पाशुपत मत
3. लाकुल मत
4. कापालिक मत
5. सौम मत
6. महाव्रत मत
7. जंगम मत
8. कारुणिक या कारुक मत
9. कालानल मत
10. कालामुखमत
11. भैरवमत
12. वाममत
13. भट्टमत
14. नन्दिकेश्वरमत
15. रसेश्वरमत
16. सिद्धान्तमत (शैव)
17. सिद्धान्तमत

शाक्तों के मुख्य सम्प्रदाय एवं आचार—

1. समयमत (समयाचार)
2. कौलमत (कौलाचार)
3. मिश्रमत (मिश्राचार)

श्रीविद्या के सम्प्रदायों की संख्या बारह है—

1. मनु सम्प्रदाय
2. चन्द्र सम्प्रदाय
3. कुबेर सम्प्रदाय
4. लोपामुद्रा सम्प्रदाय
5. मन्मथ सम्प्रदाय
6. अगस्त्य सम्प्रदाय
7. अग्नि सम्प्रदाय
8. सूर्य सम्प्रदाय
9. इन्द्र सम्प्रदाय
10. स्कन्द सम्प्रदाय
11. शिव सम्प्रदाय
12. क्रोधभट्टारक दुर्वासा सम्प्रदाय

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।।

इन सभी के पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय थे। नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली में कहते हैं कि श्रीविद्या की मात्र दो सन्तानें थीं—कामराज सन्तान एवं लोपामुद्रा सन्तान—

कामराजसन्तानक्रमस्तु सकलविद्यानुसन्ध्यविच्छिन्न इति प्राचीनगुरवोऽप्याचक्षते। लोपामुद्रासन्तानक्रमस्तु विच्छिन्नतया प्रवर्त्तत इति वर्णयन्ति।

श्रीविद्या की विविध विद्यायें—श्रीविद्यान्तर्गत लोपामुद्रा विद्या, क्रोधमुनि विद्या (दुर्वासा), कौबेरी विद्या, मानवी विद्या, चान्द्री विद्या, आगस्त्य विद्या, नन्दिविद्या, प्रभाकारी विद्या, वैष्णवी विद्या, षण्मुखी विद्या, परमशिव विद्या, कामराज विद्या आदि द्वादश विद्यायें हैं। इनमें प्रथम और सर्वोपरि महत्त्व की विद्या है—कामराज विद्या—कादिमत एवं दूसरी सर्वाधिक महत्त्व की विद्या है—लोपामुद्रा विद्या—हादिमत। इन्हीं दोनों को नटनानन्दनाथ ने चिद्वल्ली में श्रीविद्या की दो सन्तानें कहा है।

कादि विद्या, हादि विद्या एवं सादिविद्या अधिक प्रख्यात विद्यायें हैं। इनमें दो चार विद्याओं का स्वरूप इस प्रकार है—

लोपामुद्रा विद्या—हसकहलह्रीं।

चान्द्री विद्या—हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।

मानवी विद्या—हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, सकलह्रीं।

कौबेरी विद्या—हसकहलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।

कुलाचार क्या है? कौलों का आचार ही कुलाचार है। सेतुबन्धकार भास्करराय का कथन है कि परशुरामकल्पसूत्र में 'व्यवहारदेशास्वात्मात्' से 'परे तु शास्त्रानुशिष्टाः' तक वर्णित आचार ही कुलाचार है। कौलज्ञानी कौलज्ञान को सर्वोत्तम मानते हुए कहते हैं कि शैव, वैष्णव, दौर्ग, आर्क और गाणपत्य आदि मन्त्र द्वारा चित्त शुद्ध होने पर ही कौल ज्ञान का प्रादुर्भाव हो पाता है। इसके अतिरिक्त पुराकृत तप-दान-यज्ञ-तीर्थ-जप-व्रत आदि से शुद्धीकृत चित्त में ही कौल ज्ञान प्रकट होता है—

पुराकृततपोदानयज्ञतीर्थजपव्रतैः ।
शुद्धचित्तस्य शान्तस्य धर्मिणो गुरुसेविनः।
अतिगुप्तस्य भक्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते।।

शाक्त सम्प्रदाय और शक्ति की साधना

शाक्त सम्प्रदाय—शाक्त सम्प्रदाय शक्ति को परब्रह्म मानकर (परात्पर परम तत्त्व मानकर) उसकी साधना करने वालों का सम्प्रदाय है। सम्मोहनतन्त्र के अनुसार शाक्त सम्प्रदाय के नौ आम्नाय और चार सम्प्रदाय हैं।

शाक्त सम्प्रदाय की शाखायें—इसकी चार शाखायें हैं—

1. केरल शाखा या केरलीय सम्प्रदाय।
2. काश्मीर शाखा या काश्मीरी सम्प्रदाय।

3. गौड़ीय शाखा या गौड़ीय सम्प्रदाय।

4. विलासी शाखा या विलासी सम्प्रदाय।

वर्तमान काल में बंगाल एवं कामरूप ही प्रमुख शाक्त-केन्द्र हैं। केरल भी शाक्तोपासना का केन्द्र है।

आचार-विचार की दृष्टि से शाक्तों के तीन सम्प्रदाय हैं—कौल सम्प्रदाय, मिश्र सम्प्रदाय एवं समयी सम्प्रदाय।

कौल सम्प्रदाय—कुल के उपासक ही 'कौल' कहलाते हैं। कौलमार्गी वाममार्गी तान्त्रिक हैं। कौलमार्गियों की दृष्टि में पुरुषार्थचतुष्टय में अर्थ और काम की अधिक महत्ता है। ये योग-भोगसाहचर्यवादी हैं। कुलशक्ति कुण्डलिनी शक्ति है। उसकी उपासना में विशेष श्रद्धा रखने के कारण भी इन्हें 'कौल' कहते हैं। कौलमार्गियों की दो शाखायें हैं—पूर्व कौल एवं उत्तर कौल।

कौल शब्द की परिभाषा—आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'कुः' का अर्थ है—पृथ्वी तत्त्व। यह पृथ्वी तत्त्व जहाँ लयीभूत है, उस स्थान को 'कुल' कहते हैं। क्योंकि चक्रों में मूलाधार चक्र में पृथ्वीतत्त्व लयीभूत है; अतः कुल का अर्थ है—मूलाधार चक्र।

लक्ष्मीधर फिर कहते हैं कि लक्षणा की दृष्टि से अर्थ ग्रहण करने पर सुषुम्ना मार्ग भी 'कुल' ही है। इस दृष्टि से आधारचक्र एवं सुषुम्ना मार्ग एवं उसमें स्थित कुण्डलिनी शक्ति को अपनी साधना के केन्द्र में रखने वाले शाक्त उपासक ही कौल हैं। इसी दृष्टि से आचार्य लक्ष्मीधर का कथन है कि—

कौलाः कुलपूजकाः आधारसेवका इति कौलत्वं तेषामिति रहस्यम्।

सुषुम्ना के द्वार पर ही कुण्डलिनी शक्ति है और चक्र की दृष्टि से मूलाधार चक्र में है; अतः कुण्डलिनी एवं आधारचक्र को प्रमुखता देने वाले साधक 'कौल' कहे गए हैं।

कलियुग के प्रभाव से उपदेश-परम्परा का ह्रास होने की स्थिति में भगवान् शिव ने ऋषि दुर्वासा से त्रिकमत के प्रचार का आदेश दिया। दुर्वासा ने तीन सिद्धों को सम्प्रदाय-प्रचारार्थ आदिष्ट किया। दुर्वासोपदिष्ट तान्त्रिक शाखायें हैं—त्र्यम्बक शाखा (अद्वैतवाद), आमर्दक शाखा (द्वैताद्वैतवाद) एवं श्रीनाथ शाखा (द्वैतवाद)।

त्रैयम्बक सम्प्रदाय के सिद्ध अद्वयवादी थे। सोमानन्द इन्हीं दुर्वासा के मानस पुत्र त्र्यम्बक की 14वीं पीढ़ियों के अनन्तर उत्पन्न 15वें मानस पुत्र संगमादित्य (→ वर्षादित्य—अरुणादित्य—आनन्द) की पीढ़ी में आनन्द के पुत्र थे।

उक्त दुर्वासोपदिष्ट मत के मठत्रय से भिन्न एक कामरूप पीठ भी था। इसे प्राचीन ग्रन्थों में 'तुरीय सन्तति' के नाम से कहा गया है। इसीलिये मत्स्येन्द्रनाथ को तुरीयनाथ कहा गया है। इसे ही कुलमार्ग, कौल मार्ग, अतिमार्ग, कालीनय, अर्धत्र्यम्बक मार्ग

आदि कहा गया है। 'कौलात् परतरं न हि' कहकर कौलमत को श्रेष्ठतम तान्त्रिक मत स्वीकार किया गया है।

कौल सम्प्रदाय की पूर्व कौल एवं उत्तर कौल नामक शाखाओं के अतिरिक्त एक अन्य शाखा भी है—सांसारिक कुलाम्नाय। इसके प्रवर्तक अल्लट या भावरक्त थे। अल्लट पाशुपत सम्प्रदाय के साधु विश्वरूप के शिष्य प्रशस्त के शिष्य थे। स्पष्ट है कि पाशुपत मत एवं कौल सम्प्रदाय का प्राचीन सम्बन्ध है। विश्वरूप लाकुलाम्नाय के गुरु थे।

भावचूड़ामणि की दृष्टि—भावचूड़ामणि में कहा गया है कि जो साधक कीचड़ और चन्दन, पुत्र और शत्रु, श्मशान और भवन तथा काञ्चन और तृण में कोई भेद न देखता हो, वही कौल है—

कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चने-तृणे।
न भेदो यस्य देवेशि! स कौलः परिकीर्त्तितः।।

श्यामारहस्य की दृष्टि—श्यामारहस्य में कहा गया है कि जो शाक्त साधक आन्तरिक धरातल पर तो शाक्त दिखाई पड़ें, किन्तु बाह्य धरातल पर शैव तथा सभास्थलों में वैष्णव दिखाई पड़ें, वे ही नानारूपधारी साधक 'कौल' नाम से पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं—

अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले।।

भावरहस्यकार की दृष्टि—भावरहस्य में कहा गया है कि महाशक्तिस्वरूपिणी कुण्डलिनी ही कुलतत्त्व है। जो शुद्ध सत्त्वमय एवं विभु तत्त्व है, वही अकुल तत्त्व है। जो इन दोनों में परमतत्त्व का साक्षात्कार करते हैं, वे वर्णभेद-रहित साधक परम कुलीन (परम कौल) कहलाते हैं—

कुलं कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।
अकुलन्तु शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्त्वमयो विभुः।।
तयोस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः।
कुलीनः परमः सोऽस्ति वर्णभेदविवर्जितः।।

ज्ञानसंकलिनी तन्त्र की दृष्टि—ज्ञानसंकलिनी तन्त्र में कहा गया है कि वेद शास्त्र एवं पुराण तो सामान्य वेश्याओं की भाँति हैं। यह शाम्भवी कुलविद्या (कौली परम्परा की विद्या) ही गुप्त कुलवधू की भाँति समादृता एवं श्रद्धेया है—

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
इयन्तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव।।

ज्ञानार्णवतन्त्र की दृष्टि—ज्ञानार्णवतन्त्र वामाचारी दृष्टि का मूल्यांकन इस प्रकार करता है—

कौलमिश्रपथौ हेयौ नित्यं गौरि द्विजातिभिः।

शाक्तों के तीन आचार या मार्ग (या सम्प्रदाय) हैं—कुलाचार, मिश्राचार एवं समयाचार। इनमें समयाचार दक्षिणमार्गी है।

कौलों का पञ्च मकार—आगमसार नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन—इन पञ्च मकारों का सेवन करने से पुनर्जन्म नहीं होता—

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं कृत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

पञ्च मकारों का तात्त्विक स्वरूप

मद्यतत्त्व— सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वानन्दमयस्तां यः स एव मद्यसाधकः।।
यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्त्तितम्।।

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र से क्षरित अमृतधारा एवं ब्रह्मसम्बन्धी आनन्दात्मक ज्ञान ही 'मद्य' है।

मांसतत्त्व— माशब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवि! स एव मांससाधकः।
मां सनोति हि यत्कर्म तन्मांसं परिकीर्त्तितम्।
न च कायप्रतीकन्तु योगिभिर्मांसमुच्यते।।

अर्थात् खेचरी-साधन के समय जिह्वा की जड़ को काटकर जो जिह्वा का छेदन-दोहन किया जाता है, वह करना ही मांसभक्षण है या 'मा' अर्थात् रसना के अंशभूत वाक्यों का जो भक्षण करता है अर्थात् वाक्संयमी है, वही मांसभक्षक है। या जो सत्कर्मों को परब्रह्म को समर्पित करता है, उस समर्पणरूप मांस का निष्पादक ही मांससाधक है।

मत्स्यतत्त्व— गंगायमुनयोर्मध्ये द्वौ मत्स्यौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।।
मत्स्यमानं सर्वभूते सुखदुःखमिदं प्रिये।
इति यत्सात्त्विकं ज्ञानं तन्मत्स्यः परिकीर्त्तितः।।

अर्थात् इडा-पिंगला के मध्य सञ्चरित श्वास-प्रश्वासरूप मत्स्यों का भक्षण ही मत्स्य-भक्षण है या समस्त प्राणियों में सुख-दुःखात्मक समज्ञानरूप तात्त्विक ज्ञान का साधन ही मत्स्यभक्षण है।

मुद्रातत्त्व— सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलः पारदोपमः।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः ।
अतीवकमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते।।

अर्थात् सहस्रार की मुद्रिता कर्णिका के भीतर पारदवत् शुभ्र आत्मा का ज्ञानोदय ही 'मुद्रा' है।

सत्संग ही मुक्ति एवं असत्संग ही बन्धन है। यह जानकर असत्संग का त्याग करना ही मुद्रा है—

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्गमुद्रणं यत्तन्मुद्रा परिकीर्तिता।।

मैथुनतत्त्व— मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।
मैथुनाज्जायते सिद्धं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।।

मैथुन ही सृष्टि-स्थिति-लय का कारण है; अतः यह परम तत्त्व है। मैथुन से ही सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

'नाद' शिव और शक्ति का अन्तःसम्बन्ध या मैथुन है और इसी नाद से सृष्टि-स्थिति-लय की क्रियायें सञ्चालित होती हैं।

शिव-शक्ति का सामरस्य भी मैथुन ही है। देहस्थ कुलकुण्डलिनी का मूलाधार से चलकर सहस्रार में परमशिव के साथ मिलन भी मैथुन ही है—

कुलकुण्डलिनी शक्तिदेहिनां देहधारिणी।
तया शिवस्य संयोगं मैथुनं परिकीर्त्तितम्।।

मैथुन साधनांगों की समष्टि का नाम है; यथा—

(क) आलिंगन—आलिङ्गनं भवेन्न्यासः।
(ख) चुम्बन—चुम्बनं ध्यानमीरितम्।
(ग) आवाहन—आवाहनं शीत्कारः।
(घ) अनुलेपन—स्यान्नैवेद्यमनुलेपनम्।।
(ङ) रमण—जपनं रमणं प्रोक्तम्।
(च) दक्षिणा—रेतपातश्च दक्षिणा।

सर्वथैव त्वया गोप्यं मम प्राणाधिकप्रिये।

महानिर्वाणतन्त्र की दृष्टि—मद्यपान, मांसभक्षण एवं मैथुन आदि क्रियाओं में दोष नहीं है; दोष तो इन क्रियाओं की उत्प्रेरक प्रवृत्तियों में है। ये क्रियायें तो प्राणिमात्र में हैं। इनसे निवृत्ति ही महान् उपलब्धि या महाफल है—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

योगभोगसाहचर्यवाद

कौल योगभोगसाहचर्यवादी हैं; इसीलिए कौल मत में इसे वरेण्य पथ कहा गया है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोग:।
शिवापदाम्भोजयुगार्चकाणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

सारांश यह कि जहाँ भोगों का विधान है, वहाँ मोक्ष के लिए कोई स्थान नहीं है तथा जहाँ मोक्ष की महत्ता है, वहाँ भोग के लिए कोई स्थान नहीं है। शिवा के चरणकमलों में भोग एवं मोक्ष दोनों हैं। यह भी सत्य है—

श्रीसुन्दरीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

ताराहस्य की दृष्टि—ब्रह्मानन्दगिरि यह कहते हैं कि पञ्चमकारों का उपयोग स्वच्छन्द एवं अनियन्त्रित मन की दासता नहीं है। यदि कोई इस मानसिक दशा में इनका उपयोग करता है तो वह कौल भ्रष्ट है—

जपहोमविहीनं यद् भक्तिहीनं कुलार्चनम्।
प्रकटं साधकानाञ्च असन्तुष्टश्च साधक:।
एवं धर्मयुत: कौलो भ्रष्ट: कौल: प्रकीर्त्तित:।।

उनकी दृष्टि में शक्तिजुष्ट मद्य पीना चाहिये। वीरोच्छिष्ट भोजन को प्रसाद मानकर ग्रहण करना चाहिये। अन्य पान करने पर इसे पशुपान माना जायेगा—

शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टन्तु चर्वणम्।
वीरोच्छिष्टात् पृथक् पाने पशुपानं प्रकीर्त्तितम्।।

कौलों की दृष्टि में (जैसा कि ब्रह्मनन्द गिरि कहते हैं) भैरवी चक्र की स्थिति अनिच्छाकृत (कामेषणारहित) शक्तियोग (नारीप्रसंग) विहित है, किन्तु कामेषणाजन्य शक्तियोग निषिद्ध है—

अनिच्छया शक्तियोगं चक्रे वापि च मैथुनम्।
कामत: शक्तियोगं वा न ध्यानं दैवते न वा।।

तारानिगमतन्त्र की दृष्टि—इस ग्रन्थ के अनुसार तो कर्तृत्व-भोक्तृत्व एवं अहंकृति से शून्य होकर किये गये कार्य एवं आचरणों में कोई पाप-पुण्य नहीं है; क्योंकि उस समय तो व्यक्ति में आत्मज्ञान की निम्न स्थिति रहती है—

नाहं कर्ता कारयिता न च मे नाहं भोक्ता भोजयिता वा न च भोज्यम्।
अहं चिदात्मा स्वयमेव तेज: स्वयं गुरुर्विष्णुरहं सरूप:।।

कौलों के पञ्चम तत्त्व का आदर्श स्वरूप—कौल साधकों ने एक तो कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ शक्तिमान के साथ सामरस्य होना ही मैथुन माना है, जो कि शिव-शक्तिसमायोग या मोक्ष का अपर पर्याय है; दूसरे उन्होंने इसे व्यावहारिक (शारीरिक) स्तर पर भी आदर्शोन्मुख करने हेतु नियम तथा प्रतिबन्ध नियत कर रक्खे हैं; यथा—

योनिमध्ये शतं जप्त्वा प्रवेशं कारयेद् बुधः।
महायोनिमयीं देवीं पार्वतीं परिभावयेत्।।

स्वयं शिवस्वरूपः स्यादात्मानं शिवरूपिणम्।
भावयित्वा निर्विकारं स्वयमाढ्यं विघातयेत्।।

साधको भावयेद् यस्तु कामुको वा प्रजायते।
पच्यते नरके घोरे न मोक्षः कोटिजन्मतः।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्विकारो भवेत् स्वयम्।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् पतते नरके स्वयम्।।

यहाँ तो मन के स्रुवा से नाभिचैतन्याग्नि में काम का एवं अक्षवृत्ति का हवन किया जाता है, काम की दासता से अपना पतन किया जाता है। इसीलिये साधक कहता है—

ओं नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानं प्रदीप्यते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।।

ओं धर्माधर्महरैर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्।।[1]

वर्णाश्रम के प्रति नव्य दृष्टि—भैरवी चक्र की स्थिति में तो सभी जातियाँ एक ही हैं; किन्तु उसके बाद वे पृथक्-पृथक् हैं—

प्रविष्टे भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः।
निवृत्ते भैरवी चक्रे तथा सर्वे पृथक्-पृथक्।।[2]

कौलों के लिये निषिद्ध कृत्य—कौलों के लिये निम्न कार्य निषिद्ध हैं—

उपवासं भृगोः पातं सन्ध्या सव्रतधारणम्।
तीर्थपर्यटनञ्चैव कौलः पञ्च विवर्जयेत्।।[3]

कौलमार्गियों के त्रिकोण में आनन्दभैरवी एवं आनन्दमहाभैरव—दोनों की पूजा की जाती है। कौलगण बिन्दु-पूजा के अवसर पर भैरवाकार दिगम्बरत्व का आश्रय ग्रहण करके (स्त्री और पुरुष आपस में एक साथ) पूजा किया करते हैं।

कौल निद्रिता कुण्डलिनी की पूजा किया करते हैं; किन्तु सामयिक नहीं। कुण्डलिनी के जागरण को ही कौल अपनी मुक्ति मानते हैं, किन्तु सामयिक जागृत कुण्डलिनी को सुषुम्नामार्ग से ऊपर चढ़ाकर, षट्चक्र वेधन कराकर उसका सहस्रार में परमशिव से सामरस्य कराने को ही मुक्ति मानते हैं। कुण्डलिनी के साथ साधक की जीवात्मा भी रहती है; अतः इस शिव-शक्तिसामरस्य में साधक की आत्मा भी सहभागिनी रहती है। मन्त्रमहोदधि में कहा गया है कि कौलों की पहचान या लक्षण निम्नाङ्कित है—

1. ताराहस्य
2. ताराहस्य (3.114)
3. ताराहस्य (3.119)

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले।।

तान्त्रिक सम्प्रदायों में त्रिकमत वाले अपने को कौलों से भी श्रेष्ठतर मानते हैं क्षेमराज विज्ञानभैरव में कहते भी हैं—

वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद् वामं तु दक्षिणम्।
दक्षिणात् परतरः कौलः कौलात् परतरं त्रिकम्।।

समयाचारियों ने शुभागमपञ्चक के साक्ष्य पर (सनत्कुमारसंहिता के अनुसार) जिन वेदबाह्य और बाह्यपूजारत तान्त्रिक सम्प्रदायों का नाम गिनाया है, उनमें कौल सम्प्रदाय ही प्रथम है। शेष वेदबाह्य तान्त्रिक सम्प्रदाय हैं—क्षपणक, कापालिक, दिगम्बर, इतिहास, वामक।

कौल कुलकुण्डलिनी की उपासना करते हैं। आचार्य शंकर ने सौन्दर्यलहरी में कुल-कुण्ड में विहार करने वाली उन भगवती कुण्डलिनी का इस प्रकार चित्रण किया है—

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।।

कौलों की दार्शनिक दृष्टि—कौलों के मतानुसार चार अधोमुख त्रिकोण (श्री-चक्र के त्रिकोण) शिवात्मक हैं और पाँच ऊर्ध्वमुख त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं।

कौलमत के अनुसार श्रीचक्र संहारक्रम से गठित होकर नवत्रिकोणात्मक स्वरूप में स्थित है।

64 तन्त्र कुलमार्ग के ही प्रतिपादक हैं—'चतुःषष्टितन्त्राणि कुलमार्ग एव।'

कौलों के द्वारा अनुगमित होने के कारण इसे कौलमार्ग या कौलमत कहा जाता है—'कौलैः भृत्यते अवलम्ब्यत इति कौलमार्गः कौलमतम्।' (लक्ष्मीधराचार्य)

नवव्यूह—कौल महाभैरव को नवात्मा (नवव्यूहात्मक) कहते हैं। ये व्यूह इस प्रकार हैं—

कालव्यूहः कुलव्यूहो नामव्यूहस्तथैव च।
ज्ञानव्यूहस्तथा चित्तव्यूहः स्यात्तदनन्तरम्।।

नादव्यूहस्तथा बिन्दुव्यूहः स्यात्तदनन्तरम्।
कलाव्यूहस्तथा जीवव्यूहः स्यादिति ते नव।।

कौलमत के अनुसार परमात्मा नवात्मक है—

नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।।

परानन्दपराशक्तिश्चिद्रूपानन्दभैरवी ।
तयोर्यदा सामरस्यं सृष्टिरुत्पद्यते तदा।।

आनन्दभैरव एवं परा में तादात्म्य है। दोनों ही समान रूप से नवात्मक हैं। सृष्टि आदि में जब दोनों का प्रयत्न प्रारम्भ होता है तब भैरवी के प्राधान्य के कारण महाभैरवी प्रधान एवं प्रकृति आदि कही जाती हैं। उनका प्राधान्य शेषित्व है। उस समय आनन्द-भैरव अप्रधान रहते है। प्रलय के समय प्रकृति तो तन्मात्राओं में लयीभूत हो जाती है और भैरवी स्वात्मा में अन्तर्भूत हो जाती है। उस समय भैरव शेषी होते हैं और भैरवी शेष। यही है—पूर्व कौलों का मत। उत्तरकौलों के मतानुसार प्रधान ही जगत् का कर्त्ता है। प्रधान होने के कारण उनका शेषभाव नहीं होता।

आचार्य लक्ष्मीधर ने कौलमत की आलोचना की है। भास्करराय ने लक्ष्मीधर के प्रत्याख्यान को सेतुबन्ध में भ्रान्तिमूलक कहा है।

कौल बाह्यपूजावादी हैं। सनत्कुमारसंहिता में कहा भी गया है—

बाह्यपूजा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्।।

बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा वामकास्तन्त्रवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा।।

कौलों की दृष्टि में त्रिकोण ही बिन्दुस्थान है। वह बिन्दु ही आराध्य है। इसलिये कौलगण त्रिकोण में नित्य बिन्दु का समर्चन किया करते हैं।

योनि के दो प्रकार हैं—श्रीचक्रान्तर्गत नवयोनियों के मध्य स्थित योनि एवं किसी सुन्दरी तरुणी नारी की जननेन्द्रियात्मिका योनि। इस द्विविध योनि में से पूर्व कौल श्रीचक्र में स्थित नवयोनियों के मध्यस्थित योनि को भूर्ज-हेमपट्ट-वस्त्र एवं पीठादिक पर बनाकर उसकी पूजा किया करते हैं एवं उत्तर कौल तरुणी की प्रत्यक्ष योनि की पूजा किया करते हैं। सारांश यह है कि पूर्व कौल एवं उत्तर कौल दोनों ही बाह्यपूजारत हैं; आन्तरोपासक नहीं हैं।

त्रिकोणपूजकों की पूजा आधारचक्र एवं कुण्डलिनी की पूजा है। कौल बिन्दुरूपा, निद्रामग्ना कुण्डलिनी शक्ति की ही पूजा किया करते हैं, जो कि तमिस्रा पूजा है। जैसे ही कुण्डलिनी जाग जाती है, उसी समय कौलों की पूजा बन्द हो जाती है; क्योंकि कौलों की दृष्टि में कुण्डलिनी का यह क्षणमात्र के लिये जागृत हो जाना भी मुक्ति ही है। अतः कौल 'क्षणमुक्त' कहलाते हैं।

कौल वामाचार प्रवृत्ति रखने के कारण सुरा, मांस, मधु, मत्स्य आदि द्रव्यों से पूजा किया करते हैं। वे प्रत्यक्ष त्रिकोण में बिन्दुस्थान को पूजते हैं। दिगम्बर और

क्षपणक नारी को उत्तान करके ऊर्ध्व त्रिकोण की पूजा किया करते हैं।[1]

दोनों में भेद स्पष्ट करते हुये लक्ष्मीधरा टीका में लक्ष्मीधर कहते हैं कि—'सुरामांस-मधुमत्स्यादिद्रव्यैः समाराधनं वामाचारप्रवृत्त्या। प्रत्यक्षत्रिकोणे बिन्दुस्थानं मन्मथछत्रं कृत्वा सम्पूजयन्ति, अधोमुखं त्रिकोणं अधोमुखमेव छत्रं पूजयन्ति। दिगम्बरक्षपणकादयस्तु स्त्रियं उत्तानां कृत्वा ऊर्ध्वं त्रिकोणं पूजयन्ति इति रहस्यम्।'

समयमत—सामयिक बाह्य पूजा में विश्वास न करके सहस्रदल कमलपर्यन्त आन्तर पूजा किया करते हैं—'समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या।'

सामयिकों का एकदेशिक मत भी है, जिसमें कि आराधक संवित्कमल (अनाहत चक्र) में परमहंस-मिथुन की पूजा किया करते हैं।

समयी यही भी मानते हैं कि त्रिकोणादि षट्चक्र आधारादिक षट्चक्रों में परिणत हो जाते हैं। श्रीचक्र में त्रिकोण बैन्दवस्थान है। यहाँ बैन्दवस्थान ही सुधासिन्धु या 'सरघा' है।

सामयिक अपनी पूजा की प्रक्रिया में पञ्च साम्य एवं षोढ़ा साम्य स्वीकार करते हैं। पञ्चविध साम्य है—अधिष्ठानसाम्य, अवस्थानसाम्य, अनुष्ठानसाम्य, रूपसाम्य एवं नामसाम्य।

सामयिकों के लिए षट्चक्र-पूजा नियत नहीं है। यहाँ सहस्रदल कमल की पूजा ही नियत है—'तेषां षट्चक्रपूजा न नियता, अपितु सहस्रकमल एव पूजा।' सहस्रदल-कमलपूजा का अर्थ क्या है? सहस्रदलकमल बैन्दवस्थान है। उसके मध्य चन्द्रमण्डल चतुरस्रात्मा है। उसका मध्यगत बिन्दु पच्चीस तत्त्वों से अतीत एवं षड्विंशात्मक शिव-शक्तिमेलनस्वरूप सादाख्य तत्त्व है। अतः समयी मत में बाह्याराधन तो दूर की बात है, यहाँ तो षोडशोपचार पूजा भी ग्राह्य नहीं है—'समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम्। षोडशोपचाररूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव।'[2]

समय मत कौल-मत के पूर्णतः विपरीत मत है। सामयिकों के लिए किसी मन्त्र का कोई पुरश्चरण नहीं है। उनके लिए किसी भी मन्त्र के जप की भी बाध्यता नहीं है। सामयिकों के लिये किसी बाह्य होम का भी विधान नहीं है। सामयिकों के लिए किसी बाह्यपूजा का भी कोई विधान नहीं हैं। यहाँ तो मात्र हृदयकमल ही सर्वस्व है; अतः सारे अनुष्ठान यहीं निष्पादित किए जाते हैं। आचार्य लक्ष्मीधर ने इसी बात को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति जपो नास्ति।' बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्।'

शाक्त सम्प्रदाय के अनुवर्ती साधकों ने 1. गायत्री, 2. षोडशी, 3. भैरवी, 4. छिन्न-मस्ता, 5. बगलामुखी, 6. सरस्वती, 7. महालक्ष्मी, 8. काली, 9. तारा, 10. भुवनेश्वरी,

1. सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरा टीका (लक्ष्मीधराचार्य)।

2. लक्ष्मीधरा (श्लोक 41)।

11. धूमावती, 12. महिषासुरमर्दिनी, 13. दुर्गा, 14. नवदुर्गा, 15. पार्वती, 16. कामेश्वरी, 17. आनन्दभैरवी, 18. कमला, 19. पद्मावती, 20. प्रज्ञा आदि शक्तियों की उपासना की है। इसमें अकेले भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के उपासकों के ही 12 सम्प्रदाय हैं—

1. मनु	5. मन्मथ	9. इन्द्र
2. चन्द्र	6. अगस्त्य	10. स्कन्द
3. कुबेर	7. अग्नि	11. शिव
4. लोपामुद्रा	8. सूर्य	12. क्रोधभट्टारक दुर्वासा

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः।

इसमें कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या आदि प्रसिद्ध विद्याओं की साधना का विधान है। इन बारहों सम्प्रदायों में पञ्चदशी मन्त्र के भी बारह रूप प्रचलित हैं।[1]

मिश्र मत—मिश्रमार्ग के अनुयायी वामाचार एवं दक्षिणाचार दोनों का समन्वय करके साधना करते हैं। ये कर्म एवं उपासना का मिश्रण करके अपनी साधना में प्रवृत्त होते हैं। ये कुण्डलिनी-जागरण की सूक्ष्म यौगिक साधना भी करते हैं और स्थूल मूर्त्ति-पूजा भी। इनके सिद्धान्त ग्रन्थ निम्नाङ्कित हैं—

1. चन्द्रकला	5. कुलेश्वरी
2. ज्योत्स्नावती	6. भुवनेश्वरी
3. कलानिधि	7. बार्हस्पत्या
4. कुलार्णव	8. दौर्वासा

ये आठ तन्त्र इस मत के प्रधान सिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। इस मार्ग के अनुयायी 'दिव्य साधक' कहे जाते हैं।

मिश्रमार्गी मुद्रा, मन्त्र, मण्डल आदि धारणा करते हैं। वे आन्तरिक रूप से वामाचार के प्रति विशेष रुचि रखते हैं। ये धन, सम्पत्ति, नारी एवं अन्य भोगसामग्रियों का मर्यादातिक्रम करके भी उपभोग किया करते हैं। जहाँ कौलाचारी कुलस्त्री, कुलगुरु एवं कुलदेवी की उपासना करते हैं, वहीं मिश्रमार्गी वामाचारी किसी भी नारी को बलपूर्वक लाकर उसकी पूजा करते हैं और पञ्चमकारात्मक साधना अपनाते हैं। इनकी समानता कापालिक शैवों से की जा सकती है।

लक्ष्मीधर ने मिश्रक मत को चन्द्रकलाविद्याष्टकात्मक मत कहा है—'चन्द्रकला-विद्याष्टकं तु कुलसमयानुसारित्वेन मिश्रकमिति।'

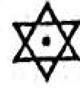
1. त्रिपुरतापनीयोपनिषत्

समयमार्गियों का मत शुभागमपञ्चकात्मक है—'अयं शुभागमपञ्चकनिरूपितो मार्गः वसिष्ठसनकशुकसनन्दनसनत्कुमारैः पञ्चभिः मुनिभिः प्रदर्शितः। अयमेव समयाचार इति व्यवह्रियते।।'[1]

लक्ष्मीधर ने कुलमार्ग को चतुःषष्टयात्मक कहा है—'चतुष्षष्टितन्त्राणि कुलमार्ग एव।' कुलमार्ग एवं मिश्रमार्ग—दोनों को ही समयाचारी त्याज्य मानते हैं—'मिश्रकं कौलमार्गं च परित्याज्यं हि शाङ्करि।।'[2]



1. सौन्दर्यलहरी की टीका—आचार्य लक्ष्मीधर
2. लक्ष्मीधरा



चतुर्थ अध्याय

पदार्थ विज्ञान : शाक्त दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के आलोक में

पदार्थ विज्ञान 'पद' से अर्थ की सृष्टि नहीं मानता। वह किसी अज्ञात चेतन परमा शक्ति में विश्वास भी नहीं करता; क्योंकि यह शक्ति उसकी परीक्षा एवं प्रयोग के लिए उसके ब्यूरेट में आती ही नहीं।

अध्यात्मवादियों के अनुसार संसार के सारे कारण एवं कार्यरूप तत्त्व, पदार्थ एवं समस्त जगत् परा शक्ति की कुक्षि में स्थित हैं। वह उसी से उसी प्रकार प्रकट होते हैं, जैसे कि कछुए के शरीर से उसके अंग या मकड़ी से जाला। अध्यात्म विज्ञान तो यही मानता है कि आदि में मात्र चैतन्यस्वरूपा पराशक्ति थी, उसी से सृष्टि हुई, पञ्च-तन्मात्रा, पञ्चभूत और समस्त जगत् उसी के स्वरूप हैं। जगत् शक्ति के भीतर स्थित है और उसी से मकड़ी के जाले की भाँति निकला करता है।

जगत् तो मात्र पञ्चतत्त्वाश्रित, पञ्चतत्त्वप्रतिष्ठित, पञ्चतत्त्वाधृत एवं पञ्चभूतात्मक है; किन्तु भगवती परा शक्ति तो पञ्चभूत भी हैं और पञ्चभूतातीत भी हैं; क्योंकि वे समस्त पञ्चतत्त्वों को अतिक्रान्त कर सहस्रार में पति के साथ विहार करती हैं—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।

यदि यह कहा जाय कि जगत् किसी चेतन परा शक्ति की सृष्टि नहीं है; बल्कि यह तो पाञ्चभौतिक पदार्थों एवं पञ्चभूतों की सृष्टि है तो भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि परा शक्ति से ही तो पञ्चभूत भी उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भगवती भी पञ्चभूतरूपा हैं। वे मनस्तत्त्व, व्योम, मरुत्, मरुत्सारथि (अग्नि), आप (जल) एवं भूमि हैं और जगत् इसी शक्ति का परिणाम है—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।

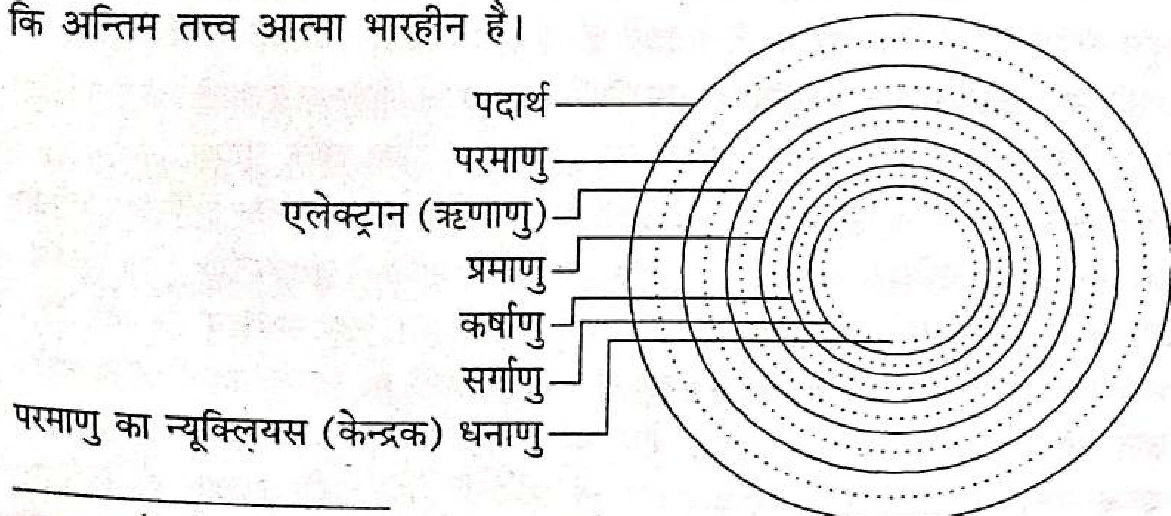
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे।।[1]

यदि यह कहा जाय कि जगत् पदार्थों की अनुप्रेरिका एवं सञ्चालिका नाभिकीय शक्ति है तो भगवती शक्ति ही तो हैं; किन्तु वे पदार्थों की ही नहीं, शिव की भी सञ्चालिका एवं अनुप्रेरिका शक्ति हैं; क्योंकि शिव भी इस शक्ति के विना पूर्णतया अपने व्यापारों में अशक्त हैं—

परोऽपि शक्तिरहित: शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्त्तुमशक्त: शक्त एव हि।।[2]

पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई—सूक्ष्मतम इकाई अणोरणीयान महतो महीयान है। प्रत्येक पदार्थ अणुओं से अणु—परमाणुओं से निर्मित होते हैं। प्रत्येक परमाणु अनेक विद्युत्कणों से निर्मित होता है। एलेक्ट्रान तड़ित् के अणु हैं। इनकी गति कभी-कभी हो जाती है—एक सेकण्ड में लगभग दो लाख मील। एलेक्ट्रान भी सावयव द्रव्य है।

प्रत्येक परमाणु जिन विद्युत्कणों से निर्मित हैं, वे दो प्रकार के हैं—ऋणाणु एवं धनाणु। धनाणु के चतुर्दिक ऋणाणु लगभग (एक सेकण्ड में) एक लाख अस्सी हजार मील तक के वेग से परिक्रमा करते हैं। धनाणु तो परमाणु का केन्द्र है। ऋणाणुओं में अनेक टूट-टूटकर परमाणुमण्डल से दूर भी भागते जाते हैं। प्रत्येक ऋणाणु भी सूक्ष्मतर कणों से निर्मित हैं, जिन्हें 'प्रभाणु' कह सकते हैं। प्रत्येक प्रभाणु एक लाख छियासी हजार तीन सौ मील प्रति सेकण्ड के वेग से घूमता है और अनेक प्रभाणुओं के इस अन्त:परिक्रमण करते रहने से ही ऋणाणु की स्थिति बनी रहती है। इन प्रभाणुओं के मध्य भी 'कर्षाणु' परिक्रमा कर रहे हैं; इसीलिए प्रभाणु की स्थिति बनी हुई है। कर्षाणु भी स्वयमेव सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों के मण्डल हैं। इन्हें हम 'सर्गाणु' कह सकते हैं। सर्गाणुओं की गति अचिन्त्य है। क्या सर्गाणु ही शक्ति की अन्तिम इकाई है? विज्ञान मानता है कि Matter वही है, जिसमें भार हो; किन्तु दर्शन कहता है कि अन्तिम तत्त्व आत्मा भारहीन है।



1. सौन्दर्यलहरी 2. वामकेश्वरतन्त्र

एलेक्ट्रान लगभग एक लाख अस्सी हजार मील प्रति सेकण्ड की गति से धनाणु की परिक्रमा कर रहा है।

प्रभाणु लगभग एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड की गति से परिक्रमा कर रहा है।

एलेक्ट्रान, प्रभाणु, कर्षाणु, सर्गाणु आदि सर्वत्र गति है; किन्तु परमतत्त्व स्पन्दहीन गतिहीन है; अत: परमाणु को पदार्थ एवं जगत् का मूल तत्त्व कैसे माना जा सकता है?

गति केवल शब्दब्रह्म तक है या नाद तक है; किन्तु परब्रह्म (जगत् की परात्पर परम सत्ता) में गति नहीं है। विज्ञान इस गतिहीनावस्था को अभी तक नहीं पकड़ पाया।

क्या सर्गाणु ही अन्तिम अणु है और क्या उसकी गति स्पन्द ही अन्तिम गति एवं स्पन्द है? नहीं। विज्ञान मानता है कि वेगवती गति ही भाररूप में अनुभूत होती है, किन्तु परम तत्त्व तो भारहीन है।

पादार्थिक शक्ति विज्ञान

पदार्थ और पदार्थ-शक्ति तथा भर्तृहरि का विवर्तवाद—पदार्थ (Matter) क्या है? पदार्थ तत्त्व तो पद (शब्द) का अर्थ है। पद क्या है? 'सुप्तिङन्तं पदम्' (सुप् एवं तिङ्प्रत्ययान्त सारे शब्द एवं सारी क्रियायें पद कहलाती हैं)। शब्दों एवं क्रियाओं में प्रत्यय लगने के बाद निष्पन्न तथा वाक्य में प्रयोगार्ह शब्द एवं क्रियायें ही पद हैं; किन्तु ये पद अर्थात् शब्द और क्रियायें (या ध्वनियाँ) मूल रूप में क्या है?

विवर्तवाद—आचार्य भर्तृहरि के अनुसार विश्व 'शब्द' का विवर्त है। आचार्य भर्तृहरि कहते हैं कि सृष्टि में मुख्यत: दो वस्तुयें हैं—पद एवं अर्थ। इसमें अर्थ का भी मूल स्रोत 'पद' ही है। पद के विना 'अर्थ' की कोई सत्ता नहीं है। पद अपने मूल स्वरूप में शब्दतत्त्व है और पदार्थ (Matter) इसी शब्दतत्त्व की बाह्य अभिव्यक्ति है। पदार्थ शब्दशक्ति का बाह्यवर्ती विकास है; अत: संसार के सारे पदार्थ 'शब्द' के स्थूल संस्करण हैं। शब्दशक्ति ही पदार्थों की मूल शक्ति है। पदार्थ-शक्ति पदार्थों की उत्पादिका, स्थापिका एवं संहारिका (अन्तर्निलीन या अपने भीतर लय करने वाली) शक्ति है। शक्ति ही पदार्थ का स्वरूप धारण कर लेती है। चूँकि शक्ति पदार्थ (Matter) का उपादान कारण या मूल घटक है; अत: विना शक्ति के पदार्थ का अस्तित्व सम्भव नहीं है। पदार्थ-शक्ति (पदार्थ के अन्तर्गर्भ में निहित शक्ति) ब्रह्माण्डीय (या समष्टि-स्वरूपा) सर्वानुस्यूत, सर्वान्तर्भूता, सर्वव्याप्त, सर्वाकार तथा सर्वरूप है। यह देश-कालातीत, नित्य एवं सार्वभौम है। पदार्थ नष्ट हो जाते हैं; किन्तु पदार्थ-शक्ति नहीं। फल नष्ट हो जाते हैं; किन्तु उनके बीज नहीं। घड़े नष्ट हो जाते हैं; किन्तु (उनका घटक तत्त्व) मिट्टी नहीं। अलङ्कार नष्ट हो जाते हैं और उनके आकार भी तिरोहित हो उठते हैं; किन्तु (उसका उपादान कारण) सोना नहीं। कुर्सी, मेज, डेस्क आदि

(नाम और रूप) नष्ट हो जाते हैं; किन्तु लकड़ी नहीं। इसी प्रकार पदार्थ (पदार्थ-शक्ति का व्यक्त बाह्य स्वरूप) नष्ट हो जाता है; किन्तु पदार्थ-शक्ति (पदार्थ की रचना करने वाली उसकी बीजशक्ति) नहीं। इसी प्रकार 'शब्द' सत्य है और जगत् शब्द का 'विवर्त' है। भर्तृहरि कहते हैं—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।

कार्य तो नष्ट हो जाते हैं; किन्तु कारण नहीं। जगत् का कारण 'शब्द' है और शब्द का कार्य 'जगत्' है।

विज्ञानवाद और पदार्थ

साकार विज्ञानवाद—विज्ञानवादी बौद्ध दार्शनिक पदार्थों को परमाणुओं का संघात नहीं स्वीकार करते। वे कहते हैं कि हमारा चित्त (विज्ञान) ही पदार्थों के रूप में व्यक्त (या प्रकाशित) होता है। पदार्थों की यथार्थ सत्ता बाहर नहीं; हमारे चित्त के भीतर स्थित है। चित्त बाह्यवर्ती पदार्थों के रूप में परिवर्तित या रूपान्तरित हो जाता है। इसे ही 'साकार विज्ञानवाद' कहा जाता है, जिसमें चित्त पदार्थ का रूप धारण कर लेता है। अद्वयवज्रसंग्रह में कहा गया है कि—

न चित्तेषु बहिर्भूता इन्द्रियार्था: स्वभावत:।
रूपादिप्रतिभासेन चित्तमेव हि भासते।।

निराकारवादी विज्ञानवाद—निराकारवादी विज्ञानवादी दार्शनिक चित्त को नि:-स्वभाव एवं निष्प्रपञ्च मानते हैं। इनकी दृष्टि में चित्त पदार्थ का रूप धारण नहीं करता; क्योंकि चित्त आकारशून्य है। आकारशून्य होकर भी चित्त पूर्वजन्म की सञ्चित वासना के फलस्वरूप पदार्थ का साक्षात्कार करता है। पदार्थ बाहर कहीं भी स्थित नहीं है।

विज्ञान आकाशवत् निर्मल एवं निष्प्रपञ्च है। इसी की भित्ति पर अज्ञानवश अनेक रूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं; अत: पदार्थों की सत्ता प्रतीयमान है। यह माया का कार्य है। इसे चित्त का कार्य नहीं कह सकते। चित्त विकार-शून्य एवं निष्प्रपञ्च है।

अद्वयवज्र ने कहा है कि निराकारवादी विज्ञानवाद हिन्दू वेदान्त दर्शन के निकट है; क्योंकि वेदान्त दर्शन भी चेतना को विकारशून्य नाम-रूप-वर्जित एवं शुद्ध मानता है। वह भी मानता है कि उसी की भित्ति पर माया के कारण जगत् की प्रतीति होती है—

बाह्ये न विद्येदर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते।
वासनालुण्ठितं चित्तमर्थाभासं प्रवर्त्तते।।

यावदाभासते यच्च तन्मायैव च भासते।
तत्त्वतो हि निराभास: शुद्धानन्तनभोनिभ:।।

निष्प्रपञ्चो निराभासी धर्मकायो महामुने।
रूपकायौ तदुद्भूतौ पृष्ठे मायैव तिष्ठते।।

ऊर्जा शक्ति एवं संवित् शक्ति

ऊर्जा (Energy)—भौतिक विज्ञान की दृष्टि से ऊर्जा (Energy) किसी वस्तु के कार्य करने की क्षमता को कहते हैं। कोई वस्तु अपनी किसी अवस्था में जितना कार्य कर सकती है, वही उस अवस्था में उसकी ऊर्जा होती है। जब किसी वस्तु की ऊर्जा समाप्त हो जाती है तो कार्य की उसकी क्षमता भी समाप्त हो जाती है; अतः प्रत्येक कार्य को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

ऊर्जा के वे ही मात्रक हैं, जो कार्य के हैं; क्योंकि ऊर्जा की माप कार्य की मात्रा के रूप में की जाती है। S.I. पद्धति में ऊर्जा का मात्रव 'जूल' है।

ऊर्जा के प्रधान प्रकार हैं—यान्त्रिक ऊर्जा (Machanical energy), ऊष्मीय ऊर्जा (Heat energy), रासायनिक ऊर्जा (Chemical energy), विद्युत् ऊर्जा (Electrical energy), प्रकाश ऊर्जा (Light energy), ध्वनि ऊर्जा (Sound energy), नाभिकीय ऊर्जा आदि।

यान्त्रिक ऊर्जा (Mechanical Energy)—किसी वस्तु द्वारा उसकी गति स्थिति या विन्यास के कारण प्राप्त की गई या छोड़ी गई ऊर्जा को उसकी यान्त्रिक ऊर्जा कहते हैं। यान्त्रिक ऊर्जा के मुख्यतः दो प्रकार हैं—

(क) गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy)

(ख) स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy)

गतिज ऊर्जा—गतिमान वस्तुओं में कार्य करने की क्षमता। उदाहरणार्थ—बहते हुए पानी के द्वारा बड़े लट्ठों को बहाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना; आँधी एवं तूफान के समय हवा के झोंकों से पेड़ों का गिरना; हवा के झोंकों से मकान का गिरना, छत को उखाड़कर फेंक देना या बन्दूक से दागी गई गोली का लक्ष्य में घुसना। किसी वस्तु में उसकी गति के कारण उत्पन्न ऊर्जा को उसकी 'गतिज ऊर्जा' कहते हैं।

किसी वस्तु की गतिज ऊर्जा की माप कार्य के उस परिणाम से की जाती है, जो वस्तु अवरोधी बल के कारण गति की अवस्था से विरामावस्था में आने तक कर सकती है। इस प्रकार गतिशील वस्तु की गतिज ऊर्जा उसमें द्रव्यमान और वेग के परिमाण (चाल) के वेग के वर्ण के गुणनफल के आधे के बराबर होती है। किसी बल द्वारा किया गया कार्य वस्तु की गतिज ऊर्जा में परिवर्त्तन के बराबर होता है। इसे कार्य ऊर्जा प्रमेय (Work energy theorem) कहते हैं। इस प्रकार किसी वस्तु पर लगे बल के द्वारा किया गया कार्य उस वस्तु की गतिज ऊर्जा में परिवर्तन के बराबर

होता है। परवर्ती बल द्वारा किया गया कार्य गतिज ऊर्जा में परिवर्तन के बराबर होता है।

यदि बल लगाने के फलस्वरूप गतिज ऊर्जा में वृद्धि होती है तो निष्पादित कार्य धनात्मक होगा; यदि बल लगाने के फलस्वरूप गतिज ऊर्जा में कमी आती है तो निष्पादित कार्य ऋणात्मक होगा एवं यदि गतिज ऊर्जा में कोई परिवर्त्तन नहीं होता तो निष्पादित कार्य शून्य होगा।

स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy)—किसी वस्तु में उसकी विशेष स्थिति या विकृतावस्था के कारण उत्पन्न ऊर्जा को 'स्थितिज ऊर्जा' कहते हैं। किसी वस्तु को उसकी सामान्य स्थिति से विशेष स्थिति तक ले जाने में या उसे विकृत करने के लिए जो कार्य करना पड़ता है, वही कार्य उस वस्तु में स्थितिज ऊर्जा के रूप में सञ्चित हो जाता है। उदाहरणार्थ—पृथ्वी की सतह से ऊँचाई पर स्थित होने के कारण बाँधों के एकत्रित जल में स्थितिज ऊर्जा होती है।

घड़ी में चाबी भरने पर उसके स्प्रिंग में स्थितिज ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है, जो कि घड़ी की सुइयों को चलाती है।

गुलेल से कंकड़ फेंकने के पूर्व रबर की पट्टी को खींचा जाता है, जिससे उसकी स्थितिज ऊर्जा बढ़ जाती है। फलस्वरूप कंकड़ अधिक वेग से छूटता है।

स्थितिज ऊर्जा की माप कार्य के उस परिमाण से की जाती है, जो कोई वस्तु विशेष स्थिति से सामान्य स्थिति तक आने में या विकृत अवस्था से सामान्य अवस्था तक आने में कर सकती है।

गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा (Gravitational Potential Energy)—पृथ्वी की सतह से ऊपर रहने के कारण किसी वस्तु में जो ऊर्जा होती है, उसे उसकी गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा कहते हैं। बाँधों में संगृहीत जल में पृथ्वी की सतह से ऊँचाई पर होने के कारण गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा होती है।

ऊर्जा की तीन प्रकृति—Law of Conservation of Energy—'ऊर्जा-संरक्षण का नियम' के अनुसार ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है; केवल उसका रूपान्तरण होता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण ऊर्जाओं का कुल योग नियत रहता है। यह प्रकृति का एक मूलभूत सिद्धान्त है।

ऊर्जा का कभी नाश नहीं होता। उसका रूपान्तरण होता है।

किसी ऊर्जा का एक स्वरूप में लुप्त होना उतनी ही ऊर्जा का अन्य किसी रूप में प्रकट हो जाना है। एक निकाय ऊर्जा खोता है तो दूसरा उसे प्राप्त कर लेता है।

दोनों निकायों की कुल ऊर्जा नियत रहती है।

उदाहरणार्थ—जेनरेटर से जल को ऊपर चढ़ाकर और फिर उसकी स्थितिज ऊर्जा

को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करके (पानी को नीचे गिराकर) विद्युत् ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

चाबी भरकर स्प्रिंग में स्थितिज ऊर्जा सञ्चित की जाती है। यही स्थितिज ऊर्जा घड़ी की सुइयों को चलाने के रूप में गतिज ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाती है।

सेलों में रासायनिक ऊर्जा का विद्युत् ऊर्जा में, प्रकाश विद्युत् सेल में प्रकाश का विद्युत् ऊर्जा में, विद्युत् हीटर में विद्युत् ऊर्जा का ऊष्मीय ऊर्जा में, विद्युत् या पंखे में विद्युत् ऊर्जा को यान्त्रिक ऊर्जा में, लाउडस्पीकर में विद्युत् ऊर्जा का ध्वनि ऊर्जा में एवं यानतेमो में यान्त्रिक ऊर्जा का विद्युत् ऊर्जा में रूपान्तरण होता है।

ऊर्जा का क्षय (Dissipation of Energy)—ऊर्जा के रूपान्तरण में ऊर्जा के एक भाग का इस प्रकार रूपान्तरित होना कि जिससे लाभकारी कार्य निष्पादित न किये जा सकें—ऊर्जा का एक भाग व्यर्थ में चला जाय—ऊर्जाक्षय कहलाता है। किसी वस्तु पर लग रहे बल द्वारा किया गया कार्य उस वस्तु की गतिज ऊर्जा में परिवर्तन के बराबर होता है।

गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा का गतिज ऊर्जा में परिवर्त्तन (Conversion of Gravitational Potential Energy into Kinetic Energy)—ज्यों-ज्यों कोई वस्तु ऊपर से नीचे की ओर गिरती है, उसकी स्थितिज ऊर्जा लगातार घटती जाती है और उसी अनुपात में उसकी गतिज ऊर्जा लगातार बढ़ती जाती है; किन्तु कुल ऊर्जा सदैव नियत रहती है।

किसी स्प्रिंग को दबाने या खींचने में निष्पादित किया गया कार्य उसमें स्थितिज ऊर्जा के रूप में सञ्चित हो जाता है।

ऊष्मीय ऊर्जा—किसी वस्तु के ताप को बढ़ाने पर उसकी आन्तरिक ऊर्जा बढ़ जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक गर्म वस्तु में ठण्ढ़ा होते समय कार्य करने की क्षमता होती है; क्योंकि ठण्ढ़ा होते समय वस्तु द्वारा ऊर्जा खो दी जाती है। इस खोई ऊर्जा का अन्य कार्यों में प्रयोग किया जाता है। यथा—

भाप इञ्जन में भाप फैलती और ठण्ढ़ी होती है, जिससे पिस्टन गतिशील होता है और ट्रेन के पहियों पर यान्त्रिक कार्य करता है। मोटर गाड़ियों के इञ्जन में पेट्रोल जलाने से उत्पन्न ऊर्जा मोटरगाड़ियों को चलाने में प्रयुक्त होती है। किसी भी वस्तु में ऊष्मीय ऊर्जा उसके अणुओं की अव्यवस्थित गति (Disorderly motion) और उनकी पारस्परिक स्थितिज ऊर्जा (आन्तरिक ऊर्जा) के कारण होती है।

रासायनिक ऊर्जा (Mechanical Energy)—किसी स्थिर रासायनिक यौगिक की ऊर्जा उसके पृथक्-पृथक् अवयवों की तुलना में सदैव कम होती है। यह अन्तर उस यौगिक में इलेक्ट्रानों व नाभिकों की विशिष्ट व्यवस्था एवं गति के कारण होती

है। इस अन्तर को रासायनिक ऊर्जा या रासायनिक बन्धन की ऊर्जा कहते हैं। किसी रासायनिक अभिक्रिया में ऊर्जा या तो अवशोषित होती है या मुक्त होती है। किसी सेल में ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा के रूप में सञ्चित रहती है।

विद्युत् ऊर्जा (Electrical Energy)—विद्युत् क्षेत्र में किसी विद्युत् आवेश को एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक ले जाने के लिए या विद्युद्वाही चालक की चुम्बकीय क्षेत्र में अनुप्रस्थ गति के लिए कार्य करने की आवश्यकता होती है। इस कार्य से सम्बद्ध ऊर्जा को ही विद्युत् ऊर्जा कहते हैं।

नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear Energy)—नाभिकीय अभिक्रिया के समय मुक्त ऊर्जा को हम नाभिकीय ऊर्जा कहते हैं। नाभिकीय विखण्डन (Fission) में किसी भारी नाभिक पर न्यूट्रानों की बमबारी की जाती हैं, तब वह समान आकार वाले नए तत्त्वों के नाभिकों में विभक्त हो जाता है। इस प्रकार निर्मित नवीन तत्त्वों के नाभिकों के द्रव्यमानों का योग मूल नाभिक के द्रव्यमान से कम होता है। द्रव्यमान की यह क्षति ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रक्रिया में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है।

नाभिकीय संलयन (Fusion) में जब दो हल्के नाभिक संयुक्त होकर नया नाभिक बनाते हैं तो नये नाभिक का द्रव्यमान संयोग वाले नाभिकों के द्रव्यमानों के योग से कम होता है। द्रव्यमान की यह क्षत् $E = Mc^2$ (द्रव्यमान ऊर्जा तुल्यता समीकरण) के अनुसार ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। अत: इस प्रक्रिया में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है।

आन्तरिक ऊर्जा (Internal Energy)—यान्त्रिक ऊर्जा (गतिज ऊर्जा + स्थितिज ऊर्जा) का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। प्रत्येक वस्तु अणुओं से मिलकर बनी होती है। अणुओं की स्थितियों तथा आकर्षण-प्रतिकर्षण के कारण उनमें स्थितिज ऊर्जा होती है। अणु सदैव गतिशील होते हैं। उनमें गतिज ऊर्जा भी होती है। वस्तु के सम्पूर्ण अणुओं की स्थितिज ऊर्जा एवं गतिज ऊर्जा के योग को आन्तरिक ऊर्जा कहते हैं। वस्तु के ताप को बढ़ाने पर अणुओं की गति तथा अन्तरा-अणुक अन्तराल का मान बढ़ जाता है। फलस्वरूप वस्तु की आन्तरिक ऊर्जा भी बढ़ जाती है।

शक्ति (Power)—किसी कार्यकर्त्ता के कार्य करने की दर को उसकी शक्ति कहते हैं। यदि एक सेकण्ड में एक जूल कार्य किया जाय तो शक्ति एक वाट कहलायेगी। इंजीनियरिंग क्षेत्र में शक्ति का व्यावहारिक मात्रक अश्वशक्ति (Horse power) है। औद्योगिक क्षेत्र में ऊर्जा के बड़े मात्रक 'किलोवाट घण्टा' का उपयोग किया जाता है।

द्रव्यमान और ऊर्जातुल्यता (Mass-energy equivalence) 1905 में Albert Einstein ने द्रव्यमान एवं ऊर्जा में तुल्यता स्थापित की। M द्रव्यमान से सम्बद्ध उर्जा निम्न समीकरण द्वारा की जाती है—$E = mc^2$ जहाँ C प्रकाश की चाल है। इस समीकरण को द्रव्यमान ऊर्जा-तुल्यता-समीकरण कहते हैं।

गुरुत्वाकर्षण एवं गुरुत्व (Gravitation and Gravity)—न्यूटन कहता है कि ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। किन्हीं दो पिण्डों के मध्य लगने वाले आकर्षण बल को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। कोई ग्रह (यथा—पृथ्वी) किसी पिण्ड पर जो बल लगाता है, उसे गुरुत्व कहते हैं। गुरुत्वाकर्षण एक नियम है। गुरुत्व के कारण ही ऊपर फेंकी गई वस्तु नीचे आ जाती है। गुरुत्व की दिशा ग्रह के केन्द्र की ओर होती है। ऊपर से गिरती वस्तु में नीचे की ओर आते-आते शनैः-शनैः वेग की तीव्रता में उत्तरोत्तर वृद्धि 'त्वरण' कहलाता है। नीचे गिरती वस्तु के वेग में परिवर्तन की दर गुरुत्वीय त्वरण कहलाती है।

यान्त्रिक के दो मुख्य भाग हैं—

स्थिति विज्ञान—इसके अन्तरर्गत उन वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है, जो विरामावस्था में होती हैं।

गति विज्ञान—यान्त्रिकी वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत उन वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है, जो कि गत्यात्मक होती हैं।

शक्ति और ऊर्जा में अन्तर[1]

शक्ति—किसी वस्तु के कार्य करने की दर को उसकी 'शक्ति' कहते हैं। किसी कार्यकर्ता के कार्य को करने की दर को उसकी शक्ति कहा जाता है। कोई कार्यकर्ता इकाई समाई में जितने कार्य करता है, उसे उसकी शक्ति कहते हैं। सूत्र = शक्ति = कार्य/समय। यदि कोई कार्यकर्ता T समय में W कार्य करता है तो उसकी शक्ति (Power) होगी—W/T।

कार्य का परिमाण समय पर निर्भर नहीं करता; किन्तु शक्ति का परिमाण समय पर निर्भर करता है। कम समय में कार्य पूरा करने वाले एवं उसी कार्य को अधिक समय में करने वालों के बीच कम समय में कार्य करने वाले की शक्ति अधिक मानी जाएगी।

शक्ति की माप में समय का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसका S.I. मात्रक वाट है।

ऊर्जा—किसी वस्तु के कार्य करने की क्षमता को उसकी 'ऊर्जा' कहते हैं। किसी वस्तु ही ऊर्जा में समय का महत्त्व नहीं होता। इसका S.I. मात्रक जूल है।

भारतीय दार्शनिक शक्ति, ऊर्जा, बल आदि सभी को एक ही विश्वव्यापी चेतन महाशक्ति के समुद्र की छोटी-छोटी तरंगें मानता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में 'शक्ति'

1. अंग्रेजी में प्रयुक्त Energy, Power, Force, Strength आदि शब्द एक ही शक्ति के बोधक हैं; किन्तु उसके विभिन्न पक्षों पर बल दिए जाने से भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

'शक्तिस्त्रिजननी' (शा. द.), 'परं ज्योतिः' (3), 'तुर्यदेहात्मिका' (4), 'इच्छाधृतिविग्रहा भक्तिवश्या' (6), 'एका शक्तिः कारणम्' (20), 'विचित्रजगन्निर्माणादिसामर्थ्यरूपा शक्तिः' (1.2) 'शक्तिर्द्विधा—विद्याऽविद्येति' (12) 'साभासामीश्वरीं हयग्रीवः' है।

भारतीय दार्शनिक मानते हैं कि यान्त्रिक, ऊष्मीय, रासायनिक, विद्युतीय, प्रकाश-सम्बन्धी, ध्वनिगत एवं नाभिकीय आदि तथा गतिज एवं स्थितिज—जितनी भी ऊर्जा की विधायें हैं, जितनी भी वैश्विक शक्तियाँ हैं, वे सभी एक ही परात्पर चेतन शक्ति से सञ्चालित हैं। उसे 'माया' कहने के बाद 'महामाया' कहना पड़ेगा और 'प्रकृति' कहने पर 'चेतन संवित् शक्ति' कहना पड़ेगा। वही परमाणुओं के नाभिक की भी सञ्चालिका है और एलेक्ट्रानों की भी।

पारमाणिवक शक्ति विज्ञान

परमाणु—परमाणु संसार के सबसे अधिक सूक्ष्म वस्तुओं में से एक है और सारी जागतिक रचना का आधार है। आप कहीं भी जाइए और वहाँ से मुट्ठी भर कोई भी वस्तु (मिट्टी, रेत, खाद्यान्न, बुरादा, शक्कर, नमक, धातु-चूर्ण आदि कोई भी वस्तु), उठा लीजिए या मत उठाइए, केवल अपनी खाली मुट्ठी बन्द कर लीजिए, अब आपकी मुट्ठी में अरबों परमाणु आ जायेंगे।

हम सभी परमाणुओं की दुनिया में रहते हैं। हिमनदों के श्वेत वर्फ, कोयला, कोयले की चमक, सागर की नीलिमा, विमान के पंखे, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, हमारा शरीर और इसी प्रकार तितलियों के रंगीन कोमल पंखों से लेकर कठोर पर्वतीय चट्टानों तक जो कुछ भी हम देखते हैं और छूते हैं, सभी का निर्माण परमाणुओं से हुआ है।

संसार की प्रत्येक वस्तु अरबों परमाणुओं के संयोग से निर्मित है। आप परमाणुओं को तब तक नहीं देख सकते, जब तक कि किसी परमाणु को 10 गुना आवर्धित न कर लें।

यदि आप ताम्र परमाणुओं को एक के बाद एक क्रम से एक रेखा में रक्खें तो एक इंच लम्बी रेखा निर्मित करने में 10 करोड़ परमाणुओं की आवश्यकता पड़ेगी।

यदि किसी अंगूर के प्रत्येक परमाणु का व्यास एक इञ्च होता तो अंगूर के एक दाने का व्यास पृथ्वी के बराबर होता।

पिन की एक घुण्डी में 10 करोड़ से अधिक परमाणु होते हैं।

प्रत्येक परमाणु का भार एक-जैसा नहीं होता। सर्कस के गुब्बारों में हाइड्रोजन गैस का ही उपयोग होता है। हाइड्रोजन परमाणु अत्यन्त हल्के होते हैं। एक हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक में एक प्रोटान एवं एक एलेक्ट्रान होता है।

यूरेनियम 235 के एक परमाणु में नाभिक में 92 प्रोटान, 143 न्यूट्रान एवं विभिन्न त्रिज्याओं पर 92 एलेक्ट्रान होते हैं। 92 + 143 + 92 = 327 (प्रोट्रान + न्यूट्रान + एलेक्ट्रान)।

हाइड्रोजन के एक सरल परमाणु में 1 + 1 = 02 एलेक्ट्रान प्रोट्रान होते हैं।

परमाणु का अधिकांश भाग रिक्त होता है। यदि एक परमाणु एक कमरे के बराबर है तो उसका 'नाभिक' एक मक्खी के बराबर का होगा। परमाणु के इसी भाग (नाभिक) से परमाणु ऊर्जा मुक्त होती है। इसी भाग से उत्सर्जित पारमाण्विक ऊर्जा से पनडुब्बियाँ चलायी जाती हैं, घरों को प्रकाशित किया जाता है और संसार को नष्ट किया जा सकता है।

एक परमाणु-नाभिक के विपाटन से प्राप्त ऊर्जा (नाभिकीय ऊर्जा) अत्यल्प होती है। अरबों परमाणुओं को विखण्डित करने से प्राप्त ऊर्जा अत्यन्त भयावह होती है।

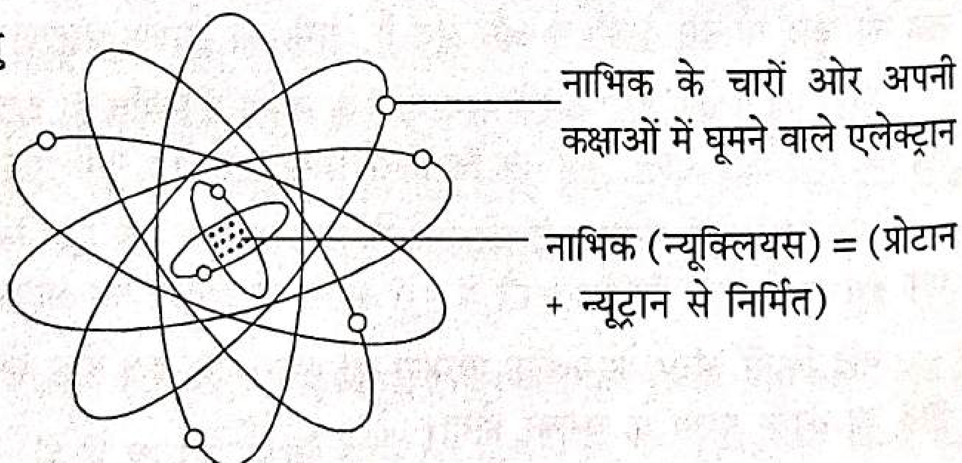
परमाणु के नाभिक के चतुर्दिक जो सूक्ष्म द्रव्यकण अपनी त्रिज्याओं में घूमते हैं, वे सूर्य के चतुर्दिक प्रदक्षिणा करते ग्रहों की भाँति प्रतीत होते हैं।

नाभिक के चतुर्दिक इलेक्ट्रान निश्चित कक्षाओं में ही घूमते हैं। नाभिक की रचना प्रोटानों एवं न्यूट्रानों से होती है। प्रत्येक परमाणु में प्रोट्रानों की संख्या उसके एलेक्ट्रानों की संख्या के बराबर होती है।

यूरेनियम के परमाणु के नाभिक के चतुर्दिक उसकी विभिन्न कक्षाओं में 92 एलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं। यूरेनियम के सभी परमाणुओं में 92 एलेक्ट्रान होते हैं।

एक तत्त्व के सभी परमाणुओं में एलेक्ट्रानों की संख्या बराबर होती है; किन्तु सभी तत्त्वों के परमाणुओं में एलेक्ट्रानों की संख्या समान नहीं होती।

परमाणु



नाभिक एक पोटली के समान अनेक कणों की रचना है। नाभिक में लगभग 20 भिन्न प्रकार के कण हो सकते हैं। इनमें दो प्रकार के कण प्रसिद्ध हैं—प्रोटान एवं न्यूट्रॉन।

प्रत्येक परमाणु के नाभिक में कई प्रोटान होते हैं। प्रोटानों की संख्या नाभिक की परिक्रमा करने वाले एलेक्ट्रानों की संख्या के बराबर हुआ करती है। सभी परमाणुओं में एक या अधिक प्रोटान होते हैं।

परमाणु के नाभिक में पाये जाने वाले दूसरे प्रकार के कण न्यूट्रॉन कहलाते हैं। विद्युत् की दृष्टि से न्यूट्रल (तटस्थ, उदासीन) होने के कारण ये न्यूट्रॉन कहलाते हैं।

हाइड्रोजन को छोड़कर सभी परमाणुओं में न्यूट्रॉन होते हैं।

नाभिक एक कसकर बाँधी गई पोटली के समान है, जो परमाणु के मध्य में स्थित रहता है।

यूरेनियम 235 का परमाणु

परमाणु-भार—(यूरेनियम परमाणु का भार) 235

(प्रोट्रानों एवं न्यूट्रानों की संख्या)—

(क) प्रोटानों की संख्या : 92

(ख) न्यूट्रानों की संख्या : 143

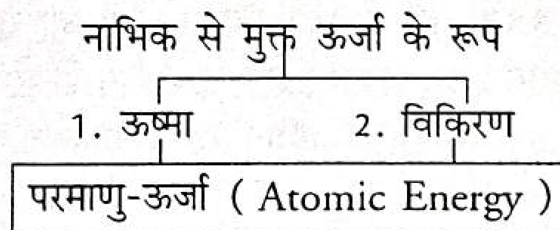
235

नाभिकों का विखण्डन → परमाणु ऊर्जा का उत्सर्जन।

परमाणु नाभिकों के प्रकार—

1. कुछ नाभिक अत्यधिक दृढ़ता से बँधे हुए होते हैं।
2. कुछ नाभिक अपेक्षाकृत कम कसकर बँधे हुए होते हैं।

परमाणु-विखण्डन → नाभिक में संगृहीत ऊर्जा का नाभिक से बाहर आकर ऊर्जा-प्रसारण।



किसी भी परमाणु से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए उसका विखण्डन (विपाटन) करना आवश्यक होता है। यह परमाणु विखण्डन आपकी कलाई की घड़ियों में भी होता रहता है। हाँ, यह विखण्डन पनडुब्बियों को चलाने वाले परमाणु-विखण्डन से पृथक् अवश्य है।

परमाणु-विशेषज्ञों ने इन अति सूक्ष्म कणों का विखण्डन करके उनके भीतर निहित अचिन्त्य शक्ति को बाहर निकालने में सामर्थ्य प्राप्त कर लिया है; किन्तु वह अपने मन एवं प्राण के नाभिक में विस्फोट करके तन्निहित शक्तियों के अतुल शक्ति-भण्डार को बाहर नहीं निकाल पाये हैं।

किसी तत्त्व के सभी परमाण्वीय नाभिक समान नहीं होते। उनमें न्यूट्रॉनों की संख्या में भिन्नता हो सकती है। कुछ प्रकार के परमाणु विना किसी मानवीय प्रयास

के ही अरबों वर्षों से स्वत: विखण्डित होते रहते हैं।

दीप्त डायल वाली घड़ी को लीजिए। घड़ी-निर्माता द्वारा घड़ी की सुइयों एवं अङ्कों को अन्धेरे में चमकने योग्य बनाने के लिए स्वत: विखण्डित होने वाले परमाणुओं की थोड़ी-सी मात्रा का प्रलेप किया जाता है। अधिकांश घड़ियों में उस रासायनिक द्रव्य के परमाणु 'रेडियो थोरियम' होते हैं।

रेडियोथोरियम के परमाणु में विखण्डन होने पर उनमें से बहुत-से कण बाहर निकलते हैं। इस प्रलेप में घड़ी-निर्माता एक अन्य पदार्थ भी मिलाता है, जिसे 'जिंक सल्फाइड' कहते हैं। रेडियोथोरियम के परमाणु विखण्डित होकर जब जिंक सल्फाइड से टकराते हैं तब चमक उत्पन्न होती है।

रेडियोथोरियम के विखण्डित परमाणु की यात्रा; किन्तु यात्रा में जिंक थोरियम से टकराहट → प्रकाश या चमक की उत्पत्ति।

आपकी घड़ी में प्रत्येक सेकेण्ड दर्जनों परमाणु विखण्डित् होते रहते हैं और एक बार विखण्डित हो जाने पर ये पुन: चमक उत्पन्न नहीं कर सकते। फिर भी आपकी घड़ी सदैव चमकती रहती है। कारण—आपकी घड़ी के डायल में लगे रेडियोथोरियम में अरबों परमाणु होते हैं। अगले बीस अरब वर्षों में भी इन परमाणुओं की आधी संख्या ही विखण्डित हो पायेगी; अत: आपकी घड़ी अपनी चमक कभी नहीं खोएगी।

1896 तक परमाणुओं को अविभाज्य माना गया था। फ्रांसीसी भौतिकी वैज्ञानिक हेनरी बेक्वेरल ने प्रथम बार 1896 में यह पता लगाया कि परमाणु का भी विखण्डन हो सकता है; अन्यथा हजारों वर्षों से यही धारणा चली आ रही थी कि ब्रह्माण्ड की रचना करने वाली सूक्ष्मतम इकाई परमाणु है। 1898 में पियरे क्यूरी एवं मैडम क्यूरी ने यूरेनियम की अपेक्षा 20 लाख गुना अधिक रेडियो ऐक्टिव तत्त्व 'रेडियम' का पता लगाया।

परमाणु-विखण्डन के लिए 'प्रोटान' या अन्य परमाण्वीय कण वलय में भेजे जाते हैं। वहाँ विद्युत् चुम्बक का प्रत्यावर्ती क्षेत्र कणों को आगे बढ़ाता है। कण अधिकाधिक तीव्र वेग से वृत्ताकार पथों में घूमते हुए प्रत्येक परिक्रमण के बाद अतिरिक्त चुम्बकीय बल पाते हुए 100,000 मील प्रति सेकेण्ड से भी काफी अधिक वेग से गति करते हुए वलय से बाहर निकलकर लक्ष्य से टकराकर उस लक्ष्यभूत परमाणु को भञ्जित कर देते हैं और छोटे परमाणुओं में विभाजित कर देते हैं या लक्ष्यभूत परमाणु से टकराकर (विना उसे तोड़े हुए) उसके साथ अधिक बड़े और जटिलतर परमाणुओं की रचना करते हैं। परमाणु-भञ्जन को विखण्डन एवं (परमाण्वीय कणों के परमाणुओं में प्रवेश करके) नूतन एवं जटिलतर परमाणु-निर्माण प्रक्रिया को 'संलयन' कहते हैं। दोनों प्रक्रियाओं में अत्यधिक ऊर्जा मुक्त होती है। यही ऊर्जा परमाणु

बम एवं परमाणु-ऊर्जा का आधार है।

यह भी ध्यातव्य है कि किसी तत्त्व के सभी परमाण्वीय नाभिक समरूप नहीं होते। उनमें न्यूट्रॉनों की संख्या भिन्न हो सकती है। किसी तत्त्व के इन भिन्न रूपों को 'समस्थानिक' कहते हैं।

सूर्य के भीतर परमाणुओं का संलयन सदा होता रहता है। सूर्य के केन्द्रीय भाग में असंख्य हाइड्रोजन परमाणुओं का संलयन तीन करोड़ अंश फारेनहाइट ताप पर होता रहता है।

परमाणु विखण्डन में प्रयुक्त यूरेनियम एवं थोरियम बहुत महँगे हैं और उनके भण्डार सीमित हैं। हाइड्रोजन का एक विशेष रूप 'ड्यूटेरियम' (संलयन में ईंधन के रूप में उपयोगी) समुद्रों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। ड्यूटेरियम के साथ संयोजित आक्सीजन से 'भारी जल' बनता है।

संवित् शक्ति : परात्पर महाशक्ति

शक्तिविषयक दृष्टिद्वय—भारतीय दर्शनों में शक्ति को कहीं निरपेक्ष, स्वतन्त्र, अद्वय एवं परा शक्तिस्वरूप परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है; यथा—शाक्त दर्शन में तो कहीं उसे धर्मी का धर्म, गुणी का गुण, शक्तिमान की शक्ति, समय की समया और कहीं उसे (नारायणी-सरस्वती-महालक्ष्मी-पार्वती-ऋद्धि-सिद्धि-रुद्राणी-भैरवी आदि के रूप में) उस शक्ति के रूप में परिकल्पित किया गया है, जो शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, रुद्र एवं भैरव आदि परात्पर परतत्त्व की स्फुरता है या उसका हृदय, प्राण, सार, स्वभाव, सामर्थ्य, प्रत्यभिज्ञा एवं आत्मा है। यद्यपि इस स्वरूप में भी शक्ति को परम तत्त्व से अभिन्न स्वीकार किया गया है; क्योंकि कहा गया है कि उस (शक्ति) के विना शक्तिमान हिल भी नहीं सकता—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।[1]

तथापि वह शक्तिमान से पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता तो है नहीं। वह चन्द्रमा की चन्द्रिका तो है; किन्तु विना चन्द्र के चन्द्रिका की सत्ता कहाँ है?

इस प्रकार हम शक्ति के दो रूप देखते हैं—परात्पर परतत्त्व 'ब्रह्म' के रूप में एवं किसी परतत्त्व की पत्नी के रूप में।

परात्पर परतत्त्व ब्रह्म के रूप में यह शक्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रुद्र, सरस्वती, लक्ष्मी, महालक्ष्मी, वैष्णवी (नारायणी) आदि सभी को जन्म देती है और सबकी माता है; किन्तु उसका कोई स्वामी या पति नहीं है। यथा—शाक्त दर्शन में।

1. शंकराचार्य : सौन्दर्यलहरी।

किसी परम तत्त्व की पत्नी के रूप में; जैसे कि वैष्णव, स्मार्त, शैव, सौर एवं गाणपत्य सम्प्रदाय में। यहाँ भी वह जगन्माता है और अपने पति से अपृथक् है। तथापि वह उसकी पत्नी है, उसकी माता नहीं है। उसके आश्रित है, उससे स्वतन्त्र नहीं है। यहाँ वह उस परम तत्त्व का स्वभाव है, गुण है, सामर्थ्य है, सार है, हृदय है, विमर्श है, प्रत्यवमर्श है। उसका परावाक् है, प्रत्यभिज्ञा है और उसका मुख है—'शैवी मुखमिहोच्यते' (मुख से ही व्यक्ति की पहचान होती है, अत: शिवा शिव का मुख अर्थात् उसकी पहचान है); किन्तु उससे पूर्णत: पृथक् परब्रह्म परा सत्ता नहीं है।

शक्ति : शिव का प्रत्यवमर्श या विमर्श

आचार्य उत्पलदेव ने कहा है कि शिव तो प्रकाश है; किन्तु प्रकाश तो विमर्शहीन होने पर जड़ होता है, लेकिन शिव जड़ नहीं है; क्योंकि प्रकाश की मुख्य आत्मा प्रत्यवमर्श है और यही प्रत्यवमर्श शक्ति है—'प्रकाशस्य मुख्य आत्मा प्रत्यवमर्शस्तं विनार्थभेदिताकारस्यास्य स्वच्छतामात्रं न त्वजाड्यं चमत्कृतेरभावात्।'[1]

शिव को 'मैं हूँ' एवं 'मैं कौन हूँ' की पहचान स्वत: नहीं है। इस पहचान या प्रत्यभिज्ञा-सामर्थ्य का नाम ही 'शक्ति' है। शिव की सिसृक्षा का नाम ही 'शक्ति' है।

शिव को 'प्रकाश' कहा गया है। प्रकाश विना प्रत्यवमर्श के जड़ हो जाएगा; किन्तु प्रकाश जड़ है नहीं। वह चैतन्य है। उसका वह चैतन्य ही शक्ति है—

स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपम:।।[2]

स्फटिक आदि भी स्वच्छ हैं और मणि तो स्वच्छ एवं प्रकाशमय दोनों है; किन्तु विना विमर्श के जड़ है। अत: जड़त्व से बचाने के लिए किसी चैतन्य की अपेक्षा होती है। यह चैतन्य ही शक्ति है। चूँकि चेतन में ही विमर्श होता है; अत: यह विमर्श ही शक्ति है। वह समस्त प्राणियों का सामर्थ्य है—

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।[3]

शास्त्रों में 'शक्ति' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। तान्त्रिक लोग इसको पराशक्ति विज्ञानानन्द घन ब्रह्म मानते हैं। वे उसे निरपेक्ष, स्वतन्त्र, अद्वैत परम तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।

वेदों, पुराणों, शास्त्रों एवं उपनिषदों आदि में उसे परा शक्ति, ईश्वरी, मूल प्रकृति, माया, महामाया, शुद्धविद्या, महानिद्रा आदि कहा गया है।

शैव शक्ति को परमशिव की आत्मभूता सामर्थ्य, धर्म, स्वभाव, विमर्श, हृदय, स्फुरत्ता, सार, स्वरसोदिता परावाक्, स्वातन्त्र्य, ऐश्वर्य, प्रत्यवमर्श, चिति आदि मानते हैं—

1. प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति (उत्पलदेव)
2. प्रत्यभिज्ञाकारिका (1.42)
3. प्रत्यभिज्ञाकारिका (1.44)

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।।

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।

संवित् शक्ति—न्याय और वैशेषिक दर्शन ने जगन्निर्माण का मूलाधार परमाणुओं को स्वीकार तो किया है; किन्तु परमात्मा के जगन्नियन्ता, जगत् के आदि कर्त्ता एवं आदि स्रष्टा होने का निषेध नहीं किया है। भारतीय परमाणुवादी भी यह मानते हैं कि जड़ परमाणु विना किसी चेतन शक्ति की स्फुरणा के सक्रिय नहीं हो सकते। जर्मन दार्शनिक लाइबनीज भी अपने Monadology में इस बात को स्वीकार करता है कि प्रत्येक अणु में एक चेतन सत्ता है; अतः उसने विश्व के निर्माण की इकाई को जड़ परमाणु नहीं; बल्कि चिदणु (Monad) स्वीकार किया।

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धहेतुः' (शक्तिसूत्र) कहकर ग्रन्थकार ने सृष्टि के लिए पदार्थान्तर की आवश्यकता का भी निषेध कर दिया और कहा कि शक्ति ही कार्य और कारण दोनों है—'चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति इत्येतावत्परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः।'[1]

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (शक्तिसूत्र) द्वारा शाक्त दर्शन ब्रह्मादिक देवत्रय एवं परमाणु आदि सभी सत्ताओं को सृष्टि का कारण मानने से इनकार करता है। शाक्त दर्शन सर्वचिन्मयवाद एवं सर्वशक्तिवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादक है।

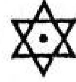
शाक्त दर्शन सबका मूल चेतन संवित् शक्ति को मानता है। उसी का ध्वन्यात्मक स्वरूप परा वाक् है। चेतन परा वाक् ही सृष्टि का मूल केन्द्र है। परा वाक् से वैखरी वाक् तक के महासागर में जगत् के सारे रूप, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रायें, देवता, दनुज, मानव आदि सभी चराचर जगत् निमज्जित हैं।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

कहकर भर्तृहरि ने ज़गत् का कारण वाक् तत्त्व को बताया; किन्तु वाक् तत्त्व का अधिष्ठान (मूल केन्द्र) क्या है? यही संवित् शक्ति है—'चित्प्रकाशात् अव्यतिरिक्ता नित्योदितमहामन्त्ररूपा पूर्णाहंविमर्शमयी या इयं परावाक् शक्तिः आदिक्षान्तरूपेणाशेषशक्तिचक्रगर्भिणी सा तावत् पश्यन्तीमध्यमादिक्रमेण ग्राहकभूमिकां भासयति।'[2] यह परा वाक् पश्यन्ती वाक् आदि वाक्चतुष्टय कुण्डलिनी शक्ति ही तो है।



1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
2. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्



पञ्चम अध्याय

सृष्टिविज्ञान : शाक्तदर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के आलोक में

शाक्त दर्शन यह मानता है कि जगत् एवं सृष्टि शक्ति का परिणमन है। न यह विवर्त है और न ही अणुओं की सृष्टि—

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्त्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।
सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

(भास्करराय : वरिवस्यारहस्यम्)

1. शिव से क्षितिपर्यन्त छत्तीस तत्त्वात्मक सृष्टि—अर्थमयी सृष्टि।
2. परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी की सृष्टि—शब्दमयी सृष्टि।
3. बिन्दु से भूगृहान्त समस्त चक्रों की सृष्टि—चक्रमयी सृष्टि।
4. सूक्ष्म से स्थूल समस्त शरीरों (पिण्डों) की सृष्टि—देहमयी सृष्टि।

इन चारो प्रकार की सृष्टियों को शक्ति अपनी आत्मभित्ति पर विना किसी परमाणु, पञ्चभूत आदि उपादानों के अपनी स्वेच्छा से किया करती है।

आचार्य हयग्रीव ने शक्ति को इस प्रकार पारिभाषित किया है—जो विचित्र जगत् के निर्माणादि कार्यों में सामर्थ्य रखती है, वही शक्ति है—'विचित्रजगन्निर्माणादिसामर्थ्यरूपा शक्तिः' (1.2)। न तो वह ब्रह्म से भिन्न है और न ही अभिन्न—'न भिन्ना, नाभिन्ना।'

भावनोपनिषद् की दृष्टि—सदानन्दपूर्णा स्वात्मा ही परदेवता ललिता देवी है और वही शक्ति है—'सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता।'

शक्ति स्वात्मा है और स्वात्मारूप शक्ति ही विश्वविग्रहा ललिता हैं। तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।

यह शक्ति विमर्शरूपा है; न कि जड़—'विमर्शरूपास्य वर्त्तते शक्तिः।' समस्त

सृष्टि शक्ति का ही एक स्थूल रूप है; इसीलिए शक्ति को विश्वविग्रहा कहा गया है।

शक्ति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध—आचार्य हयग्रीव यह मानते हैं कि शक्ति का ब्रह्म के साथ न तो भेद है, न ही अभेद—'न भिन्ना, नाभिन्ना' (1.4), भेदाभेद सम्बन्ध है—'भेदाभेदा' (1.5) इन दोनों का सम्बन्ध तम और प्रकाश की भाँति भी नहीं है; प्रत्युत यह सम्बन्ध इस प्रकार है—'कल्पितभेदाभेदनिर्वचनीयतादात्म्यसम्बन्धः।'

शक्ति के भेद—शक्ति के दो भेद हैं—विद्या एवं अविद्या। शाक्तदर्शनम् में हयग्रीव ने कहा भी है—'शक्तिर्द्विधा, विद्याऽविद्येति।'

सृष्टि का मूल तत्त्व—शाक्तों की मान्यता है कि शक्ति ही सृष्टि का मूल है। सृष्टि के मूल के विषय में अनेक दृष्टियाँ हैं।

● आत्मा ही जगत् का मूल है—यह वैदिक दृष्टि है। इसके अनुसार समस्त जगत् की सृष्टि आत्मा से हुई है। इस सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मत इस प्रकार हैं—

योगिराज महेश्वरानन्द की दृष्टि—

अत्ताखु वीसमूलं तत्थ पमाणं ण को वि अत्थेइ।
कस्स व होइ पिपासा गंगा सोत्ते णिभग्गस्स।। (महार्थमञ्जरी)

काश्मीरी दार्शनिक आचार्य सोमानन्दपाद की दृष्टि—

आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृतचिद्विभुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद् दृक्क्रियः शिवः।।

उत्पलदेवाचार्य की दृष्टि—

सर्वभावेषु स्वात्मैव शिव इति व्यवहर्तव्यमिति प्रतिज्ञा।

तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार सृष्टिक्रम—आत्मा (परमात्मा) → आकाशतत्त्व → वायुतत्त्व → अग्नितत्त्व → जलतत्त्व → औषधियाँ → अन्न → पुरुष (पुरुष का शरीर)। कहा भी है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

श्वेताश्वतरोपनिषद् की दृष्टि—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वमात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः।। (1.2)
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।। (1.3)

आशय यह है कि काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पञ्चमहाभूत, जीवात्मा, सभी

का संयोग जीवात्मा—इनमें से कोई भी जगत् का कारण नहीं है। सम्पूर्ण कारणों पर शासन करने वाली देवात्मशक्ति है।

● जल को ही सृष्टि का मूल स्वीकार करने वाले विविध विद्वानों का मत निम्नवत् है—

यूनानी दार्शनिक Thales के अनुसार जल की सृष्टि का मूल तत्त्व है।

बृहदारण्यकोपनिषद्—(5.5.1) के अनुसार सृष्टि के आदि में केवल जल की ही सत्ता थी—'आप एवेदमग्र आसुस्ता आप: सत्यमसृजन्त, सत्यं ब्रह्म, ब्रह्म प्रजापतिम्, प्रजापतिर्देवान्।'

● वायु को ही सृष्टि का मूल तत्त्व स्वीकार करने में निम्न उपनिषदों अथवा विद्वानों का सिद्धान्त द्रष्टव्य है—

छान्दोग्योपनिषद् (4.3.1-2) के अनुसार वायुर्वावसंवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति, वायुमेवाप्येति, यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति .... अधिदैवतम्।

रैक्व का सिद्धान्त है कि वायु ही सृष्टि का मूल है।

अनैक्जीमैण्डर (यूनानी) दार्शनिक भी यही मानता था।

● अग्नि को ही सृष्टि का मूल स्वीकार करने वाले उपनिषदों अथवा विद्वानों का मत इस प्रकार है—

कठोपनिषद् के अनुसार—

'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।' (2.5)

यूनानी दार्शनिक Heracleitus (हैराक्लाइटास) अग्नि को सम्पूर्ण पदार्थों का मूल मानता है।

छान्दोग्योपनिषद् कहता है कि आदि पुरुष से उत्पन्न मूल तत्त्व अग्नितत्त्व है। परमपुरुष → अग्नि → जल → पृथ्वी।

Heracleitus कहता है कि अग्नि सम्पूर्ण पदार्थों में परिणत हो जाती है और सम्पूर्ण वस्तुओं की परिणति अग्नि में हो जाती है।

● आकाश ही सृष्टि का मूल है—इस मत को स्वीकार करने वालों का मत निम्नवत् है—

प्रवाहण जैवालि कहता है कि समस्त पदार्थों का उद्भव आकाश से ही होता है और अन्त में आकाश में ही उनका निलय हो जाता है।

छान्दोग्योपनिषद् (7.12.1) के अनुसार आकाश ही चरम गति है—'आकाशो वाव तेजसो भूयान्। आकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ। विद्युन्नक्षत्राण्यानि आकेशाह्वयति ...... आकाशे जायते। आकाशभूमिं जायते। आकाशमुपास्स्वेति।'

Babylonia. Egypt, Peria, Greece आदि की पौराणिक कथाओं से छान्दो-

ग्योपनिषद् के इस असद्वाद से समतुल्यता है।

● असत् ही सृष्टि की मूल सत्ता है—इसके समर्थन में निम्न मत द्रष्टव्य है—

तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है कि सम्पूर्ण वस्तुओं के आदि में असत् की ही सत्ता थी। इसी असत् से सत् का उद्भव हुआ—

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानं स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। (2.7)

● **छान्दोग्योपनिषद्** के अनुसार सत् ही सृष्टि की मूल सत्ता है।

● प्राण ही सृष्टि का मूल तत्त्व है।

चाकायण-उषस्ति-वार्ता में चाकायण कहता है कि प्राण ही में ही समस्त सत्तायें प्रवेश करती हैं और प्राण से ही इनका उद्भव होता है।

कौषीतकि—प्राणो ब्रह्मेति ह स्माह कौषीतकिः।

छान्दोग्योपनिषद्—प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते। (छा. उप. 1.11.5)

● शाक्त दार्शनिक के अनुसार शक्ति ही समस्त सृष्टि का मूल है। शाक्तों ने यह भी प्रश्न उठाया है कि नैयायिक एवं वैशेषिक दर्शनावलम्बी तो परमाणु को ही जगद्रचना का मूल मानते हैं तो क्या जगत् परमाणुओं की सृष्टि नहीं है? फिर वे कहते हैं कि नहीं, जगत् शक्ति का विजृम्भण है—परिणमन है।

जगत् परमाणु का परिणाम है या जगन्माता पराशक्ति का? इस प्रश्न के उत्तर में अद्वैत वेदान्ती आचार्य शंकर 'सौन्दर्यलहरी' में विवर्तवादी से परिणामवादी बनकर कहते हैं—

त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा।

अर्थात् जगत् शक्ति का परिणाम है। शक्ति की परिणमन क्रिया ही जगदाकार हो गई है; इसीलिए ललितासहस्रनाम में कहा गया है कि शक्ति जगन्माता है—'विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी'। जगत् ज्ञाता-ज्ञेयरूप ही तो है। शक्ति भी ज्ञाता ज्ञेयरूपा है—'ज्ञातृज्ञेयस्वरूपिणी' (ल. स.)। यदि सृष्टि को तत्त्वजन्य मानें तो शक्ति भी तत्त्व है—'तत्त्वाधिका तत्त्वमयी तत्त्वमर्थस्वरूपिणी' (ललिता सहस्रनाम)।

यदि यह कहा जाय कि सृष्टि शक्ति नहीं, मूल प्रकृति करती है तो प्रश्न उठता है कि क्या शक्ति मूल प्रकृति नहीं है? वह मूल प्रकृति भी तो है—'मूलप्रकृतिरव्यक्ता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी' (ललितासहस्रनाम)। 'वियदादि जगत् प्रसूः' (ल. स.)। 'सिसृक्षा ही 'विमर्श' है। शक्ति विमर्श भी है—'विमर्शरूपिणी विद्या वियदादिजगत्प्रसूः' (ल. स.)। यदि यह कहा जाय कि जगत् तो जड़ भी है, फिर चेतन शक्ति जगत्

कैसे बन सकती है? तो उत्तर सुस्पष्ट है—वह चेतना चिच्छक्ति और जड़शक्ति एवं जड़ात्मिका दोनों है—'चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका' (ल. स.)। यदि यह कहें कि सृष्टि तो माया करती है, परा चेतन शक्ति तो नहीं तो उत्तर सुस्पष्ट है कि वह महामाया भी है—'महामाया महासत्त्वा महाशक्तिर्महारतिः' (ल. स.)।

यदि प्रकृतिवादी (पञ्चतत्त्ववादी) यह कहें कि जगत् तो पञ्चतत्त्वों की सृष्टि है, न कि शक्ति की तो आचार्य शंकर (सौन्दर्यलहरी-35) कहते हैं कि भगवती परात्परा महाशक्ति पाँच तत्त्व भी तो है—

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विभृषे।।

चतुश्शती की दृष्टि—जिस प्रकार मकड़ी का जाला बनाने के लिए बाह्य पदार्थ की आवश्कता नहीं पड़ती; बल्कि वह अपने भीतर से ही पदार्थ निकाल कर जाला बुन डालती है, उसी प्रकार शक्ति जगत् का निर्माण करने के लिए परमाणु, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा आदि की अपेक्षा नहीं करती; प्रत्युत अपने भीतर की सामग्री से अपनी आत्म-भित्ति पर जगत् का ताना-बाना बुनकर जगत् का सृजन कर डालती है—

1. यथोर्णानाभिः सृजते गृह्यते च।
2. स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि।
3. स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।
4. चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
   योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।
5. जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
   स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः।।

शक्ति 'विमर्श' है। विमर्श क्या है?—

(क) जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहंभावपरामर्शो विमर्शः (चिद्वल्ली : नटनानन्द)।

(ख) विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् (नागानन्द)।

(ग) विमृश्यते परामृश्यते इदमिति विमर्शः प्रपञ्चः (चिद्वल्ली : नटनानन्द)।

(घ) इदमित्येव हि परमात्मना सृष्टस्य जगतः प्रसिद्धपरामर्शः विमर्शः (चिद्वल्ली)।

'अस्यां परिणातायां तु न किञ्चित्परिदृश्यते' कहकर चतुश्शतीकार ने जगत् को शक्ति का परिणाम कहा है। शक्ति विश्वातीता होते हुए भी विश्वात्मिका है—

1. विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
   परापरमयीं देवीमात्वत्मेन विशाम्यहम्।।

(सच्चिदानन्दवासना)

2. विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः। (स्मृतिः)

3. विद्यास्वरूपा शक्ति छत्तीस तत्त्व भी है, जो कि जगत् के मूलोपादान हैं—

षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या।।

4. यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।

5. त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी।
कवलीकृतनिःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।।

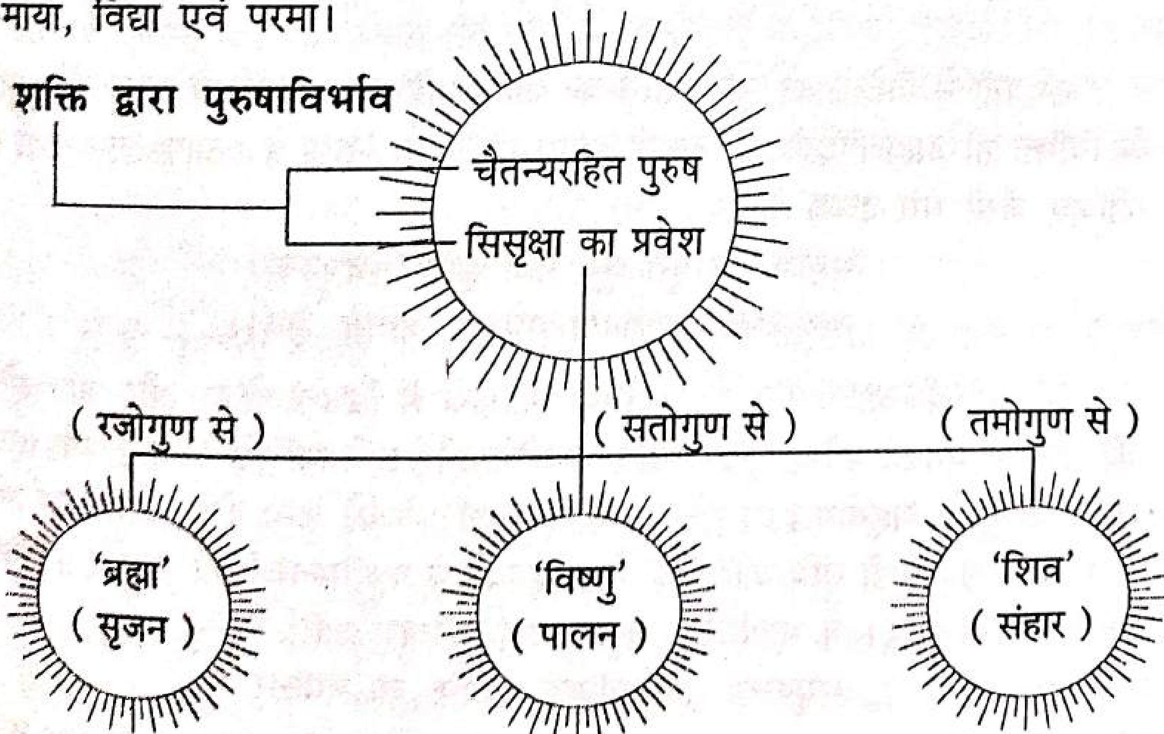
6. भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः। (काम. वि.)

देवीभागवतपुराण में कहा गया है कि शक्ति निराकार है; किन्तु सारे रूप उसी के हैं। वह अरूप रहते हुए सृष्टि-हेतु रूप धारण कर लेती है—

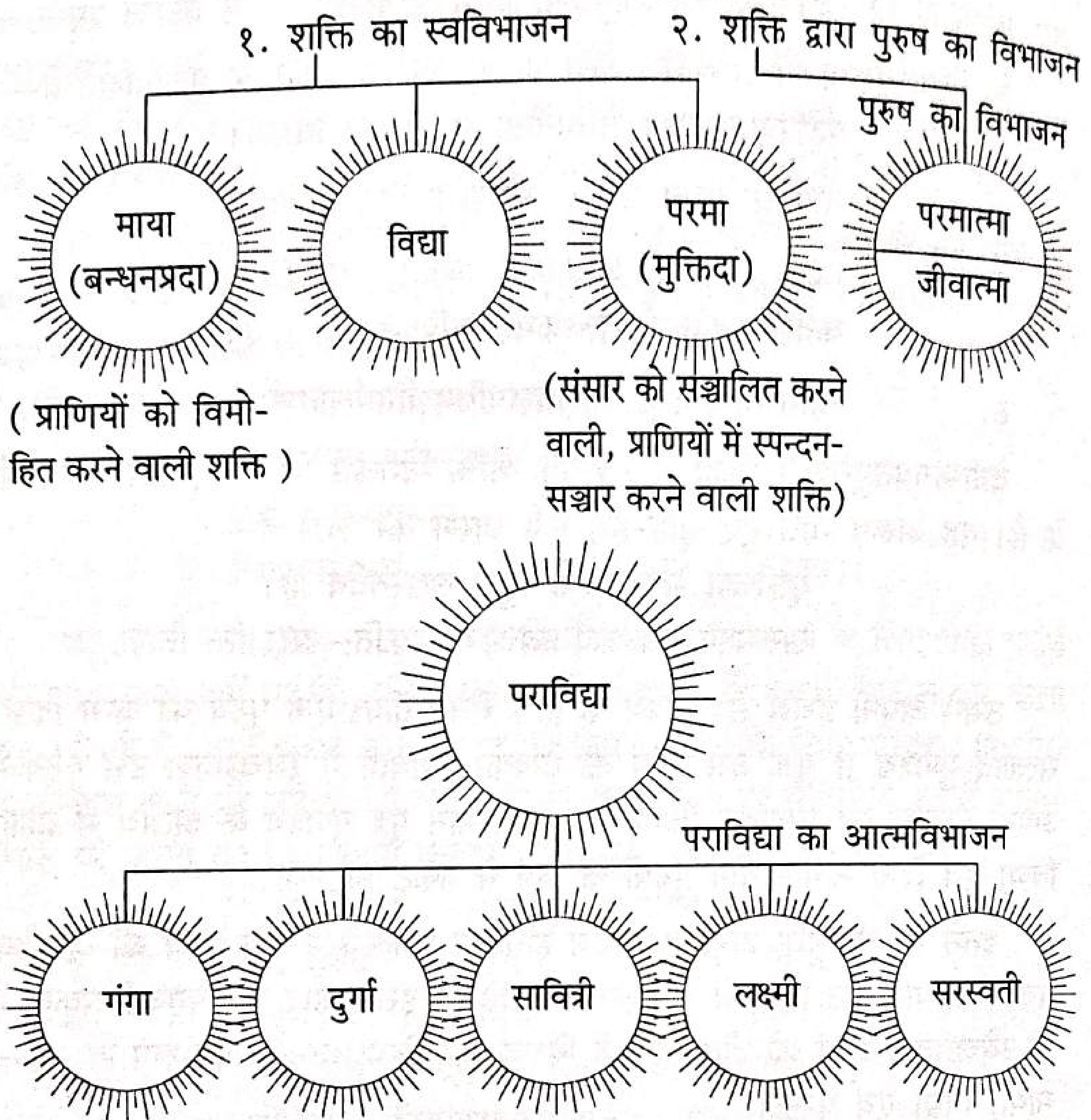
सृष्टीच्छा समभूत्तस्या मुदा सद्यस्तदैव हि।
अरूपापि दधे रूपं स्वेच्छया प्रकृतिः परा।।

उसने अपनी इच्छा से गुणत्रय के द्वारा चैतन्यरहित एक पुरुष को जन्म दिया। सत्त्वादि गुणत्रय से युक्त उस पुरुष को देखकर भगवती ने स्वेच्छावश उस पुरुष में अपनी सिसृक्षा को समाविष्ट किया। वह शक्तिमान पुत्र गुणत्रय के आश्रय से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव नामक तीन पुरुषों के रूप में प्रकट हो गया।

इतने पर भी सृष्टि होना सम्भव न होने पर भगवती ने उस पुरुष को जीवात्मा एवं परमात्मा—इन दो रूपों में विभक्त कर दिया। इसके बाद उन भगवती प्रकृति ने भी स्वेच्छावश स्वयं को तीन भागों में विभक्त कर लिया। उनके तीन रूप हो गए—माया, विद्या एवं परमा।



सृष्टि-प्रक्रिया के आगे न बढ़ने पर शक्ति ने उस पुरुष को दो भागों में विभक्त कर दिया।



भगवती ने त्रिदेवों को सृष्टि करने का आदेश दिया। भगवती ने कहा 'मैंने सृष्टि के निमित्त ही आप त्रिदेवों को अपनी इच्छा से उत्पन्न किया है। आप लोग वैसा ही कीजिए जैसी मेरी इच्छा है'—

सृष्ट्यर्थं हि पुरा यूयं मया सृष्टा निजेच्छया।
तत्कुरुध्वं महाभागा यथेच्छा जायते मम।।

'मैं सावित्री आदि पाँच श्रेष्ठ देवियों के रूपों में विभक्त होकर और आप लोगों की पत्नियाँ बनकर स्वेच्छापूर्वक विहार करूँगी और सभी प्राणियों में नारी रूप धारण करके शम्भु के सहयोग द्वारा स्वेच्छा से सभी प्राणियों को जन्म दूँगी। अब आप लोग मेरी आज्ञा से मानुषी सृष्टि कीजिए।' ऐसा कहकर वे प्रकृतिस्वरूपिणी परात्पर महाविद्या अन्तर्धान हो गयीं। वे महाविद्या, प्रकृति एवं परात्परा शक्ति हैं—

इत्युक्त्वा तान्महाविद्या प्रकृतिः सा परात्परा।

तीनों देवता (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर) उन पूर्ण प्रकृति को पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिए तप करने लगे—

पूर्णां तां प्रकृतिं लब्धुं पत्नीभावेन संयतः।
तपसाराधितुं भक्त्या समारेभे महेश्वरः।।

निष्कर्ष यह कि—

1. त्रिदेवों का जन्म शक्ति से हुआ।
2. त्रिदेव वही करते हैं, जो शक्ति की इच्छा होती है।
3. शक्ति ने ही जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों को जन्म दिया—

द्विधा चक्रे पुमांसं तं जीवं च परमं तथा।
(त्रिधा चकार चात्मानं स्वेच्छया प्रकृतिः स्वयम्।
माया विद्या च परमा चेत्येवं सा त्रिधाभवत्।।)

4. वही शक्ति त्रिदेवों की पत्नी एवं जगत् के समस्त प्राणियों में नारी बन गई।

भगवती ने त्रिदेवों की तपस्या की परीक्षा लेनी चाही। वे अपने भयानकतम रूप में ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुईं। ब्रह्मा डर गए और अपना मुख फेर लिया। ब्रह्मा मुख फेरते गए और शक्ति उनके द्वारा फेरे गए मुख के सामने प्रकट होती गई। इसी से ब्रह्मा के चार मुख हो गए।

वे भगवती 'प्रकृति' ब्रह्मा के सामने चारो दिशाओं में प्रकट हुईं। भयाक्रान्त ब्रह्मा (अन्त में) तपस्या छोड़कर अपनी तपःस्थली से भाग गए।

इसके बाद भगवती विष्णु जी के पास गईं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विष्णु जी भी भयभीत हो उठे और वे तपस्या छोड़कर और आँखें बन्द करके जल में प्रविष्ट हो गए। अन्त में वे भीषण आकार वाली भगवती (प्रकृति) महेश के पास भी गईं, किन्तु वे उनका ध्यान भंग नहीं कर सकीं। वे प्रकृति को परीक्षा लेने हेतु आई हुई जानकर अपनी समाधि में ही निमग्न रहे। वे प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जो स्वर्ग में 'गंगा' के रूप में स्थित हैं, भगवान् शिव को 'पूर्णा' के स्वरूप में प्राप्त हुईं—

तेन तुष्टा भगवती स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।
पूर्णैव गिरिशं प्राप स्वर्गे गङ्गास्वरूपिणी।।

वे ही भगवती प्रकृति अंश रूप से 'सावित्री' होकर ब्रह्मा को पत्नीरूप में प्राप्त हुईं। उन्होंने अपने ही अंश से लक्ष्मी होकर विष्णु को पतिरूप में प्राप्त किया। वे ही अपने अंश से सरस्वती के रूप में भी प्रतिष्ठित हुईं।

ब्रह्मा ने समाधि-भंग के बाद पञ्चभूतों एवं अन्य तत्त्वों की रचना करने के बाद मरीचि, अत्रि, पुलह, क्रतु, अंगिरा, प्रचेता, वसिष्ठ, नारद, भृगु एवं पुलस्त्य—इन दस मानस पुत्रों को जन्म दिया। इसके बाद उन्होंने दक्षादि प्रजापतियों एवं मानसी पुत्री सन्ध्या, कामदेव, स्वर्ग, मृत्युलोक एवं पाताललोक की सृष्टि की। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक भाग हुआ—स्वायम्भुव मनु (दक्षिण

भाग से) और दूसरा भाग हुआ—शतरूपा (वाम भाग से)। मनु एवं शतरूपा से तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं—आकूति, देवहूति एवं प्रसूति।

इनमें से आकूति को रुचि प्रजापति को पत्नीरूप में दिया) देवहूति को कर्दम को दिया एवं प्रसूति को दक्षप्रजापति के लिये दिया। देवहूति एवं कर्दम से उत्पन्न अरुन्धती आदि नौ कन्यायें) (वसिष्ठ आदि ऋषियों की भार्या बनीं)।

प्रसूति एवं दक्षप्रजापति से चौदह कन्यायें उत्पन्न हुईं उनमें से उत्पन्न तेरह कन्यायें ऋषि कश्यप को दिया एवं स्वाहा नामक कन्या अग्नि को दिया।

मनु एवं शतरूपा के दो पुत्र भी हुये—प्रियव्रत उत्तानपाद।

दक्ष की चौदह कन्यायें—अदिति। दिति। दनु। काष्ठा। अरिष्टा। सुरसा। तिमि। मनु। क्रोधवशा। ताम्रा। विनता। कद्रु। स्वाहा। भानुमती।

फिर प्रकृति ने ब्रह्मा से कहा कि 'सावित्री' मेरे अंश से उत्पन्न हुई है—

तं प्राह प्रकृतिर्देवी भूत्वांशेन महामते।
सावित्री यां द्विजा: सर्वे सन्ध्यात्रयमुपासते।।

उन्होंने यह भी कहा कि सरस्वती और लक्ष्मी भी मेरे ही अंश से उत्पन्न हुई हैं—

तथांशेन समुत्पन्ना लक्ष्मीश्चापि सरस्वती।

आप दोनों—ब्रह्मा और विष्णु विषयासक्त हो गए। शिव परा प्रकृति को पत्नीभाव से पाने की कामना के अनन्तर भी परम योगी बने रहे—

शिवोऽभूत् परमो योगी साक्षात्तां प्रकृतिं पराम्।
अन्विच्छन्पूर्णभावेन पत्नीं देवर्षिसत्तम।।

प्रकृति ने शिव पर प्रसन्न होकर कहा—आप वर माँगिए। शिव ने कहा कि सावित्री तो ब्रह्मा को एवं लक्ष्मी और सरस्वती विष्णु को प्राप्त हो गईं। परमा पूर्णा प्रकृति आप अपनी लीला से जन्म लेकर मुझे प्राप्त हों—

किन्तु मां परमा पूर्णा प्रकृति: स्वयमेव हि।
त्वमेहि जन्म सम्प्राप्य कुत्रचिन्निजलीलया।।

प्रकृति ने कहा—

पूर्णा प्रकृतिरेवाहं भविष्ये तव गेहिनी।
सम्भूय मायया चारुदेहा दक्षप्रजापते:।।

इत्युक्त्वा सा महेशानं प्रकृति: परमेश्वरी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ! हर: प्रीतमना अभूत्।।

ध्यातव्य बिन्दु—शैव, वैष्णव एवं ब्राह्म पुराणों में 'शक्ति' को उतनी महत्ता नहीं दी गई, जितनी कि शाक्त पुराणों में। वैष्णव-शैव पुराणों में तो पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिए कठोर तप करती हुई दिखाई गई हैं; किन्तु देवीभागवत आदि शाक्त

पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव स्वयं प्रकृति देवी को पत्नीरूप में प्राप्त करने के लिए तपस्यारत दिखाये गए हैं।

सारांश यह कि विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा—तीनों की काम्य एवं देवता दोनों प्रकृति देवी हैं और उन्हीं से उनका जन्म भी हुआ है और उन्हीं की इच्छा का अनुगमन करते हुए ये त्रिदेव अपने-अपने कार्य निष्पादित करते हैं। मानों ब्रह्मा-विष्णु-महेश शक्ति के प्रतिनिधि हैं। प्रधान तो शक्ति है और ये (त्रिदेव) उनके आज्ञापालक हैं। शिव ने स्वयमेव परमा पूर्णा प्रकृति की आराधना की और उनसे भार्या बनने के लिए निवेदन किया—

प्रकृति: परमा पूर्णा शम्भुनाराधिता स्वयम्।
याचिता वनिताभावं तथेत्यङ्गीकृतं तया।।

ब्रह्मा जी ने प्रजापति दक्ष से कहा कि—

तस्मादवश्यं कुत्रापि समुत्पन्ना महेश्वरी।
पतिमात्स्यति सा नूनं तत्र मे नास्ति संशय:।।

अत: उन्होंने दक्ष को परामर्श दिया कि तुम तप करके उन्हें कन्यारूप में प्राप्त करो।

ब्रह्मा जी ने क्षीरसागर के तट पर जगदम्बा की आराधना की और तीन हजार दिव्य वर्षों तक तप किया। प्रसन्न होने पर वे प्रकृति देवी अपने भयानक स्वस्वरूप में प्रकट हुईं और उन्होंने दक्ष के घर में ही उनकी कन्या बनकर जन्म लेने की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उनका स्वरूप क्या है?

अथ सा प्रकृति: पूर्णा स्वयमाद्या सनातनी।
इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता दक्षं प्रकृतिरुत्तमा।
तामेव प्रकृतिं पूर्णां गौराङ्गीं दीर्घलोचनाम्।।

इन्हीं का नामकरण (दक्षपुत्री के रूप में) 'सती' रखा गया। यही[1] सती प्रकृति हैं—

इत्युक्ता तेन सा देवी सती प्रकृतिरूपिणी।

उन्होंने 'नम: शिवाय' कहकर वरमाला पृथ्वी पर रख दिया। स्वयंवर में अनामन्त्रित शिव ने वहाँ प्रकट होकर उस वरमाला को सिर पर धारण किया और अन्तर्धान हो गये। दक्ष ने महेश्वर को बुलाकर प्रकृतिभाषित बात को स्मरण करके उन्हें सती को समर्पित कर दिया। महेश ने वैवाहिक विधानसहित सती का पाणिग्रहण किया। सती के चले जाने पर दक्ष का दिव्य ज्ञान लुप्त हो गया।

सती परमा प्रकृति थी—'कन्येयं क्व प्रदेया वा प्रकृति: परमा च या'। अत: उनके जाते ही दक्ष का परम ज्ञान भी जाता रहा। वे शिव और सती दोनों की निन्दा करने लगे। वे भूल गये कि वे जिसकी निन्दा कर रहे हैं, वे 'ब्रह्म' है। वे पराप्रकृति हैं।[1]

सती ब्रह्मस्वरूपिणी हैं—

1. सतीमपि महेशानीं साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणीम्।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि—जर्मन वैज्ञानिक हैकेल Riddle of Universe में कहता है कि सारे जड़-चेतन पदार्थ भौतिक सत्ता के ही परिणाम हैं। जड़ता ही विक-सित होकर चेतना में परिणत हो जाती है (यही नास्तिक चार्वाक का भी सिद्धान्त है)। यदि विश्व की अन्तिम इकाई को मूल कण भी मान लिया तो विश्व का अन्तिम मूल कण भी गति का ही हिमीभूत रूप होगा या यह मानना पड़ेगा कि गति ही मूल पदार्थ के रूप में परिणत हो गई है। शक्ति पदार्थ में एवं पदार्थ शक्ति में रूपान्तरित तो हो ही जाती है। इसी हिमीभूत गति के उत्तरोत्तर परिक्रमण, परिभ्रमण, परिघूर्णन एवं प्रद-क्षिणा से सारा विश्व रचित है। समस्त सृष्टि गतिमय है; किन्तु यह गति व्यक्त शक्ति का ही एक रूप है। परात्पर शक्ति अव्यक्त शक्ति है। वह व्यक्त शक्तियों की भी जननी है।

अव्यक्त शक्ति क्या है? क्या हिमीभूत गति ही अव्यक्त शक्ति नहीं है? प्रत्येक परमाणु बड़े भयानक वेग से परिक्रमा कर रहा है; किन्तु उसके भीतर उससे भी अधिक भयानक गति से परिक्रमा करने वाले प्रभाणु, कर्षाणु एवं सर्गाणु आदि अनेक अणु हैं। जगत् तो गति है। जहाँ तक जगत् है, वहाँ अणुतम से महत्तम सभी पदार्थों में गति होगी; किन्तु एक ऐसा पड़ाव भी है, विश्रामस्थान भी है, जहाँ सारी प्रचण्डातिप्रचण्ड गतियाँ भी पहुँचकर अपनी गति खो देती हैं। वही विश्रामस्थान 'परमा शक्ति' है। 'शक्ति' चाहे वह भौतिक हो या अभौतिक, सभी सस्पन्द हैं; किन्तु विश्रामावस्था में वह परा गति निस्पन्दवत् ही रहती है। परा शक्ति की स्पन्दमयता ही सृष्टि है और उसकी निस्पन्द-वत् अवस्था ही प्रलय है।

प्रश्न—यदि सृष्टि या जगत् 'शक्ति' है तो इस स्वसंवेदन की स्थिति में साधक की शक्ति-साधना का स्वरूप क्या होगा? इस दिशा में स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र दोनों की दृष्टियाँ देखिए—

1. स्पन्दशास्त्र—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।।

तेन शब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न यः शिवः।
भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः।।

तत्संवेदनरूपेण तादात्म्यप्रतिपत्तितः।

2. प्रत्यभिज्ञाशास्त्र : (आचार्य उत्पलदेव)—

सोऽहं ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहितः ।। } विश्व के साथ तादात्म्य भाव की साधना।

1. सतीयमाद्या प्रकृतिः स्वयमेवाशरीरिणी।

गति ही जगत् है। सारे शरीर में दौड़ने वाली रक्त की धारा में गति क्यों है? क्योंकि हृदय में गति है। बीज में अंकुर क्यों फूटता है? क्योंकि अंकुर में गति है। पेड़ों में फूल, फल क्यों लगते हैं? क्योंकि पेड़ में आन्तरिक गति है। हम साँस क्यों ले पाते हैं? क्योंकि फेफड़ों में गति है। दिन-रात क्यों होते हैं? क्योंकि सूर्य में गति है। लोग युवक से वृद्ध क्यों होते हैं? क्योंकि कोषिकाओं में गति है अर्थात् आकाश-गंगा, नीहारिका, सूर्य, तारे, नेपच्यून, प्लेटो, मर्करी, वेनस, जुपीटर, सैटर्न, मून, मार्स आदि सारे ग्रह-उपग्रह गति से बँधे हैं। गति 'शक्ति' का ही एक रूप है। स्पन्द ही शक्ति है। उसी से सृष्टि होती है। योगिनीहृदय में कहा गया है कि परमा शक्ति, जो कि विश्वरूपिणी है, जब स्वेच्छावश अपनी स्फुरत्ता (गति) को देखती है तब विश्व-चक्र का जन्म हो जाता है—

यदा सा परमाशक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

वह स्वेच्छा से जगत् को निगल लेती है और सृष्टिकाल में उसे उगल देती है। उसका निगलना ही प्रलय है और उसका उगलना ही सृष्टि है। वह निगरण-उद्गिरण वाली शक्ति है—

स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि।

शक्ति अपनी स्फुरत्ता को देखती है? इसका क्या अर्थ है? 'विश्वसर्जनमेव पराशक्तेः स्फुरत्ता तस्याः सृष्टिरूपत्वात्।'[1]

शब्दों का श्रवण (कानों पर वायु की स्फुरणात्मक गति-तरंग), वस्तु-स्पर्श (जाड़ी-जाल पर वस्तुओं का स्पर्श तरंग), वस्तु-दर्शन (प्रभाणुओं का तरंगरूप में नेत्रपटल से संसर्ग) आदि सभी ऐन्द्रिय संवेदनायें हमें उत्तेजना-केन्द्र से निर्गत गत्यात्मक तरंगों द्वारा ही होती हैं। यह गति भी शक्ति का ही रूप है और गति का आन्तर विश्राम भी शक्ति का ही रूप है।

प्रारम्भिक काल से ही जीववैज्ञानिकों (Biologists) के लिए जीवनोत्पत्ति, जीवन-विकास आदि से संश्लिष्ट प्रश्न एक अनसुलझी गुत्थी ही बनकर रह गए हैं। वैज्ञानिक शोधों की निष्पत्तियों को हम मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं— यान्त्रिक सिद्धान्त (Mechanistic Theories) एवं भौतिक सिद्धान्त (Materialistic Theories)।

यान्त्रिक सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि प्राकृतिक नियमों से नियन्त्रित Inorganic matters से जीवन की उत्पत्ति हुई है एवं भौतिक सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि जीवन की उत्पत्ति Organic compounds के द्वारा ही हुई है।

---

1. अमृतानन्द : योगिनीहृदयदीपिका।

जीवनोत्पत्ति-विषयक अनेक सिद्धान्त हैं—

विशिष्ट सृष्टि-सिद्धान्त (Special Creation Theory)—इसके अनुसार हमारे पृथ्वी ग्रह पर जीवनोत्पत्ति किसी दैवीय घटना की परिणति है। इसके अनुसार जीवन एक आध्यात्मिक इकाई है—आत्मा (Soul) है। संसार के सारे प्राणी परमात्मा के द्वारा उत्पन्न किये गये। सारे पौधे, मनुष्य, ग्रह, पशु, उपग्रह, तारे आदि सभी अपने पूर्ण विकसित स्वरूप में एक साथ उत्पन्न हो गए। Bible के अनुसार समस्त जगत् की सम्पूर्ण सृष्टि मात्र छः दिनों में कर दी गई। तीसरे दिन पौधे, पाँचवें दिन मछली और मुर्गा तथा छठे दिन पशुओं की उत्पत्ति हो गयी। अन्त में मनुष्य और मनुष्य में भी पहले पुरुष और फिर नारी का जन्म हुआ। आदि मानव Adam था और बाद में परमात्मा ने उसमें श्वास-सञ्चार किया।

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि संसार में जीवों का विकास अकस्मात् नहीं हुआ। Charles Darwin ने कहा कि पृथ्वी पौधों एवं जीवों से सदैव नहीं बसी थी। इसीलिए Haldane ने कहा कि—A supernatural origin of life appears as a much greater miracle to us it did 100 or 200 years ago.

Spontaneous Generation का सिद्धान्त—इसके मतानुसार जीवन का प्रारम्भ Non-living organic matter से हुआ। इन भौतिक दृष्टि वाले जीववैज्ञानिकों के अनुसार जीवन के पूर्व Organic matter का अस्तित्व में रहना अनिवार्य है; क्योंकि यह जीवन की प्रारम्भिक अनिवार्य शर्त है।

यूनानी दार्शनिक Anaximander (611-547 B.C.) ने कहा कि पौधों एवं जीवों का जन्म Inorganic substanee से ही हुआ है।

यूनानी दार्शनिक Anaxagoras (510-428 B.C) ने कहा कि जब Tiny seeds (Spernea) वर्षा के सम्पर्क में आये तभी उसी में से जीवन का प्रारम्भ हुआ।

Aristotle (384-322 B.C.) ने कहा कि दल-दल एवं आर्द्र जमीन से कीड़े, मछलियाँ, मेढ़क, चूहे आदि जन्मे हैं। स्वयं मनुष्य भी कीड़ों की ही भाँति प्रारम्भ में इसी प्रकार जन्म लिया होगा।

यूनानी दर्शनिक Anaximenes (588-524 B.C.) की मान्यता थी कि जीवन का मूल स्रोत वायु है। सूर्य की ऊष्मा ने ही पौधों एवं पशुओं को (प्रारम्भिक सृष्टि-अवस्था) जीवन प्रदान किया।

बेबीलोनियनों एवं एजिप्शियनों ने माना कि कीड़े, Flies, Beetees का जन्म Lice की खाद एवं मनुष्य के स्वेद से हुई और मेढ़कों, सर्पों तथा घड़ियालों का जन्म नील नदी की मिट्टी से हुआ। Lamark जैसा वैज्ञानिक भी मशरुम की Spontane-ous से उत्पत्ति मानता है।

1926-1698 में भौतिक विज्ञानी Fancesco Redi ने सर्वप्रथम Spontaneous generation के सिद्धान्त का प्रत्याख्यान किया। Buffon (1707-1799) ने माना कि Organic molecules के संग्रह से ही जीवन की उत्पत्ति हुई। Needham (1713-1781) ने माना कि Organic तत्त्वों से Micro-organisms उत्पन्न हुए। Spallanzani (1729-1799) ने तथा Pasteur (1822-1895) ने Spontaneous gereration को असिद्ध कर दिया।

जीवन की नित्यता का सिद्धान्त (Theory of Eternity of Life)— जीवन पदार्थों की ही भाँति नित्य है। जीवन परिवर्तित तो होता है—अपने रूपों में परिवर्तन तो करता रहता है; किन्तु यह मृत द्रव्यों से कभी जीवित नहीं होता।

Preyer (1880) ने माना कि जीवन जीवन से ही आता है, जीवनरहित पदार्थों से नहीं। जब पृथ्वी प्रारम्भ में Nolten liquid मात्र थी, तब भी जीवन अवश्य रहा होगा।

Bondi (1952), Hoyle (1950) तथा Gold ने यह माना कि यह विश्व जैसा आज है वैसा ही सृष्टि के प्रारम्भ में भी था। Amarzumian (1953) ने कहा कि विश्व में आज की स्थिति से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

Cosmogoic theory के अनुसार इस पृथ्वी पर जो जीवन है, वह Spores से आया या दूसरे ग्रहों के अणुओं-तत्त्वों से आया। Richter (1965) ने कहा कि पृथ्वी की उत्पत्ति के समय अनेक आकाशीय पिण्ड एवं छोटे अणु, कण आकाश में अपने स्थान से हटकर अन्यत्र विस्थापित हो गये थे। इन्होंने जीवाणुओं को फैलाया होगा और उन्हीं से Living organisms सत्ता में आए होंगे। Helmholtz (1864) ने Meteorite दृष्टि प्रस्तुत की। इनके अनुसार अन्य ग्रहों से Meteorite particle की सहायता से जो जीवित जीवाणु पृथ्वी पर गिरे, उनसे ही जीवन का प्रारम्भ हुआ।

जीवनोत्पत्ति की आधुनिक अवधारणायें—Oparin hypothesis के अनुसार जीवन एक क्रमिक विकास की देन है। अत: जीवन अकस्मात् अस्तित्व में आने वाली वस्तु नहीं है। Oparin (ओपरिन) ने अपनी पुस्तक The Origin of Life (1936) में इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।

Sir James Jeans ने कहा कि सूर्य का सारा द्रव्य (Mass) दूसरे तारे द्वारा नष्ट कर दिया गया; अत: उसके सहस्रश: टुकड़े हो गये और वे ही विभिन्न ग्रहों पर जम गये। उस समय का तापक्रम अत्युष्ण था। यही पृथ्वी पर Organic compounds के प्राथमिक जीवन की नींव थी। Oparin के सिद्धान्तानुसार ग्रहों का प्रारम्भिक तापक्रम लगभग 5000-6000°C था। अत: इस अत्युष्ण तापक्रम के कारण कार्बन तीन रूपों में स्थित था—Discarbon, Cynogen (C. N.) और Methane (C.H.)।

इस समय तक आक्सीजन को पहचाना नहीं जा सका था, यद्यपि उसके आक्साइड,

अल्म्यूनियम, बोरोन, हाइड्रोजन, टिटैनियम, जिरकोनियम जरूर पाये गए थे।

प्रथम कार्बन Compounds केवल Hydrocarbons (हाइड्रोकार्बाइड) के रूप में थे। ये कार्बन ऑक्साइड नहीं थे।

कार्बन Oxidised form में नहीं थे। Oparin ने माना कि इस समय आक्सीजन था ही नहीं। सान्द्र एवं असान्द्र हाइड्रोकार्बन्स बार-बार संयुक्त होते रहे। उन्होंने Condensation, Polymerization आक्सीडेशनरिडक्शन क्रियाओं द्वारा विशेष प्रकार के मिश्रित जल (Hotdilute soup, जैसा कि Haldane ने कहा था) को निर्मित किया। इस जल में अल्कोहल Aldehydes acetates acids, अमीनो एसिड आदि थे। अमीनो एसिड में Urin की अत्यधिक क्षमता होती है। इस समय ये Polymerised हुए, जिससे कि Polypeptides का निर्माण हुआ और फलतः प्रोटीनों का सिन्थेसिस (संश्लेषण) प्रारम्भ हुआ। यही जीवन के प्रारम्भ का प्रथम बिन्दु था; क्योंकि ये जीवित Cell के प्रधान भाग होते हैं।

जीवन की रासायनिक उत्पत्ति के सिद्धान्त—1861 में A.M. Butbrov ने प्रदर्शित किया कि कार्मलिन का लाइम वाटर सोल्यूशन यदि किसी गर्म स्थान पर रक्खा जाय तो यह शुगर मौलेक्यूल के कम्प्लेक्स में रूपान्तरित हो जाता है। अतः प्राकृतिक अवस्था में भी प्रोटीन निर्मित हो जाते हैं, जो कि जीवन की प्राथमिक अनिवार्यता है।

यूनानियों की दृष्टि—

(i) Thales (624-548 B.C.)—समुद्र के जल से ही संसार के समस्त प्राणियों की सृष्टि हुई।

(ii) Anaximander (611-545 B.C)—रूपहीन पदार्थ से शनैः-शनैः जीवन विकसित हुआ।

(iii) Anaximenes (582-524 B.C)—वायु ही जीवन का मूल स्रोत है।

(iv) Xenophanes (576-480 B.C.)—Fossils प्राणियों के अवशेष हैं, जो कभी जीवित थे। एक समय सारी पृथ्वी समुद्र से ढकी हुई थी।

(v) Heraclitus (533-475 B.C.)—कभी भी कोई भी वस्तु क्रियाहीन अवस्थान में अवस्थित नहीं थी। सभी वस्तुयें सदैव से सक्रिय थीं। अतः प्रत्येक वस्तु नूतन आकार में आकारित हुई।

(vi) Empedocles (495-535 B.C.)—विकासवाद के जनक एम्पेडाक्लीज ही थे। इन्होंने चार सिद्धान्त प्रतिपादित किये—

1. Spontaneous generation theory की दृष्टि के समानुरूप इन्होंने भी

कहा कि जीवन का विकास Abiogenessis (Spontaneous generation के समानुरूप) में हुआ।

2. वनस्पति-जीवन पहले सत्ता में आया और बाद में (वनस्पतियों के बाद में) प्राणियों का जीवन अस्तित्व में आया।

3. अपूर्ण रूप बाद में पूर्ण होते गए।

4. अपूर्ण रूपों का नाश होने से ही पूर्ण रूप सत्ता में आए।

(vii) Aristotle (384-322 B.C.) ने विकासवादी दृष्टि का समर्थन किया।

सृष्टि की विकासवादी दृष्टियों के सिद्धान्त—

(i) Special creation theory

(ii) Greek सिद्धान्त।

(iii) बेकन, बक्रौन, डार्विन आदि के आधुनिक विचार।

(iv) आधुनिक सिद्धान्त—

1. लैमार्कियन सिद्धान्त।
2. कैटास्ट्रोफिज्म एवं यूनीफार्मी टैरियनिज्मिक सिद्धान्त।
3. डार्विन का नेचुरल सेलेक्शन सिद्धान्त।
4. डी वैरीज का म्यूटेशन सिद्धान्त।
5. आर्थोजेनेसिस सिद्धान्त।
6. आइसोलेशन सिद्धान्त।
7. इमर्जेण्ट विकास।

बाइबिल का सिद्धान्त—जगत् की सृष्टि देवदूतों के लिए की गई थी। बाद में दुष्ट देवदूत शैतान के बहकावे में आकर अपने पाप से स्वर्ग से अध:पतित हुए। पाप के दण्डस्वरूप संसार नष्ट कर दिया गया और पापी नरक में डाल दिए गए। इसी के परिणामस्वरूप पृथ्वी की सृष्टि हुई।

Hebrew क्रियायें Bana, Asah, Yastar सृष्टि के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुई हैं। Bara Exnihilo (Out of nothing) असत् से सृष्टि होने की बात को संकेतित करता है। Asah, Yatsar पूर्ववर्ती सामग्रियों से सृष्टि होने की बात संकेतित करता है।

जब परमात्मा ने मछली, मुर्गे को जन्म दिया तो Exnihilo (Out of nothing) से जन्म दिया। Bara से जन्म हुआ। पशुओं का जन्म Asah से हुआ। मनुष्य के शरीर का जन्म Yastar या Asah से : पृथ्वी की धूल से हुआ एवं आत्मा Bara का जन्म हुआ।

आधुनिक विज्ञान और ब्रह्माण्ड की सृष्टि

बिगबैंग का सिद्धान्त—आधुनिक विज्ञान परमाणुवादी है। उसे 'परमाणु' ही सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार्य है। उसकी दृष्टि में BIG BANG (सृष्टि का

अन्तक्षरीय आद्य महाविस्फोट) ही सृष्टि का—ब्रह्माण्ड के सृजन का मूल कारण है। ब्रह्माण्ड क्या है? आकाशगंगा, जिसके भीतर दस करोड़ से अधिक तारे, उनके अनुषंगी तारे और मैजेलेनीय मन्दाकिनी हैं—इन सबका सम्मिलित रूप ही ब्रह्माण्ड है। हमारी आकाशगंगा की भाँति लाखों अन्य दुग्धमेखलायें हैं। हमारी मन्दाकिनी (आकाशगंगा) लगभग चौबीस मन्दाकिनी-समूहों का एक गुच्छ है। यह लगभग तीस लाख प्रकाश-वर्ष व्यास के क्षेत्र में फैली हुई है। ब्रह्माण्ड का व्यास दो सौ पचास करोड़ प्रकाशवर्ष है और इसके भीतर असंख्य आकाशगंगायें हैं।

विश्वोत्पत्ति के सम्बन्ध में सामान्य धारणा यह है कि प्रारम्भ में एक घनीभूत गोला था। यही घनीभूत गोला फैलते-फैलते ब्रह्माण्ड बन गया। मूल गोला अब भी फैल रहा है; अत: आज भी ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। प्रारम्भ में यह अत्यन्त सम्पीड़िता-वस्था में था। उस समय विश्व का घनत्व न्यूक्लीय तरल पदार्थ के घनत्व के बराबर रहा होगा। अण्वात्मक नाभिक का घनत्व पानी की सघनता से करोड़ों गुना अधिक है। आद्य विश्व का घनत्व इतना रहा होगा कि प्रत्येक घन सेण्टीमीटर स्थान में दस करोड़ टन का पदार्थ समाहित था। बेल्जियम के खगोल-विज्ञानी एवं पादरी जार्ज लेंमेटेर ने इसी सिद्धान्त को 'बिगबैंग' का सिद्धान्त कहा।

जार्ज लेंमेटेर का सिद्धान्त—जार्ज लेंमेटेर का कथन है कि करोड़ों वर्ष पूर्व यह विश्व अत्यन्त घनीभूत था। इसमें से एक भयानक विस्फोट हुआ और उसके कारण इसका विस्तार होता गया। सृष्टि के इस आद्य विस्फोट ने इस अति सघन पिण्ड को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसके टूटे हुए अंश अन्तरिक्ष में दूर-दूर छिटक गए। वे आज भी वहाँ से हजारों किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की दर से गतिमान हैं। इन्हीं गतिशील अंशों से आदि में आकाशगंगाओं का निर्माण हुआ।

सृष्टि का सतत सृष्टि-सिद्धान्त—खगोलविज्ञानी थामस गोल्ड और हर्मन बाडी ने 'सतत सृष्टि सिद्धान्त' की स्थापना की। ब्रिटेन के खगोलज्ञ फ्रेड हायल ने इसका समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार आकाशगंगायें परस्पर दूर तो होती जाती हैं; किन्तु उनका आकाशीय घनत्व अपरिवर्तित रहता है। पुरानी आकाशगंगाओं के एक-दूसरे से दूर हो जाने के कारण उत्पन्न रिक्त स्थल में नव्य आकाशगंगा का आविर्भाव हो जाता है। ये नव्य आकाशगंगायें नव्य पदार्थों से निर्मित होती हैं।

पल्सेटिंग (आसिलेटिंग) विश्व सिद्धान्त—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन डॉ. एलेन संडेज ने किया। इसके अनुसार यह विश्व करोड़ों वर्षों के अन्तराल में क्रमश: फैलता और सिकुड़ता है। लगभग एक सौ बीस करोड़ वर्ष पूर्व एक भयानक विस्फोट हुआ और तब से विश्व विस्तृत होता जा रहा है। यह प्रसार दो सौ नब्बे करोड़ वर्षों तक चलेगा और तब गुरुत्वाकर्षण अधिक विस्तार को रोक देगा। फिर पदार्थ का सिकुड़न प्रारम्भ हो जाएगा और अपने भीतर पुन: सिमट जाएगा। इस प्रक्रिया को

अन्त:विस्फोट कहते हैं। यह प्रक्रिया चार सौ दस करोड़ वर्षों तक चलती रहेगी। जब यह अत्यधिक सम्पीडित या घनीभूत हो जाएगा तब एक बार पुन: भयानक विस्फोट होगा। यह ब्रह्माण्डीय उत्पत्ति एवं विकास का नवीनतम सिद्धान्त है।

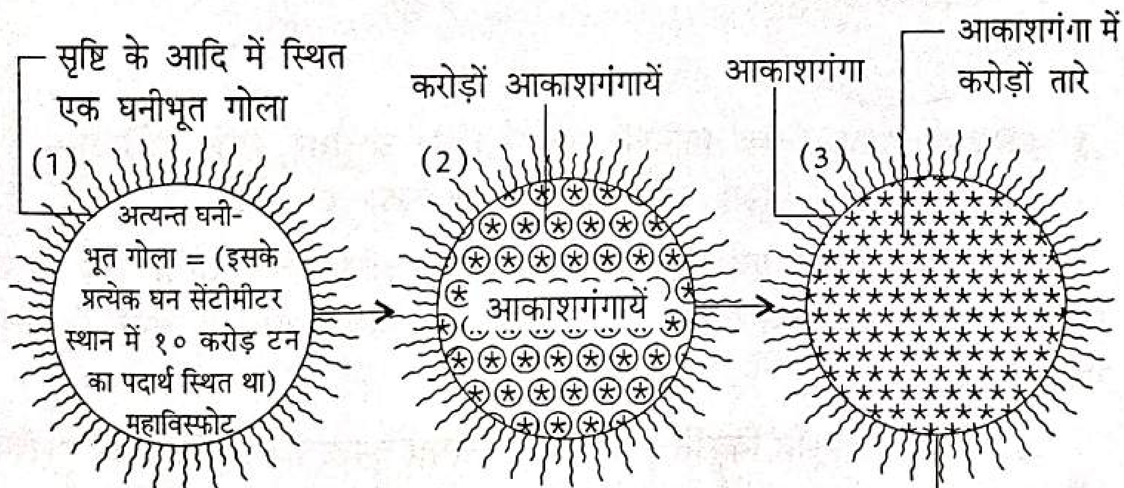
विश्व का विस्तार निरन्तर होता जा रहा है।

आद्यविस्फोट का सिद्धान्त—आधुनिक वैज्ञानिकों ने आद्य-विस्फोट से ब्रह्माण्ड के विकास एवं चराचर (जड़-चेतन) जगत् की पारमाण्विक रचना का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया है, वह दर्शनशास्त्र के विपरीत भी नहीं है।

सृष्टि के आदि में ॐकार का स्फोट, व्याकरणागम का स्फोट, स्पन्दविज्ञान का स्पन्द, शक्ति की स्फुरता आदि सभी दार्शनिक तथ्य इसी वैज्ञानिक मान्यता को पुष्ट करते हैं कि सृष्टि के आदि में किसी महान् विस्फोटात्मक गति ने जगत् की सृष्टि की नींव डाली और वही अपरिमेय एवं प्रचण्ड गति आज भी ब्रह्माण्ड को तीव्र गति से विकास की दिशा में अविश्रान्त दौड़ाये जा रही है। ब्रह्माण्ड का आज भी विकास हो रहा है; क्योंकि आद्य वैश्विक गति अब भी विकास में प्रेरक बनी हुई है।

ब्रह्माण्ड की सृष्टि का सिद्धान्त—

1. वैज्ञानिक दृष्टि—जड़ पदार्थों से ही सृष्टि हुई।

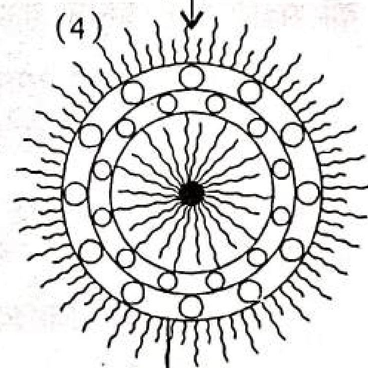


1. इस सघन पिण्ड का टूटकर अन्तरिक्ष से बिखर जाना → (गोले का छिन्न-भिन्न होना)

2. टुकड़ों का हजारों मील प्रति सेकेण्ड की गति से आकाश में गतिमान होकर फैलते जाना।

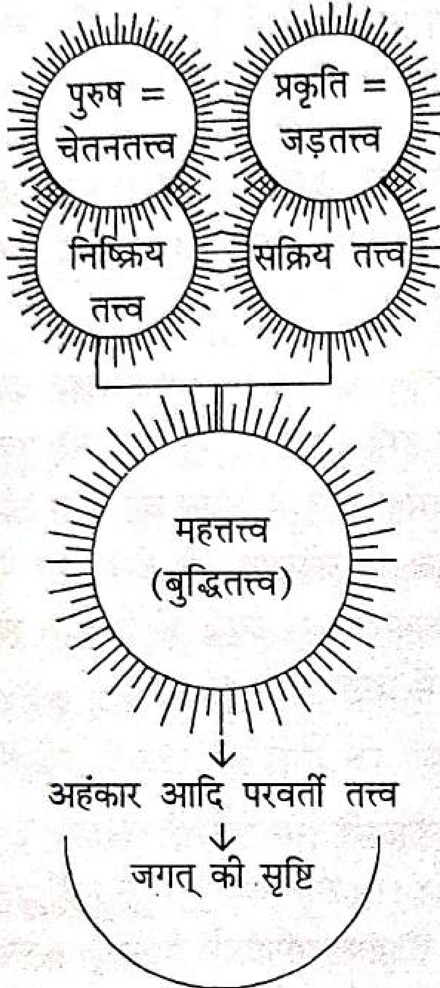
3. एक आकाशगंगा में करोड़ों तारे।

4. एक तारे के चतुर्दिक अनेक ग्रह एवं ग्रहों के चतुर्दिक अनेक उपग्रह।

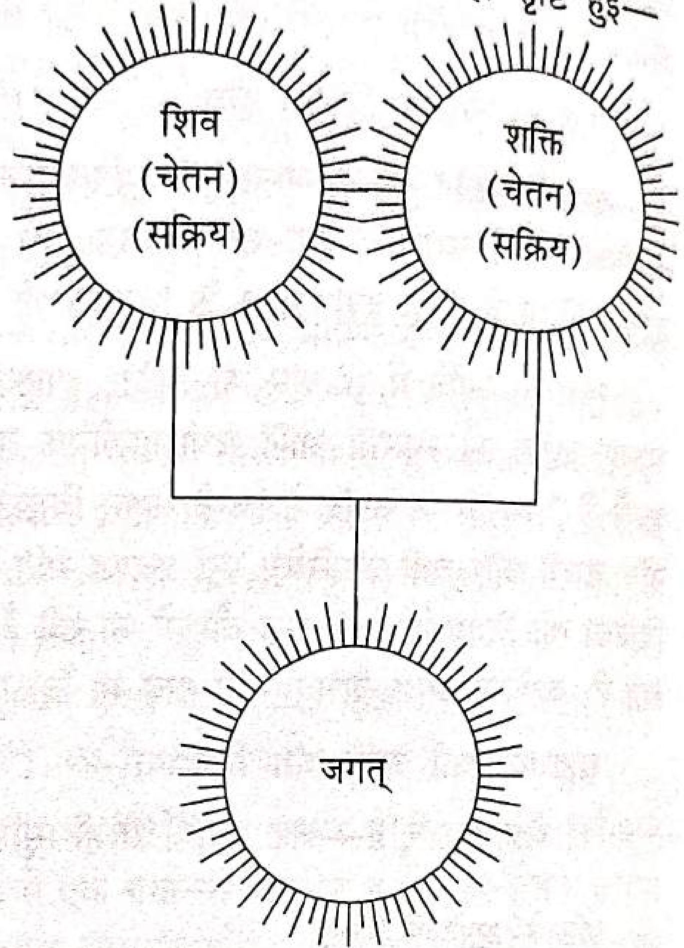


एक सूर्यमण्डल के चतुर्दिक अनेक ग्रह एवं उनके उपग्रह

2. सांख्य दर्शन : जड़ एवं चेतन के 'संयोग' से सृष्टि हुई—



3. शाक्तदर्शन एवं शैव त्रिकदर्शन : केवल चेतनतत्त्व से ही सृष्टि हुई—



आचार्य शंकर (एक तान्त्रिक आचार्य) **के अनुसार सृष्टि-प्रक्रिया**—

1. 25 तत्त्वों में 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' तत्त्व नित्य तत्त्व हैं।

2. वह प्रकृति ब्रह्मा एवं नारायण आदि सभी को आवृत्त किए हुए है। उस प्रकृति को या तो केवल वह स्वयं जानती है या तो उसे कालस्वरूप नारायण जानते हैं; अन्य कोई नहीं।

3. कालतत्त्व प्रकृति विकृति (परिवर्तन) उत्पन्न करता है। प्रकृति अपने गुणत्रय की सहायता से अनेक कार्यों (रचनाओं) को जन्म देती है।

प्रकृति ज्योति से सम्पर्क में आने पर चिन्मात्रा कहलाती है—

सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा।

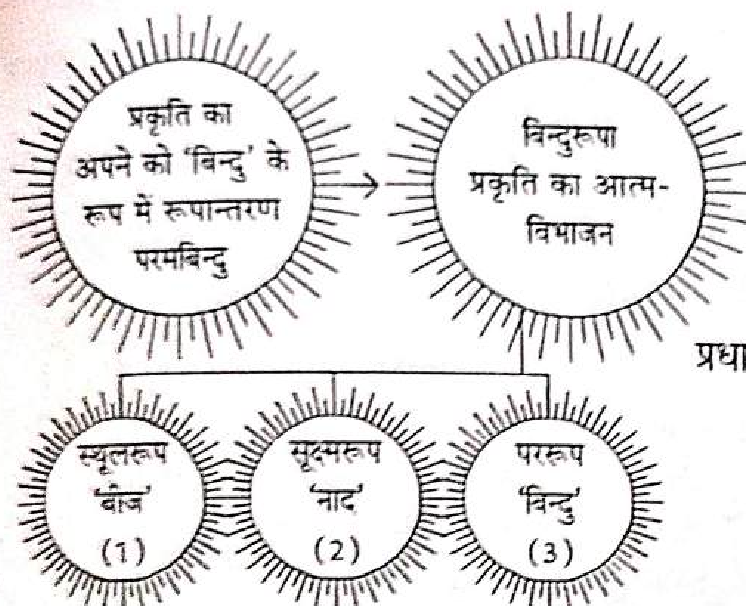
4. वह शक्ति सिसृक्षु होने पर अपने को घनीभूत कर लेती है (Solidifies of thickness) और बिन्दु बन जाती है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्।

5. काल की सहायता से बिन्दु अपने को तीन भागों में विभाजित कर लेता है— स्थूल रूप, सूक्ष्म रूप एवं पर रूप। ये ही बीज, नाद एवं बिन्दु कहलाते हैं—

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते।।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।।



प्रकृति ही 'प्रधान' एवं 'शक्ति' नामों से पुकारी जाती है—

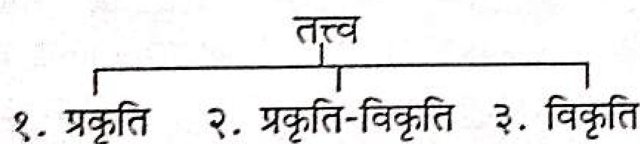
प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते।
(शंकराचार्य)

'स बिन्दुर्भवति त्रिधा'।
(शंकराचार्य)

शब्दब्रह्म का आविर्भाव—परम विन्दु (प्रकृति = शक्ति) जव आत्मविभाजन (Self division) करती है तव एक महान् अव्यात्मक रव उत्पन्न होता है। उस रव को ही शब्दब्रह्म कहा जाता है—

विन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।।

पद्मपादाचार्य कहते हैं कि विन्दु तो ईश्वर है, परम पुरुष है। बीज अचिदंश है, प्रकृति है। दोनों के सम्वन्ध से परा, पश्यन्ती आदि वाणियों का आविर्भाव हुआ।



1. मूल प्रकृति = प्रकृति। (1 तत्त्व)।

2. प्रकृति-विकृति = महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्रायें (7 तत्त्व)।

3. अन्य 16 पदार्थ = 10 इन्द्रियाँ + मन + पञ्च महाभूत = विकृति।

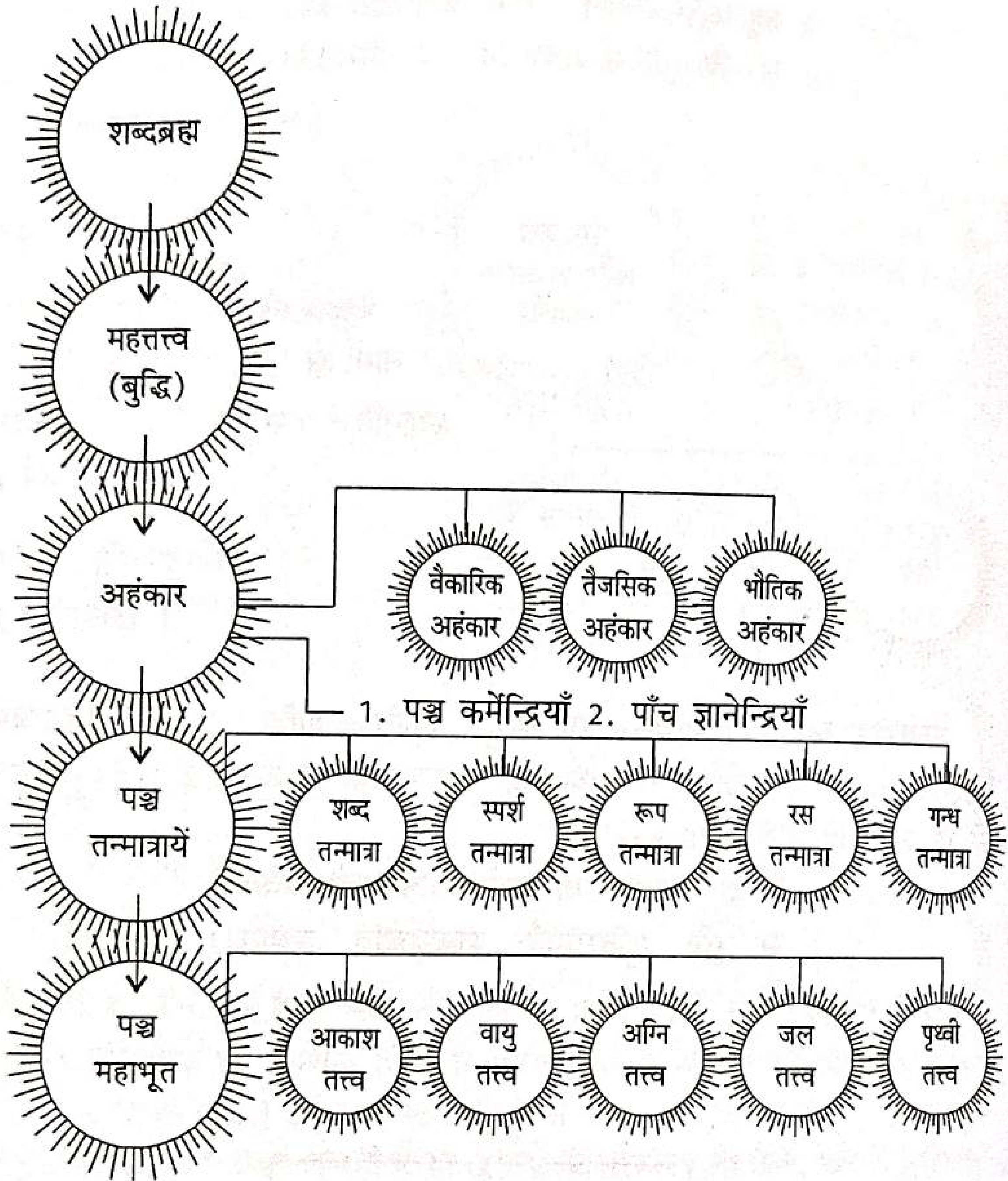
अष्ट प्रकृतियाँ अव्यक्त हैं—

(क) महत्तत्त्व (ख) अहंकार (ग) पाँच तन्मात्रायें

करण = अन्तःकरण—

(क) बुद्धि (ग) चित्त

(ख) अहंकार (घ) ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ



कालतत्त्व के द्वारा अनुप्रेरित होकर एवं गुणघोष से संवलित शक्ति के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न हुई। शब्द आविर्भूत हुआ और इस प्रकार शब्दसृष्टि का आरम्भ हुआ—

कालप्रेरितया गुणघोषयुजा शब्दसृष्टिरथ शक्त्या।

(घोष = पूर्वोक्त रव अर्थात् शब्दब्रह्म) शक्ति = तत्त्व (प्रकृति) (सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा), शब्द से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल एवं जल से पृथ्वी तत्त्व का आविर्भाव हुआ।

(शंकराचार्य : प्रपञ्चसारतन्त्र)

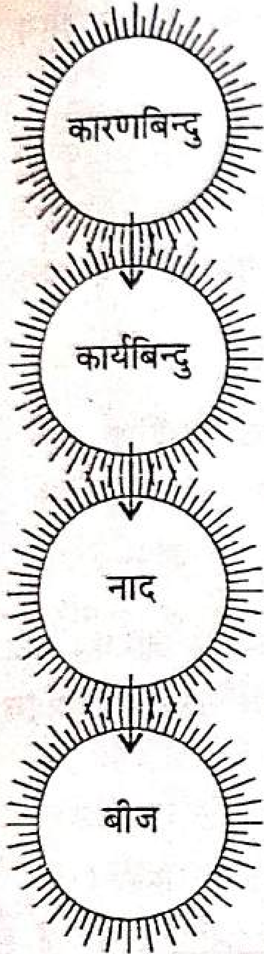
आचार्य भास्करराय की दृष्टि—प्राणियों के कर्मों का परिपाक प्रागभाव 'विचिकीर्षा' कहलाता है। उससे परिपाकावसर पर मायावृत्ति का आविर्भाव होता है। उसी प्रकार परिपक्व, कर्माकार परिगणित माया-विशिष्ट ब्रह्म 'अव्यक्त' कहलाता है—

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम।

जगदंकुर-कन्दरूप होने के कारण 'बिन्दु' शब्द का प्रयोग किया गया है—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुता। (प्रपञ्चसार)

अतः कारणबिन्दु से कार्यबिन्दु और कार्यबिन्दु से 'नाद' एवं नाद से 'बीज' की उत्पत्ति हुई।



इन्हें ही पर, सूक्ष्म एवं स्थूल कहा गया है। इनका स्वरूप क्या है?

1. चिदंश 2. चित्-अचित्-मिश्र अंश 3. अचिदंश।

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।

1. स्थूल 2. सूक्ष्म 3. पर—त्रैविध्य।

स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते।

कारणबिन्दु आदि चार हैं—

1. अधिदैवत 2. अव्यक्तेश्वर 3. हिरण्यगर्भ 4. विराट्स्वभाव।

1. शान्ता 2. वामा 3. ज्येष्ठा 4. रौद्री।

1. अम्बिका 2. इच्छा 3. ज्ञान 4. क्रिया।

अधिभूत—कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, ओड्याण पीठ (नित्या-हृदय)।

अध्यात्म—कारणबिन्दु, शक्ति, पिण्ड, कुण्डलिनी आदि शब्दों से व्यक्त मूलाधारस्थ शक्ति—

शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां।
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः।।

वही अविभागस्थ तत्त्व कारणबिन्दु है। सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि जब यही तीन कार्यबिन्दु के रूप में विभाजित हो जाता है तब उस अवस्था में अव्यक्त 'शब्दब्रह्म' नामक रव उत्पन्न होता है—

बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद् व्यक्तात्मा रवोऽभवत्।

वही रव शब्दब्रह्म कहलाता है।

वही यह रव कारणबिन्दु से तादात्म्यापन्न होने के कारण सर्वगत होने पर भी संस्कृत पवन की सहायता से प्राणियों के मूलाधार चक्र में अभिव्यक्त होता है—

देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुदेति समीरणः।
विवक्षोरिच्छयोत्थेन प्रयत्नेन सुसंस्कृतः।
स व्यञ्जयति तत्रैव शब्दब्रह्मापि सर्वगः।।

अतः कारणबिन्द्वात्मक शब्दब्रह्म निस्पन्द होने के कारण 'परा वाक्' कहा जाता है।

वही शब्दब्रह्म नाभिपर्यन्त आते हुए, उसी वायु से अभिव्यक्त होते हुए, विमर्शरूप मन से युक्त होकर, सामान्य स्पन्द एवं प्रकाशरूप में स्थित होकर कार्यबिन्दु के स्वरूप में 'पश्यन्ती वाक्' कहा जाता है।

वही शब्दब्रह्म उसी वायु से हृदयपर्यन्त अभिव्यज्यमान होकर निश्चयात्मिका बुद्धि से संयुक्त होकर विशेषस्पन्दरूप में प्रतिष्ठित होकर अपनी प्रकाशमय एवं नादमय स्थिति में 'मध्यमा वाक्' कहलाता है।

वही शब्दब्रह्म मुखपर्यन्त फैलकर, वायु के द्वारा कण्ठादि स्थानों में अभिव्यज्यमान अकारादि वर्णों के रूप में ध्वनित एवं श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा स्पष्टत: ग्राह्य, प्रकाशरूप एवं बीजात्मक वाक् 'वैखरी वाक्' कहा जाता है। शंकराचार्य जी ने इसे इन शब्दों में व्यक्त किया है—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भाव: पराख्य:
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्य:।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तो: सुषुम्णा
बद्धस्तस्माद्भवति पवन-प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

मानव चतुर्विध मातृकाओं में से परा-पश्यन्ती-मध्यमा वाक् को न जानकर मात्र चतुर्थ वाक्—वैखरी वाक् को ही जानता है और वही बोलता है। वेदों में वाग्योग के प्रसंग में कहा गया है—

अपदं पदमापन्नं पदं चाप्यपदं भवेत्।
पदापदविभागं च य: पश्यति स पश्यति।।

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

इन्हीं वाणियों या वाग्योग से संसार की सृष्टि का प्रथम सोपान 'शाब्दीसृष्टि' और इसके द्वारा दूसरा सृष्टिसोपान 'आर्थी सृष्टि' अस्तित्व में आता है।

शाक्त दर्शन में सृष्टि-विधान—उपनिषदों के 'ब्रह्म' को ही शैव-शाक्त दर्शन में परमशिव या परा शक्ति कहा गया है। परमशिव की सर्वातीता शक्ति के दो विकसित स्वरूप हैं—प्रकाश एवं विमर्श। शिव की दो अवस्थायें है—विश्वमय एवं विश्वातीत। परमशिव विश्वोत्तीर्ण है। शक्ति विश्वमय है।

1. प्रकाशरूप शिव—अम्बिका शक्ति है।
2. विमर्शरूपा शक्ति—शान्ता शक्ति है।

सृष्टि-विधान में प्रकाश बिन्दु जब विमर्श बिन्दु में प्रवेश करता है तब बिन्दु फूल उठता है। बिन्दु से ही नाद का आविर्भाव होता है। नाद शिव और शक्ति का सम्बन्ध है। सारे तत्त्व इसी नाद में अवस्थित हैं। यही नाद व्यक्तावस्था में त्रिकोण आकार ग्रहण

कर लेता है। इस त्रिकोण का एक कोण (एक बिन्दु) 'प्रकाश' है तो अन्य बिन्दु 'विमर्श' है। इन दोनों के संयोग से मिश्र बिन्दु का आविर्भाव होता है।

अहन्तारूप महाबिन्दु में सित, शोण एवं मिश्र नामक तीन बिन्दु हैं। विमर्श रक्तबिन्दु है। प्रकाश शुक्लबिन्दु है और दोनों का समरसभाव मिश्रबिन्दु या सूर्य है। सूर्य को ही 'काम' भी कहा गया है। शान्ता, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री तथा अम्बिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया के संयोग से ही प्रथमतः वागात्मक सृष्टि होती है—पीठात्मक सृष्टि होती है—ज्योतिर्लिङ्गों की सृष्टि होती है और बाद में चक्रात्मक, अर्थात्मक, तत्त्वात्मक एवं पिण्डात्मक सृष्टि होती है। प्रलयकाल में भी समस्त जगत् शिव-शक्ति के मिथुन पिण्ड में कवलीकृत होकर स्थित रहता है—

चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति।।[1]

राशियों के अक्षर—1. अ, आ, इ, ई → मेष राशि। 2. उ, ऊ, च, ट → वृष राशि। 3. ऋ, ऌ, ॡ, ए, ऐ → कर्क राशि। 4. ओ, औ → सिंह राशि 5. अं, अः आदि → कन्या राशि 6. कवर्ग → तुला राशि 7. चवर्ग → वृश्चिक राशि 8. टवर्ग → धनु राशि 9. तवर्ग → मकर राशि 10. पवर्ग → कुम्भ राशि 11. य, र, ल, व → मीन राशि।[2]

नक्षत्रों की उत्पत्ति—अ, आ → अश्विनी। इ → भरणी। ई, उ, ऊ → कृत्तिका। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ → रोहिणी। ए → मृगशिरा। ऐ → आर्द्रा। ओ, औ → पुनर्वसु। क → पुष्य। ख, ग → श्लेषा। घ, ङ → मघा। च → पूर्वा। छ, ज → उत्तरा। झ → हस्त। ट, ठ → चित्रा। ड → स्वाती। ढ, ण → विशाखा। त, थ, द → अनुराधा। ध → ज्येष्ठा। न, प, फ → मूल। ब → पूर्वाषाढ। भ → उत्तराषाढ। म → श्रवण। य, र → श्रविष्ठा। ल → शतभिषा। व, श → प्रोष्ठप्रदा। ष, स, ह, क्ष → उत्तराभाद्रपद एवं अं और अः → रेवती[3]।

प्रश्न—प्रश्न उठता है कि शब्दों से सृष्टि तो हुई, किन्तु इसे शक्ति से सृष्टि क्यों स्वीकार करें?

उत्तर—'आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादाद्बिन्दुसमुद्भवः' अर्थात् 'शक्ति' से 'नाद' हुआ और नाद से 'बिन्दु' उत्पन्न हुआ। नाद ही समस्त मातृकाओं—निःशेष वर्णमाला की जननी है; इसीलिये भास्करराय ने कहा है कि—

नैसर्गिकस्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्त्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।

सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा।
अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः।।

---

1. कामकलाविलास। 3. शंकराचार्य—प्रपञ्चसारतन्त्र।
2. प्रपञ्चसारतन्त्र।

शक्ति ही अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी चतुर्विधा सारी सृष्टि उत्पन्न करती है। शक्ति सारी विद्याओं एवं सारे मन्त्रों की योनि है—

सर्वेषामपि मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा।।[1]

विश्व शक्ति में एवं शक्ति शिव में स्थित है। समस्त जगत् शक्त्यात्मक है—शक्ति का रूप है—

1. स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम् (3.30)।

2. शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं तथा अस्यापि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्।[2]

3. शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः।

4. शक्तेः संवेदनात्मनः प्रचयः स्फुरणारूपो विकासो विश्वमिष्यते।[3]



1. परात्रिंशिका 2. शिवसूत्रविमर्शिनी 3. शिवसूत्रवार्तिक



षष्ठ अध्याय

तत्त्व विज्ञान : शाक्त दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के आलोक में

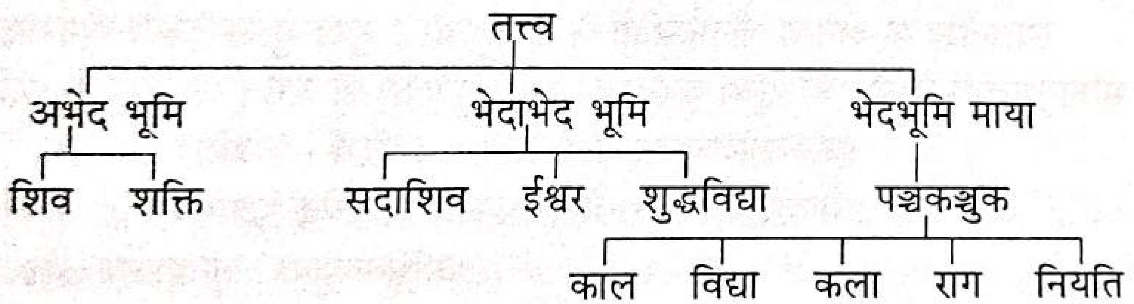
तत्त्व का स्वरूप—स्वकीय कार्य में, धर्मसमुदाय में या स्वसदृश गुण वाली वस्तु में सामान्य रूप से व्यापक पदार्थ को 'तत्त्व' कहते हैं—

स्वस्मिन्कार्येऽथ धर्मौघे यद्वापि स्वसदृशे गुणे।
आस्ते सामान्यकल्पेन तन्नादव्याप्तृभावतः।।
तत्तत्वं...।

(तन्त्रालोक : भाग-6)

सृष्टि—परमशिव की सिसृक्षा ही सृष्टि का मूल तत्त्व है।

परमेश्वर अवरोह-क्रम से स्वान्तस्थ विश्ववैचित्र्य के जिन 36 तत्त्वों का आभासन करता है, वे तत्त्व निम्नांकित हैं—



माया की प्रथम सृष्टि 'काल' है या 'कला'? इस सम्बन्ध में मतभेद है। प्रधानतः तो 'कला' को ही प्रथम माया-सृष्टि स्वीकार किया गया है; किन्तु अभिनवगुप्त ने कला एवं काल दोनों को प्रथम माया-सृष्टि के रूप में स्वीकार कर लिया है; यथा—

1. माया का प्रथम विकार—कला (तन्त्रालोक भाग 6.9.166-167)।
2. माया का प्रथम विकार—काल (परमार्थसार, श्लोक 16)।

कालकलानियतिवशाद् रागविद्यावशेन सम्बद्धः।

माया + पञ्चकञ्चुक से चिदात्मा का स्वरूप-संकोच (पारमित्य → आत्मा अणु, जीव, पुरुष, मितात्मा, पुद्गल बन जाती है। शिव स्वेच्छावश स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा

अपने परिपूर्ण स्वभाव को छिपाकर सर्वज्ञता, सर्वकर्तृत्व आदि भूलने की कल्पना कर डालता है और अपने को असंख्य अल्पज्ञ एवं सीमित कर्तृत्वशाली जीवों के रूप में प्रकट करता है। शिव का अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा स्वेच्छा से परिगृहीत अणु-भाव (परिमित भाव) ही पुरुष तत्त्व है। पञ्चकञ्चुकाविष्ट जीव ही पशु है। पुरुष तत्त्वतः शिव है; किन्तु तिरोधानकारी माया शक्ति के कारण वह देहप्रमाता (अज्ञानवश देह से तादाम्य स्थापित करने के कारण) जीव बन जाता है।

वेद्यस्वरूप विश्व का अविभक्त सामान्य स्वरूप ही प्रकृति तत्त्व है। प्रकृति वेद्यमात्र स्वभाव है। इससे तेईस प्रकार के प्रमेयों का विकास होता है। अवच्छिन्न कर्तृत्व से विशिष्ट शून्य आदि प्रमाता के वेद्यविशेष की अपेक्षा जो वेद्यसामान्यात्मक भोग है, उसी की संज्ञा है—प्रधान या प्रकृति।

एवं कलाख्यतत्त्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वलक्षणे।
विशेषभागे कर्तृत्वं चर्तितं भोक्तृपूर्वकम्।
विशेषतया योऽत्र किञ्चिद्भागस्तदोत्थितम्।
वेद्यमात्रं स्फुटं भिन्नं प्रधानं सूयते कला।।

(अभिनवगुप्त : तन्त्रालोक 6.9—213-214)

प्रकृति गुणत्रय की अक्षुब्ध दशा है—यह गुणत्रय की साम्यावस्था है। सांख्य भी प्रकृति को गुणत्रय की साम्यावस्था मानता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के तेईस तत्त्वों का सम्पूर्ण विवेचन सांख्य दर्शन के समतुल्य है।

स्वतन्त्रेश या अनन्त जीवात्माओं के कर्मानुसार (सुख-दुःखादिरूप भोग-प्रदानार्थ) भोगानुभूत्यर्थ प्रकृति को क्षुब्ध करता है। क्षुब्ध गुणत्रय ही जगत् का विस्तार करते हैं—

ईश्वरेच्छावशात्क्षुब्धलोलिकं पुरुषं प्रति।
भोक्तृत्वाय स्वतन्त्रेशः प्रकृतिं क्षोभयेद् भृशम्।।

(अभिनवगुप्त : तन्त्रालोक 6.9.225)

गुणों से (प्रकृति से) बुद्धितत्त्व, बुद्धितत्त्व से अहंकार, अहंकार से मनस्तत्त्व और इस प्रकार त्रिप्रकारात्मक अन्तःकरण का जन्म होता है।

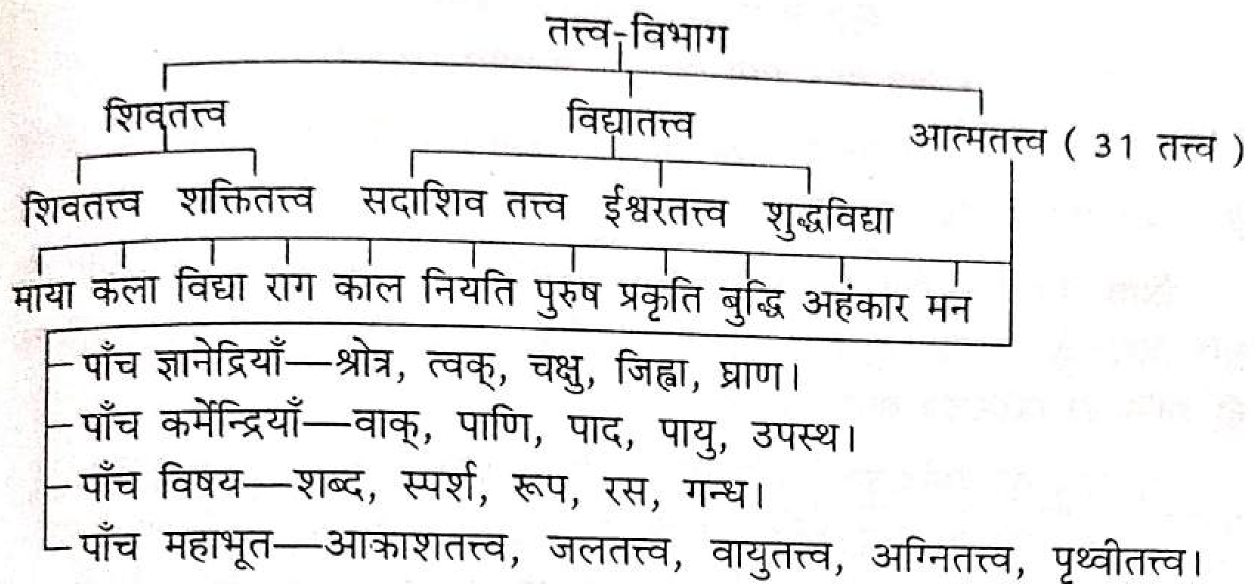
प्रकृतिविषयक दृष्टि : मतभेद—

1. सांख्य प्रकृति को एक मानता है, किन्तु त्रिक दर्शन प्रत्येक पुरुष की पृथक्-पृथक् प्रकृति मानता है।

2. सांख्य दर्शन प्रकृति को जड़ मानता है; किन्तु त्रिक दृष्टि ऐसा नहीं मानती।

3. सांख्य दर्शन में पुरुष को कर्तृत्वहीन माना गया और प्रकृति को कर्तृत्वधर्मा; किन्तु त्रिक दृष्टि में स्वतन्त्रेश (अनन्त) ही प्रकृति को क्षुब्ध करता है—क्रिया करने के लिए अनुप्रेरित करता है।

तन्त्रशास्त्र (त्रिक, प्रत्यभिज्ञा-स्पन्द; शाक्त दर्शन आदि) छत्तीस तत्त्व मानता है। स्वकीय कार्य में, धर्मसमुदाय में या स्वसमान गुण वाली वस्तु में सामान्य रूप से व्यापक पदार्थ ही तत्त्व है।[1]



- पाँच ज्ञानेद्रियाँ—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण।
- पाँच कर्मेन्द्रियाँ—वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ।
- पाँच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।
- पाँच महाभूत—आकाशतत्त्व, जलतत्त्व, वायुतत्त्व, अग्नितत्त्व, पृथ्वीतत्त्व।

सृष्टि-विधान—परमेश्वर परमशिव के हृदय में सिसृक्षा : एकोऽहं बहुस्याम

शिव (प्रकाश) शक्ति (विमर्श)

(पूर्ण अकृत्रिम अहं की स्फूर्ति) (विश्वाकार (विश्वप्रकाश) विश्वसंहरण) (शक्ति के पर्याय=चित्। चैतन्य। स्वातन्त्र्य, कर्तृत्व, स्फुरत्ता, सार, हृदय, स्पन्द आदि।)

प्रमा के दो भाग—

1. अहमंश (शिव) (ग्राहक)
2. इदमंश (शक्ति) (ग्राह्य)

शिव चेतन तो हैं, किन्तु उन्हें अपनी चेतना का ज्ञान नहीं है। शक्ति के विना शिव को अपने प्रकाशस्वरूप का बोध नहीं होता। शिव में चेतनता का ज्ञान शक्ति के द्वारा ही होता है; अन्यथा शिव शव (अचेतन = चैतन्यानुभूति से शून्य) हैं। शिव अपनी स्वान्तःस्थ शक्ति को देखकर अपनी प्रकाशमयता एवं अपने परिपूर्ण अहन्ता को जान-पहचान पाता है। 'प्रकाश' विमर्शात्मक एवं 'विमर्श' प्रकाशात्मक है।

सदाशिव शिव-शक्ति का आन्तार निमेष है। शिव और शक्ति का बाह्योन्मेष ही ईश्वर है। सदाशिव है क्या? अचल प्रतिष्ठ परमेश्वर में किञ्चित् चलनात्मक स्फुरण ही सदाशिव है। ईश्वरतत्त्व सदाशिव का बाह्य रूप है। अगला तत्त्व सद्विद्या है, जिसमें अहं और इदं में सामानाधिकरण्य—समान स्थिति विद्यमान है। इस अवस्था में शिव समस्त जगत् को अपना विभव समझते हैं।

---

1. अभिनवगुप्त : तन्त्रालोक

विमर्शस्वरूप

शिवतत्त्व में अहंविमर्श | सदाशिवतत्त्व में अहमिदंविमर्श | ईश्वरतत्त्व में इदमहम् विमर्श

शुद्ध विद्या = विमर्श का स्वरूप
(अहं और इदम् दोनों में समभाव प्राधान्य)

अहं और इदम् में पृथक्त्व से ही माया का कार्यारम्भ होता है। अहमंश हो जाता है—पुरुष एवं इदमंश हो जाती है—प्रकृति।

शिव का पुरुषरूप में अवस्थान्तर—इसके लिए माया पाँच उपाधियों की सृष्टि करती है—कला, विद्या, राग, काल एवं नियति (पञ्चकञ्चुक)। ये पञ्चकञ्चुक ही शक्ति को परिच्छिन्न बनाते हैं।

1. जीव की सर्वकर्तृत्व शक्ति को संकुचित करने वाला तत्त्व = कला।
2. जीव की सर्वज्ञत्व शक्ति को संकुचित करने वाला तत्त्व = विद्या।
3. जीव की नित्य तृप्तित्व शक्ति को संकुचित करने वाला तत्त्व = राग।
4. जीव की नित्यत्व शक्ति को संकुचित करने वाला तत्त्व = काल।
5. जीव की स्वातन्त्र्य शक्ति को संकुचित करने वाला तत्त्व = नियति।
6. मायाजनित कञ्चुकों के द्वारा आवृत शक्ति जीव = पुरुष।
7. त्रिगुणात्मक महत्तत्त्व से पृथ्वीपर्यन्त समस्त तत्त्वों का कारण = प्रकृति।
8. प्रकृति से ऊपर माया एवं माया से ऊपर शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शिव-शक्ति—परमशिव।

इस प्रकार शैव-शाक्त आगमिक दृष्टि में सृष्टि का मूल कारण पञ्चतन्मात्रायें; पञ्चमहाभूत, प्रकृति, माया, सद्विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शिव-शक्ति से परे परमशिव और उसकी परा शक्ति है।

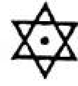
परमशिव की सिसृक्षा ही सृष्टि का मूल है और उसकी शक्ति ही सृष्टि है।



उत्तर खण्ड



शक्ति-साधना के विभिन्न स्वरूप



सप्तम अध्याय

शुद्ध विद्या और शक्तिसाधना

शक्ति साधना है—जिस स्तर (भूमि) में अहन्ता एवं इदन्ता एक तुला पर समान वजन के हों, उस क्रियाशक्तिप्रधान भूमि को शुद्धविद्या कहते हैं—'यः समधृत-तुलापुटन्यायेन अहमिदमिति परामर्शः तत्क्रियाशक्तिप्रधानं विद्यातत्त्वम्।'

(तन्त्रालोक-टीका)

वैसे तो वेदों की उद्गीथ विद्या, संवर्गविद्या, मधुविद्या, पञ्चाग्निविद्या, उपकोसलविद्या, शाण्डिल्यविद्या, भूमाविद्या, दीर्घायुष्यविद्या, दहरविद्या एवं मन्मथविद्या आदि सभी विद्यायें शक्ति-साधना की विद्यायें हैं; किन्तु सद्विद्या विशेष उल्लेखनीय है। विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है—'विद्ययाऽमृतमश्नुते।'

सद्विद्या या शुद्ध विद्या का स्वरूप—सद्विद्या या शुद्ध विद्या उसे कहते हैं, जहाँ अहन्ता एवं इदन्ता में अभेद स्थित हो—'सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेद' मतिः।[1]

माया और शुद्ध विद्या में यही अन्तर है कि माया विभेदबुद्धि की जननी है; किन्तु शुद्ध विद्या में यह विभेदबुद्धि या द्वैत तिरोहित एवं निमज्जित हो जाता है।

सृष्टि के अनेक स्तर हैं—

1. अभेद स्तर—

    (क) शिव (ख) शक्ति

2. भेदाभेद स्तर—

    (क) सदाशिव (ख) ईश्वरतत्त्व (ग) शुद्धविद्या (सद्विद्या)

3. भेद स्तर—माया से पृथ्वी तक।

शुद्ध विद्या या सद्विद्या छत्तीस तत्त्वों में पाँचवाँ तत्त्व है।

1. शिवतत्त्व—(विमर्श का स्वरूप)—अहं।
2. शक्तितत्त्व—(विमर्श का स्वरूप)—अहमस्मि।
3. सदाशिव—(विमर्श का स्वरूप)—अहमिदम्।
4. ईश्वर—(विमर्श का स्वरूप)—इदमहम्।

1. षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह

5. सद्विद्या—इदम् + अहं की समान स्फुटता।

जिस अभेद-ज्ञानदशा में समान स्फुटता से अहम् एवं इदम् का प्रत्यवमर्श होता हो, उसे शुद्धविद्या कहते हैं।

इस परामर्श में 'अहम्' और 'इदम्' समस्फुट रहते हैं, तथापि मायाप्रमाता के विमर्श की भाँति यहाँ अहम् और इदम् का ज्ञान (अनुभूति) पृथक् अधिकरण में स्थित प्रमाता एवं प्रमेय में नहीं होता। यहाँ एक ही अभिन्न चिन्मात्र अधिकरण की तुला में समान भार के अहं एवं इदम् रूप दोनों प्रकाशांशों की अभेदात्मक प्रतिपत्ति हुआ करती है।

यहाँ अहं (मैं = ज्ञाता = आत्मा = प्रमाता = द्रष्टा) और इदम् (ज्ञेय, प्रमेय, विश्व, दृश्य)—इन दो अंशों का ज्ञान होने पर भी अहं (मैं = प्रमाता) रूप ज्ञाता की वेद्यविषयक दृष्टि वेद्यावस्था प्राप्त करने के कारण इदम् स्वरूप प्रत्यय (बोध) से परामृष्ट किये जाने वाले भावों को भी यहाँ प्रमाता जड़रूप में न देखकर प्रकाशरूप में ही देखता है।

'अहमिदम्' वाला शुद्ध परामर्श भेदाभेदमय दृष्टि वाला होने से 'शुद्धविद्या' कहलाता है। चूँकि यहाँ प्रमाता को अहन्ता और इदन्ता वाले दो रूपों का परामर्श होता है; अत: उसका विमर्श भेदमय है; किन्तु अहन्ता एवं इदन्ता स्वरूप प्रत्यवमर्श (बोध) होने पर भी वह प्रमाता अहन्ता की चिद्रूपता की भाँति इदन्ता को भी चिद्रूप ही समझता है।

अहं और इदं दोनों में चिद्रूपता की एकता होने के कारण (एक ही चिद्रूपता का परामर्श होने के कारण) यहाँ वेदक एवं वेद्य (प्रमाता एवं प्रमेय, द्रष्टा एवं दृश्य) दोनों में अभेद है। इसी कारण सामानाधिकरण्य भाव से विश्वात्मा (समष्टि प्रमाता) का 'अहम् इदम् अस्मि' ऐसा विमर्श शुद्धविद्या कहा जाता है। इसीलिये ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृत्ति में कहा है—

उन्मेषनिमेषौ बहिरन्त:स्थिती एवेश्वरसदाशिवौ बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्यवेदकयोरेकचिन्मात्रविश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो मति: शुद्धविद्या।

शुद्धविद्या को शैवागम परापरादशा भी कहता है; क्योंकि सदाशिव तत्त्व में भावों की परता होती है अर्थात् भावों का स्फुट रूप से अनन्योन्मुख अहम् रूप में परामर्श (चिन्तन) होता है और पूर्ण अहं रूप में परामृष्ट होना ही उनका परत्व है। ईश्वरतत्त्व में उन भावों की इदन्ता का विमर्श स्फुट होता है। उनका विमर्श अहन्ता-सापेक्ष हो जाता है। यह अन्यापेक्षा ही अपूर्णत्व है और यही अपरत्व है। अत: परता एवं अपरता दोनों प्रकार के विमर्शों का स्पर्श होने के कारण प्रमाता की यह संवेदनावस्था 'परापर दशा' कही जाती है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में कहा भी गया है—

अत्रापरत्वं भावानामनात्मत्वेन भासनात्।
परताहन्तयाच्छादात्परापरदशा हि सा।।

'सद्विद्या तत्त्व' सदाशिव एवं ईश्वरतत्त्व—दोनों अधिष्ठाता देवों का करणस्थानीय तत्त्व है; जैसा कि ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा गया है—

तदधिष्ठातृदेवताद्वयगतं करणं विद्यातत्त्वम्।

इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार परमशिव का बहिः औन्मुख्य 'शक्तितत्त्व' कहलाता है, वैसे ही सदाशिव एवं ईश्वरतत्त्व का बाह्यौन्मुख्य शुद्धविद्या कहलाता है—

यद्यपि परमशिवस्यैवेदमेकघनमैश्वर्यं तथापि तस्य यथा बहिरौन्मुख्येन व्यापारशक्तितत्त्वं तथा सदाशिवेश्वरयोरपि विद्यातत्त्वम्। (तन्त्रालोकटीका)

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर एवं शुद्धविद्या—शुद्धाध्वा हैं। शाम्भव, शक्तिज, मन्त्रमहेश, मन्त्रनायक एवं मन्त्र—ये शिव-शक्ति आदि प्रमेयों के प्रमाता हैं (शाम्भव-शक्तिज आदि शिव एवं शक्ति आदि प्रमेयतत्त्वों के प्रमाता हैं।

विद्या का मन्त्र-रहस्यत्व—विद्या शरीरसत्ता मन्त्ररहस्यम्। (शिवसूत्र-2.3)

अर्थात् विद्या (पराद्वय प्रथा) ही है शरीर (स्वरूप) जिसका, उसे कहते हैं—विद्या-शरीर। उसकी सत्ता (अशेष विश्वाभेदमय पूर्णाहंविमर्शनस्वरूप) स्फुरत्ता ही मन्त्रों का रहस्य है; क्योंकि—

सर्वे वर्णात्मकाः मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।

आचार्य महेश्वरानन्द महार्थमञ्जरी में कहते हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय की सामरस्यस्वरूपा एवं एकरसात्मिका संसृष्टि एवं शुद्ध ज्ञानस्वरूप-प्रतिपादिका पारमेश्वरी शक्ति ही शुद्ध-विद्या है। शुद्धविद्या ही भेदों को नष्ट करती है। परिमल में कहा भी गया है—

स्वस्वभावप्रत्यभिज्ञापनात्मिका संवित्स्वातन्त्र्यशक्तिः शुद्धविद्या।

चिदात्मक एवं एकरस संसृष्टि में व्यतिरेक उत्पन्न करने वाली बुद्धि ही अशुद्ध विद्या है। इस अविद्या का संहार करने वाली एवं आवरणरहित बुद्धि ही शुद्ध बुद्धि है। यही ज्ञानस्वरूपिणी परमात्म शक्ति शुद्धविद्या है। लोकव्यवहारात्मक जगत् की भेदात्मका बुद्धि को तिरोहित करके शुद्ध आत्मस्वरूप की अविरत एवं अखण्ड आत्मानुभूति करना ही शुद्धविद्या है। जो ज्ञातृत्वधर्मी ज्ञाता है, वह पूर्णोऽहं की अनुभूति करता है—पूर्णाहन्ता की दृष्टि रखता है; किन्तु जहाँ यह दृष्टि नहीं है, वही ज्ञेय है। ज्ञाता और ज्ञेय की प्रतीति में सामरस्याप्ति, एकरसता, एकात्मता की अनुभूति ही शुद्धविद्या है। योगि-राज गोरक्षनाथ कहते हैं—

ज्ञाता स आत्मा ज्ञेयस्वभावश्च लोकव्यवहारः।
एकरसां संसृष्टिः यत्र गतौ सा खलु निस्तुषा विद्या।।

सदाशिव की तत्त्वदशा ही शुद्धविद्या है।

षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह में शुद्धविद्या की व्याख्या में कहा गया है कि यह वह अभेदा-

त्मिका दृष्टि है, जिसमें इदन्ता एवं अहन्ता में एकत्व की अनुभूति होती है—

सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेदमतिः।

प्रत्यभिज्ञाकारिका में आचार्य उत्पलदेव भी यही कहते हैं कि अहं और इदम् (मैं और यह विश्व = प्रमाता और प्रमेय, ज्ञाता और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य) में सामानाधिकरण्य ही शुद्धविद्या है—

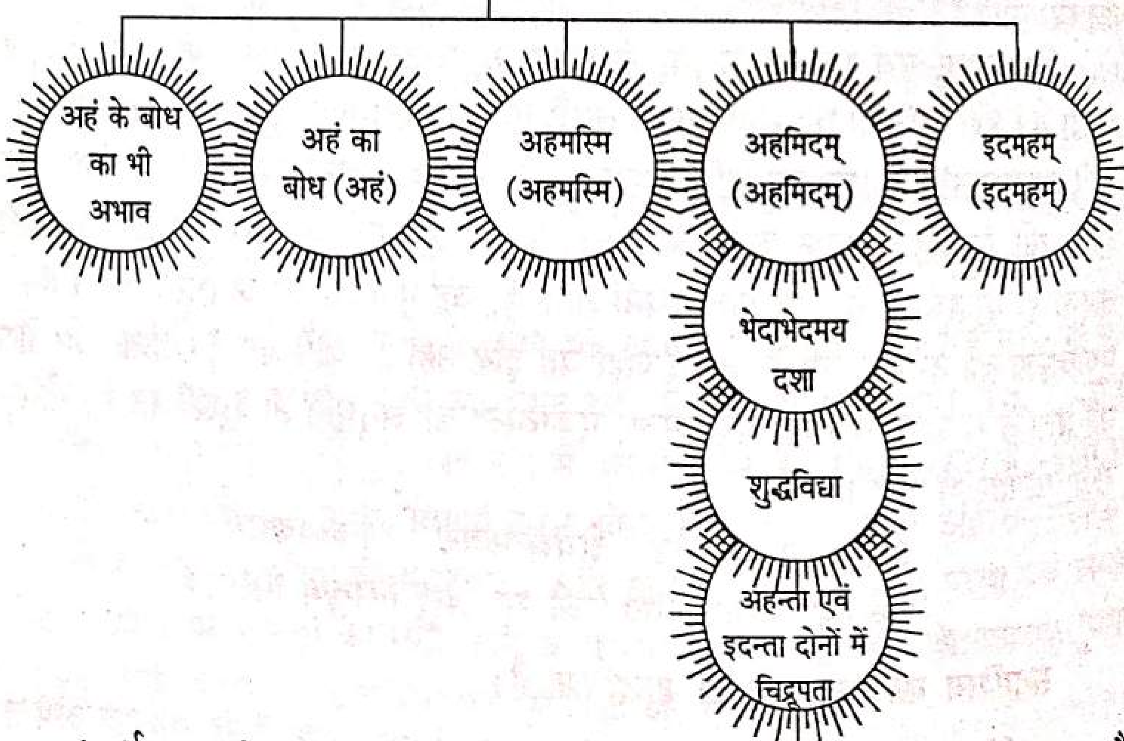
सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदंधियोः।।

आचार्य उत्पलदेव प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति में कहते हैं—एकचिन्मात्रविश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो मतिः शुद्धविद्या।

शिव का अहंरूप आद्य विमर्शात्मक पूर्णाभेदबोध का द्योतक है। सद्विद्या दशा एवं अहं में भेद है। सद्विद्या या शुद्धविद्या का विमर्श अहम्-इदम् के रूप में प्रकट किया जाता है। अहं और अहं इदम्—दोनों अद्वैतात्मक हैं; किन्तु अहं (पूर्वावस्था) में इदम् का अस्तित्व ही नहीं है; अतः अहं-इदम् का विमर्श होगा ही नहीं।

जैसे परमशिव का बहिः औन्मुख्य शक्तितत्त्व कहलाता है, उसी प्रकार सदाशिव एवं ईश्वरतत्त्व—दोनों का बाह्यौन्मुख्य शुद्धविद्या कहलाता है—'बहिरौन्मुख्येन व्यापारः शक्तितत्त्वं तथा सदाशिवेश्वरयोः (विवेक)। शिव है—अहं और उसकी शक्ति है—इदम्। शक्ति 'इदम्' इसलिये है; क्योंकि वह विश्वरूपा है, सृष्टिरूपा है—'विश्वात्मिकां देवीं, सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।' अहं एवं इदम् की एकता ही पूर्णता की दशा—जीवन्मुक्ति-विश्वाहन्ता-पूर्णाहन्ता एवं सामरस्य है। यह अद्वैत की स्थिति है।

अद्वैत की स्थितियाँ



1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी की व्याख्या—'ये एते अहम् इति इदम् इति धियौ

तयोर्माया प्रमातरि पृथगधिकरणत्वं अहं इति ग्राहके इदम् इति च ग्राह्ये तन्निरासेनैकस्मिन्ने-वाधिकरणे यत्सङ्गमनं सम्बन्धस्वरूपप्रथनं तत् सती शुद्धा विद्या।

2. तन्त्रालोक-टीका की व्याख्या—'य: समधृततुलापुटन्यायेन अहमिदमिति परामर्श: तत्क्रियाशक्तिप्रधानं विद्यातत्त्वम्।'

3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृत्ति की व्याख्या—उन्मेषनिमेषौ बहिरन्त:स्थिती एवेश्वर:। सदा-शिवौ बाह्याभ्यन्तरयोर्वेद्यवेदकयोरेकचिन्मात्रविश्रान्तेरभेदात्सामानाधिकरण्येनेदं विश्वमहमिति विश्वात्मनो मति: शुद्धविद्या।'

अहन्ता एवं इदन्ता दोनों में चिद्रूपता—

1. अहं और इदम् (मैं और जगत्) दोनों में चिद्रूपता की अनुभूति।

2. वेद्य और वेदक (ज्ञेय और ज्ञाता) में एक ही चिद्रूपता की अनुभूति तथा वेद्य-वेदक दोनों की एकचिन्मात्ररूप में विश्रान्ति होने के कारण वेद्य-वेदक में एकत्व या अभेद की अनुभूति।

3. अहम् इदम् अस्मि की अनुभूति।

शुद्ध विद्या की साधना के फल

चक्रेश्वरत्व की प्राप्ति—शुद्धविद्या विमर्श की अखण्ड अनुभूति साधक को चक्रेश्वरस्वरूप महेश्वर बना देता है और अहमेव सर्वम् की अनुभूति कराता है—

(क) शुद्धविद्योदयाच्चक्रेशत्वसिद्धि:। (शिवसूत्र : प्रथमोन्मेष-1.21)

(ख) वैश्वात्म्य-प्रथा-वाञ्छया यदा शक्तिं सन्धत्ते तदा अहमेव सर्वम् इति शुद्धविद्याया उदयात् विश्वात्मकस्वशक्तिचक्रेशत्वरूपं माहेश्वर्यस्य सिद्ध्यति।' (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

(ग) इस साधना से सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व आदि सारी शैवी शक्तियों की प्राप्ति होती है—

तस्मात् सा तु परा विद्या यस्मादन्या न विद्यते।
विन्दते ह्यत्र युगपत्सार्वज्ञ्यादिगुणान्परान्।। (स्वच्छन्दतन्त्र)

(घ) ऐसा साधक शिव बन जाता है—

'परस्मिंस्तेजसि व्यक्ते तत्रस्थ: शिवतां व्रजेत्।

खेचरी शिवावस्था का उदय—शिवसूत्रकार का कथन है कि जिस साधक को शुद्धविद्या की प्राप्ति हो जाती है, उसमें खेचरी शिवावस्था का उदय हो जाता है—

विद्यासमुत्थाने स्वाभाविके खेचरी शिवावस्था।

(शिवसूत्र : द्वितीयोन्मेष-2.5)

शिवस्य चिन्नाथस्य अवस्थातु: सम्बन्धिनी अवस्था, स्वानन्दोच्छलतात्मस्फुरत्तारूपा।

(आचार्य क्षेमराज : शिवसूत्रविमर्शिनी)

मुक्ति की प्राप्ति—शुद्धविद्या की प्राप्ति होने से मुक्ति प्राप्त होती है। शिवसूत्रकार ने इसे इस प्रकार कहा है कि विद्या के नष्ट न होने पर आवागमन चक्र—जन्म-मरण चक्र का नाश हो जाता है—

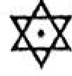
विद्याऽविनाशे जन्मविनाशः। (2-18)

विद्या के विनाश से प्राणी पशु बन जाता है—

कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशुमातरः। (शिवसूत्र-3.19)

और पशु-माताओं का गुलाम बन जाता है।





अष्टम अध्याय

अहंतत्त्व और शक्ति-साधना

(विश्वाहन्ता की साधना)

अहं पद शिव-शक्ति-मिथुन के संगम (सामरस्य) का प्रतीक है। यह 'अ' से 'ह' तक फैली समस्त स्वर-व्यञ्जनात्मक वर्णमाला का प्रतीक है।

परात्रिंशिका में अहंतत्त्व-विमर्श—अहं से समस्त स्वर एवं व्यञ्जनों का आविर्भाव हुआ। इसके अनन्तर इच्छाशक्ति में शाखायें फूटीं, जो कि ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति के रूप में प्रकट हुईं। ज्ञानशक्ति से अन्तःकरणचतुष्टय एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा क्रियाशक्ति से दस प्राण एवं पाँच कर्मेन्द्रियों का आविर्भाव हुआ।

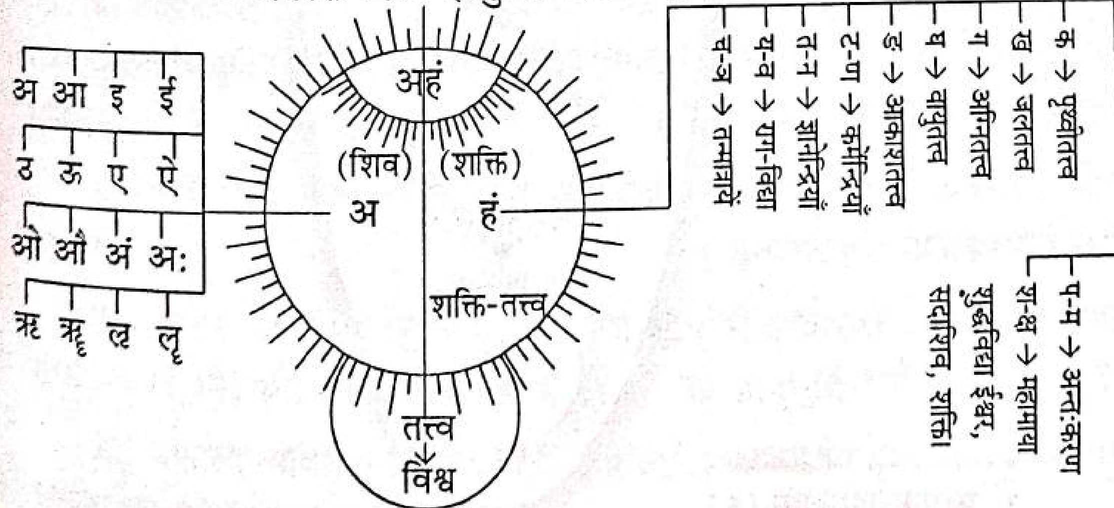
'अ' अनुत्तर तत्त्व है। इसी से समस्त मातृकाओं का आविर्भाव हुआ है, तथापि स्वरवर्ण शिवस्वरूप एवं व्यञ्जनवर्ण शक्तिस्वरूप हैं।

'अहं' के तात्त्विक विमर्श से मोक्षाप्ति होती है। 'अ' से अनुस्वारपर्यन्त पन्द्रह स्वरों से पन्द्रह तिथियों का एवं 'क' से 'म' पर्यन्त समस्त व्यञ्जनों से पृथ्वी से पुरुष-पर्यन्त पच्चीस तत्त्वों का आविर्भाव होता है—

अथाद्यास्तिथयः सर्वे स्वरा बिन्द्ववसानगाः।
तदन्तःकालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।। (परात्रिंशिका)

अकार शिव है और हकार शक्ति है—

अकारः शिव इत्युक्तस्थकारः शक्तिरुच्यते। (सोमानन्दपाद)



'क्ष' वर्ण में प्रपञ्च का बीज गर्भित है। यह शिव-शक्ति के सामरस्य का प्रतीक है।

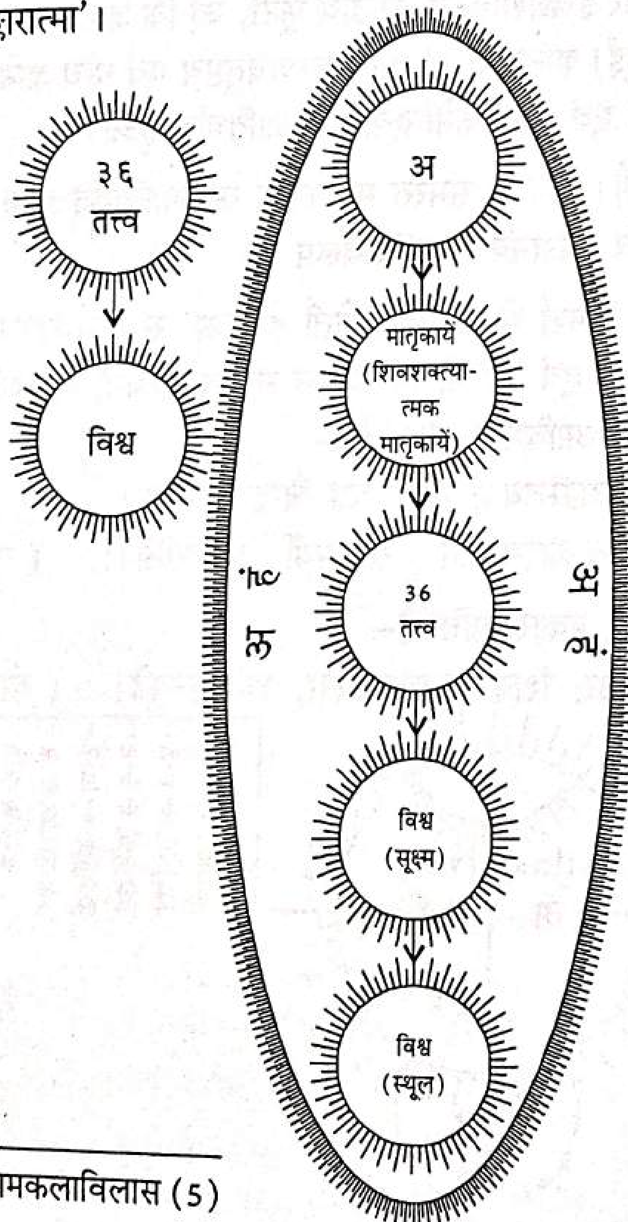
1. क्ष (क + ष) = शिव एवं शक्ति की एकता एवं अभेद का प्रतीक।

2. 'क' वर्ण 'अ' का एवं 'ष' वर्ण विसर्ग का रूप है; अतः क, अ = शिबतत्त्व हैं। ष, विसर्ग = शक्तितत्त्व है। अतः 'क्ष' शिव-शक्तिमय है एवं 'क्ष' शिव-शक्ति के अभेद का प्रतीक है।

आचार्य पुण्यानन्द की दृष्टि—आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं कि 'अ' एवं 'ह' वर्णों से सुव्यक्त सामरस्य वाला, प्रकाश एवं विमर्श के एकीकृत स्वरूप वाला (दिव्य दम्पतिमय), अन्तर्गर्भित विश्वसमूह वाला एवं चित्तमय (ज्ञानैकस्वरूप) 'अहंकार' उत्कृष्टता में सभी को अतिक्रान्त करके सर्वोपरि स्थित है।

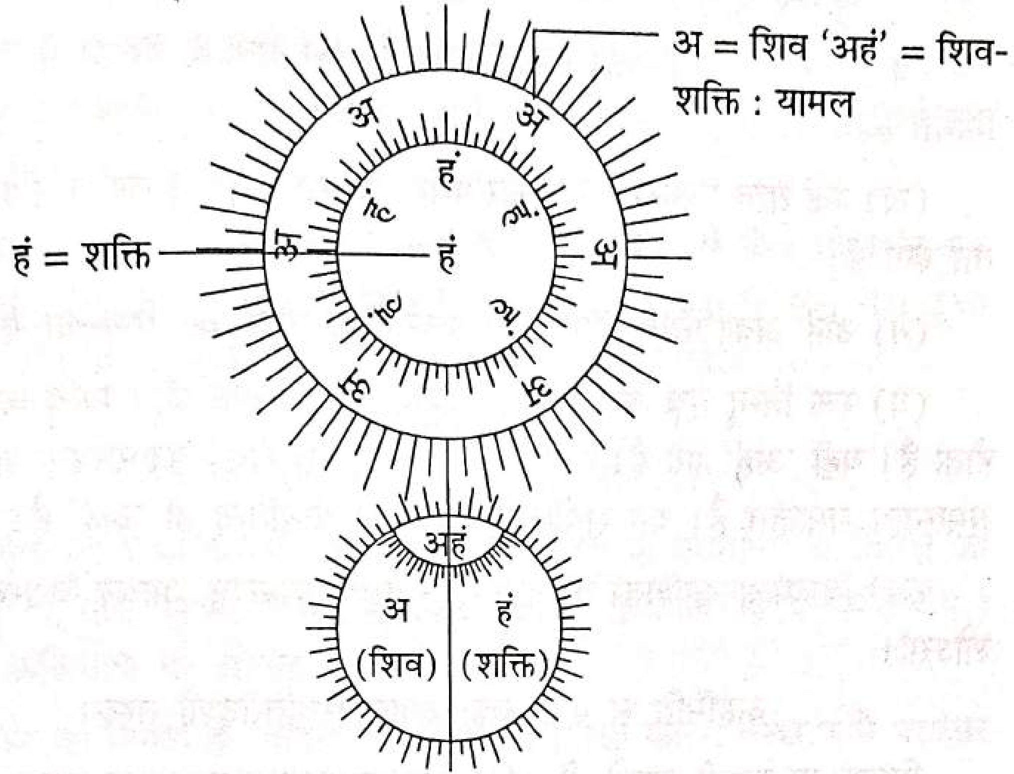
चित्तमयो...जयति।।[1]

बिन्दु, जो कि अहंकार का रूप है, श्वेत एवं रक्त बिन्दुओं का सामरस्य है—'बिन्दुरहङ्कारात्मा'। (कामकलाविलास)



1. कामकलाविलास (5)

अहं ही सृष्टि का मूल है।



1. प्रथम दृष्टि—अहंभाव क्या है? 'संविदः स्वात्ममात्रविश्रान्तिः स एव पूर्णाहन्ता-विमर्शस्वभावोऽहंभावोऽर्थव्यवस्थापको गीयते। (अजडप्रमातृसिद्धि : उत्पलदेव)

प्रकाश की आत्मविश्रान्ति ही अहंभाव है।

1. प्रथम दृष्टि—

1. अहं प्रकाशात्मा शिव का प्रत्यवमर्श है—'अहं प्रत्यवमर्शो यः प्रकाशात्मापि वाग्वपुः' (उत्पलदेव)।

2. यह परावागात्मक है—

3. यह विकल्पातीत है—प्रकाशस्यात्मन्यहमपि परावाग् स्वरूपत्वात्साभिलापोऽपि स्वभावभूतः प्रत्यवमर्शो न विकल्प इत्युच्यते। (प्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति : उत्पलदेव)

4. अहंविमर्शन ही शुद्ध ज्ञान क्रिया है—'स परमात्मा चिद्रूपो विमर्शाख्येनैव मुख्य-स्वभावेनाव्यभिचारिणा महेश्वरश्चित्तत्त्वस्य विश्वात्मनः शिवसंज्ञस्याहंविमर्शनमेव शुद्धे ज्ञान-क्रिये। (उत्पलदेव : प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति)

5. इदमित्यस्य विच्छिन्नविमर्शस्य कृतार्थता या स्वरूपे विश्रान्तिर्विमर्शः सोऽह-मित्ययम्। (उत्पलदेव : अजडप्रमातृसिद्धि)

विमृश्यमान, जडात्मक एवं विच्छिन्नस्वरूप इदम् की संवित्स्वरूप में विश्रान्तिलक्षणा कृतार्थता ही सोऽयमहमेव ('वह यह मैं ही हूँ' की अनुभूति) है। (उत्पलदेव)

6. 'प्रकास्यात्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः' (अजडप्रमातृसिद्धि-22) अर्थात् प्रकाश की आत्मविश्रान्ति ही अहंभाव है।

2. द्वितीय दृष्टि—

(क) अकार शिव है और हकार शक्ति है। इन दोनों के मिलने से ही 'अहं' पद निर्मित होता है।

(ख) अहं तत्त्व 'अकार' से 'हकार'पर्यन्त समस्त मातृका (वर्णमाला) का समष्टि-गत रूप है।

(ग) अहं अकारात्मक शिव एवं हकरात्मक शक्ति का समन्वित रूप है।

(घ) रक्त बिन्दु एवं श्वेत बिन्दु के समागम से तृतीय मिश्र बिन्दु का आविर्भाव होता है। यही 'अहं' पद है। इसी अहं में अकार से लेकर हकारपर्यन्त समस्त वर्ण-समाम्नाय समाहित है। यह सूर्यबिन्दु, काम या मिश्रबिन्दु ही 'अहं' है।

(ङ) विरूपाक्षपञ्चाशिका की दृष्टि—स्वपरावभासनक्षमः आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ।

अहमिति स एक उक्तः अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य।

शिवानन्द स्वामी कहते हैं—'अहमित्यक्लमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रयम्।'

(च) जिस प्रकार कोई सिंहासनारूढ़ नृपति अपने समक्ष स्थित स्वच्छ दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर कहता है कि यह मैं हूँ (= अयमहम्), उसी प्रकार परमेश्वर भी स्वाधीनभूता स्वात्मशक्ति को सम्यक् रूप से देखकर स्वस्वरूप को जान पाता है और तब कहता है कि मैं परिपूर्ण हूँ (पूर्णाहन्ता की अनुभूति)। यही सृष्टि का आद्य एवं शुद्धतम अहं है।

सारांश यह कि पूर्णाहन्ता ही आद्य एवं शुद्धतम अहं है। इसे ही कामकलाविलास में अहंकार कहा गया है—

चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति।।

यह आद्य अहंकार पूर्णाहन्तास्वरूप है और यह कवलीकृतनिःशेष भुवनमण्डलात्मक है।

अहंकारः.......................................योऽहमहमहमित्येवं विमर्शः। तस्य कारः कारणं अहंकारः।
(चिद्वल्ली : नटनानन्द)

यही पूर्णाहन्तात्मक अहं साधना की सर्वोच्चावस्था है। जो इसे जानता है, बस वही यथार्थ सत्य को जानता है—

पूर्णाहन्तात्मभावेन कृत्रिमाहन्तया विना।
आत्मानमात्मना साक्षाद्यः पश्यति स पश्यति।।
(कामकलाविलास)

इसमें कृत्रिम अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं है। परात्रिंशिका नामक ग्रन्थ में

कहा गया है कि अहं पद द्व्यक्षर नहीं; प्रत्युत स्वर-व्यञ्जन की समष्टि है। अहं एक प्रत्याहार है। जिसमें स्वर के प्रथम वर्ण 'अ' से लेकर व्यञ्जन के अन्तिम वर्ण 'ह' तक के सभी वर्ण सम्मिलित हैं। अहं का अर्थ है—सम्पूर्ण मातृकाओं या वर्णों की एकीभूत समष्टि।

शैव-शाक्त दर्शन में अहं की दृष्टि—दर्शन की दृष्टि से देखें तो शक्तिमान (शिव) एवं शक्ति के सामरस्य में शिव एवं शक्ति का पृथक् परामर्श नहीं हुआ करता। इस अवस्था के परामर्श का स्वरूप केवल अहंमात्र होता है—

अनुत्तरविसर्गात्मशिवशक्त्यद्वयात्मनि ।
परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते विभो:।।[1]

जब शक्ति का प्राधान्यारम्भ होता है तब शक्तितत्त्व के परप्रमाता के विमर्श का स्वरूप 'अहं' के साथ 'अस्मि' लगाने से प्रकट होता है। परप्रमाता का प्रत्यय (बोध) 'अहमस्मि' शक्तितत्त्व का द्योतक है।

अहमस्मि का विमर्श ही आनन्द की स्फुटता है। इसी कारण तन्त्रसार में परमेश्वर की आनन्द शक्ति की प्रधानता होने पर उसे 'शक्तितत्त्व' की संज्ञा दी गई है।

अपरिमित अहं प्रकाशस्वरूप (विश्वोत्तीर्ण) तथा अन्तर्मुख हुआ करता है। इस अन्तर्मुखता एवं विश्वोत्तीर्णता की दशा में यह अहंतत्त्व 'शिवतत्त्व' कहलाता है। यही अपरिमित अहं विमर्शरूप (विश्वमय) में एवं बहिर्मुख होने पर 'शक्तितत्त्व' कहलाता है—

शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वर:।।[2]

शक्ति, शक्तिमान तत्त्वत: एक ही हैं, केवल व्यावहारिक प्रयोजन-हेतु उसे दो रूपों में विभक्त करके समझाया जाता है—

वस्तुतो हि शक्तितद्वतो: परस्परमवियोग एव, किन्तु प्राधान्यमेव प्रयोजकीकृत्य तथा व्यपदेशो यदयं शक्तिमान् इयं शक्तिरिति।

आनन्दोच्छलनात्मक (शिव-शक्ति की) सामरस्य की अवस्था में जब परमशिव का स्वरूप प्रकाशरूपता या विमर्शरूपता की प्रधानता को केन्द्र में रखकर प्रकट होता है तभी अपने-अपने परम स्वरूप में स्थित परमशिव के लिए शक्तिमान एवं शक्ति तथा विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय शब्दों का प्रयोग सम्भव हो पाता है; अन्यथा नहीं—

चिन्मात्रस्वभाव: पर एव शिव: पूर्णत्वात् निराशंसोऽपि स्वस्वातन्त्र्यमाहात्म्याद् बहि-रुल्लिलसिषया परानन्दचमत्कारतारतम्येन प्रथमम् अहं इति परामर्शतया शक्तिदशा-मधिशयान: प्रस्फुरेत्।[3]

1. तन्त्रालोक (अभिनवगुप्तपाद) भाग दो, आ. 3/203-204
2. नेत्रतन्त्र
3. तन्त्रालोक-टीका

जब स्वतन्त्र, चिद्घन, संवित्स्वभाव परमेश्वर अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से स्वस्वरूप को ही अपने भीतर निखिल विश्व के रूप में अवभासित करने की इच्छा करता है तब उसकी विश्वोन्मीलनात्मक आद्येच्छा को ही 'शिवतत्त्व' कहते हैं। परमेश्वर की विश्वोन्मीलनोन्मुख आद्य इच्छावस्था ही प्रथम स्पन्द है—

यदयमनुत्तरमूर्तिर्निजेच्छयाखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।।[1]

शिवतत्त्व में प्रमेय (इदम् = जगत्) का अभाव होता है; क्योंकि जब सब कुछ शिव में स्थित है तब उससे भिन्न प्रमेयता का अस्तित्व कैसे सम्भव होगा?

प्रकाशरूप शिव की अपनी आत्मा में ही स्फुरत्ता होने के कारण इस तत्त्व के परप्रमाता शिव का जो अनन्योन्मुख प्रत्यय (बोध) होता है, उसे दर्शन में 'शुद्ध अहं' कहा जाता है—

प्रकाशस्य यदात्ममात्रविश्रमणमनन्योन्मुखस्वात्मप्रकाशविश्रान्तिलक्षणो विमर्शः सोऽहम् इति उच्यते।[2]

चित्प्राधान्य शिवतत्त्व का प्रतीक है—चित्प्राधान्ये शिवतत्त्वम्। (तन्त्रसार)

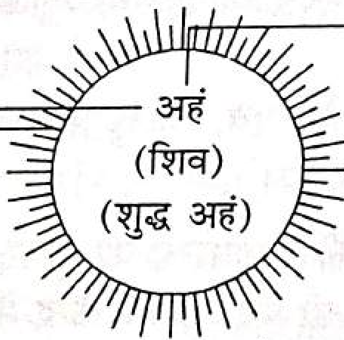
यही शुद्ध अहं परप्रमाता शिव का शुद्ध आद्य विमर्श है।

इस शुद्ध 'अहं' प्रत्यय के साथ 'अस्मि' (हूँ) जोड़ना भी उचित नहीं है। कारण यह कि 'अस्मि' लगाना किसी सम्बन्ध को द्योतित करेगा। अतः शिवतत्त्व के परप्रमाता का प्रत्यय 'अहं' द्वारा ही प्रकट किया जा सकता है।

अहं प्रत्यय के विभिन्न रूप

शिव का शुद्ध आद्य विमर्श

सामरस्यावस्था के परामर्श का स्वरूप



शिवतत्त्व के परप्रमाता का प्रत्यय 'अहं' है। तन्त्रसार में कहा गया है कि पञ्च-शक्तिमय परमशिव में चित् शक्ति का प्राधान्य होने पर वह शिवतत्त्व कहलाता है—'चित्प्राधान्ये शिवतत्त्वम्।' चित् शक्ति परमेश्वर की प्रथम शक्ति है। उसके बाद आती है—आनन्दशक्ति।

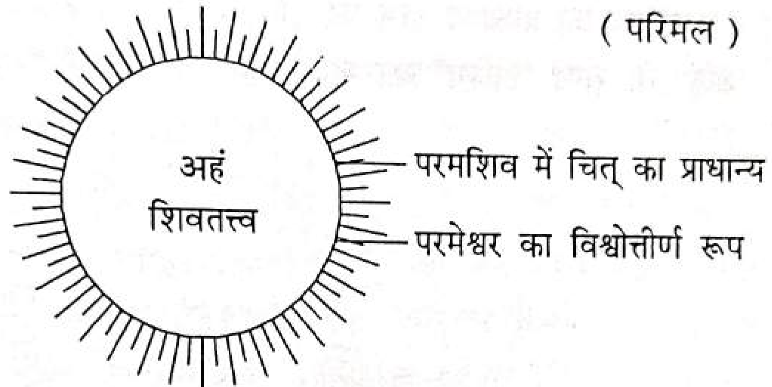
शक्तितत्त्व क्या है? विश्वसिसृक्षावान् परमेश्वर का प्रथम स्पन्द ही शक्तितत्त्व है—अस्य जगत्स्रष्टुमिच्छां परिगृहीतवतः परमेश्वरस्य प्रथमस्पन्द एवेच्छाशक्तितत्त्वम्।[3]

---

1. षट्त्रिंशत्तत्वसन्दोह
2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
3. पराप्रावेशिका



यदा स्वहृदयवर्तिनमुक्तरूपमर्थतत्त्वं बहि:कर्तुमुन्मुखो भवति, तदा शक्तिरिति व्यवह्रियते।
(परिमल)



परस्पर विरुद्ध दृष्टियाँ—

(क) आचार्य क्षेमराज—विश्वसिसृक्षु परमेश्वर का प्रथम स्पन्द शक्तितत्त्व है।

(ख) षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह—परमेश्वर का प्रथम स्पन्द शिवतत्त्व है।

समाधान (अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि)—आचार्य अभिनवगुप्तपाद ने शक्तिमय एवं शक्ति के रूप में परमेश्वर को दो सत्ताओं—प्रथम तुटि एवं द्वितीय तुटि के रूप में विभाजित करके प्रथम तुटि को शिवतत्त्व की संज्ञा दी है तथा द्वितीय तुटि को शक्तितत्त्व की संज्ञा दी है—

अतएव शिवावेशे द्वितुटि: परिगीयते।
एका तु सा तुटिस्तत्र पूर्णा शुद्धैव केवलम्।
द्वितीया शक्तिरूपैव सर्वज्ञानक्रियात्मिका।।

(तन्त्रालोक-7.10.206.7)

तुटिद्वयशक्तिमच्छक्तिरूपतया विभजति। (विवेक)

परमेश्वर के दो रूप हैं—विश्वोत्तीर्ण (शिवतत्त्व) एवं विश्वात्मक (शक्ति-तत्त्व)।

षट्त्रिंशत्तत्वसन्दोहकार—परमेश्वर की प्रथम तुटि = प्रथम स्पन्द = शिव तत्त्व।

आचार्य क्षेमराज के अनुसार विश्वसिसृक्षोन्मुख परमेश्वर को प्रथम स्पन्द कहना उचित नहीं है। शिवतत्त्व तो परमेश्वर का परिपूर्ण शुद्ध विश्वोत्तीर्ण रूप है; अत: शिवतत्त्व को विश्वोन्मीलन का प्रथम तत्त्व कहना समीचीन नहीं है। अत: विश्वोन्मीलनोत्सुक

1. विश्वसिसृक्षु परमेश्वर का प्रथम स्पन्द शक्तितत्त्व है।

परमेश्वर की इच्छा का प्रथम स्पन्द शक्तितत्त्व है।

अहं और अस्मि तथा अहमस्मि—शिव और शक्ति के सामरस्य की दशा में शक्तिमान एवं शक्ति का पृथक्-पृथक् परामर्श तो होता नहीं; क्योंकि वह दशा मयूराण्ड-रसवत् होती है; अत: सामरस्यावस्था के परामर्श की संज्ञा ही 'अहं' है—

अनुत्तरविसर्गात्मशिवशक्तियद्वयात्मनि ।
परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते विभो:।।
(तन्त्रालोक-द्वितीय-3.203-204)

शक्ति का प्राधान्य होने पर शक्तितत्त्व के परप्रमाता के विमर्श का स्वरूप है—'अहं' के साथ 'अस्मि' का संयोग एवं शक्ति का प्रत्यय है—अहमस्मि।



1. शिवतत्त्व—'चित्प्राधान्ये शिवतत्त्वम्'। (तन्त्रसार)

2. शक्तितत्त्व—(तन्त्रसार) परमेश्वर की आनन्दशक्ति का प्राधान्य होने पर शक्ति-तत्त्व की दशा आती है।

शिव—

1. अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघन: शिव: शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया।
(अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका)

2. सत्यप्रकाशाभासश्च शिवतत्त्वम्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

परमशिव का विश्वोन्मीलन के प्रति इच्छौन्मुख्य से उसके दो स्वरूपों का आभास प्रारम्भ होता है—

1. विश्वोत्तीर्णता—शिवतत्त्व = प्रकाशरूपता।
2. विश्वमयता—शक्तितत्त्व = विमर्शरूपता।

1. परमशिव की प्रकाशरूपता = विश्वोत्तीर्णता।
2. परमशिव की विमर्शरूपता = विश्वमयता।

1. प्रकाश का विमर्श (बोध)—शिवरूप की अभिव्यक्ति।
2. विमर्श का प्रकाश (अभिव्यक्ति)—परमशिव के शक्तिस्वरूप की अभिव्यक्ति।

अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघनः शिवः।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया।। (अनुत्तर.)

स एव सर्वभूतानां स्वभावः परमेश्वरः।
भावजातं हि तस्यैव शक्तिरीश्वरतामयी।। (बोधपञ्चदशिका)

शिवतत्त्व प्रमेयहीन होता है। शिव में शुद्ध अहं रहता है; क्योंकि प्रकाशरूप शिव अपनी आत्मा में ही सस्फुर रहता है। इसमें भिन्न प्रमेयता की अनुभूति सम्भव नहीं रहती। अभेदात्मक दशा में शिव + शक्ति दोनों का एक साथ ही अवभासन होता है। उनका सामरस्य अग्निदाहकतावत् होता है—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।। (बोधपञ्चदशिका)

शिव और शक्ति में भेद—अपरिमित एवं पूर्ण शुद्ध 'अहं' प्रकाशस्वरूप (विश्वोत्तीर्ण) तथा अन्तर्मुख होता हुआ शिवतत्त्व कहलाता है। यही अपरिमित अहं विमर्शरूप (विश्वमय) तथा बहिर्मुख होता हुआ शक्तितत्त्व कहलाता है—

शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वरः।

अभेदभूमिका में दो प्रत्यय या दो विमर्श हैं—अहं (शिवतत्त्व) अहमस्मि (शक्तितत्त्व)। भेदाभेद भूमिका है—सदाशिव तत्त्व, ईश्वर तत्त्व एवं शुद्धविद्या तत्त्व। आभासक्रम में तृतीय तत्त्व 'सदाशिव' कहा जाता है।

शिवतत्त्व और सदाशिव में भेद



अन्तर्मुख स्पन्द में ज्ञान का प्राधान्य किन्तु क्रिया की अस्कुटता रहती है।

शिव की इच्छा का अन्तर्मुख स्पन्द = सदाशिव।

= शिव की इच्छा का वह अन्तर्मुख स्पन्द जिसमें ज्ञानशक्ति प्रधान रहती है और जिसमें क्रिया-शक्ति (बहिर्मुख स्पन्द) अस्फुट रहती है, सदाशिव तत्त्व कहलाता है।

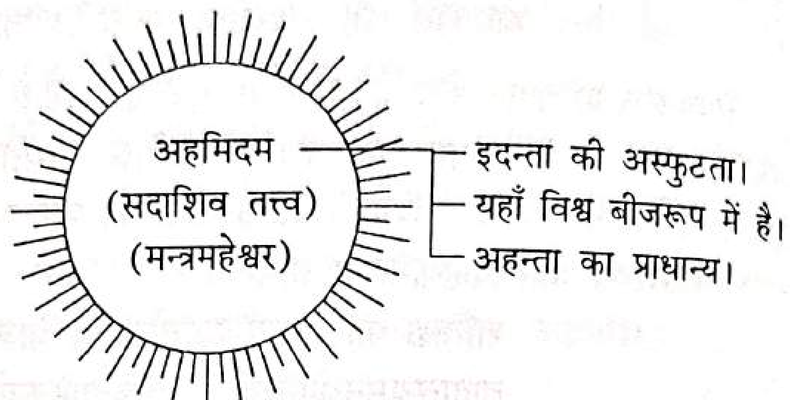
शिव में इदम् है ही नहीं, किन्तु सदाशिव में है।

1. शिवेच्छा का अन्तर्मुख स्पन्द ज्ञानशक्ति है और उसका बहिर्मुख स्पन्द क्रियाशक्ति है।

2. शिवेच्छा के उस अन्तर्मुख स्पन्द को, जिसमें ज्ञानशक्ति प्रधान होती है; किन्तु क्रियाशक्ति अस्फुट रहती है, 'सदाशिव तत्त्व' कहते हैं।

शिव की इच्छा का वह अन्तर्मुख स्पन्द, जिसमें ज्ञानशक्ति प्रधान रहती है और जिसमें क्रियाशक्ति (बहिर्मुख स्पन्द) अस्फुट रहती है, सदाशिव तत्त्व कहलाता है।

3. सदाशिव दशा के प्रमाता की ही संज्ञा 'मन्त्रमहेश्वर' है।



सदाशिव का परामर्श—अहमिदम्।

सदाशिव का विमर्श—इदन्ता की अस्फुटता सदाशिव में प्रधान है—अहं; किन्तु अप्रधान (अस्फुट रूप में) इदम् भी है।

मन्त्रमहेश्वर के विमर्श का स्वरूप है—अहमिदम्।

ततश्चान्तरी ज्ञानदशा या दशा तस्या उद्रेकाभासने सादाख्यं सदाख्यायां भवम्.......... सदाख्यायाश्च सदाशिवशब्दरूपाया इदं वाच्यं तत्त्वम्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

सदाशिव में अहंतत्त्व शिवतत्त्व का द्योतक है एवं इदम् तत्त्व जगत् का परिचायक है।

सदाशिव तत्त्व में इदम् (विश्व) **का स्वरूप**—यहाँ इदम् (जगत्) अंकुरायमाण बीजावस्था में है। यहाँ इदन्ता का परामर्श अहन्ता के प्रकाश से आच्छादित है। अतएव यहाँ इदन्ता का परामर्श अस्फुट है। विश्वसृजन की आदि अवस्था में मन्त्र-महेश्वर नामक प्रमाता का इदम् (प्रमेयात्मक भावचक्र = विश्व) अहं के आलोक से आच्छादित होने के कारण उसी प्रकार अस्फुटप्राय रहता है, यथा कतिपय रेखाबिन्दुओं से उन्मीलितमात्र चित्रफलक।[1]

सारांश यह है कि अस्फुट प्रमेय वाले मन्त्रमहेश्वर प्रमाता का जो चित् प्रधान किन्तु अस्फुट वेद्यात्मक तथा ज्ञानशक्तिप्रधान स्वरूप है, वही सदाशिव तत्त्व है।

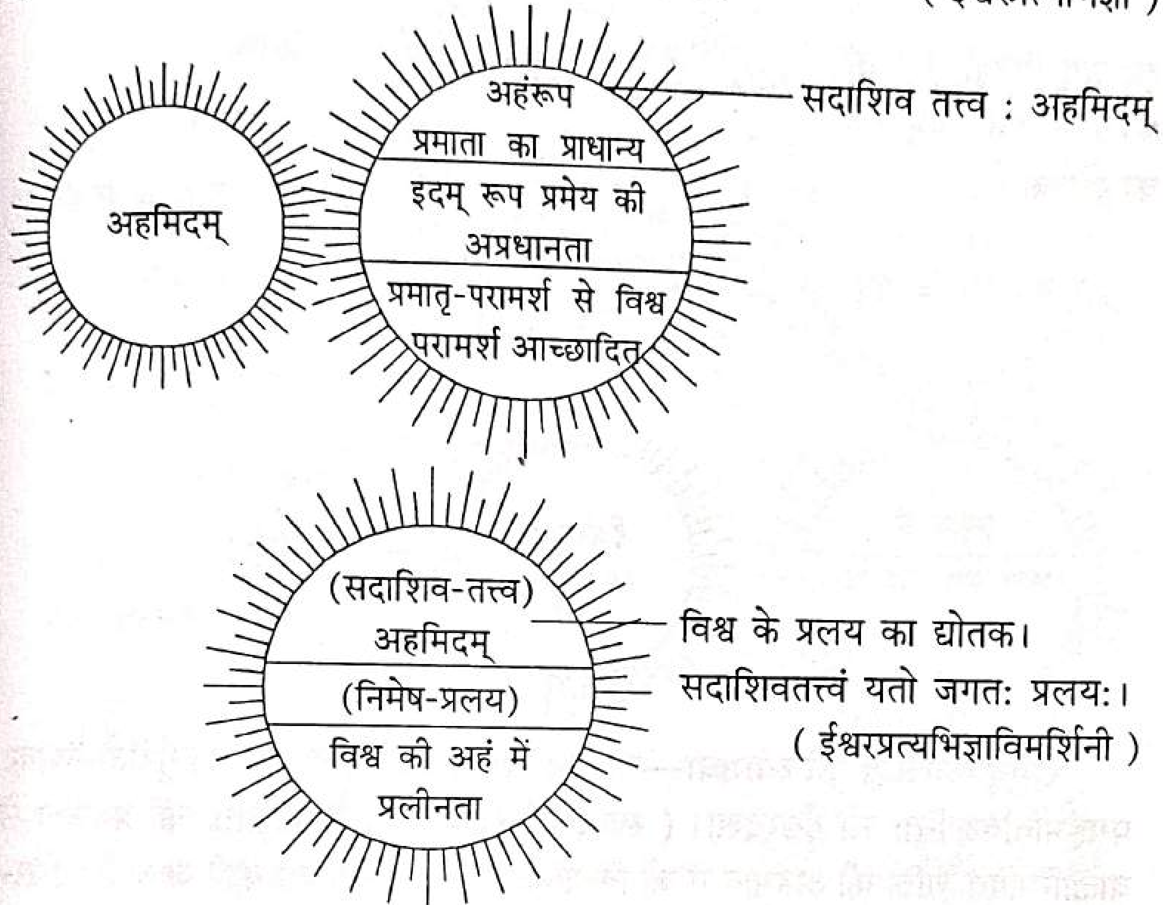
सदाशिव तत्त्व की विशेषता—शिव-शक्ति की सामरस्यावस्था में सत्-असत् जैसे विकल्पों का तो उदय होता ही नहीं। सृष्टि की विकासावस्था के सोपान पर जिसे

---

1. ततश्च शुद्धचैतन्यवर्गो यो मन्त्रमहेश्वराख्यः, तस्य प्रथमसृष्टावस्माकमन्तःकरणैव वेद्यमिव ध्यामलप्रायमुन्मीलितमात्रचित्रकल्पं यद् भावचक्रं, संहारे च ध्वंसोन्मुखतया तथाभूतमेव चकास्ति प्रतिबिम्बप्रायतया, तस्य चैतन्यवर्गस्य तादृशि भावराशौ तथा प्रथनं नाम यच्चिद्विशेषत्वं तत्सदाशिवतत्त्वम्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

सत् का ज्ञान होता है, उसी प्रथम सोपानारूढ़ तत्त्व को सदाशिव कहा जाता है—

सृष्टिक्रमोपदेशादौ प्रथममुचितं तत्सादाख्यं तत्त्वम्।[1] (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)। इसी कारण इसे 'सादाख्य तत्त्व' कहा जाता है। इसे ही सर्वप्रथम सत् का ज्ञान होता है' सदाशिव ही निमेष है—'निमेषोऽन्तः सदाशिवः।' (ईश्वरप्रत्यभिज्ञा)



भेदाभेद भूमिका के स्तर पर चौथा तत्त्व ईश्वरतत्त्व है। सदाशिव एवं ईश्वर में अन्तर है—

1. परमशिव का अन्तर्मुख स्पन्द = सदाशिवतत्त्व।
2. परमशिव का बहिर्मुख स्पन्द = ईश्वरतत्त्व।
3. शिवेच्छा में क्रियाशक्ति का उद्रेक → ईश्वरतत्त्व।

बहिर्भावस्य क्रियाशक्तिमयस्य परत्वे उद्रेकाभासे सति पारमेश्वरं परमेश्वरशब्दवाच्यमीश्वरतत्त्वं नाम। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)

4. सदाशिव की अवस्था में इदम् (प्रमेय, वेद्य, विश्व) अंकुरायमाणावस्था में अवस्थित था और अहन्ताच्छादित होने से अस्फुट था; वही ईश्वरतत्त्व की अवस्था में अंकुरित एवं स्फुटभावावस्थित हो जाता है। (पराप्रावेशिका)।

ईश्वरतत्त्व का प्रमाता 'मन्त्रेश्वर' कहलाता है। मन्त्रेश्वर का प्रमेय तत्त्व 'ईश्वरतत्त्व'

---

1. यतः प्रभृति सदिति प्रख्या, सदाख्यायाश्च सदाशिवशब्दरूपाया इदं वाच्यम् तत्त्वम्। तत्सादाख्यं तत्त्वम्। (ईश्वरप्रत्यभिज्ञा)

का विमर्श 'इदमहम्' है—इदमहं इति तु इदमित्यंशे स्फुटीभूतेऽधिकरणे यदाहंविमर्शं निषिञ्चति तदेश्वरता। भावराशौ पुनः स्फुटीभूते तदधिकरणे एवेदमंशे यदाहमंशं निषिञ्चति तदा ज्ञानशक्तिप्रधानमीश्वरतत्त्वम्—इदमहमिति।





रामकृष्णाचार्य की व्याख्या—यत्र पुनः शक्तेः क्रियाप्राधान्येन बहिर्गृहीतोन्मेषायाः पराहंभावविश्रान्तिः सा ईश्वरदशा। (स्पन्दकारिकाविवृति) क्रियाशक्ति की प्रबलता से बाह्योन्मिषित शक्ति की अहंभाव में जो विश्रान्ति है, वही ईश्वरदशा कही जाती है। ईश्वर-तत्त्व को ही उन्मेष भी कहा गया है—'ईश्वरो बहिरून्मेषो।' ईश्वर के उन्मेष से ही जगत् का आविर्भाव होता है—'यस्योन्मेषादुदयो जगतः इत्यत्र ईश्वरतत्त्वमेवोन्मेषशब्देनोक्तम्।' (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी)।

1. विश्वोन्मेष का प्रतिनिधि = ईश्वरतत्त्व।
2. विश्व के प्रलय का प्रतिनिधि = सदाशिवतत्त्व।

सदाशिव एवं ईश्वर में अहं की दृष्टि से तो अभेदात्मकता है; किन्तु इदम् की दृष्टि से भिन्नता है।

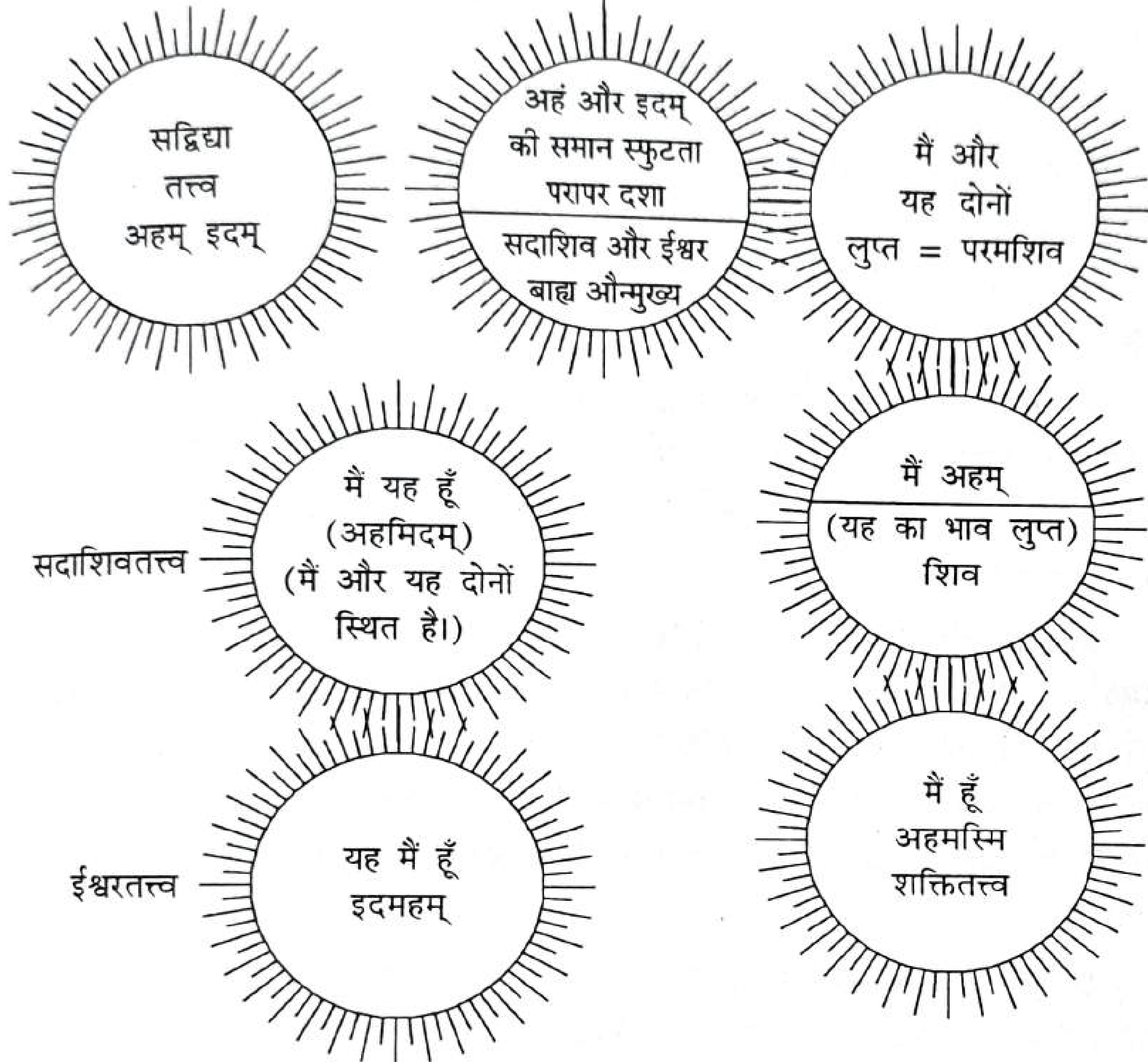
सदाशिव में इदम् अस्फुट है, अहं प्रधान है। ईश्वरतत्त्व में इदम् स्फुट है, अहं अस्फुट है। सदाशिव दशा में प्रथम 'अहं' फिर 'इदम्' = अहमिदम्। ईश्वरदशा में प्रथम 'इदम्' फिर 'अहम्' = इदमहम्।

शुद्ध विद्या या सद्विद्यातत्त्व—यदि उपर्युक्त विवेचना का सारांश कहा जाय तो वह इस प्रकार होगा—

1. अहम्—शिव
2. अहमस्मि—शक्ति

3. अहमिदम्—सदाशिव
4. इदमहम्—ईश्वर
5. अहम् इदम्—सद्विद्या

शुद्धविद्या—सद्विद्या के स्तर पर विमर्श का स्वरूप 'अहम् इदम्' इस प्रकार का होता है।



1. एक ही चिन्मात्रात्मक अधिकरण में समतुलावत् अहम् और इदम् का जहाँ परामर्श होता है, उसे शुद्धविद्या कहते हैं। सारांश यह कि ज्ञान की वह अभेदावस्था, जिसमें समान स्फुटत्व के साथ अहम् एवं इदम् का प्रत्यवमर्श होता है, उसे शुद्धविद्या कहते हैं।

2. इस अवस्था का प्रमाता 'इदम्' को जड़वत् नहीं; अपितु प्रकाशात्मक रूप से ही परामृष्ट करता है।

3. यहाँ अहं रूप प्रमाता का इदम् रूप प्रमेय समतुलाधृक है।

4. यहाँ प्रमाता अहं और इदम् दोनों में एक ही चिद्रूपता का परामर्श करता है।

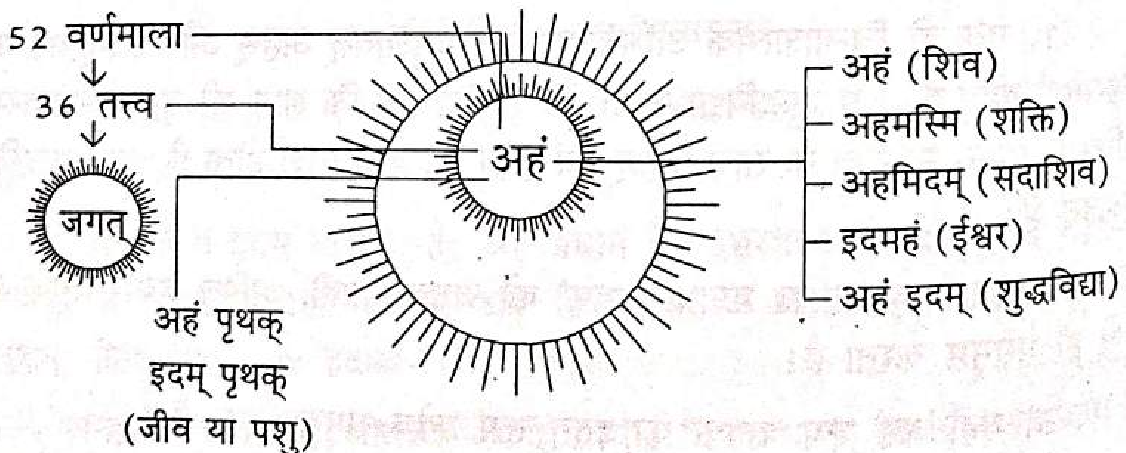


कामकलाविलासकार की दृष्टि—आचार्य पुण्यानन्द ने कामकलाविलास में कहा है कि यह 'अहं' अकारादि हकारान्त (या क्षकारान्त) मातृका-समष्टिरूप वाचक एवं तज्जात (पदार्थस्वरूप) वाच्यों से पूर्ण विश्व के विकासरूप रूप—सोपान का प्रथम पर्व है।

छत्तीस तत्त्वों से अन्तर्गर्भित निखिल भुवनमण्डल को मयूराण्डरसन्याय से कवलित करके अवस्थित अहं (पूर्णाहन्ता) को शिव-शक्तिरूप दिव्य दम्पति के सामरस्य के नाम से अभिहित किया जाता है। 'अ' एवं 'ह' (शिव एवं शक्ति) ही एकाक्षरा वाक् या प्रणव है।

इसी अहन्तारूप महाबिन्दु में सित, शोण एवं मिश्र नामक बिन्दुत्रय अवस्थित है। विमर्श रक्तबिन्दु है एवं प्रकाश शुक्लबिन्दु है। दोनों का समरस भाव मिश्र बिन्दु या सूर्य है। यही सूर्य 'काम' भी कहलाता है। इच्छा-ज्ञान-क्रिया के समुदित रूप एवं इच्छात्मिका पश्यन्ती मातृका, ज्ञानात्मिका मध्यमा मातृका एवं क्रियात्मिका वैखरी मातृका को अन्तर्गर्भित करके अवस्थित पूर्णाहन्तारूपिणी कामकला ही परामातृका कला है।

सारांश यह कि समस्त वर्णात्मक शब्दों एवं वाच्यात्मक (सदाशिव से पृथ्वी-पर्यन्त प्रमेय) समस्त अर्थों का मूल केन्द्र यही अहंतत्त्व है।



शक्तितत्त्व और अहं—अहं की साधना भी शक्ति की साधना है; क्योंकि शक्ति आत्मा है। अतः आत्मोपासना शक्ति की उपासना है।

अहंतत्त्व-विमर्श—महात्रिकोण के महाबिन्दु में दो तत्त्व समवेत हैं। वे हैं— 'अ' (शिव) एवं 'ह' (शक्ति)। अहं का ज्ञान ही शिव का आत्मज्ञान है या उनका स्वरूप-बोध है।

अहं और पूर्णाहन्ता

देवीसूक्त में अहं की व्याख्या—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामहमादिदैत्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।
अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राण्ये यजमानाय सुन्वते।।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिस्त मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि।।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एवा पृथिव्यै तावती महिमा सम्बभूव।।

यहाँ के निर्वचन में—अहमस्मि, अहमिदम् एवं इदमहम् के स्वरूप में सृष्टि, सृष्ट विश्व एवं सत्ता के इन तीनों स्तरों पर भी उसी अहं की व्याप्ति है। अहं के अतिरिक्त सृष्टि में कोई सत्ता है ही नहीं। अहं ही परात्पर सत्ता है। वही महाशक्ति है। उसी का विकास 'विश्व' है। त्रिकोण का अहं ही सृष्टि का मूल केन्द्र है, मूल उत्स है।

शक्ति के स्फुरणरूप स्वविकास का नाम ही 'विश्व' है। शक्ति ही विश्व के रूप में रूपायित हो रही है। विश्व शक्ति का रूपायन है।

शिवसूत्रकार की दृष्टि—शिवसूत्रकार शिवसूत्र के तृतीयोन्मेष में विश्व के स्वरूप-लक्षण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि विश्व केवल परमशिव की क्रियाशक्ति का विकास है—'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्।' (3.30)

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—आचार्य क्षेमराज उक्त निर्वचन की इस प्रकार व्याख्या करते हैं—

(क) समस्त जगत् मात्र 'शक्ति' है। शक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है; क्योंकि आर्ष वाक्य भी इसकी इस प्रकार पुष्टि करते हैं—'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नम्।'

(ख) परमशिव-संरचित यह अनन्त विश्व उनकी अपनी शक्ति से व्याप्त है, उसी से अनुस्यूत है, तन्मय है अर्थात् विश्व शक्तिमय है—'शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयम्।'

(ग) विश्व शिवमय तो है ही; किन्तु यह उनकी (शिव की) अपनी क्रियाशक्ति से भी युक्त है अर्थात् विश्व शिव-शक्तिमय है। सन्त तुलसीदास ने भी यही बात कही थी—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

यह विश्व संविदात्मा भगवान् शिव की अपनी शक्ति, अपनी क्रियाशक्ति का स्फुरण है, शक्ति का विकास है—'अस्यापि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रियाशक्ति-स्फुरणरूपो विकासो विश्वम्।।'

मृत्युजित् भट्टारक एवं कालिकाक्रम में प्रतिपादित दृष्टि—शक्ति (देवी) ज्ञानमय है—विश्व ज्ञेय है। अर्थात् शक्ति ज्ञान (Knowledge) है और जगत् ज्ञेय (Knowable) है। इस ज्ञानस्वरूप शक्ति के अतिरिक्त कोई सत्ता है ही नहीं; अतः जगत् केवल 'ज्ञान' (शक्ति) मात्र है—

1. यतो ज्ञानमयं देवि ज्ञेयं च बहुधा स्थितम्।

2. तत्तद्रूपतया ज्ञानं बहिरन्तः प्रकाशते।
ज्ञानादृते नार्थसत्ता ज्ञानरूपं ततो जगत्।।

यह ज्ञान (शक्ति) ही विश्व के अन्दर एवं विश्व के बाहर सर्वत्र प्रसृत है। कोई भी भाव (अस्तित्व या सत्ता) ज्ञान (शक्ति) से पृथक् नहीं है; अतः जगत् तदात्मक (ज्ञानात्मक एवं शक्त्यात्मक) है और इस प्रकार ज्ञान एवं ज्ञेय अर्थात् शक्ति (Knowledge) और विश्व (Knowable) दोनों एक रूप हैं, अभिन्न स्वरूप हैं—

न हि ज्ञानादृते भावाः केनचिद्विषयीकृताः।
ज्ञानं तदात्मतां प्राप्तमेतस्मादवसीयते।।

अस्तिनास्तिविभागेन निषेधविधियोगतः।
ज्ञानात्मता ज्ञेयनिष्ठा भावानां भावना बलात्।
युगपद्वेदनाज्ज्ञानज्ञेययोरेकरूपता ।। (कालिकाक्रम)

4. सृष्टि की दशा में तो शक्ति विश्वमय ही है अर्थात् निजा शक्ति से ही विश्व को विकसित करती है और विश्व शिव की निजा शक्ति के रूप में ही अवस्थित है; किन्तु साथ ही जगत् की स्थिति एवं लय भी शक्ति का ही रूपायन, विस्तार या अभि-व्यक्ति है—'न केवलं सृष्टिदशायां निजशक्तिविकासोऽयं विश्वं यत्तु तत्पृष्ठपातिनौ स्थितिलयौ।' (3.31)।

शक्ति की सृष्टि-स्थिति-लयरूपता

शिवसूत्रकार कहते हैं कि शक्ति जगत् की सृष्टि है। शक्ति जगत् की स्थिति एवं शक्ति जगत् का लय है।

'जगत्प्रति कारणता कर्तृतारूपा, सैव क्रियाशक्तिः' अर्थात् चैतन्य शरीरी एवं स्वतन्त्र (स्वातन्त्र्य नामक परा शक्ति से समन्वित) विश्वात्मा परमशिव की जगत् के प्रति जो कारणरूपता है, वही क्रियाशक्ति है। चिद्रूप एवं पञ्चकृत्य-विधायक कर्त्ता शिव की चिकीर्षा (जगत् के निर्माण करने की इच्छा) ही उनकी मुख्य क्रिया है—'एवं चिद्रूपस्यैकस्य कर्तुरेव चिकीर्षाख्या क्रिया मुख्या।'[1]

आगे उत्पलदेव कहते हैं कि घट-पटादिरूप आभासात्मक जगत् को अभिव्यक्त करने हेतु उत्पन्न शैवी इच्छा ही कर्तृता (क्रिया का रूप) ग्रहण करके जगत् की सृष्टि का कारण बन जाती है—

'इत्थं तथा घटपटाद्याभासजगदात्मना तिष्ठासोरेवमिच्छैव हेतुता कर्तृता क्रिया।'[2]

जगत् और शक्ति

जगत् की विभिन्न स्थितियाँ—

1. सृष्टिप्राक् अवस्था में पराशक्ति अन्तर्गर्भित जगत् की कारणावस्था।
2. सृष्टिरूपा कार्यावस्था।
3. स्थितिरूपा कार्यावस्था।
4. संहाररूपा कार्यावस्था।

शक्ति इन चारो स्थितियों में अवस्थित है या शक्ति की ये जागतिक अवस्थायें हैं। शक्ति जगत् की प्रत्येक अवस्था में अवस्थित है; क्योंकि—

1. जगत् क्रियाशक्ति का अवभास है—'क्रियाशक्त्याभासितस्य विश्वस्य' (शिवसूत्रविमर्शिनी)।

2. जगत् शक्ति का बहिर्मुखावभासन है—'बहिर्मुखत्वावभासनरूपा' (शिवसूत्रविमर्शिनी)।

3. शक्ति ही जगत् की स्थिति है—'बहिर्मुखत्वावभासनरूपा स्थितिः' (शिवसूत्रविमर्शिनी)।

4. जगत् की लयावस्था भी शक्ति है, क्योंकि—'चिन्मयप्रमातृविश्रान्त्यात्मा च यो लयः' (शिवसूत्रविमर्शिनी)।

---

1. उत्पलदेव : प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति।
2. प्रत्यभिज्ञाकारिका।

आचार्य वरदराज की दृष्टि—वार्तिककार वरदराजाचार्य भी यही बात कहते हैं कि विश्व की सृष्टि, उसकी स्थिति एवं उसका लय—ये तीनों ही संविदात्मा परमशिव की परा शक्ति का स्वविकास, स्वविस्तार, स्वप्रचय या स्वाभिव्यक्ति है—

न परं सृष्ट्यवस्थायाममुष्य परयोगिनः।
स्वशक्तिप्रचयो विश्वं यावत्तत्पृष्ठपातिनौ।
स्थितिलयौ ....।। (3.31)

स्वशक्तिप्रचयौ प्रोक्तौ तावपीत्यनुवर्तते।
विकासितस्य विश्वस्य क्रियामय्या स्वसंविदा।
तत्तत्प्रमात्रपेक्षातः किञ्चित्कालमिदन्तया।
या स्थितिश्चिन्मयाहन्ताविश्रान्त्यात्मा च यो लयः।
तावुभौ योगिनस्तस्य स्वशक्तिप्रचयात्मकौ।
विकसत्सङ्कुचत्सर्वं वेद्यं यत्संविदात्मकम्।
अन्यथा तस्य वेद्यस्य वेदनानुपपत्तितः।।[1]

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः।
इत्यागमदिशा विश्वं स्वशक्तिप्रचयो यथा।
शिवस्य तत्समस्यापि तथास्य परयोगिनः।
स्वस्याः स्वात्माविमुक्तायाः शक्तेः संवेदनात्मनः।
प्रचयः स्फुरणारूपो विकासो विश्वमिष्यते।।[2]

सारांश यह कि विश्व शिव की निजा शक्ति का विकास है—'निजशक्तिविकासोऽयं विश्वम्।'[3]

'क्रियाशक्त्याभासितस्य विश्वं' 'क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्' कहकर आचार्य क्षेमराज ने जिस विश्व का क्रियाशक्ति के स्फुरण के रूप में परिचय दिया है, वह क्रियाशक्ति क्या है? राजानक उत्पलदेव ने उस शक्ति का इस प्रकार परिचय दिया है—

चिद्वपुषः स्वतन्त्रस्य विश्वात्मना कर्तुमिच्छैव।

शक्ति की विभिन्न संज्ञायें एवं उसके विभिन्न पक्ष

काश्मीरीय त्रिक दर्शन में 'शक्ति' को विभिन्न स्वरूपों में अवस्थित देखा जाने के कारण उसे अनेक आख्यायें प्रदान की गई हैं।

शक्ति के अनन्त रूप हैं, असंख्य स्वरूप हैं और उसके अमित पक्ष हैं। इन्हीं तथ्यों की दृष्टि से काश्मीरीय तान्त्रिक शैव-शाक्तों ने उनको निम्न नामों से अभिहित किया है—

1. आचार्य वरदराज : शिवसूत्रवार्तिक (3.31)
2. शिवसूत्रवार्तिक (3.30)
3. शिवसूत्रविमर्शिनी

विमर्श, चिति, प्रत्यवमर्शात्मा, परावाक्, स्वरसोदिता, स्वातन्त्र्य, ऐश्वर्य, स्फुरत्ता, महासत्ता, सार, परमेष्ठी का हृदय।

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।
सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।[1]

मायाशक्ति—वही परमात्मा की मायाशक्ति भी है—'मायाशक्त्या विभोः सैव भिन्नसंवेद्यगोचरा प्रकाशात्मनः परमेश्वरस्य मायाशक्त्या स्वात्मरूपं विश्वं भेदेनाभास्यते।'[2] परमात्मा इसी मायाशक्ति के द्वारा चित्त को भेदावभासित करके अभिन्न रहते हुए भी भिन्नवत् प्रतीत होने लगता है—

चित्तत्वं मायया हित्वा भिन्न एवावभाति यः।[3]

माया क्या है? उत्पलदेवाचार्य कहते हैं कि माया एक शक्ति है। यह शिव की शक्ति है। यह शक्तिमान शिव से अभिन्न है। यह शिव से अव्यतिरिक्त है। यह स्वरूपगोचर नहीं है।

अहंतत्त्व : अद्वैतवादी आचार्य शंकर की दृष्टि—आचार्य शंकर ने अहंतत्त्व की व्याख्या दो शैलियों में की है—

निषेधपरक शैली—क्या-क्या अहं नहीं है? कौन-कौन से तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य या सत्तायें अहं नहीं हैं।

2. विध्यात्मक शैली—अहं है क्या? अहं का स्वरूप-लक्षण क्या है? अहं का तात्त्विक स्वरूप क्या है? अर्थात् आत्मा के रूप में अहम्।

अहं

—1. शरीराध्यासात्मक, जड़ात्मक, इन्द्रियात्मक या अध्यारोपात्मक मिथ्या अहं (जड़ तत्त्वों में मैं की अनुभूति करने वाला अहं)।
—2. प्रत्यक् चैतन्य या आत्मा के रूप में या परमात्मा के रूप में अहं।
—3. तन्त्रशास्त्रीय पराहन्तात्मक, विश्वमय एवं विश्वातीत अहं। सर्वरूप, सर्वमय एवं सर्वात्मक अहं।

महामाया और शक्ति—महामाया शक्ति का एक शुद्ध रूप है। एक मत तो यह है कि शिव की दो शक्तियाँ हैं—समवायिनी शक्ति एवं परिग्रहरूपा शक्ति। चिद्रूपा, अपरिणामिनी, निर्विकारा जो स्वाभाविकी शक्ति है, वही भगवान् की समवायिनी शक्ति है। यह शिव में नित्य समवेत रहती है। परिग्रह शक्ति अचेतन एवं परिणामशीला है।

1. उत्पलदेव : प्रत्यभिज्ञाकारिका
2. प्रत्यभिज्ञाकारिकावृत्ति (उत्पलदेव)
3. प्रत्यभिज्ञाकारिका (56)

इसी का नाम है—बिन्दु। बिन्दु के दो स्वरूप हैं—शुद्ध एवं अशुद्ध। बिन्दु का जो शुद्ध रूप है, वही महामाया या बिन्दु कहा जाता है। इसके अशुद्ध रूप को माया कहा जाता है। ये दोनों नित्य हैं। अशुद्ध अध्वा का उपादान कारण माया है और शुद्ध अध्वा का उपादान कारण महामाया है। यही दोनों में अन्तर है। सांख्य दर्शन में वर्णित तत्त्व एवं कलादिक पञ्चकञ्चुक अशुद्ध अध्वा के ही अन्तर्गत हैं। ये सब माया के कार्य हैं।

दूसरा मत यह है कि बिन्दु ही शुद्धाशुद्ध अध्वाओं का उपादान है। इस मत में माया नित्य नहीं है, कार्य है। महामाया या बिन्दु की तीन अवस्थायें हैं—परा, सूक्ष्मा एवं स्थूला। परावस्था ही महामाया, परामाया एवं कुण्डलिनी आदि नामों से पुकारी जाती है। यही परम कारण और नित्य है।

महामाया के विक्षुब्ध होने पर → शुद्ध धाम, उनके निवासी, मन्त्र, विद्या एवं मन्त्रेश्वरों के शरीर आदि।

भारत की अन्य रहस्यविद्यायें—भारत रहस्य-विद्याओं का अगाध समुद्र है। ये सभी रहस्य-विद्यायें शक्ति के सन्धान को लेकर चली है। भारत की कतिपय गुप्त रहस्य विद्यायें हैं—चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान, मनोविज्ञान आदि।

भारतीय योगियों ने शक्ति की उपासना की। एक बार योगिराज स्वामी विशुद्धानन्द ने गुलाब के पुष्प को जवापुष्प में रूपान्तरित कर दिया। उनके कथनानुसार यह कार्य सूर्यविज्ञान के द्वारा सम्पन्न हुआ। योगबल, शुद्ध इच्छाशक्ति से भी इस प्रकार की सृष्टि एवं संहार आदि क्रियायें निष्पन्न की जा सकती हैं।

विशुद्धानन्द जी के शरीर से एक अपूर्व दिव्य गन्ध निकलती रहती थी और इसी दिव्य गन्ध से वायु एवं भावों के स्पन्दन के अनुरूप कभी चन्दन, कभी खस, कभी गुलाब एवं कभी अन्य प्रकार की सुगन्ध निकला करती थी। योग के अनुसार ब्रह्मचर्य के कारण इस प्रकार की दिव्य गन्ध का शरीर से उद्भूत होकर वातावरण में फैलना स्वाभाविक कार्य है। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के शरीर से निरन्तर उत्कट गन्ध निकलने के कारण ही उन्हें 'गन्धाढ्या' कहा जाता है।

योगिराज स्वामी विशुद्धानन्द जी के चमत्कार—स्वामी जी अपने मस्तिष्क के भीतर शालग्राम एवं शिवलिंग भी धारण करते हैं और पूजावसर पर मुखादिक द्वारों से उसे निकालकर उसकी यथोचित पूजा करके उसे पुन: यथास्थान स्थापित कर लिया करते हैं। इनका चिन्तन करने से इनके शिष्यों के चारो ओर बाबा के शरीर की गन्ध फैल जाती थी और वे शरीरत: कहीं अन्यत्र रहने पर भी कहीं दूर देश में प्रकट हो जाते थे। उनके शरीर से इतना विद्युत् सम्पात होता था कि मच्छर, मधुमक्खी, साँप, भँवरे आदि उनको काटते ही मर जाते थे। वे सिंहों को भी देख लेते थे तो वे भी सिर

झुका लेते थे। वे अपने शरीर में अनेक स्फटिक-गोलक (Crystal balls) रखते थे। इसके साथ ही वे शरीर में मोती, हीरा आदि भी रखते थे। जब रोमछिद्रों से स्फटिक-गोलक निकालते थे तो उन्हें कोई कष्ट भी नहीं होता था। उनके शरीर से निकलने वाले स्फटिकों से भी दिव्य गन्ध निकलने लगती थी।

एक बार उन्होंने अपने शरीर के अंग-प्रत्यंगों को एक-दूसरे से पृथक् करके दिखलाया था तथा उस समय वे अदृश्य रूप से शून्य में बोलते हुये इस अंगविश्लेषणजन्य विज्ञान पर प्रवचन भी करते जाते थे। एक बार उनका शरीर नवजात शिशु के आकार में परिवर्तित हो गया था। उन्होंने बताया था कि विष्णु की नाभि से कमल एवं कमल पर ब्रह्म का आविर्भाव पूर्णत: सत्य है। कुण्डलिनी शक्ति का विकास होने पर अन्तराकाश में परमादित्यस्वरूप ज्योतिर्मय तेज:पुञ्ज का उदय होता है और तब नाभिकमल से अपने-आप कमल निकल पड़ता है। सामान्य (बद्ध) जीवों की नाभि में ग्रन्थि लगी होने से यह उनके प्रसंग में सम्भव नहीं है। उन्होंने दोनों हाथों से नाभि का दो-चार बार सञ्चालन किया तो नाभि गर्त बन गया और उसमें से दिव्य पद्म निकल पड़ा और उसकी सुगन्ध से पूरा वातावरण सुगन्धित हो उठा। उन्होंने नाभि को हिलाया तो कमल नालसमेत भीतर अदृश्य हो गया।

वायुविज्ञान—एक बार उनके परम शिष्य कविराज जी की जपमाला टूट गई थी। उन्होंने उसे शास्त्रविधि से गूँथने के लिए स्वामी जी को रुद्राक्ष के दाने एवं रेशम के धागे दिये। उन्होंने रुद्राक्ष के दाने एवं रेशम के धागे को गोमुखी में डालकर उसे मुट्ठी में दबा लिया। उन्होंने उस पर दो-तीन बार हाथ फेरकर गोमुखी कविराज जी को दे दिया। यह पूरा कार्य 3-4 सेकेण्ड में पूरा हो गया। जब कविराज जी ने गोमुखी से हाथ निकाला तो सुमेरुसहित पूरी माला गुँथी मिली। उन्होंने इस क्रिया को वायुविज्ञान की विधि बताया। यह पूछने पर कि 2-3 सेकेण्ड के भीतर 108 दानों को सूत में गूँथना, 108 से अधिक ग्रन्थियाँ लगाना, सुमेरु लगाना आदि कैसे सम्भव हुआ? स्वामी जी ने कहा कि यह वायुविज्ञान का कार्य है। जिसे तुम लोग अल्प काल कहते हो, वह अल्प काल नहीं है। सूक्ष्म स्तर पर आरूढ़ होने पर उसी में दीर्घ काल का भी कार्य हो सकता है।

भारत की अनेक रहस्यविद्याओं में प्रधान वैदिक विद्यायें निम्नांकित हैं—

1. उद्गीथविद्या 2. संवर्गविद्या 3. मधुविद्या 4. पञ्चाग्निविद्या 5. (उपकोसलीय) आत्मविद्या 6. शाण्डिल्यविद्या 7. दहरविद्या 8. भूमाविद्या 9. दीर्घायुष्यविद्या 10. मन्थ-विद्या 11. श्रीविद्या 12. चन्द्रविद्या 13. (कालतत्त्व से सम्बद्ध क्षणविज्ञानात्मक) काल-विद्या 14. नादविद्या 15. प्राणविद्या 16. मनस्तत्त्वविद्या आदि।

आगे चलकर इन्हीं रहस्य-विद्याओं का पुराणों एवं योगशास्त्र तथा तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में पुष्कल विकास हुआ है।

अथर्ववेद की आथर्वण विद्या ही तन्त्रशास्त्र के षट्कर्मों का बीज है। नाद-सृष्टि, मनःसृष्टि, संकल्प-सृष्टि, (इच्छा-सृष्टि), नाद-बिन्दु-सिद्धान्त, शब्द-सृष्टिवाद, संकल्प-सृष्टिवाद, नाद-साधना, बिन्दु-साधना, खेचरत्व, जात्यन्तर परिणाम, परकाया-प्रवेश, प्रातिभसिद्धियाँ, पञ्चमहाभूत-साधना, तन्मात्र-साधना, संयम विज्ञान, समाधि-योग, प्रतीकोपासना-विज्ञान, काल-वञ्चन, प्राणापान योग, नाड़ी-योग, कुण्डलिनी योग, वाक्चतुष्टयात्मक वर्णविज्ञान, उद्गीथोपासना, षोडशी-विज्ञान, षडध्व-विज्ञान आदि सैकड़ों रहस्यविद्याओं का बीज भारत का वैदिक आर्ष वाङ्मय है।

शैव-शाक्त एवं योगतन्त्र की साधनायें मुख्यतः शक्ति की ही साधनायें हैं। चाहे वैष्णवतन्त्र हो और चाहे शैव-शाक्त तन्त्र, चाहे जैनतन्त्र हो और चाहे बौद्धतन्त्र—सभी में साधनाओं का मुख्य केन्द्र या उनका उत्प्रेरक प्राणसूत्र इन्द्रियातीत दिव्य शक्तियाँ प्राप्त करना ही रहा है।





नवम अध्याय

कुण्डलिनी तत्त्व और शक्ति-साधना

कुण्डलिनी की साधना शक्ति की साधना है। कुण्डलिनी अकुल (परमशिव) की निजा शक्ति है, जो कि सर्पाकार होकर पाताल (मूलाधार चक्र) में ब्रह्मरन्ध्र नामक ब्रह्मद्वार को अपने कलाग्र भाग से अवरुद्ध करके अवस्थित है—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनीनाम बिसतन्तुनिभाऽशुभा।।[1]

मानव-शरीर में यह महाशक्ति उस वैश्विक (ब्रह्माण्डीय) महाशक्ति का प्रतिनिधि है, जो कि अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन एवं पालन किया करती है। The Serpent Power में आर्थर एवलान कहते हैं—

Kundalini is the static Shakti......., It is the individual bodily representative of the great Cosmic power (Shakti) which creates and sustains the universe.

भारतीय योगियों ने समाधि लगाकर यह पता लगाया कि प्राणियों में पायी जाने वाली यही शैवी शक्ति अपनी सुप्तावस्था के कारण प्रत्येक प्राणी को बन्धन, आवागमन-चक्र, अज्ञान, अविद्या एवं पाशस्वरूपा माया में डाले हुए है और जब तक इसे जगाया नहीं जाता तब तक कोई भी प्राणी न तो मुक्त ही हो सकता है और न तो अपने सत्स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा ही कर सकता है। अनन्त शक्तियों का अधिष्ठान मानव कुण्डलिनी की सुषुप्ति भंग किए विना एक भी दैवी शक्ति का साक्षात्कार नहीं कर सकता। इसी रहस्याव-बोध ने भारतीय ऋषियों को कुण्डलिनी की साधना करने के लिए अग्रपद किया।

कुण्डलिनी की साधना शक्ति-साधनाओं में सर्वोच्च साधना है। कारण सुस्पष्ट है। परमशिव स्वयं अपनी इसी शक्ति से शक्तिमान कहलाते हैं; फिर इससे बड़ी शक्ति की अन्य साधना क्या हो सकती है? कुण्डलिनी ही सृष्टि है, कुण्डलिनी ही जगत् है, कुण्डलिनी ही जगत् की समस्त शक्तियों का मूलाधिष्ठान है; इसलिये कुण्डलिनी की साधना ही शक्ति की उच्चतम साधना है।

---

1. वामकेश्वरमहातन्त्र

कुण्डलिनी शक्ति और उसका स्वरूप—

1. वह चैतन्यरूपा है।

2. सर्वानुस्यूत एवं सर्वगा है।

3. विश्वरूपा है।

4. शिव का सन्निधान प्राप्त करके नित्य आनन्द एवं सत्त्वादि गुणत्रय को आविर्भूत करने वाली है।

ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा विश्वरूपिणी।
शिवसन्निधिमासाद्य नित्यानन्दगुणोदया।। (शारदातिलक)

5. दिशा-काल से अतीत है।

6. सर्वदेहानुगा है।

7. परापर विभाग से पर शक्ति कहलाती है।

8. योगियों के हृदय में तत्त्वतः नृत्य करती रहती है।

9. समस्त प्राणियों के मूलाधार चक्र में विद्युत् की भाँति सदैव स्फुरित होती रहती है।

10. शंखावर्त के समान सभी को आवृत करके अवस्थित है।

11. कुण्डलीभूत सर्प के आकार वाली है।

12. सर्वदेवमयी एवं सर्वमन्त्रमयी है।

13. सर्वतत्त्वमयी है।

14. सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर एवं विभु है।

15. त्रिधाम (पृथ्वी-पाताल-स्वर्ग) की जननी है।

16. वह शब्दब्रह्मस्वरूपा है—

सर्वदेवमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः।
त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी।।[1]

17. 42 वर्णों वाली भूतलिपिमयी है।

18. 50 वर्णमातृकास्वरूपा है।

द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मा पञ्चाशद्वर्णरूपिणी।[2]

19. वह समस्त शरीरों में गुणित (अनेक रूपों में प्रसृत) होकर विद्यमान या व्याप्त है।

20. वह परदेवता है।

21. वह परदेवतास्वरूपा कुण्डलिनी सभी प्रकार से प्रबुद्ध होकर मन्त्रमय इस जगत् को आविर्भूत किया करती है।

1. शारदातिलक (1.55-56)
2. शारदातिलक (1.57)

विश्वात्मना प्रबुद्ध्वा सा सूते मन्त्रमयं जगत्।[1]

22. शब्दार्थरूप से नि:शेष विश्व की जननी वह भगवती कुण्डलिनी परदेवता जब एकगुणित संख्या में रहती है तो वह वेद का आदि बीज = ॐ (ओंकार), श्रीबीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं), मनोभव बीज (क्लीं), प्रासाद, तुम्बरु, पिण्ड, चिन्तामणि विनायक का, मार्तण्ड, भैरव, दुर्गा, नरसिंह, वराह, वासुदेव, हयग्रीव एवं श्रीपुरुषोत्तमबीज एवं इसी प्रकार अन्य एकाक्षर मन्त्रों (यथा—चन्द्रबीज, बिम्बबीज) को आविर्भूत करती है।

जब वह ज्ञानस्वरूपा कुण्डलिनी द्विगुणित विग्रहा (दुगुने कलेवरों वाली) हो जाती है तब वह परमात्मा के वाचक 'हं' एवं 'स:' वर्णों को, शब्द और अर्थ को, दिन और रात्रि को तथा प्रकृति एवं पुरुष को आविर्भूत करती है।

वह जगत् के समस्त युग्म पदार्थों को जन्म देती है।

जब वह कुलशक्ति त्रिगुणित (तिगुने शरीर वाली) होती है तब वह त्रिपुरामन्त्र, शक्तिविनायक मन्त्र, पाशादि त्र्यक्षर मन्त्र, त्रैपुर चण्डेश्वर मन्त्र, सौरमन्त्र, मृत्युञ्जय मन्त्र, शक्त्योद्भूत मन्त्रद्वय, गारुड़ मन्त्र, वागीश्वरी त्र्यक्षर मन्त्र, नीलकण्ठ के विषहारी त्र्यक्षर मन्त्र, देवी के त्रिगुणित यन्त्र, लोकत्रय, गुणत्रय, धामत्रय, वेदत्रय, वर्णत्रय, तीर्थत्रय, स्वरत्रय, देवत्रय, देवीत्रय, अग्नित्रय, शक्तित्रय, कालत्रय, वृत्तित्रय, नाड़ित्रय, वर्गत्रय तथा इनके अतिरिक्त शेष (दोषत्रय आदि) की भी उद्भाविका या जननी है।

वही महाशक्ति (कुण्डलिनी) सारे चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार पद्म में जाकर अपने पति (सर्वशक्तिमान परमशिव) से मिलकर जीव को पूर्णत्व प्रदान करती है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।। (सौन्दर्यलहरी)

जब सर्वकल्याणकारिणी शाम्भवी कुण्डलिनी चतुर्गुणित (चौगुनी) बनती है तब वह सूर्य के प्रणव, माया, हं एवं स:—इस प्रकार चार अक्षरों में व्यक्त होती है।

वह महालक्ष्मी के चतुरक्षर मन्त्र, देवी के तत्त्वचतुष्टय (आत्मतत्त्व, विद्या-तत्त्व, शिवतत्त्व एवं सर्वतत्त्व), चतु:समुद्र, अन्त:करणचतुष्टय, वाक्चतुष्टय (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी), भावचतुष्टय (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय), विष्णुमूर्तिचतुष्टय, गणेशचतुष्टय, आत्मचतुष्टय, पीठचतुष्टय (उड्डीयान, जालन्धर, पूर्णगिरि, कामरूप), धर्मादि चतुष्टय (पुरुषार्थचतुष्टय), दमादि चतुष्टय (शम, दम, तितिक्षा, उपरति), गजचतुष्टय तथा अन्य चतुष्टय (यथा—सिद्ध, मण्डल, दीक्षा, हेरम्ब मन्त्र, देवी, दूती

1. शारदातिलक (1.57)

एवं बीजचतुष्टय आदि) को उत्पन्न करती है।[1]

इसी प्रकार भगवती कुण्डलिनी पञ्चगुणित, षड्गुणित, सप्तगुणित, अष्टगुणित, नवगुणित, दशगुणित, एकादशगुणित, द्वादशगुणित एवं द्वात्रिंशद्भेदगुणित होकर स्व-स्वरूप को व्यक्त करती है।[2]

वह भगवती कुण्डलिनी सर्वदेवमयी, सर्वमन्त्रमयी एवं सर्वतत्त्वमयी है—

1. सर्वदेवमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः।।

2. त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी।

3. द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मा पञ्चाशद्वर्णरूपिणी।

4. गुणिता सर्वगात्रेषु कुण्डली परदेवता।
विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मन्त्रमयं जगत्।।

5. एकधा गुणिता शक्तिः सर्वविश्वप्रवर्तिनी।

6. यदा भवति सा संवित् द्विगुणीकृतविग्रहा।
हंसवर्णौ परात्मानौ शब्दार्थौ वासरक्षये।। आदि।

भगवती कुण्डलिनी अपने को छत्तीस स्वरूपों में अभिव्यक्त करके शिवसम्बन्धी छत्तीस तत्त्वों को प्रकट करती है और छत्तीस मन्त्रों एवं मन्त्र-समुदाय को निर्मित करती है—

अनेन क्रमयोगेन गुणिता शिववल्लभा।
षट्त्रिंशतश्च तत्त्वानां शैवानां रचयत्यसौ।।

अन्यान् मन्त्रांश्च यन्त्राणि शुभदानि प्रसूयते।
द्विचत्वारिंशता मूले गुणिता विश्वनायिका।।

वही विश्वनायिका, शब्दब्रह्ममयी, सर्वव्यापिका कुण्डलिनी शक्ति जब मूल से बयालीस गुना रूप धारण करती है तब उसकी सृष्टि का क्रम इस प्रकार होता है—

शक्ति → ध्वनि → नाद → निरोधिका → अर्द्धेन्दु → बिन्दु → परा → पश्यन्ती → मध्यमा → वैखरी।[3]

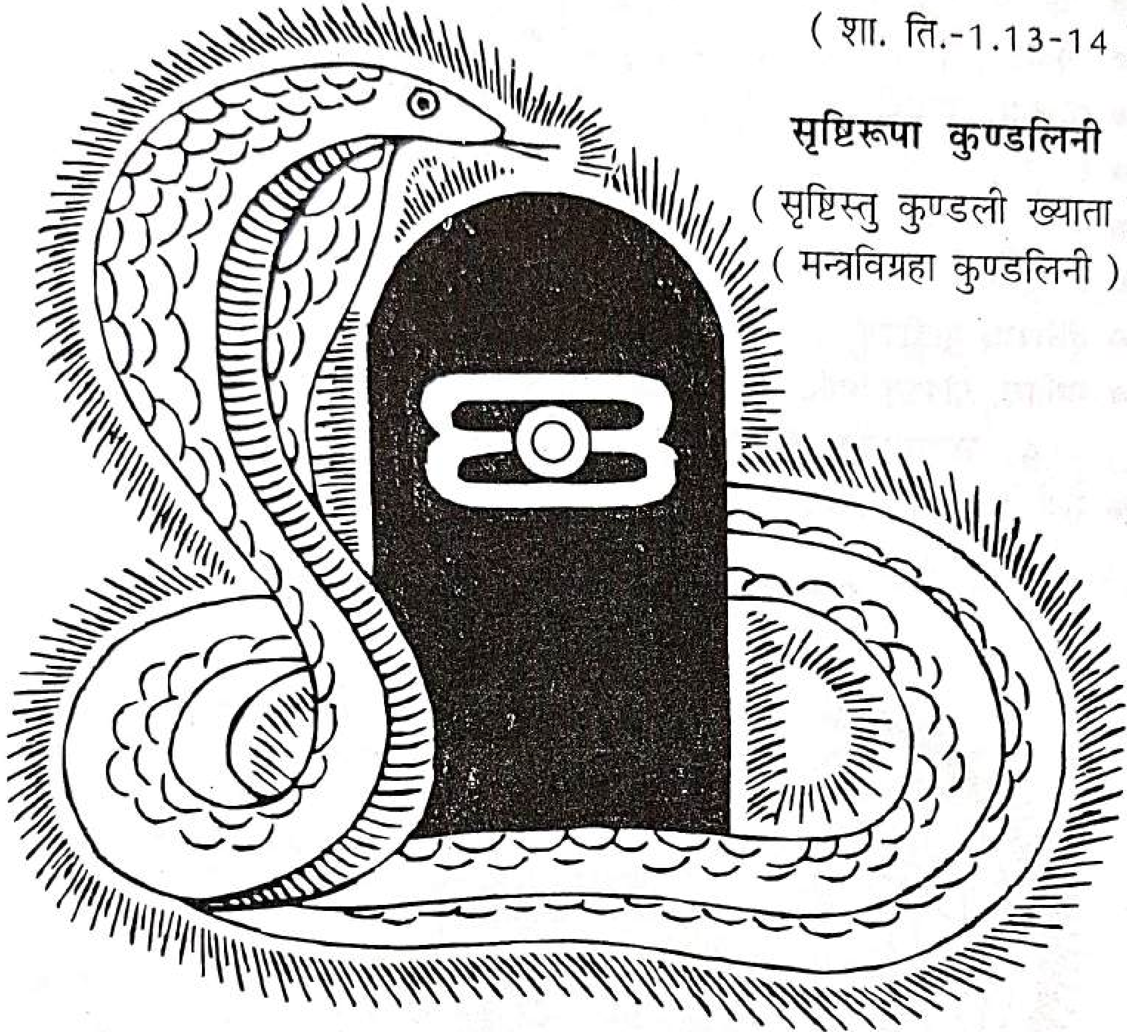
---

1. शारदातिलक (1.67-68)
2. शारदातिलक (58-100)
3. शारदातिलक (प्रथम पटल-1.108-109)

जगन्माता शब्दब्रह्मस्वरूपा कुण्डलिनी

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः।
तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।।
वर्णात्मनाऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।।

(शा. ति.-1.13-14)



सृष्टिरूपा कुण्डलिनी

(सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)
(मन्त्रविग्रहा कुण्डलिनी)

उपरिदर्शित शबदब्रह्मस्वरूपा जगन्माता कुण्डलिनी एक से लेकर छत्तीस गुणित तक होती है, जिनमें कतिपय कुण्डलिनियों का विवरण क्रमशः निम्नवत् है—

1. एकगुणित कुण्डलिनी

- वेदबीज प्रणव ॐ
- श्रीबीज श्रीं
- शक्तिबीज ह्रीं
- मनोबीज क्लीं
- प्रासाद, पिण्ड
- तुम्बुरु मन्त्र
- चिन्तामणि
- मार्तण्ड, भैरव दुर्गा के एकाक्षर मन्त्र
- चन्द्रबीज बिम्बबीज आदि एकाक्षर मन्त्र

2. द्विगुणित कुण्डलिनी

- हं सः
- शब्द-अर्थ
- दिन-रात
- प्रकृति-पुरुष
- सृष्टि के समस्त युग्म

3. त्रिगुणित कुण्डलिनी

- त्रिपुरामन्त्र
- शक्तिविनायक मन्त्र
- पाशादि त्र्यक्षर मन्त्र

- त्रैपुर चन्द्रेश्वर मन्त्र
- मृत्युञ्जय एवं सौर मन्त्र
- शक्त्योत्पन्न मन्त्रद्वय
- गारुड, वागीश्वरी, नीलकण्ठ (त्र्यक्षर मन्त्र)
- देवी का त्रिगुणित यन्त्र
- लोकत्रय, गुणत्रय
- धामत्रय, वेदत्रयी
- वर्णत्रय, तीर्थत्रय
- स्वरत्रय, देवीत्रय
- अग्नित्रय, कालत्रय
- वृत्तित्रय, नाड़ीत्रय
- वर्गत्रय, दोषत्रय आदि विभिन्न त्रयी

4. चतुर्गुणित कुण्डलिनी

- सूर्य के प्रणव, माया, हं, स
- देवी-चतुष्टय (आत्म, विद्या, शिव, सर्व)
- चार समुद्र एवं चार अन्त:करण
- वाक्चतुष्टय (परा, प० म० वै०)
- भावचतुष्टय (जा. स्व. सु. तु.)
- विष्णुमूर्तिचतुष्टय
- गणेशचतुष्टय
- आत्मचतुष्टय
- पीठचतुष्टय
- धर्मादि चतुष्टय
- दमादि चतुष्टय
- गजचतुष्टय
- सिद्ध-मण्डल-दीक्षा-देवी-दूती-बीज आदि के चतुष्टय

शब्दब्रह्मस्वरूपा जगन्माता कुण्डलिनी



सृष्टिस्वरूपा कुण्डलिनी

(मन्त्रविग्रहा कुण्डलिनी)

(सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)

5. पञ्चगुणित कुण्डलिनी

- त्रिपुरा के पञ्च वर्ण
- पञ्चरत्न (ग्लुं, स्लु, म्लुं, न्लुं)
- शिव का पञ्चाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय)
- गरुड़ का पञ्चाक्षर मन्त्र
- सम्मोहनादि पञ्चकाम एवं पञ्चवाण
- पञ्च देववृक्ष (मन्दार-पारिजात-सन्तान-कल्पद्रुम-हरिचन्दन)
- पञ्चप्राण
- पञ्च वर्ण
- महेश्वर की पञ्च मूर्तिया (वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान आदि)
- पञ्च कलायें
- पञ्च ब्रह्म ऋचायें

6. षड्गुणित कुण्डलिनी

- त्रिपुरार्णवोक्त षडक्षर मन्त्र
- षट्कूट मन्त्र
- षडक्षर गाणपत्य मन्त्र
- चन्द्रमा का षडक्षर मन्त्र
- नारसिंह षडक्षर मन्त्र
- वसन्तादि षडक्षर मन्त्र
- आमोदादि षड् विनायक के मन्त्र
- षट्कोश षडूर्मि
- षडूर्मि
- षड्रस
- षट् शक्तियाँ
- षट् ध्वजा
- शाकिनी आदि षड्गुणित यन्त्र
- षडाधार
- जगत् की समस्त षड्विध वस्तुयें

7. सप्तगुणित कुण्डलिनी

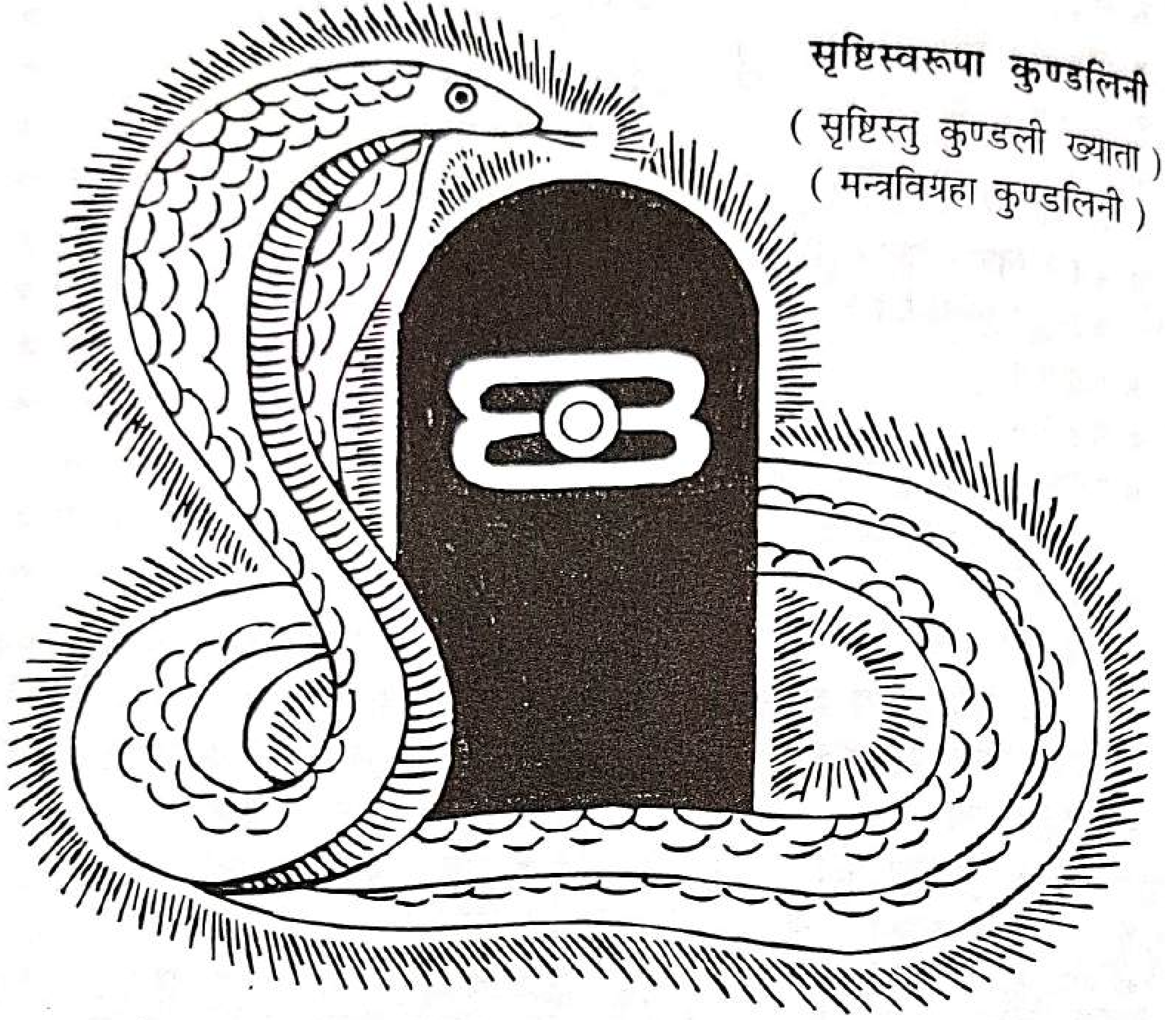
(सप्तगुणित मन्त्रात्मक स्वरूप)

- सप्ताक्षर त्रिपुरा मन्त्र
- सप्तवर्णात्मक विनायक मन्त्र
- सप्त व्याहृतियाँ
- सप्तवर्णात्मक सुदर्शन मन्त्र
- सप्तलोक
- सप्त मर्यादा पर्वत
- सप्त स्वर
- सप्त धातु
- सप्तर्षि
- सप्त द्वीप
- सप्त ग्रह
- सप्त समिधायें
- अग्नि की सप्त जिह्वायें
- सृष्टि की समस्त सप्तवर्गित वस्तुयें

8. अष्टगुणित कुण्डलिनी

- शिव के दो अष्टाक्षर मन्त्र
- विष्णु का श्रीकर नामक अष्टाक्षर मन्त्र
- हरि के अष्टाक्षर मन्त्र
- शक्ति के दो प्रकार के अष्टाक्षर मन्त्र
- सूर्य के अष्टाक्षर मन्त्र
- दुर्गा के अष्टाक्षर मन्त्र
- परमात्मा के अष्टाक्षर मन्त्र
- नीलकण्ठ के अष्टाक्षर मन्त्र
- वासुदेव के अष्टाक्षर मन्त्र
- दिव्य कामार्गल मन्त्र
- देवी का घटार्गल मन्त्र
- त्रिविध गन्धाष्टक
- देवी-देवताओं के हृदयङ्गम मन्त्र
- ब्रह्मादि अष्ट देवता
- अष्टभैरव
- अष्टसर्प
- अष्टमूर्ति
- अष्ट दिशायें
- अष्टवसु
- महादेवी के अष्टान्वित अष्ट पीठ
- अष्ट प्रकृति
- अष्ट विघ्न
- अष्ट वक्रतुण्ड

शब्दस्वरूपा जगन्माता कुण्डलिनी



- अष्ट सिद्धियाँ
- अष्ट नाग
- अग्नि की अष्ट मूर्तियाँ
- अष्टयम
- अष्टात्मक समस्त वस्तुयें

9. नवगुणित कुण्डलिनी

(अपने को 9 नागों में विभक्त करके अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति)

- नववर्णात्मक मन्त्र
- नव शक्तितत्त्व
- नव पीठशक्तियाँ
- नव रस
- नव रत्न
- नव दुर्गा
- नव प्राणदूती
- नव भण्डल
- नव कुण्ड
- नवग्रह आदि कोष्ठक नवसंख्यक समस्त वस्तुयें एवं सत्तायें

10. दशगुणित कुण्डलिनी

- गणपति के दक्षाक्षर मन्त्र
- त्वरिता के दशाक्षर मन्त्र
- सरस्वती के दशाक्षर मन्त्र
- यक्षिणी के दशाक्षर मन्त्र
- वासुदेव के दशाक्षर मन्त्र
- अश्वारूढा के दशाक्षर मन्त्र
- त्रिपुरा दशकूट
- त्रिपुरा दशाक्षर

शब्दब्रह्मस्वरूपा जगन्माता कुण्डलिनी



सृष्टिरूपा कुण्डलिनी
(सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)
(मन्त्रविग्रहा कुण्डलिनी)

- पद्मावती मन्त्र
- दशाक्षर रमामन्त्र
- दश शक्तियाँ
- दश नाड़ियाँ
- विष्णु के दशावतार
- दश लोकपाल
- दश की समष्टि वाले समस्त पदार्थ

11. एकादशगुणित कुण्डलिनी

- रुद्रैकादशनी
- सरस्वती के एकदशाक्षर मन्त्र
- एकादश रुद्र
- अन्य 11 समूह वाली वस्तुयें

12. द्वादशगुणित कुण्डलिनी

- महेशानी का नित्या मन्त्र
- वासुदेव का द्वादशाक्षर मन्त्र
- द्वादश राशियाँ
- द्वादश सूर्य
- समस्त द्वादशसमूह की वस्तुयें

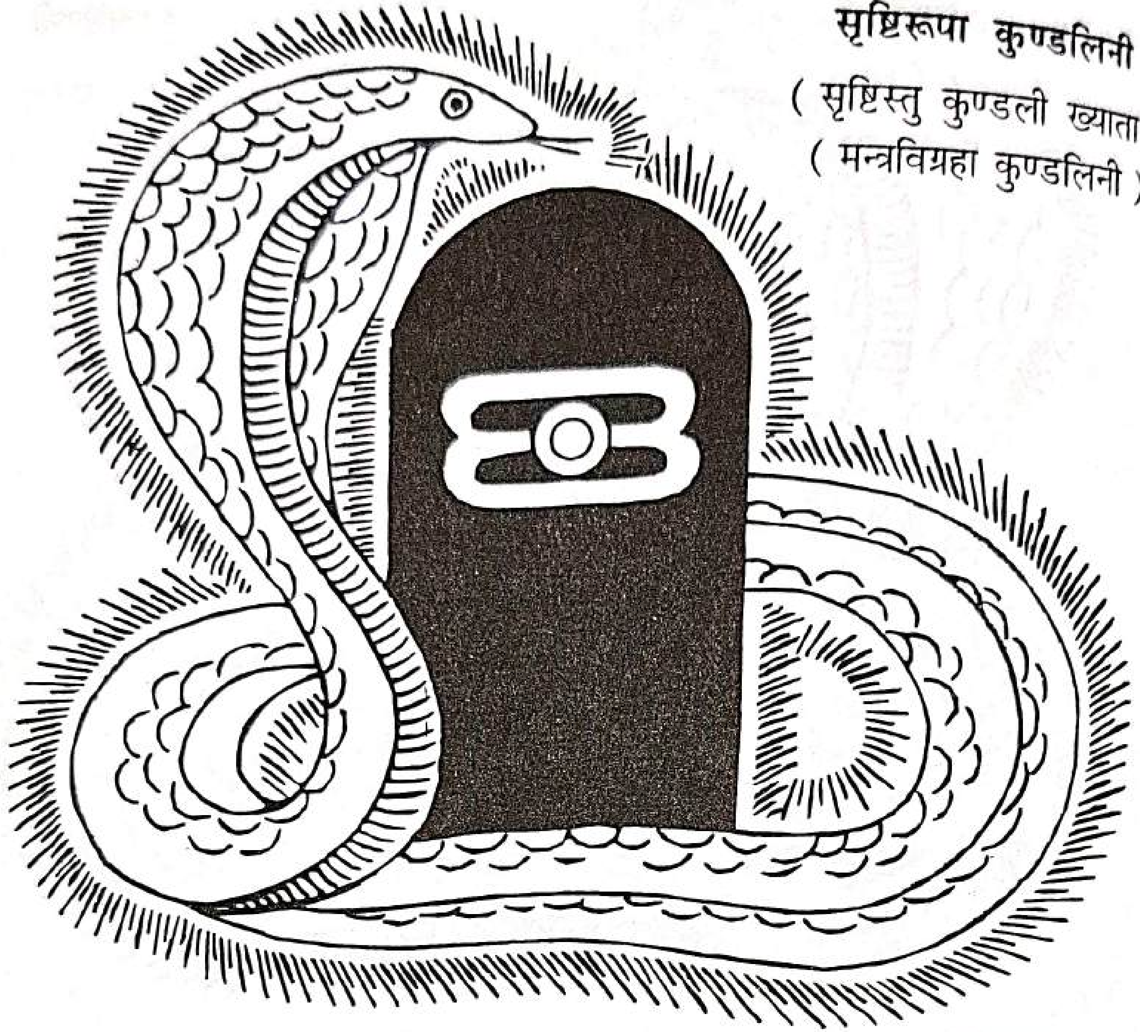
13. चतुर्विंशतिगुणित कुण्डलिनी

- सविता 14 अक्षरों का मन्त्र (गायत्री मन्त्र)
- शिव की मदनात्मिका गायत्री
- विष्णुगायत्री (पुरुषोनाम गायत्री)
- त्रिपुरा गायत्री
- दक्षिणामूर्ति गायत्री
- शम्भु-योषिता अम्बा की गायत्री एवं चतुर्विंशति समूह वाली समस्त वस्तुयें

शब्दब्रह्मस्वरूपा जगन्माता कुण्डलिनी

सृष्टिरूपा कुण्डलिनी

(सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)
(मन्त्रविग्रहा कुण्डलिनी)



14. द्वात्रिंशद्भेदगुणिता गायत्री

(32 भेदों में स्वस्वरूप को प्रकट करने वाली कुण्डलिनी का स्वरूप)

- मृत्युञ्जय मन्त्र
- नारसिंह मन्त्र
- महावरुण के लवणनामक मन्त्र
- महागणपति मन्त्र
- अन्नाधिप-मन्त्र
- दक्षिणामूर्ति मन्त्र
- मालामन्त्र
- मनोभुव-मन्त्र
- वनवासिनी का त्रिष्टुप् मन्त्र
- अघोर महामन्त्र
- भद्रकाली का मन्त्र
- लक्ष्मी के 2-2 मालामन्त्र
- श्रीकृष्ण का मन्त्र
- श्री पुरुषोत्तम का मन्त्र
- गोपालमन्त्र
- भूमिमन्त्र
- तारामन्त्र
- महालक्ष्मी का महामन्त्र
- भूतेश्वर का मन्त्र
- क्षेत्रपाल का मन्त्र
- त्रिपुरा का आपन्निवारण मन्त्र
- मातङ्गिनी विद्या
- कल्याणकारिणी सिद्धा विद्या
- 32 अक्षरों वाले समस्त मन्त्र या विद्यायें

इसी प्रकार शिव-वल्लभा भवगती कुण्डलिनी छत्तीस स्वरूप में प्रकट होकर शिव-सम्बद्ध छत्तीस तत्त्वों को प्रकट करती है तथा छत्तीस मन्त्रों को उत्पन्न करती है—

अनेन क्रमयोगेन गुणिता शिववल्लभा।
षट्त्रिंशतञ्च तत्त्वानां शैवानां रचयत्यसौ।। (शारदातिलक)

शब्दब्रह्मस्वरूपा एवं विश्वात्मिका जगन्माता कुण्डलिनी

सृष्टिकुण्डलिनी

(सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता)

(मन्त्रविग्रहा कुण्डलिनी)



षट्त्रिंशतञ्च तत्त्वानां शैवानां रचयत्यसौ। (शक्ति → छत्तीस तत्त्वों की रचना)

शक्ति → ध्वनि → नाद → निरोधिका → अर्द्धेन्दु → बिन्दु → परा वाक् → पश्यन्ती वाक् → मध्यमा वाक् → वैखरी वाक्।

शक्ति से नाद उत्पन्न हुआ या कि बिन्द्वात्मक शिव से नाद उत्पन्न हुआ? शारदा-

1. जाता वर्णा यतो बिन्दोः शिवशक्तिमयादतः। (शारदातिलक-1.113)

तिलककार दोनों का प्रतिपादन करते हैं। 'आसीच्छक्तिस्ततो नादः नादात् बिन्दुसमुद्भवः' भी कहा गया है और यह भी कहा गया है कि 'बिन्दोर्नादसमुद्भवः समुदिते नादे जगत्कारणम्' (25.61) अर्थात् बिन्दुरूप शिवात्मा से नाद उत्पन्न हुआ और नाद उत्पन्न होने पर वह जगत् का कारणभूत तत्त्व बना।

अकार, उकार एवं मकाररूप होने से पिण्ड (प्रणव) सकलान्तरात्मा कुण्डलिनी है। शिवात्मा, सकलान्तरात्मा शिव उसके स्थान हैं। उन दोनों का मिश्रित स्वरूप बिन्दु है। यह अनन्त कान्ति-सम्पन्न है; अतः योगियों को शिव-शक्त्यात्मक उस बिन्दु को प्राप्त करना चाहिए—

पिण्डं भवेत् कुण्डलिनी शिवात्मा पदं तु हंसः सकलान्तरात्मा।

पतिव्रता कुण्डलिनी का ध्यान—मूलाधार से उठी हुई जाग्रत्स्वरूपा, चमकती बिजली के समान सुषुम्णा में प्रविष्ट, षट्चक्रों का वेधन करके ब्रह्मरन्ध्रस्थ चन्द्रमण्डल से स्रवित अमृत से शिवरूप पति की पूजा करके प्रत्यावर्तित कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए—

व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघप्लुतम् ।
सम्भाव्य स्वगृहं गतां पुनरिमां सञ्चिन्तयेत् कुण्डलीम्।।[1]

समस्त जगत् की जननी-स्वरूपा जो कुण्डलिनी अपने मूलाधार से निकलकर 'हंस' का जप करते हुए जीव को हाथ से लेकर शम्भुनिकेतन (सहस्रार) में जाती है और पुनः उनके साथ परमानन्दानुभूति के बाद स्वाश्रय मूलाधार में प्रवेश कर जाती है, ऐसी जगन्मोहिनी एवं कोटि सूर्य के समान प्रकाशित कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए—

याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनाऽनुभूय स्वयं
यान्ती स्वाश्रयमर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी।

कुण्डलिनी का वर्ण करोड़ों बिजली की कान्ति के समान है, प्रस्फुटित जपाकुसुम (लाल रंग वाला) के समान है, सिन्दूर के समान या सन्ध्या के समान है, आनन्द-सुधास्वरूपा है और परा देवता है—

सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवं प्राप्तां परां देवताम्।[2]

उस परादेवता का स्वरूप क्या है? लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं—

आधार-स्थित-शक्ति-बिन्दु-निलयां नीवारशूकोपमां
नित्यानन्दमयीं गलत्परसुधावर्षैः प्रबोधप्रदैः।
सिक्त्वा षट्सरसीरुहाणि विधिवत्कोदण्डमध्योदितं
ध्यायेद् भास्वरबन्धुजीवरुचिरां संविन्मयीं देवताम्।।[3]

1. शारदातिलक-25.64
2. शारदातिलक-25.65
3. शारदातिलक

(कोदण्डमध्य = भ्रू-मध्य। आधारस्थित शक्ति = त्रिकोण और तत्रस्थ कामबीज, शक्तिबीज)।

वह नादरूपा, अक्षररूपा, संविन्मयी और तेजस्वरूपा है। वह शिव को अमृत से सींचती है। वह वर्णजननी है—

नादाख्यं पदमर्धचन्द्रकुटिलं संविन्मयं शाश्वतं
यान्तीमक्षररूपिणीं विमलधीर्ध्यायेद् विभुं तेजसाम्।
सिञ्चन्तीममृतेन देवममितेनानन्दयन्तीं तनुम्
वर्णानां जननी तदीयवपुषा सम्प्राप्य विश्वं स्थितां
ध्यायेत् सम्यगनाकुलेन मनसा संविन्मयीमम्बिकाम्।।

वह विश्व का मूल है—विश्वैकमूलमनिशम्।[1]

सनत्कुमारसंहितोक्त रहस्य—समयाचारी शाक्तों के सिद्धान्त-ग्रन्थ सनत्कुमारसंहिता में कहा गया है कि—

- देवयान एवं पितृयान के प्रतिनिधि इड़ा मार्ग एवं पिंगला-मार्ग से चन्द्रमा एवं सूर्य अहोरात्र सञ्चरण करते रहते हैं।

- चन्द्रमा वाम नाड़ी के द्वारा सञ्चरण करता हुआ 72000 नाड़ियों के नाड़ीमार्ग को सींचता है।

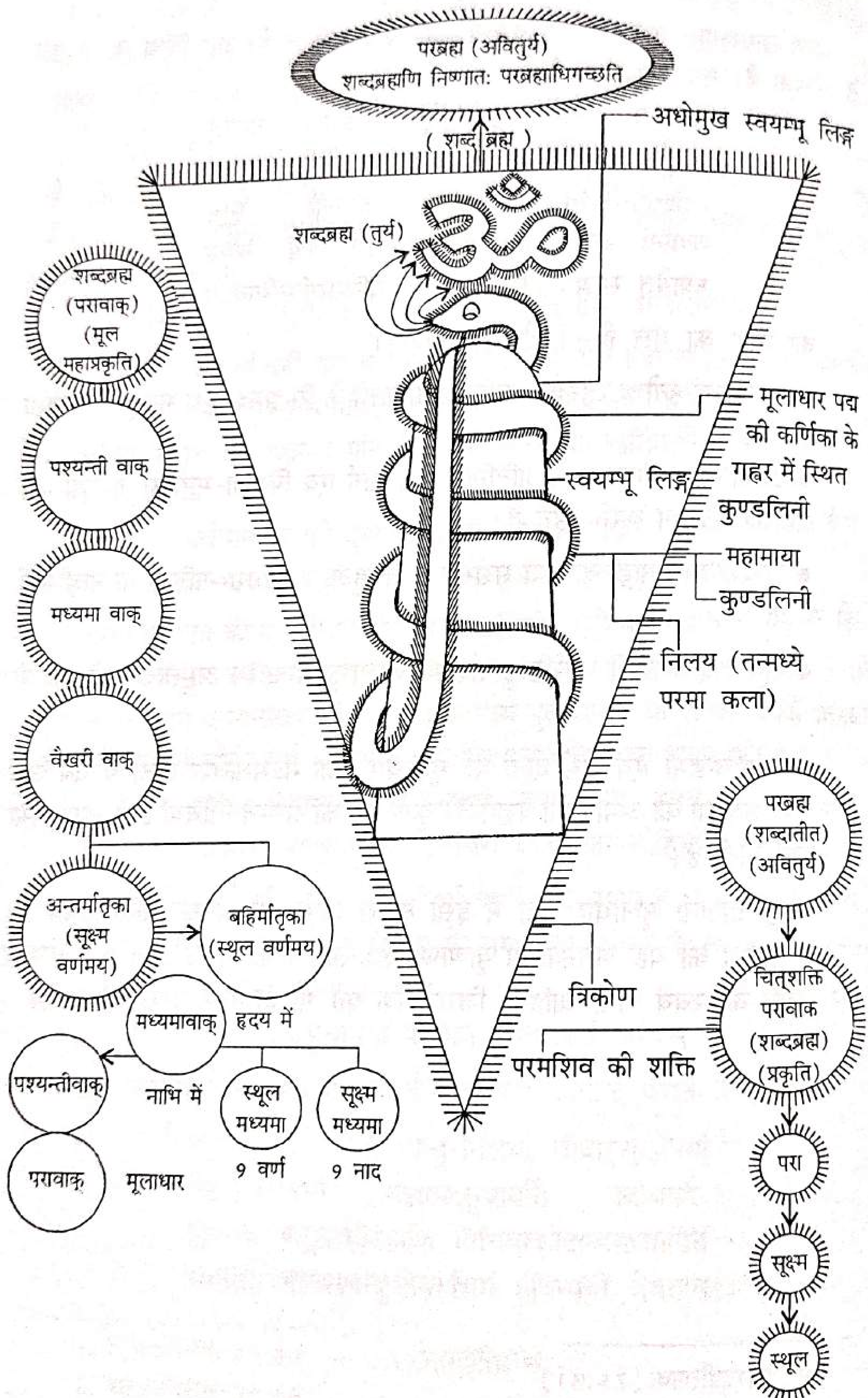
- सूर्य दक्षिण नाड़ी मार्ग द्वारा सञ्चरण करता हुआ क्षरित अमृतबिन्दुओं को पी जाता है।

- जब चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों का मूलाधार चक्र में समावेश होता है तब उस काल एवं अवस्था को अमावस्या कहते हैं। कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ इसी अमावस्या से उत्पन्न होती हैं।

- कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में इसी क्षरित अमृत को पीकर सोती रहती है। उसकी सुषुप्ति की यह अवस्था ही कृष्णपक्ष है। साधक को कुण्डलिनी को जगाकर इस अमृत को स्वयं पीना चाहिए, जिससे कि वह भी अमरत्व प्राप्त कर सके।

---

1. शारदातिलक (25.81)

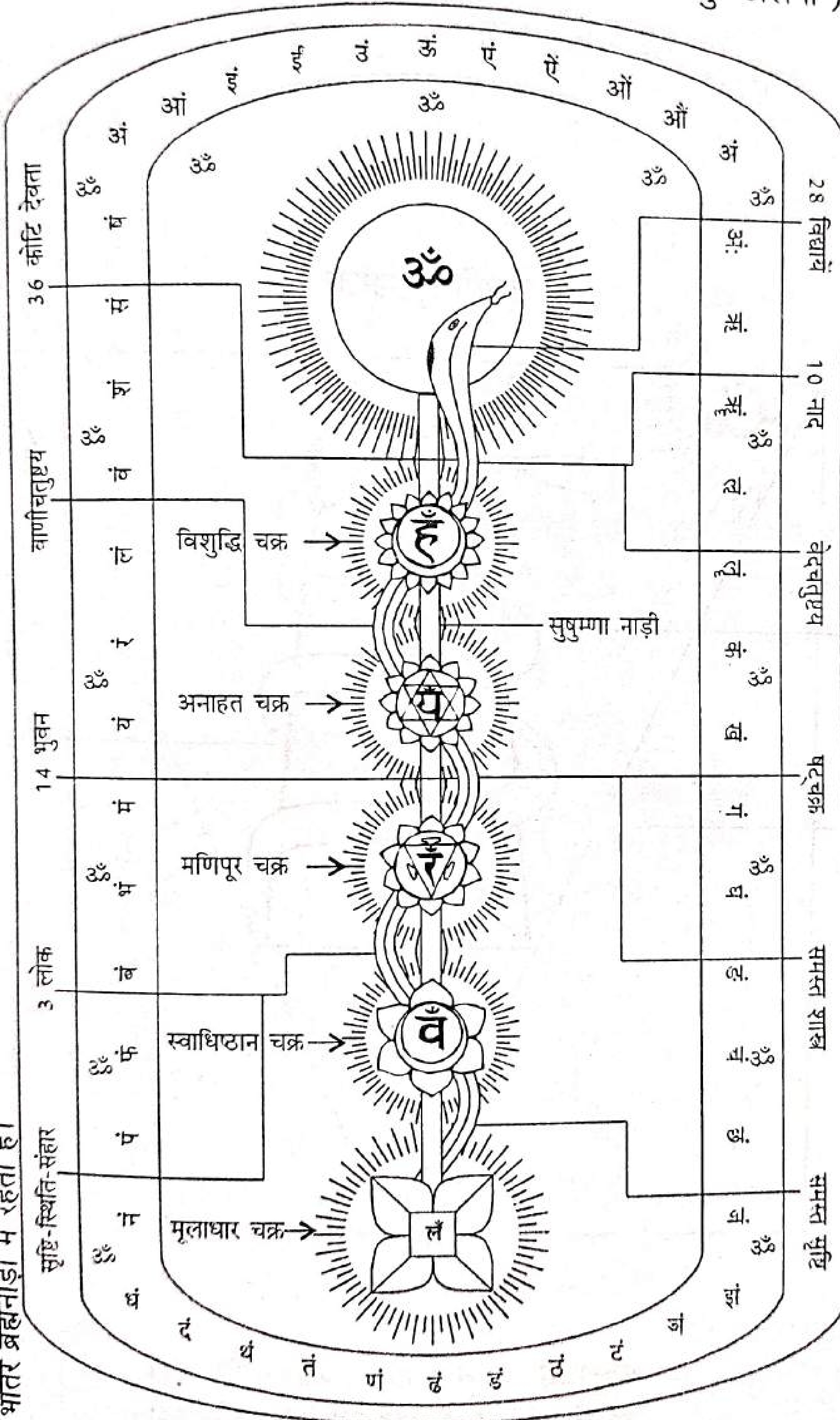


परब्रह्म (अवितुर्य)
शब्दब्रह्मणि निष्णात: परब्रह्माधिगच्छति
(शब्दब्रह्म)
अधोमुख स्वयम्भू लिङ्ग
शब्दब्रह्म (तुर्य)
शब्दब्रह्म (परावाक्) (मूल महाप्रकृति)
पश्यन्ती वाक्
मध्यमा वाक्
वैखरी वाक्
मूलाधार पद्म की कर्णिका के गह्वर में स्थित कुण्डलिनी
स्वयम्भू लिङ्ग
महामाया
कुण्डलिनी
निलय (तन्मध्ये परमा कला)
अन्तर्मातृका (सूक्ष्म वर्णमय)
बहिर्मातृका (स्थूल वर्णमय)
मध्यमावाक्
हृदय में
पश्यन्तीवाक्
नाभि में
स्थूल मध्यमा
सूक्ष्म मध्यमा
9 वर्ण
9 नाद
परावाक्
मूलाधार
त्रिकोण
परमशिव की शक्ति
परब्रह्म (शब्दातीत) (अवितुर्य)
चित्शक्ति परावाक (शब्दब्रह्म) (प्रकृति)
परा
सूक्ष्म
स्थूल

भगवती कुण्डलिनी अक्षरात्मिका, शब्दात्मिका, नादात्मा, वर्णमालास्वरूपा एवं शब्दब्रह्म है। वही परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी भी है। समस्त ध्वनियाँ, समस्त वर्ण, समस्त अक्षर भवगती कुण्डलिनी के ही अपने रूप हैं।

वर्णस्वरूपा भगवती कुण्डलिनी

(वर्णात्मिका, नादात्मा, शब्दव्रह्मस्वरूपा एवं वर्णशरीरी कुण्डलिनी)



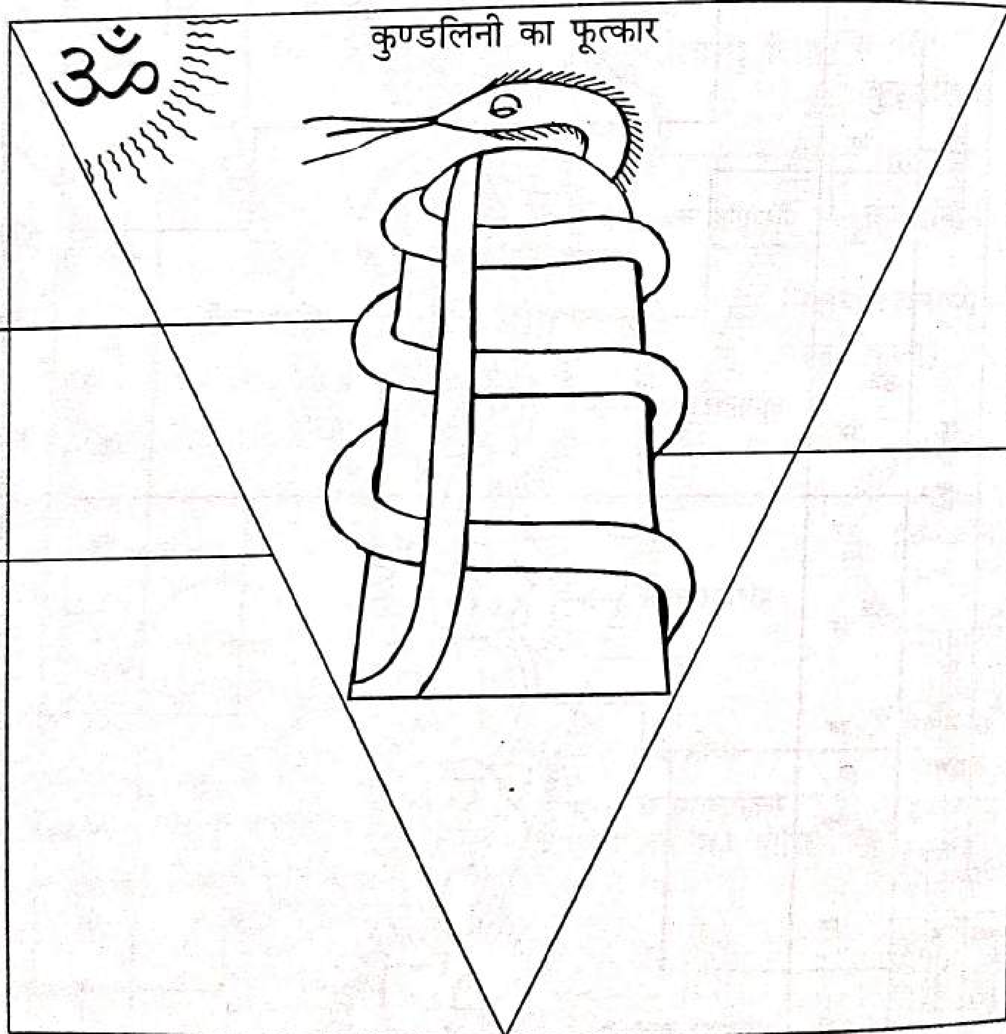
भगवती कुण्डलिनी का यात्रा-पथ ब्रह्मद्वार सुषुम्णा नाड़ी है। वह सुषुम्णा के भीतर वज्रा, वज्रा के भीतर चित्रा एवं उसके भीतर ब्रह्मनाड़ी में रहती है।

कुमारी कुण्डलिनी

कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते। यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्या सर्पात्मकत्वात्। सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति। (लक्ष्मीधर)

प्राणापान
का आघात
↓
कुण्डलिनी
का
जागरण
↓
फूत्कार

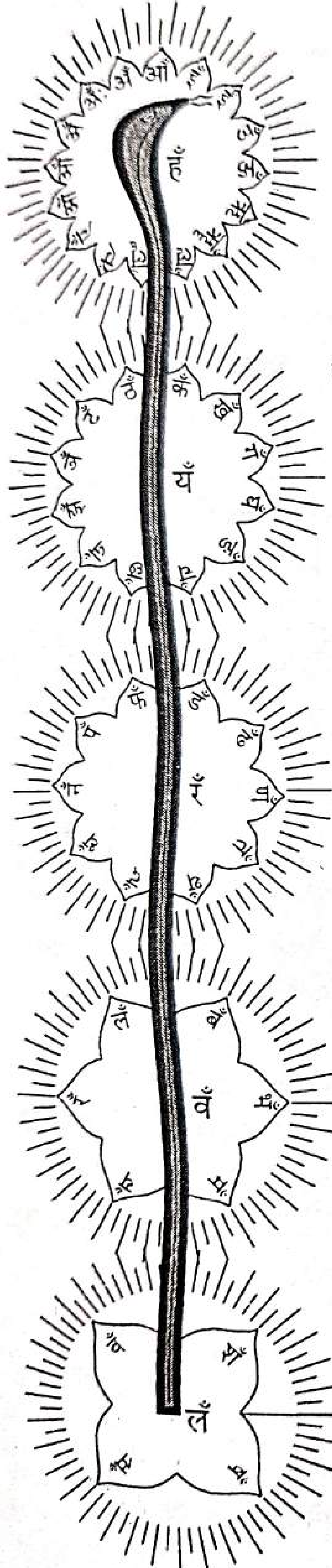
कुमारी कुण्डलिनी



यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषित्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति।। (वेद)

युवती कुण्डलिनी

(योषित् कुण्डलिनी)



यद्योषित् यस्मिन् चक्रे कुलयोषित्
विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा रातीति।

(लक्ष्मीधर)

खण्डत्रय—

1. मूलाधार + स्वाधिष्ठान (प्रथम खण्ड)
2. मणिपूरक + अनाहत (द्वितीय खण्ड)
3. विशुद्धाख्य + आज्ञा (तृतीय खण्ड)

खण्ड एवं ग्रन्थि—

1. प्रथम खण्ड के ऊपर अग्निस्थान है। यही रुद्रग्रन्थि है।
2. द्वितीय खण्ड के ऊपर सूर्यस्थान है। यही विष्णुग्रन्थि है।
3. तृतीय खण्ड के ऊपर चन्द्रस्थान है। यही ब्रह्मग्रन्थि है।

(लक्ष्मीधर)

ललितासहस्रनाम की दृष्टि—

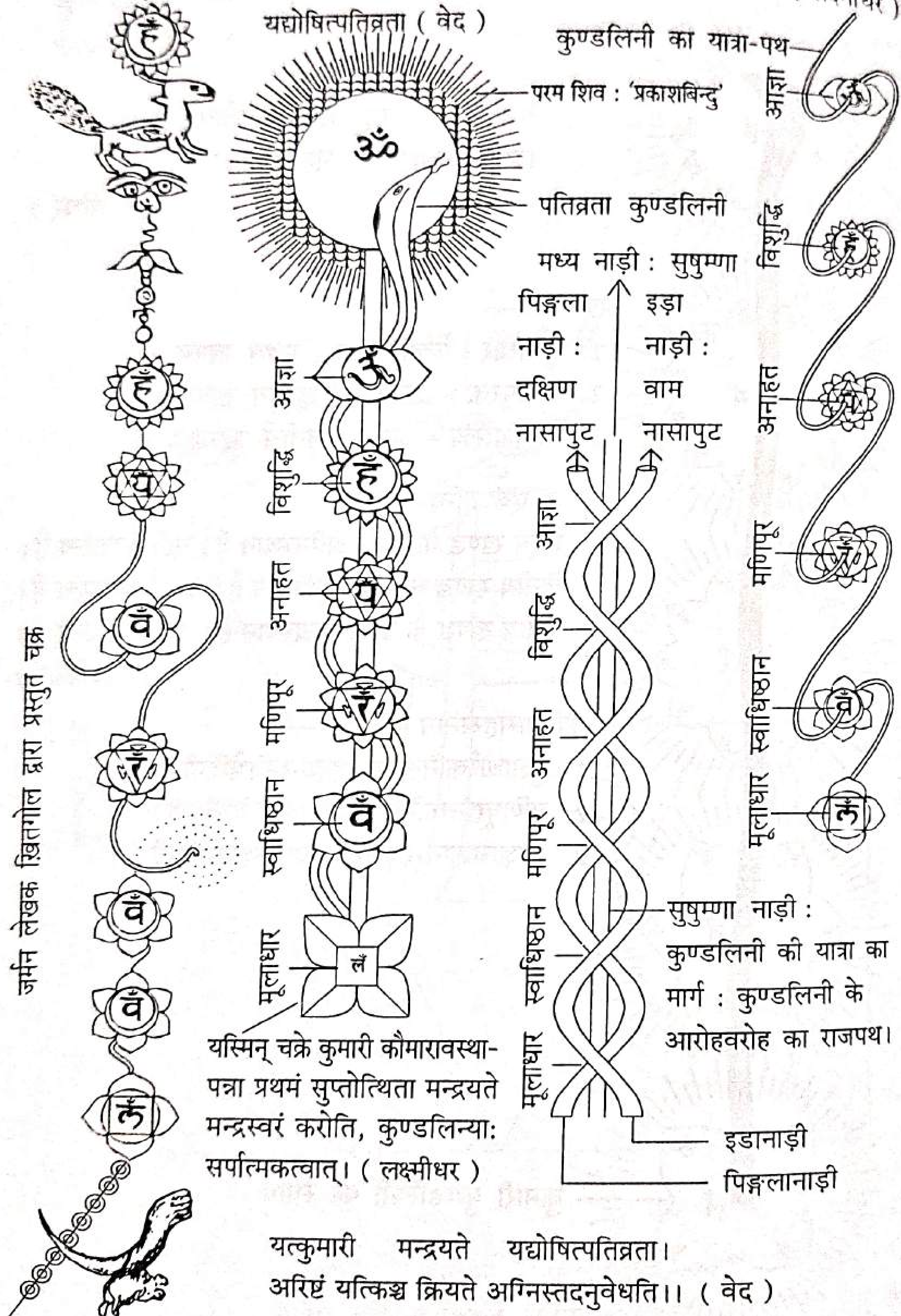
1. मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी।
2. मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी।
3. आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी।

कुमारी कुण्डलिनी का स्थान

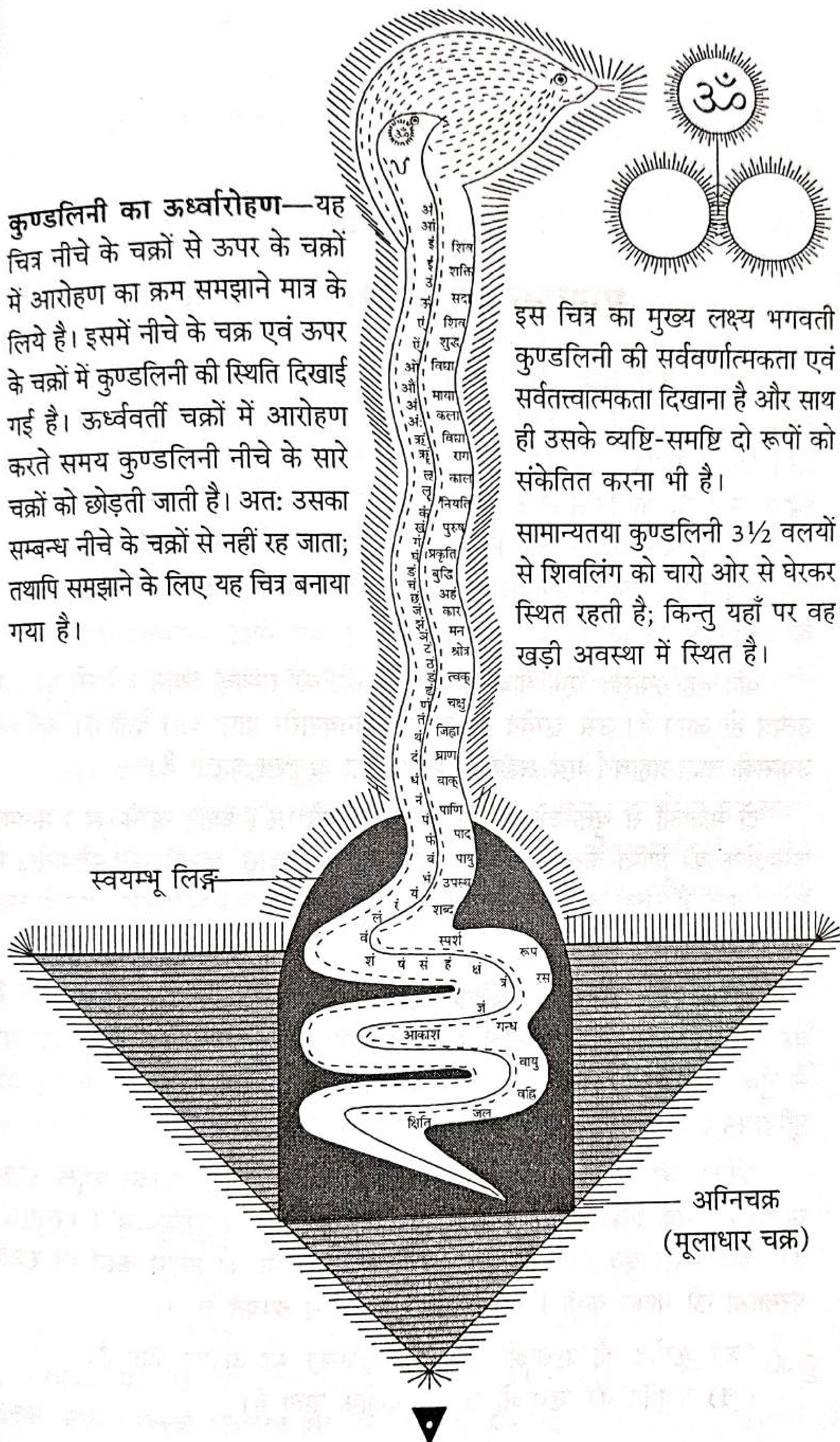
पतिव्रता कुण्डलिनी

पतिव्रता कुण्डलिनी और यात्रा-पथ—

यद्यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्रदलकमले विहरमाणा। (लक्ष्मीधर)



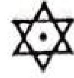
यत्कुमारी मन्द्रयते यद्योषित्पतिव्रता।
अरिष्टं यत्किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति।। (वेद)



कुण्डलिनी का ऊर्ध्वारोहण—यह चित्र नीचे के चक्रों से ऊपर के चक्रों में आरोहण का क्रम समझाने मात्र के लिये है। इसमें नीचे के चक्र एवं ऊपर के चक्रों में कुण्डलिनी की स्थिति दिखाई गई है। ऊर्ध्ववर्ती चक्रों में आरोहण करते समय कुण्डलिनी नीचे के सारे चक्रों को छोड़ती जाती है। अत: उसका सम्बन्ध नीचे के चक्रों से नहीं रह जाता; तथापि समझाने के लिए यह चित्र बनाया गया है।

इस चित्र का मुख्य लक्ष्य भगवती कुण्डलिनी की सर्ववर्णात्मकता एवं सर्वतत्त्वात्मकता दिखाना है और साथ ही उसके व्यष्टि-समष्टि दो रूपों को संकेतित करना भी है।

सामान्यतया कुण्डलिनी 3½ वलयों से शिवलिंग को चारो ओर से घेरकर स्थित रहती है; किन्तु यहाँ पर वह खड़ी अवस्था में स्थित है।



दशम अध्याय

प्रणवतत्त्व और शक्ति-साधना

प्रणवोपासना शक्ति की साधना—ॐ ब्रह्म है और सर्वोच्च शक्ति है; अतः उसकी साधना से अधिक शक्ति की अन्य साधना क्या हो सकती है? शिवि के पुत्र सत्यकाम ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा—जो व्यक्ति मृत्युपर्यन्त ओंकार का सम्यक् ध्यान करता है, वह किस लोक में विजय प्राप्त करता है? (कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति)? पिप्पलाद ने कहा कि—ओंकार परब्रह्म और अपर ब्रह्म दोनों है; अतः ऐसा विद्वान् इस एक ही प्रणवालम्बनमात्र से पर या अपर एक ही ब्रह्म का अनुसरण करता है।

यदि वह उपासक एक मात्रा से युक्त ओंकार का सम्यक् ध्यान करे तो पृथ्वी में उत्पन्न हो जाता है। उसे ऋग्वेद की ऋचायें मानवशरीर प्राप्त करा देती हैं। वहाँ वह उपासक तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा से महिमा का अनुभव करता है।

दो मात्राओं से युक्त ओंकार की उपासना करने पर (ध्यान करने पर) मनोमय चन्द्रलोक की प्राप्ति करता है। वह यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा अन्तरिक्षस्थ सोमलोक ले जाया जाता है। वहाँ वह चन्द्रलोक के ऐश्वर्यों का भोग करके पुनः इस लोक में लौट आता है।

जो तीन मात्राओं से युक्त ओंकार द्वारा परम पुरुष का निरन्तर ध्यान करता है, वह तेजोमय सूर्यलोक प्राप्त करता है और (केंचुली से युक्त सर्प की भाँति) वह पापों से मुक्त हो जाता है और सामवेद की श्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक ले जाया जाता है और पुरिशयम् (अन्तर्यामी) पुरुष (पुरुषोत्तम) को प्राप्त कर लेता है।

ओंकार की अ, उ, म मात्राओं को एक-दूसरे से संयुक्त रखकर प्रयुक्त ओंकार या पृथक्-पृथक् एक-एक ध्येय के चिन्तन में प्रयुक्त ओंकार 'मृत्युमत्य' (मृत्युयुक्त) है। बाहर-भीतर एवं मध्य की क्रियाओं में इन मात्राओं का प्रयोग करने पर साधक परमात्मा को पाकर कभी विचलित नहीं होता (न कम्पते ज्ञः)।

(क) ऋग्वेद की ऋचाओं से—ओंकारोपासक मानवलोक पाता है।
(ख) यजुर्वेद की ऋचाओं से—चन्द्रलोक पाता है।

(ग) सामवेद की ऋचाओं से—ब्रह्मलोक पाता है।

ऋग्भिरेतं यजुभिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तद्दान्तमजरममृतमभयं परं चेति।

(प्रश्नोपनिषद्)

ॐकार (प्रणव) या उद्गीथ नादब्रह्म या ॐ ही सूर्य हैं। वे निरन्तर रव करने के कारण ही रवि कहे जाते हैं।

त्रयी विद्या ने उद्गीथ को आच्छादित कर रखा है (छान्दोग्योपनिषद-1.4.1-5)। इसके बाहर मृत्यु-राज्य है। देवों ने मृत्युभय से वेद की शरण ली और अपने को छन्दों से आच्छादित कर लिया। मृत्यु ने उन्हें देख लिया। अत: देवों ने नाद का आश्रय ग्रहण किया। यह अभय-अमर पद है। उद्गीथ ही सूर्य है। वे सदैव नाद किया करते हैं।

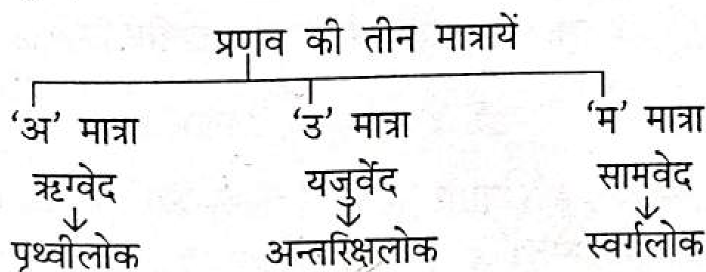
प्रणवस्वरूप सूर्य की अवस्थायें—

1. प्रथमावस्था—इसमें रश्मिमाला चतुर्दिक विकीर्ण है। यह सूर्य की सृष्ट्योन्मुखी अवस्था है।

2. द्वितीयावस्था—इसमें समस्त रश्मियाँ संहृत होकर मध्यबिन्दु में विलीन हो गई हैं (यही अवस्था प्रणव की शुद्धावस्था या कैवल्यावस्था है)। इसके उपासक ऋषि कौषीतक हैं।

प्रणव (उद्गीथ) ही अधिदेवरूप में सूर्य हैं। ये ही प्राण हैं। यह ओंकार ही पर + अपर ब्रह्म है (प्रश्नोपनिषद्)। सूर्य ब्रह्माण्ड का द्वार है। इस द्वार का भेदन कर सकने पर ही सत्यलोक की प्राप्ति सम्भव है। हृदय से चतुर्दिक असंख्य नाड़ियाँ (मार्ग) फैली हुए हैं। इनमें एक मूर्द्धा की ओर गया हुआ सूक्ष्म मार्ग है। इसी मार्ग से जाने पर सूर्य-द्वार अतिक्रान्त किया जा सकता है; अन्यथा नहीं।

ऋग्वेंद भूलोक पहुँचाता है, यजुर्वेद अन्तरिक्ष लोक पहुँचाता है एवं सामवेद स्वर्ग लोक पहुँचाता है (प्रश्नोपनिषद्); किन्तु बाद में इन लोकों से पुनरावर्तन होता है। अत: ये त्रयी की समस्त ऋचायें अमृतपद तक ही नहीं पहुँचाती। केवल ओंकार ही पहुँचाता है, किन्तु इसकी तीन मात्रायें नहीं।



ओंकार की 'अ' 'उ' एवं 'म' पृथक्-पृथक् मात्रायें मृत्यु-प्रदायिका हैं; किन्तु इनकी एकीभूतावस्था अजरत्व-अमरत्व-प्रदायिका है।

वेदत्रय को घनीभूत करने के अनन्तर ही ॐकार के ऐक्य का स्फुरण होता है। उसके द्वारा परमेश्वर का अभिध्यान होता है। ॐकार वेदों का घनीभूत प्रकाश है। सूर्य प्रणव का बाह्य विकास है। वेदत्रय सूर्य है।

गोरक्षोक्त ओंकारोपासना—ओंकारोपासना की विधि निम्नानुसार है—

- पद्मासन लगाकर दृढ़ आसन से बैठना चाहिए।
- शरीर, कण्ठ एवं सिर को एक सूत्र में रखना चाहिए।
- नासा के अग्र भाग पर दृष्टि एकाग्र करनी चाहिए।
- इसके बाद ओंकार का जप करना चाहिए—

पद्मासनं समारूह्य समकायशिरोधरः।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम्।।

ओंकारोपासना की अनेक विधियाँ हैं।

गोरक्षनाथ की दृष्टि में ॐ का स्वरूप—

- जिसमें भूः, भुवः एवं स्वः तीनों लोक स्थित हैं।
- जिसमें चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि तीन देवता स्थित हैं।
- जिसमें अ, उ, म एवं बिन्दु स्थित हैं।
- जिसमें भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान कालत्रय स्थित हैं।
- जिसमें पृथ्वी, पाताल एवं स्वर्ग लोकत्रय स्थित हैं।
- जिसमें ऋक्, यजुः एवं साम वेदत्रयी स्थित हैं।
- जिसमें उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित स्वरत्रय स्थित हैं।
- जिसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश देवत्रय स्थित हैं; वही ओंकार है, वही परम ज्योतिस्वरूप प्रणव (उद्गीथ) है।

गोरक्षनाथजी ने पृथक् से यह भी कहा है कि वाणी के द्वारा जिस विश्वबीज का जप किया जाना चाहिए, शरीर के द्वारा जिस परम ज्योति का अभ्यास किया जाना चाहिए, मन के द्वारा जिस परमाक्षर का सततानुचिन्तन किया जाना चाहिए, वही परम ज्योति-स्वरूप ओंकार है—

वचसा यज्जपेद् बीजं वपुषा यत्समभ्यसेत्।
मनसा यत्स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति।।

ॐकारजप के अवयव

1. शरीर का योग हो (शरीर को स्थिर करके और पद्मासन लगाकर साधना की जाय) वपुषा यत्समभ्यसेत्।

2. वाणी का योग हो (भ्रामरी जप के विधान से गुञ्जन करते हुए और उससे सम्पूर्ण शरीर को झंकृत करते हुए जप करना चाहिए)। वचसा यज्जपेद् बीजम्।

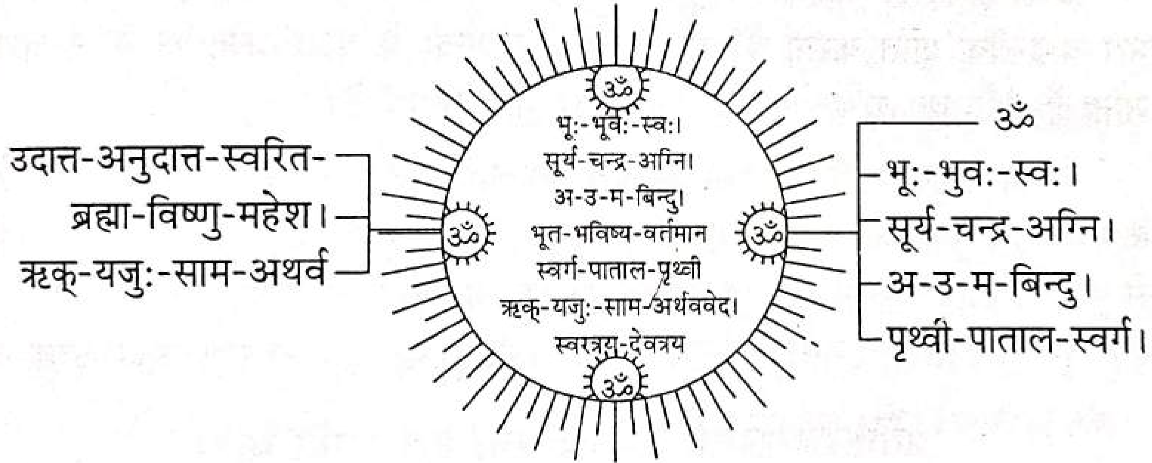
3. मन का योग हो (वाणी-प्राण एवं मन तीनों को एकीभूत करके ॐकार का एकनिष्ठ चिन्तन करते हुए जप करना चाहिए, ॐकार का स्मरण करना चाहिए अर्थात् तज्जपस्तदर्थभावनम् (योगसूत्र) का पालन करना चाहिए।

4. ओंकारोपासना का कोई निश्चित उपासना-काल नहीं है और न तो निश्चित जप-संख्या है; क्योंकि 'स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति'।[1]

5. सन्ध्यादिक वैदिक पूजा-पाठ के लिए जो स्नानादिक करने एवं पवित्र होने का विधान है, वह प्रणवोपासना में नहीं है।

चाहे साधक पवित्र हो और चाहे अपवित्र; वह सभी शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं में ओंकारोपासना कर सकता है। वैदिक अनुष्ठान में तो विना पवित्र हुए पूजा करने से पाप लगता है; किन्तु ओंकारोपासना में यह भी नहीं है और साथ ही इसके विपरीत उसके पूर्व पाप भी नष्ट होते जाते हैं—

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि जपेदोङ्कारमव्ययम्।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।[2]



ओंकार और उसकी महिमा

तैत्तिरीयोपनिषद् की दृष्टि—

- ॐ ही ब्रह्म है—ओमिति ब्रह्म।
- ॐ ही यह समस्त जगत् है ओमितीदं सर्वम्।
- ॐ अक्षर ही अनुकृति है—ओमित्येतदनुकृति:।
- ॐ कहकर आचार्य उपदेश देते हैं।
- ॐ कहकर सामवेदी सामगान करते हैं।
- 'ओम शोम्' ऐसा कहकर मन्त्रों को (मान्त्रिक) पढ़ते हैं।
- 'ओम्' ऐसा कहकर अध्वर्यु नामक ऋत्विक् प्रतिगर नामक मन्त्र पढ़ते हैं।

1. गोरक्षनाथ : योगमार्तण्ड
2. योगमार्तण्ड/गोरक्षशतक (गोरक्षनाथ)

- 'ओम्' कहकर ब्रह्मा अनुमति प्रदान करता है।
- 'ओम्' कहकर अग्निहोत्र करने की आज्ञा देता है।
- अध्ययनोद्यत ब्राह्मण 'ओम्' कहकर कहता है कि मैं वेद को प्राप्त करूँ।
- 'ॐ' कहकर निश्चय ही वह उसे प्राप्त कर लेता है।[1]

प्रश्नोपनिषद् की दृष्टि—शिविपुत्र सत्यकाम ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा कि मृत्युपर्यन्त सतत् ओंकार के ध्याता को किस लोक की प्राप्ति होती है? महर्षि पिप्पलाद ने उसका उत्तर इस प्रकार दिया—

- ओंकार परब्रह्म एवं अपर ब्रह्म है। इस प्रकार के रहस्यज्ञाता विद्वान् अपर-परब्रह्म में से एक का अनुसरण करता है।

- वह उपासक यदि एक माया से युक्त ओंकार का सम्यक् ध्यान करे तो पृथ्वी में उत्पन्न होता है। ऋग्वेद की ऋचायें उसे मानवशरीर प्राप्त करा देती हैं। वह उपासक तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा से युक्त होकर महिमा की अनुभूति करता है।

- यदि वह दो मात्राओं से युक्त ओंकार का सम्यक् ध्यान करता है तो वह मनोमय चन्द्रलोक प्राप्त करता है। वह यजुर्वेद के मन्त्रों के द्वारा अन्तरिक्ष में ले जाया जाता है और वह चन्द्रलोक के ऐश्वर्यों का भोग करता है।

- जो उपासक तीन मात्राओं से युक्त ॐ का सम्यक् ध्यान करता है (ओम् के रूप में परम पुरुष का ध्यान करता है), वह तेजोमय सूर्यलोक में जाता है। वह पापों से मुक्त हो जाता है और सामवेद की श्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक ले जाया जाता है। वह पुरिशयं पुरुषं (शरीररूप नगर के निवासी अन्तर्यामी पुरुषोत्तम) का साक्षात्कार करता है।

ओंकारापासना की विधियाँ एवं उनके फल

एक मात्रा से ॐ की उपासना—ओंकार की अ, उ, म—इन तीन मात्राओं में से केवल एक मात्रा से युक्त ओंकार का अभिध्यान पृथ्वी लोक में जन्म होता है, उसे ऋग्वेद की ऋचाओं द्वारा उसे मानवदेह की प्राप्ति होती है एवं वह उपासक तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा द्वारा महिमा (ऐश्वर्यों) का उपभोग करता है।

दो मात्राओं से युक्त ॐ की उपासना करने से जीव को मनोमय चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा वह चन्द्रलोक ले जाया जाता है। वह वहाँ चन्द्र-लोक के ऐश्वर्यों का भोग करता है एवं पुनः इस लोक में लौट आता है।

तीन मात्राओं से युक्त ओंकार की उपासना (अभिध्यान) करने से तेजोमय सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है, सामवेद की ऋचाओं द्वारा वह ब्रह्मलोक ले जाया जाता है एवं वहाँ पर वह परम पुरुष का दर्शन करता है।

---

1. तैत्तिरीय उपनिषद् (वल्ली 1-अनुवाक 8)

विशेष ध्यातव्य—ओंकार की तीनों मात्रायें (अ, उ, म) एक-दूसरी से संयुक्त रहकर प्रयुक्त की गई हों या पृथक्-पृथक् एक-एक ध्येय के चिन्तन में इनका प्रयोग किया गया हो, दोनों प्रकार से मृत्युयुक्त हैं—

तिस्रो मात्रा मृत्युयुक्तः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।

औचित्य यह है कि बाहर, भीतर एवं मध्य की क्रियाओं में यदि मात्राओं का प्रयोग किया जाय, तो वह ज्ञानी विचलित नहीं हो पाता।

माण्डूक्योपनिषद् की दृष्टि—

- ओम् अक्षर (अविनाशी परमात्मा) है—ओमित्येतदक्षरम्।
- समस्त जगत् उस ओम् का उपव्याख्यान है (उसी की निकटता महिमा का द्योतक है)—इदम् सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।
- वर्त्तमान और भविष्यत् यह सब का सब जगत् ओंकार है—भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।
- जो ऊपर कहे हुए त्रिकालातीत दूसरा कोई तत्त्व है, वह भी ओंकार ही है—यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।
- यह सबका सब ब्रह्म है। यह परमात्मा ब्रह्म है। वह यह परमात्मा (आत्मा)' चार चरणों वाला है—सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्।

परमात्मा और प्रणव की एकता—जिस परमात्मा को चतुष्पाद कहा गया है, यह आत्मा उसके वाचक प्रणव के प्रकरण में वर्णित होने से तीन मात्राओं से युक्त ओंकार है। 'अ' 'उ' एवं 'म' मात्रायें ही तीन पाद हैं। उस ब्रह्म के तीन पाद ही तीन मात्रायें हैं—'सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रामात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।'

परमात्मा के पाद	ओंकार की मात्राये
1. जागरित स्थान। बहिष्प्रज्ञ। सप्तांग। एकोनविंशतिमुख। स्थूलभुक्। वैश्वानर नामक प्रथम पाद।	'अ' वैश्वानरात्मक है। (मन्त्र-9)
2. स्वप्न स्थान। अन्तःप्रज्ञ। सप्तांग। एकोनविंशतिमुख। प्रविविक्तभुक्। तैजस नामक द्वितीय पाद।	'उ' तैजसात्मक है (मन्त्र-10)
3. असुप्त। भोगविरक्त। स्वप्न न देखने वाला। सुषुप्ति अवस्था वाला। सुषुप्त्यवस्था। एकीभूत। प्रज्ञानघन। आनन्दमय। आनन्दभुक्। चेतोमुख। प्राज्ञ नामक तृतीय पाद।	'म' प्राज्ञात्मक है। (मन्त्र-11)
4. अन्तःप्रज्ञ-बहिष्प्रज्ञ-उभयप्रज्ञ—तीनों से अतीत। प्रज्ञ-अप्रज्ञ—दोनों से अतीत। अदृष्ट-अव्यवहार्य-अग्राह्य-अलक्षण-अचिन्त्य-अव्यपदेश्य-एकात्मप्रत्यायसार-प्रपञ्चोपशम-शान्त-	मात्राशून्य प्रणव ही अव्यहार्य, प्रपञ्चोपशम, शिव, अद्वैत, पूर्ण ब्रह्म का चतुर्थ पाद है।

परमात्मा के पाद	ओंकार की मात्रायें
शिव-अद्वैत-चतुर्थ (परब्रह्म) ही चतुर्थ पाद है और चतुर्थ पाद आत्मा (परमात्मा) है—'अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षण-मचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।'	वह आत्मा द्वारा आत्मा (परमात्मा) में प्रवेश कर जाता है। (मन्त्र 12)

गुरु गोरक्षनाथ की ओंकारसम्बधिनी दृष्टि—गुरु गोरक्षनाथ ओंकार को सृष्टि का मूल तत्त्व मानते हैं। वे कहते हैं कि अनाहत नाद (ॐकार) इतना व्यापक है कि इसी में ब्रह्मा, विष्णु, शिव—त्रिदेव निवास करते हैं। इतना ही नहीं, जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ 'निर्वाण पद' भी इसी में अवस्थित है। योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

नादैं लीना ब्रह्मा, नादैं लीना नरहरि। नादै लीना उमापति जोगल्यौ धरि-धरि।।
नादै ही तौ आछै बाबू सब कछू निधानां। नाद ही थैं पाइये परम निरवाना।।

ॐकार ज्योतिस्वरूप है—'ॐकारमधे जोति जाँणिए।' योगी का निवासस्थान नाद ही है—'अनहद धुनि मैं रहनि हमारी तत्तदेखि मन लागां।' ॐकार से ही 10 नादों की उत्पत्ति होती है और नाद का उद्भव शून्य (चिदाकाश) से होता है और यह निरञ्जन में जाकर विलीन हो जाता है—

अवधू ॐकार उतपते नादं, नाद सुन्नि समिभवते।
स्रवन ले थापते नादं नादं निरञ्जन बिलीयते।।

नाद और बिन्दु दोनों को बजा लो अर्थात् साधो। अनाहतरूप वाद्य को भरो (उसमें संगीत की ध्वनि निकालो) और भरथरी! तुम एकान्तवासस्थान ढूँढ़ो—

नाद बिन्द बजाइले दोऊ, पूरिले अनहद बाजा।
एकंतिका बासा सोधि ले भरथरी! कहै गोरख मछिन्द्र का दासा।।

ॐकार ही मूत्र मन्त्र है। ॐकार समस्त विश्व में व्याप्त है। ॐकार नाभि में स्थित है। ॐकार ही सर्वोच्च देवता है। विना ओंकार-साधन के किसी भी प्रकार की कोई भी सिद्धि सम्भव नहीं है—

ॐकार आछै बाबू मूल मन्त्र धारा। ॐकार व्यापीले सकल संसारा।
ॐकार नाभी हृदै देव गुरु सोई। ॐकार साधे बिना सिधि न होई।[1]

इस अनाहत नाद (जो कि स्वयं में एक निःशब्द वाक् है और स्वयम्भू नादात्मिका शक्ति है) की साधना से जीव शिव बन जाता है—

नाद अनाहद निःसबद वाणी। जीवथै सीव होइबा प्राणी।

नाद ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में सर्वत्र व्याप्त है; किन्तु यदि उसका सन्धान करना

1. गोरखबानी

है तो बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने भीतर के चिदाकाश में ढूँढ़ो—

नाद रह्या सरवत्र पूरि। गगन मँडल मैं खोजौ अवधू वस्तु अगोचर मूर।[1]

गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि अनाहत नाद अहरन है। बिन्दु हथौड़ा है। इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ धौंकनियाँ हैं। मूलाधार को दबाकर एवं आसन को दृढ़ करके बैठो तो आवागमन का चक्र मिट जाएगा।[2]

जब अनाहत का मधुर नाद बजता है तब लँगड़ा व्यक्ति भी नाचने लगता है—

अनहद मृदंग बाजै तहाँ पांगुल नाचन लागा।

जहाँ अनाहत नाद है, वहाँ परमज्योति अहर्निश रहती है—

अनहद नाद गगन मैं बाजी। परम जोति वहाँ आप बिराजै।

इसी चिदाकाश में अनाहत नाद और शिव (अगोचर मूल वस्तु) दोनों स्थित हैं। प्रश्न उठता है कि गगन में तो अँधेरा दिखाई पड़ता है; फिर वहाँ नाद एवं शिव को कैसे ढूँढ़े? किन्तु इसका भी समाधान है—

ॐ आसण करि पदम आसण बन्धि। पिछलै आसण पवनां संधि।।
मन मुछावै लावै ताली। गगन सिरवर मैं होइ उजाली।।[3]

(पद्मासन, मन:संयम एवं ध्यान इनकी निरन्तरता (निरन्तराभ्यास) अन्तराकाश में प्रकाश का उदय कर ही देंगे)। योग-साधना में (इसी प्रकार नाद-साधना में भी) चतुर्विध 'परचा' आवश्यक है, जो निम्नांकित हैं—

1. मनपरचा
2. पवनपरचा
3. ज्ञानपरचा
4. गुरुपरचा[4]

प्राणसंगली नामक ग्रन्थ में ॐकार की महिमा का जो गुण-गान किया गया है, वह बड़ा ही सारगर्भित है। उसका सारांश निम्नांकित है—

ॐकार—योगिराज गुरु नानकदेव ने नाद-साधना (उच्चतम नादभूमिका = ॐ की साधना) पर बल दिया है। मध्ययुगीन निर्गुणपन्थी रैदास, कबीर, नानक, दादू, सुन्दर, चरणदास एवं अग्रवर्ती सन्तों ने नाद को इतना महत्त्व दिया कि शब्दब्रह्म को परब्रह्म भी स्वीकार कर लिया।[5]

नानकपन्थ में ॐ और उसका स्वरूप—गुरु नानक ने ओंकार की महत्ता का प्रतिपादन तो अपनी सभी रचनाओं में किया है; किन्तु प्राणसंगली में इस तत्त्व की विस्तृत व्याख्या करके इसके सर्वोपरि महत्त्व को रेखांकित किया है।

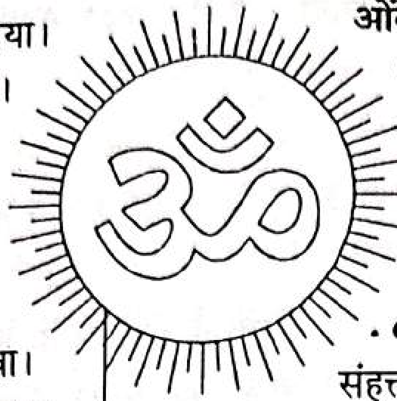
---

1. गोरखबानी
2. गोरखबानी
3. गोरखबानी
4. गोरक्षनाथ
5. सन्तों ने तो यहाँ तक कह डाला कि शब्द (अनाहत नाद = ॐ) या उससे भी उच्चतर शब्द के अतिरिक्त कोई भगवान् भी नहीं है।

ओ अंकारु प्रभि आपि उपाया।
ओ अंकारु करि ब्रह्म कहाया।।
ओ अंकारु करि
बिस्त कौकीना।
ओ अंकारु करि
महेश जसु लीना।।
तीनों मूरति एको देवा।
तीनि गुना करि रचनु रचाया।।
ब्रह्म बिस्नु महेश उपाया।।
(नानक)

ओअंकार ते परे न ध्यानं।
ओअंकार ते परे न ज्ञानं।।
ओअंकार ते परे न सेवा।
ओअंकार ते परे न देवा।।
ओअंकार ते परे न पूजा।
ओअंकार ते परे न दूजा।।
ओअंकार ते परे न मन्त्रम्।
ओअंकार ते परे न तन्त्रम्।।
ओअंकार ते परे न जापं।
ओअंकार ते परे न तापं।।
ओअंकार ते परे न दानं।
ओअंकार ते परे न इस्नानं।।
ओअंकार ते परे न भोगं।
ओअंकार ते परे न जोगं।।
ओअंकार ते परे न सुखं।
ओअंकार ते परे न दु:खं।।
ओअंकार ते परे न असाधं।
ओअंकार ते परे न विषाधं।।
ओअंकार समस्त का मूलं।
ओअंकार सूक्ष्म अस्थूलं।।
(प्राणसंगली : नानक)

अर्थात् प्राण से बढ़कर जप, तप, ध्यान, पूजा, पाठ, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र, तीर्थ, सेवा, ध्यान, ज्ञान, देवता, दान, योग आदि कुछ भी नहीं है। ॐकार ही सर्वोपरि है।



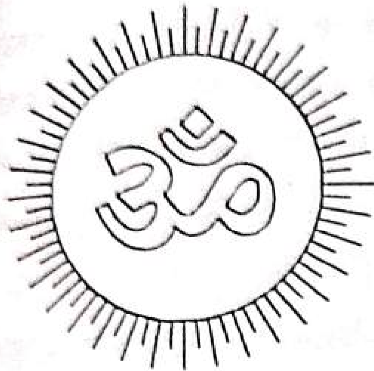
ओंकार—

- निर्मल सत्य नाम है।
- सर्वोच्च भगवन्नाम है।
- 84 लाख योनियों का अंग है।
- समस्त सृष्टि का बीज है।
- समस्त विश्व का स्रष्टा एवं संहर्त्ता दोनों है।
- समस्त योनियों एवं वाणियों की समष्टि है।
- अनन्त विस्तार वाला है।
- वही पानी, पवन एवं पाँच तत्त्व है।
- वही सूर्य-चन्द्र का धारक है।
- सर्व प्राणि जगत् का उद्धारक है।
- समस्त खानियों का स्रष्टा है।
- इससे प्रकाश की उत्पत्ति होती है।
- इसी से पृथ्वी, आकाश का आविर्भाव हुआ है।
- इसी ने मेरु, कैलास, मन्दिर एवं पिण्ड सभी की रचना की है।
- यही समस्त प्राणियों में श्वाससञ्चार है।
- यही पूजा, मान, प्रतिष्ठा, जप, संयम, ध्यान, तप, तीर्थ, दान, शुभ तिथि, गुरु-शिष्य, नित्य वाणी, संयोग-वियोग, युक्ति-योग, स्वाद सभी कुछ है। यह बाजीगर है।
- यही पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, वर-शाप आदि सभी का विधायक है।
- यही रात्रि-दिन, काम-क्रोध-लोभ, बन्धन का जाल, संसार सभी कर्त्ता-धर्ता है।
- नानक आअंकार ते सभ किछु थीआ।
- ओअंकार ते सभ किछु भया। ओअंकार सर्व की दया। (प्राणसंगली)
- सूफी सन्तों ने इसी ॐकार (अनाहत नाद) को पाक कलाम कहा है—

बिशनवी यफ्र कलामे ना मकतूअ।
अज हदूद ओ फना बुद्ध मिरफ्रूअ।।
अवल्लो आरवरश चूँ बेहद शुंद।
ज आं सबब नामे ॐ अनहद शुंद।।

यह शब्द परमेश्वर के दरबार में या सचखण्ड में बज रहा है। इसका न तो आदि है और न ही अन्त।

ओंकार की सर्वोच्चता और उसकी सर्वानुस्यूतता—यदि विकल्पस्पृष्ट शब्द की स्थूल धारा को पकड़ते हुए विकल्पातीत शब्द की डोरी पकड़ में आ जाय—सबदहिं सबद सूँ परचा हूआ। सबदहि शब्द समाया। (योगिराज गोरखनाथ)।

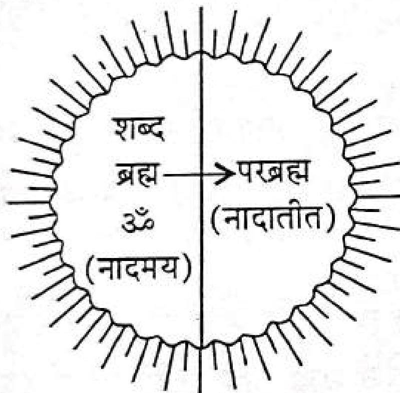


—समस्त 84 लाख योनियों का जनक है।
—सर्व स्त्रष्टा है।
—यही से प्रकाश की उत्पत्ति होती है।
—समस्त पृथ्वी आकाश का स्त्रष्टा है।
—पर्वत, कैलास, पिण्ड, श्वास सभी की उत्पत्ति ॐ से हुई है—वही सबका आधार है।
—उसके आदेश से ही प्रकाश होता है। (प्रण संगली)

आकाश-मण्डल में अनाहत नादरूपी ॐ की गर्जना हो रही है। उसके श्रवण से पिण्ड अमर हो जाता है—

गगनमण्डल में अनहद बाजैं प्यण्ड पड़े तो सतगुर लाजै।

ब्रह्म की दो अवस्थायें—शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।



गुरु गोरक्षनाथ नाद-साधना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि शरीर को बन्दूक बनाकर, पवन को बारूद बनाकर और अनाहत नाद को आग बनाकर यदि बिन्दुस्वरूप गोलों का विस्फोट किया जाय तो यह सीधे-सीधे ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है।[1]

गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि 'शब्द' (ॐ) ही ताला है, वही कुञ्जी है (परमतत्त्व को आवृत एवं अनावृत करने वाला है)। शब्द की धारा ही सूक्ष्म परमतत्त्व को स्थूल आवरणों में बाँधकर सृष्टि करती है। मूलाधिष्ठान तक पहुँचने के लिए शब्द की धारा को ही पकड़कर वापस आना पड़ता है; अतः शब्द (नाद) आवरणकर्त्ता होने के कारण ताला है और अनावृत करने वाला होने के कारण वही कुञ्जी भी है—

सबदहिं ताला सबदहिं कूँची सबदहिं शब्द जगाया।

ब्रह्म की दो अवस्थायें हैं—शब्दब्रह्म = ॐ एवं परब्रह्म। शब्दब्रह्म से परे परब्रह्म है। शब्दब्रह्म परब्रह्म में लयीभूत हो जाता है। इसीलिए गोरक्षनाथ एवं कबीरदास ने कहा था कि एक ऐसी अवस्था अवश्य है, जहाँ ॐकार नहीं है—

---

1. अवधू काया हमारी नालि बोलिए दारू बोलिए पवनं।
अगनि पलीता अनहद गरजै व्यंद गोला उड़ि गगनं।।

गोरख बोलै एकंकार नहि त हँ वाचा ओअंकार।। (गोरखनाथ)
जाप मरै अजपा मरै अनहद हूमरि जाय। (कबीरदास)

सन्तों की शब्द, नाद एवं ॐकारसम्बन्धिनी दृष्टि

राधास्वामी-सम्प्रदाय की दृष्टि—जैमल सिंह जी कहते हैं कि आदि शब्द कुल का कर्ता और स्वामी है और आदि सुरत यानी उसके अव्वल जहूर का नाम राधा है। इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है। जब इनकी धार नीचे आई तब इसी आदि शब्द से और शब्द और आदि सुरत (चैतन्य) से और सुरत (जीवात्मायें) और शब्द से सुरत बराबर प्रकट हुये और अपने-अपने मुकाम पर कायम हुये।

सारांश यह कि आदि शब्द परमात्मा है और सुरत (जीवात्मायें) उसी शब्दस्वरूप परमात्मा की अंश हैं अर्थात् आत्मायें भी शब्द ही हैं, उनसे पृथक नहीं हैं; क्योंकि वे शब्द का अंश हैं। शब्दों और सुरतों का समान स्तर नहीं है; अतः उच्चतम शब्द राधास्वामी (धुर पद) का स्तर दूसरा है और उनसे नीचे के स्तरों पर (मण्डलों में) व्यक्त चेतन दिव्य शब्दों का स्तर दूसरा है। इसी प्रकार आदि चैतन्यस्वरूप सुरत (आदिसुरत) का स्तर दूसरा है; किन्तु उसके नीचे के मण्डलों पर अवस्थित अन्य सुरतों का स्तर उससे भिन्न है।

जैमल सिंह जी कहते हैं कि कुल का आदि राधास्वामी (कुलमालिक) के स्थान पर शब्द निहायत गुप्त है। इसका उपमान (नमूना) इस रचना (विश्व) में कहीं भी नहीं है। इसी शब्द से सत्तपुरुष प्रकट हुये।

प्रथम शब्द है—सत्त पुरुष का शब्द, जिसको सत्तनाम और सत्त शब्द भी कहते हैं और जिसकी सत्त कुदरत से सोहं पुरुष और पारब्रह्म एवं ब्रह्म और माया प्रकट हुये।

1. प्रथम शब्द है—सत्तनाम, सत्त।
2. द्वितीय शब्द है—सोऽहं पुरुष का शब्द।
3. तृतीय शब्द है—पारब्रह्म का शब्द।
4. चतुर्थ शब्द है—ब्रह्म का शब्द (प्रणव)। माया और ब्रह्म का शब्द।
5. पाँचवाँ शब्द है—वैराट पुरुष का शब्द। (जीव और मन का शब्द)।

ब्रह्म शब्द (प्रणव) से सूक्ष्म (ब्रह्माण्डी) वेद एवं ईश्वरी माया प्रकट हुई। पाँचवाँ शब्द माया और ब्रह्म का शब्द है और इसी से त्रिलोक-निर्माण की सामग्री प्रकट हुई। इसी से आकाशी वेद भी प्रकट हुये। माया शब्द के नीचे वैराट पुरुष का शब्द और जीव तथा मन का शब्द प्रकट हुआ।

राधास्वामी सम्प्रदाय का यह भी सिद्धान्त ध्यातव्य है कि सूक्ष्म जगत् में सर्वोच्च दैवी शक्तियों (या पुरुषों) के जो सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम स्तर हैं (मण्डल हैं), उनके सारे अधिष्ठाता (स्वामी) भी शब्द ही हैं।

गुरु

1. सन्त सतगुरु (सत्त पुरुष और राधास्वामी तक पहुँचे हुए सन्त)।
2. साध गुरु (सत्संगी) ब्रह्म और पारब्रह्म के स्तर तक पहुँचे हुए सन्त।

सन्त और साध का असली स्वरूप शब्दस्वरूप है। (सा. व. छं.-जैमल सिंह)

'राधास्वामी' शब्द कुलमालिक (सत्त पुरुष राधास्वामी) या परमात्मा का है, जो उच्चतम, सर्वोपरि एवं शब्दस्वरूप है। 'सुरत' शब्द राधास्वामी का अंश है, रूह है, जीवात्मा है। जौहर लतीक का मूल केन्द्र तो आदिशब्द या आदिनाद (राधास्वामी पद) है; किन्तु यह आँखों के पीछे तीसरे तिल में स्थित होकर पूरे शरीर में फैला हुआ है और समस्त शरीरांगों को शक्ति प्रदान कर रहा है।

आदि शब्द कुल का कर्त्ता और स्वामी है और आदि सुरत (स्वामी का अव्वल जहूर) राधा है।

(क) आदि शब्द से अन्य शब्द आविर्भूत हुये।
(ख) आदि सुरत से अन्य सुरतें आविर्भूत हुये।
(ग) शब्द से सुरत और सुरत से शब्द आविर्भूत हुये।

सन्तों का यही योग 'सुरत शब्द योग' है, जिसमें कि सुरत को अपने मूल स्रोत से जोड़ने को ही सर्वोच्च साधना पद्धति स्वीकार किया गया है।

अलख पुरुष से ऊपर है—अगम लोक और उससे ऊपर है—अनामी पुरुष। सत्त पुरुष (चतुर्थ पद) : बीन की ध्वनि। इसका क्रम है—अनामी पुरुष (राधास्वामी दयाल), अगम लोक, अलख पुरुष और फिर चतुर्थ पद—सत्तपुरुष। (पिण्ड—ब्रह्माण्ड (त्रिकुटी)—सुन्न—महासुन्न—सत्तलोक—अलखलोक—अगमलोक—'राधास्वामी' अनामी का निजदेश)।





एकादश अध्याय

तत्त्व-विज्ञान और शक्ति-साधना

तत्त्ववादियों ने कहा है कि अशेष विश्व मात्र तत्त्व का विस्तार है। यदि तत्त्व जलाशय है तो विश्व उसकी तरंगों की समष्टि है। तत्त्व ही जगत् का मूल है—

तत्त्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः।
तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्तते।।

सर्वतत्त्ववाद—तत्त्व के अतिरिक्त विश्व में कुछ भी नहीं है। या तो तत्त्व है या उसका विस्तार। इतना ही विश्व है। भगवती पार्वती के ब्रह्माण्डोत्पत्ति की प्रक्रिया पर प्रश्न पूछने पर भगवान् शिव ने तत्त्व के दो प्रकार बताये हैं—परमतत्त्व (निरञ्जन, निराकार, अद्वैत महेश्वर) एवं अन्य मूलभूत तत्त्व—पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)।

तत्त्व → सृष्टि : तत्त्वाद् ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्तते।
→ प्रलय : तत्त्वे विलीयते देवि! तत्त्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः।

इन दोनों तत्त्वों में एक परम तत्त्व है और दूसरा पञ्चभूत नामक तत्त्व है।

परम तत्त्व एक है और तदुत्पन्न तत्त्व पाँच हैं—

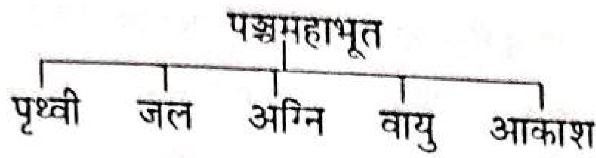
निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः। (महेश्वरतत्त्व)

ब्रह्माण्डोत्पत्ति की प्रक्रिया और तत्त्वों की भूमिका—

सांख्य की दृष्टि : (25 तत्त्व)
प्रकृति + पुरुष का संयोग[1]
महत्तत्त्व
अहंकार

मन | पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ | पाँच कर्मेन्द्रियाँ | पाँच तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पञ्चभूतों के सूक्ष्म रूप)

1. हरियन्त्रा का मत—पर्यङ्क सोने वाले को सूचित करता है, उसके बढ़ई को नहीं। प्रकृतिरूपी रचना उसके उपभोक्ता को सूचित करती है, उसके निर्माण को नहीं; अतः प्रकृति (कार्य) द्वारा कर्त्ता (परमात्मा) की सिद्धि नहीं होती।



निरञ्जन, निराकार एवं अद्वैत महेश्वर → आकाश → वायुतत्त्व → तेजतत्त्व → जलतत्त्व → पृथ्वीतत्त्व।

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसम्भवः ।।
वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः।
एतानि पञ्च तत्त्वानि विस्तीर्णानि न पञ्चधा।।
तेभ्यो ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्तते।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः।।
पञ्चतत्त्वमये देहे पञ्चतत्त्वानि सुन्दरि।
सूक्ष्मरूपेण वर्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः।।

शरीर में पञ्चतत्त्वों की स्थिति

1. **पृथ्वीतत्त्व**—पृथ्वी के 5 गुण एवं शरीर में उनकी स्थिति। अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोमावली—इन पाँचों का सम्बन्ध पृथ्वी तत्त्व से है—

अस्थिमांसं त्वचा नाड़ी रोमाञ्चैव तु पञ्चमम्।
पृथ्वी पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।

2. **जलतत्त्व**—जल के पाँच गुण एवं शरीर में उनकी स्थिति। वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, लार—इन उपर्युक्त पाँचों का सम्बन्ध जलतत्त्व से है—

शुक्रशोणितमज्जामूत्रं लालाश्च पञ्चमम्।

3. **तेजस्तत्त्व**—अग्नि (तेज) के पाँच गुण हैं—क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति, आलस्य।

क्षुधा तृषा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च।

4. **वायुतत्त्व**—वायुतत्त्व के पाँच गुण एवं उनकी शरीर में स्थिति का विवरण इस प्रकार है—दौड़ना, चलना, ग्रन्थिस्राव, शरीर का आकुञ्चन एवं शरीर का विस्तार।

धावनं चलनं ग्रन्थिः सङ्कोचेन प्रसारणे।
वायोः पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।

5. **आकाशतत्त्व**—राग, द्वेष, लज्जा, भय एवं मोह—पाँच ये आकाशतत्त्व के गुण हैं और उनका शरीर के उक्त मनोविकारों से सम्बन्ध है—

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पञ्चमः।
नभः पञ्चगुणं प्रोक्तं ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्।।

पृथ्वीतत्त्व से सम्बन्ध नक्षत्र—धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् एवं उत्तराषाढ़।

जलतत्त्व से सम्बन्ध नक्षत्र—पूर्वाषाढ़, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपद एवं शतभिषा।

अग्नितत्त्व से सम्बन्ध नक्षत्र—भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद एवं स्वाती।

वायुतत्त्व से सम्बन्ध नक्षत्र—विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी एवं मृगशिरा।

तत्त्व : स्वरूप एवं सिद्धियाँ

1. पृथ्वीतत्त्व—

1. बीजमन्त्र—'लं'
2. आकार—चौकोर
3. वर्ण—पीतवर्ण
4. कान्ति—स्वर्णतुल्य
5. गुण—सुगन्धि

सिद्धि—पृथ्वीतत्त्व का ध्यान करने पर शरीर की कान्ति एवं लाघव की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

2. जलतत्त्व—

1. बीजमन्त्र—'वं'
2. आकार—अर्द्धचन्द्र
3. वर्ण—श्वेत
4. कान्ति—चन्द्रतुल्य
5. गुण—मधुर

सिद्धि—जलतत्त्व का ध्यान करने पर सुधा एवं तृष्णा को सहन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

3. अग्नितत्त्व—

1. बीजमन्त्र—'रं'
2. आकार—त्रिकोण
3. वर्ण—लाल
4. कान्ति—तेजोमय
5. गुण—दाहकता

सिद्धि—अग्नितत्त्व का ध्यान करने पर भोजन एवं प्यास की मात्रा में वृद्धि एवं सुपाच्यता के साथ-साथ धूप-अग्नि के ताप को सहन करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

4. वायुतत्त्व—

1. बीजमन्त्र—'यं'
2. आकार—गोल
3. वर्ण—श्याम वर्ण
4. कान्ति—श्याम कान्ति
5. गुण—शोषण

सिद्धि—वायुतत्त्व का ध्यान करने से वायु में सञ्चरण (वायु की गति) की शक्ति प्राप्त होती है।

5. आकाशतत्त्व—

1. बीजमन्त्र—'हं' 2. आकार—निराकार

सिद्धि—इस तत्त्व का ध्यान करने से अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति होने के साथ-साथ है। त्रिकालदर्शिता की प्राप्ति होती है।

तत्त्वों की बलवत्ता एवं दिशायें—प्रत्येक तत्त्व किसी विशिष्ट दिशा में ही शक्तिशाली होता है; अत: किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए दिशा एवं तत्त्वों के अन्तस्सम्बन्ध पर भी विचार कर लेना चाहिए। दिग्बल एवं तत्त्वोदय का अन्त: सबन्ध इस प्रकार है—

- पृथ्वीतत्त्व की पूर्व दिशा में प्रबलता।
- जलतत्त्व की पश्चिम दिशा में प्रबलता।
- वायुतत्त्व की उत्तर दिशा में प्रबलता।
- अग्नितत्त्व की दक्षिण दिशा में प्रबलता।

पूर्वायां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां तथाक्रमम्।
पृथिव्यादीनि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत्।।

शरीर और तत्त्व का अन्त:सम्बन्ध—

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पञ्चभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने।।

शरीर में तत्त्वों की मात्रा—

1. पृथ्वीतत्त्व—50 पल (अंश)
2. जलतत्त्व—40 पल (अंश)
3. अग्नितत्त्व—30 पल (अंश)
4. वायुतत्त्व—20 पल (अंश)
5. आकाशतत्त्व 10 पल (अंश)

तत्त्वोदय एवं लाभ-हानि—प्रत्येक तत्त्व अपने उदयकाल में किये गये कार्य को प्रभावित करता है; अत: अपने कुप्रभावों से उस कार्य एवं कर्त्ता को हानि होती है या लाभ पहुँचाता है।

1. पृथ्वीतत्त्व के प्रवाह-काल में चिरकालिक लाभ होता है।
2. जलतत्त्व के प्रवाह-काल में तात्कालिक लाभ होता है।
3. अग्नितत्त्व के प्रवाहकाल में घाटा एवं हानि होती है।

4. वायुतत्त्व के प्रवाहकाल में स्वल्प लाभ होता है।
5. आकाशतत्त्व के प्रवाहकाल में असफलता मिलती है।

● यदि प्रश्नकाल में पृथ्वीतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो शत्रु पराजित होगा।

पृथ्वीतत्त्व के प्रवाह-काल में बहुत से लोगों के साथ गमन करना चाहिए।

पृथ्वीतत्त्व बुध के महत्त्व को सूचित करता है; अत: तदनुकूल कार्य करने पर कीर्ति प्राप्त होती है।

पृथ्वीतत्त्व एवं जलतत्त्व के प्रवाह-काल में प्रश्न पूछने पर प्रवासी के सुखी, सन्तुष्ट, हृष्ट-पुष्ट एवं आनन्दमय स्थिति में रहने की सूचना मिलती है।

● वायुतत्त्व एवं जलतत्त्व के प्रवाह-काल में अकेले ही चलना चाहिए।

जलतत्त्व चन्द्रमा और शुक्र के महत्त्व को सूचित करता है। अत: तदनुकूल कार्य करने पर कीर्ति प्राप्त होती है।

● यदि प्रश्न-काल में अग्नितत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो हानि एवं मृत्यु की सूचना मिलती है।

अग्नितत्त्व के उदय-काल में दो व्यक्तियों को साथ में लेकर चलना लाभप्रद रहता है।

अग्नितत्त्व सूर्य और मंगल के महत्त्व को सूचित करता है; अत: तदनुकूल कार्य करने पर कीर्ति प्राप्त होती है।

अग्नितत्त्व एवं वायुतत्त्व के उदय-काल में प्रश्न पूछा जाय तो यह प्रश्न प्रवासी को ज्वर-कम्प, द्यूत में पराजय एवं कष्टाकुल जीवन में स्थित रहने का सूचक है।

● यदि प्रश्न-काल में वायुतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो शत्रु भाग जाएगा।

यदि प्रश्न-काल में आकाशतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो यह हानि एवं मृत्यु का सूचक है।

आकाशतत्त्व के उदय-काल में कहीं भी गमन नहीं करना चाहिए।

वायुतत्त्व राहु एवं शनि के महत्त्व को सूचित करता है; अत: तदनुकूल कार्य करने पर कीर्ति प्राप्त होती है।

तत्त्व और गर्भ : अन्त:सम्बन्ध

पृथ्वीतत्त्व—पृथ्वीतत्त्व के प्रवाहकाल में कन्या का जन्म होगा।

इस तत्त्व के प्रवाहकाल में गर्भ-धारण होने पर भोग करने वाली, सुन्दर, धनी सन्तान होगी।

इस तत्त्व के उदयकाल में गर्भाधान होने पर सन्तान सुन्दर होगी और पुत्र होगा।

जलतत्त्व—जलतत्त्व के प्रवाहकाल में पुत्र का जन्म होगा।

जलतत्त्व के प्राबल्य में गर्भधारण होने पर सुविख्यात, सुखी एवं सुन्दर सन्तान उत्पन्न होगी।

इस तत्त्व के उदय के समय गर्भाधान होने पर धनी, भोगवान, पूर्ण धनी एवं सुखी पुत्र सन्तान का जन्म होगा।

जलतत्त्व के उदयकाल में कन्या सन्तति का जन्म होता है।

अग्नितत्त्व—अग्नितत्त्व के प्रवाह-काल में गर्भपात हो जाएगा।

इस तत्त्व के उदय काल में गर्भधारण होने पर गर्भपात या सन्तान का अल्पायु योग होगा।

अग्नि, वायु एवं आकाशतत्त्व के प्रवाहकाल में गर्भाधान होने पर गर्भ नष्ट हो जायेगा या सन्तान होते ही मर जाएगी।

वायु एवं आकाशतत्त्व—वायुतत्त्व के प्रवाहकाल में कन्या होगी एवं आकाशतत्त्व के प्रवाहकाल में सन्तान के नपुंसक होने की सम्भावना रहती है।

वायुतत्त्व की स्थिति में सन्तान दु:खी रहा करेगी एवं आकाशतत्त्व के उदयकाल में गर्भाधान होने पर गर्भ नष्ट हो जाएगा।

तत्त्वोदय और उसके अन्य प्रभाव

मेष संक्रान्ति के दिन पृथ्वीतत्त्व उदित रहने पर दिन, महीना एवं वर्ष उत्कृष्ट रहेगा। सुभिक्ष रहेगा। राष्ट्र की उन्नति होगी।

मेष संक्रान्ति के दिन जलतत्त्व उदित रहने पर दिन, महीना एवं वर्ष अच्छा रहेगा। मेष संक्रान्ति के दिन जलतत्त्व उदित हो तो अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सौख्य एवं अधिक अन्नोत्पादन होगा।

अग्नि, वायु या आकाशतत्त्व प्रवाहित हो और मेष संक्रान्ति-काल हो तो समय अशुभ रहेगा। अग्नितत्त्व के उदित होने पर दुर्भिक्ष, राष्ट्रभंग एवं कम वर्षा होगी।

मेष संक्रान्ति के दिन वायुतत्त्व उदित हो तो उत्पात, उपद्रव, भय, अल्प वृष्टि, अति-वृष्टि, अनावृष्टि, बाह्य आक्रमण, चूहों का उत्पात, टिड्डीदल का उत्पात बना रहेगा।

पञ्चतत्त्वों के शरीर में प्रवाहित होने का काल-चक्र—पाँचों तत्त्व मानवशरीर में एक क्रम से प्रवाहित हुआ करते हैं। उनका प्रवाह-क्रम इस प्रकार है—

(क) स्वर चलने के समय सर्वप्रथम वायुतत्त्व गतिशील या प्रवाहित होता है।

(ख) वायुतत्त्व के अनन्तर अग्नितत्त्व, फिर पृथ्वीतत्त्व तथा फिर जल एवं आकाशतत्त्व यथाक्रम उदित (प्रवाहित) होते हैं।

प्रथमं वहते वायुः द्वितीयं च तथाऽनलः।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणो वहेत्।।

(ग) ढाई घण्टे की अवधि में सर्वप्रथम वायु, फिर अग्नि, फिर पृथ्वी, फिर जल एवं फिर आकाश—इस क्रम से पाँचों तत्त्वों का उदय हुआ करता है।

(घ) एक-एक नाड़ी (इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्णा नामक नाड़ियों) में उपर्युक्त क्रम के अुनसार पृथक्-पृथक् तत्त्वों का प्रवाह (उदय) हुआ करता है।

(ङ) प्रत्येक ढाई घण्टे में जो पाँचों तत्त्व उदित और अस्त होते हैं, उनका भी एक क्रम है।

पञ्चतत्त्वों के उदयास्त का महत्त्व—भगवान् शिव ने पार्वती से इस सम्बन्ध में जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं, उनका सारांश निम्नांकित है—

चूँकि पाँच तत्त्वों से सृष्टि होती है एवं पाँच तत्त्वों में ही सृष्टि का लय होता है; अतः पञ्चतत्त्व परमतत्त्व हैं—

पञ्चतत्त्वात् भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं...।।

हाँ, इन तत्त्वों से परे ब्रह्म निरञ्जन भी है, जो इनसे भी परतर तत्त्व है और उसे तत्त्वातीत कहा जाता है—'तत्त्वातीतं निरञ्जनः।'

तत्त्वों के परिज्ञान का उपाय—तत्त्वों के उदयास्त का ज्ञान एवं उनके स्वरूप का अभिज्ञान सिद्धयोग से हुआ करता है—

तत्त्वानां नाम विज्ञेयं सिद्धियोगेन योगिभिः।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश नामक पञ्चतत्त्वों से विश्व सर्वत्र व्याप्त एवं अनुस्यूत है। जो इसे (पञ्चभूतात्मक विश्व को) जानता है, वह पूज्य है—

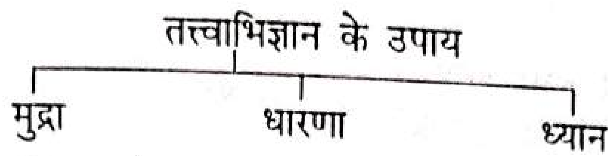
पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः।

पञ्चतत्त्वों का महत्त्व—भूलोक से सत्यलोकपर्यन्त समस्त लोकों में स्थित समस्त जीवों के शरीर में पाँच तत्त्व समान रूप से विद्यमान हैं। एक भी शरीर ऐसा नहीं है, जिसमें पाँच तत्त्व भिन्न हों; किन्तु उनमें नाड़ी-भेद भिन्न-भिन्न है।

वाम एवं दक्षिण स्वर में पाँच तत्त्वों का उदय होता है। वह तत्त्व-विज्ञान अष्टधा विभाजित है, जो निम्नवत् है—

1. तत्त्वों की संख्या	3. स्वरचिह्न	5. रंग-रूप-वर्ण	7. स्वाद
2. स्वरसन्धि	4. स्वरस्थान	6. प्राण	8. गति-लक्षण

तत्त्वों के अभिज्ञान का प्रथम उपाय षण्मुखी मुद्रा है।



स्वरशास्त्र में तत्त्वाभिज्ञानार्थ षण्मुखी मुद्रा पर जोर दिया गया है।

षण्मुखी मुद्रा की प्रक्रिया—दोनों कानों को दोनों अँगूठों से, दोनों नासापुटों को मध्यांगुलियों से, मुख को अनामिका एवं कनिष्ठा अंगुलियों से तथा दोनों आँखों को दोनों तर्जनियों से बन्द करना चाहिए।

इस मुद्रा के सिद्ध होने पर (अभ्यासकाल में ही) पृथ्वी आदि तत्त्व क्रमशः पीले, श्वेत, रक्त, श्याम और विविध वर्णों से उपरञ्जित बिन्दु के रूप में प्रकट होते हैं।

तत्त्वों के वर्ण (रंग) **एवं आकार**—

तत्त्व	वर्ण	आकार
1. पृथ्वीतत्त्व	पीत वर्ण	चौकोर
2. जलतत्त्व	श्वेत वर्ण	अर्द्धचन्द्राकार
3. अग्नितत्त्व	लाल वर्ण	त्रिकोणाकार
4. वायुतत्त्व	नीला वर्ण	वर्तुलाकार
5. आकाशतत्त्व	मिश्रित वर्ण	बिन्द्वाकार

तत्त्वाभिज्ञान के अन्य उपाय—

1. **दर्पण-विधि**—अपने भीतर तत्त्वों के अभिज्ञान के अन्य उपाय भी हैं, यथा एक दर्पण लीजिए और उस पर श्वासवायु छोड़िए और दर्पण पर उभरे आकारों को देखिए। यदि आकार चौकोर हो तो उसे पृथ्वीतत्त्व, यदि आकार अर्द्धचन्द्राकार हो तो उसे जलतत्त्व, यदि आकार त्रिकोणाकार हो तो उसे अग्नितत्त्व, यदि आकार गोलाकार हो तो उसे वायुतत्त्व एवं यदि आकार बिन्द्वाकार हो तो उसे आकाशतत्त्व के उदय का चिह्न समझिए।

स्वाद-विधि—यदि आपके मुख में सहज रूप में मधुर स्वाद की अनुभूति हो रही हो तो उस समय पृथ्वीतत्त्व का उदय समझिए। इसी प्रकार कषाय (कसैले) स्वाद की अनुभूति हो रही हो तो जलतत्त्व, तीक्ष्ण स्वादानुभूति होने पर अग्नितत्त्व, अम्ल (खट्टेपन) की स्वादानुभूति होने पर वायुतत्त्व एवं कटु (कड़वापन) की स्वादानुभूति होने पर आकाशतत्त्व के उदित होने का लक्षण समझना चाहिए।

तत्त्वों की स्थिति—

1. पृथ्वीतत्त्व मध्य में प्रवाहित होता है।
2. जलतत्त्व नीचे प्रवाहित होता है।

3. तेजस्तत्त्व ऊपर प्रवाहित होता है।

4. वायुतत्त्व तिरछा प्रवाहित होता है।

5. आकाशतत्त्व दो स्वरों के संक्रम में (जब दो स्वर एक साथ प्रवाहित हो रहे हों) प्रवाहित होता है।

शरीरांगों में तत्त्वों की स्थिति—

1. दोनों स्कन्धों में—अग्नितत्त्व
2. नाभि के मूल में—वायुतत्त्व
3. घुटनों में—पृथ्वीतत्त्व
4. चरणों के तलवों में—जलतत्त्व
5. मस्तक में—आकाशतत्त्व

तत्त्वों की गति-क्षमता—

तत्त्वों में गति की सामर्थ्य भिन्न-भिन्न हुआ करती है। जैसे कि—

1. वायु की गति = आठ अंगुल
2. तेज की गति = चार अंगुल
3. पृथ्वी की गति = बारह अंगुल
4. जलतत्त्व की गति = सोलह अंगुल

तत्त्वों की कार्य में साफल्य दिलाने का सामर्थ्य—

1. स्थिर कार्य करना हो तो पृथ्वीतत्त्व के उदयकाल में करने में सफलता मिलती है।

2. अस्थायी, चर कर्म करना हो तो जलतत्त्व के उदयकाल में करने पर साफल्य प्राप्त होता है।

3. क्रूर कर्म करना हो तो वायुतत्त्व के उदय-काल में करने पर साफल्य प्राप्त होता है।

4. मारण, उच्चाटन आदि कर्म करने हों तो वायु-तत्त्व के उदयकाल में करने पर उनमें सफलता प्राप्त होती है।

5. आकाश-तत्त्व के उदयकाल में कोई भी शुभाशुभ कार्य करना वर्जित है; क्योंकि इस समय किये गये समस्त कार्य असफल होते हैं। इस समय केवल भगवद्भक्ति या योग-साधना करनी चाहिए। इसी कार्य में सफलता प्राप्त होती है।

प्रत्येक तत्त्व के उदय-काल में भिन्न-भिन्न प्रभावों या सामर्थ्यों की उत्पत्ति होती है। यथा—

पृथ्वी एवं जलतत्त्व के उदय में निष्पादित कार्य सफलता दिलाते हैं। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि—

अग्नितत्त्व के उदय में निष्पादित कार्य मृत्यु दिलाते हैं। पृथ्वीतत्त्व के उदय-काल में निष्पादित सारे कार्य साफल्य प्रदान करते हैं; किन्तु उनसे स्थायी लाभ प्राप्त होता

है एवं जलतत्त्व के उदय-काल में निष्पादित सारे कार्य भी सिद्धि प्राप्त कराते हैं, किन्तु वे मात्र तात्कालिक लाभ ही दिलाते हैं, स्थायी नहीं।

वायुतत्त्व के उदय में निष्पादित कार्य विनाश एवं क्षय को आमन्त्रित करते हैं।

आकाशतत्त्व के उदय-काल में निष्पादित कार्यों पर आकाशतत्त्व का यह कुप्रभाव पड़ता है कि सारे निष्पादित सांसारिक कार्य नष्ट हो जाते हैं या असफलता दिलाते हैं।

पृथ्वीतत्त्व के लक्षण—

1. इसका रंग पीला होता है।
2. यह धीरे-धीरे मध्य में चलने वाला है।
3. चिबुकपर्यन्त भारी ध्वनि करने वाला है।
4. यह किञ्चित् उष्ण है।
5. यह स्थायी एवं स्थिर कार्यों में सफलता देने वाला होता है।

जलतत्त्व के लक्षण—

1. इसका रंग श्वेत होता है।
2. यह नीचे की ओर प्रवाहित होने वाला है।
3. यह तीव्र ध्वनि करने वाला है।
4. यह शीघ्रगामी है।
5. यह शीतल है।
6. यह सोलह अंगुल लम्बे स्वर (वायु) से युक्त है।
7. यह शुभ कार्यों में साफल्य प्रदान करता है।

अग्नितत्त्व के लक्षण—

1. इसका रंग रक्त है।
2. यह ऊष्ण स्पर्श वाला है।
3. यह भँवर के समान चक्राकार गति वाला है।
4. यह चार अंगुल लम्बा है।
5. यह ऊर्ध्वगति वाला है।
6. यह कठोर एवं क्रूर कर्मों में सफलता दिलाता है।

वायुतत्त्व के लक्षण—

1. इसका रंग काला है।
2. यद्यपि यह ऊष्ण है, तथापि शीतल है।
3. इसकी गति तिरछी है।
4. यह आठ अगुंल लम्बा है।

5. यह गतिशील स्वभाव का है।
6. यह गतिशील एवं चर कर्मों में सफलता प्रदान करता है।

आकाशतत्त्व के लक्षण—

1. यह तत्त्व सभी तत्त्वों को समरस या सन्तुलित करता है।
2. यह सर्वगुणाधायक है।
3. यह योगियों के लिये वरदान है।

तत्त्वों के शेष लक्षण—

(क) पृथ्वीतत्त्व—

1. पीत वर्ण	4. मध्य भाग में प्रवाहित
2. चौकारे आकृति	5. 12 अंगुल लम्बा
3. स्वाद में मधुर	6. भोग एवं आनन्ददायक।

(ख) जलतत्त्व—

1. श्वेत वर्ण	4. संकोच-शील
2. अर्धचन्द्र के समान आकार	5. अदरख के समान कटु
3. स्वाद में कषाय	6. सोलह अंगुल लम्बा

(ग) तेजस्तत्त्व—

1. रक्त वर्ण	5. प्रकाशमान
2. त्रिकोण आकार	6. 4 अंगुल लम्बा
3. स्वाद तीक्ष्ण	7. अशुभ फलदायक
4. ऊर्ध्वगति	

(घ) वायुतत्त्व—

1. नील वर्ण	5. शीघ्र गमनशील
2. गोलाकार	6. आठ अंगुल लम्बा
3. खट्टा	7. विध्वंसकारी
4. तिरछी गति	

(ङ) आकाशतत्त्व—

1. वर्ण और आकार अगोचर	4. निरन्तर सभी दिशाओं में गतिशील
2. अव्यक्त	5. मोक्षप्रद
3. स्वादशून्य	6. सांसारिक कार्यों के लिए अनुपयोगी

तत्त्वों के अन्य लक्षण—पृथ्वी एवं जल तत्त्व का उदय = मंगलदायक। तेजस्तत्त्व का उदय = मिश्रफल। वायुतत्त्व एवं आकाशतत्त्वों का उदय = हानिकारक, मृत्युप्रद एवं अमंगलकारी।

तत्त्वों की दिशायें—

1. पृथ्वीतत्त्व = पूर्व से पश्चिम दिशा।
2. अग्नितत्त्व = दक्षिण दिशा।
3. वायुतत्त्व = उत्तर दिशा।
4. आकाशतत्त्व = मध्यकोण।

तत्त्वों का कार्य-क्षेत्र—प्रत्येक तत्त्व की कार्य-क्षमता पृथक्-पृथक् होती है और साफल्य-असाफल्य देने की दिशायें भी सभी तत्त्वों की पृथक्-पृथक् होती हैं। तत्त्वों का समष्टिगत कार्यक्षेत्र है—जीवन, जय, लाभ, कृषि, धनागमसम्बन्धी कर्म, मन्त्र, युद्ध एवं आवगमन (यात्रा)।

चिन्तन की दिशा और उस पर तत्त्वोदय का प्रभाव—प्रत्येक तत्त्व के उदयकाल में चिन्तन या विमर्शन की दिशायें भी बदल जाती हैं। जैसे कि पृथ्वीतत्त्व के प्रवाह-काल में व्यक्ति भौतिक चिन्तन करता है। जलतत्त्व एवं वायुतत्त्व के प्रवाह-काल में व्यक्ति आत्मचिन्तन करता है। अग्नितत्त्व के प्रवाह-काल में व्यक्ति धन एवं निधि का चिन्तन करता रहता है। आकाशतत्त्व के प्रवाहकाल में व्यक्ति कोई चिन्तन नहीं करता। उस समय विचारोदय नहीं होता। यह शून्यता की मानसिकता का सूचक काल होता है। कहा भी है—

पृथिव्यां मूलचिन्ता स्याज्जीवस्य जलवातयोः।
तेजसा धातुचिन्ता स्याच्छून्याकाशतो वदेत्।।

तत्त्वों के तीन चरण—तत्त्वों के तीन चरण होते है—
शुभाशुभ कार्य, जय-पराजय एवं समृद्धि-अकाल (सुभिक्ष-दुर्भिक्ष)।

कार्यसिद्धि की दिशा में तत्त्वों की भूमिका

पृथ्वीतत्त्व—पृथ्वीतत्त्व का उदय होने पर शान्ति-कर्म में सिद्धि (या साफल्य) प्राप्त होती है। यदि प्रश्न-काल में पृथ्वी-तत्त्व उदित हो तो उदरसम्बन्धी शस्त्र या कोई आघात लगने की सम्भावना रहती है। पृथ्वीतत्त्व के प्रवाहकाल में युद्धारम्भ करने पर दोनों पक्ष बराबर रहते हैं।

पृथ्वी या जलतत्त्व के प्रवाह-काल में यदि चन्द्र स्वर चल रहा हो तो उस समय निष्पादित सारे स्थायी-अस्थायी और शुभाशुभ कार्य सफलता दिलाते हैं।

यदि दिन में पृथ्वीतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो सारे कार्य लाभ प्रदान करते हैं।

जलतत्त्व—जलतत्त्व का उदय होने पर यात्रा एवं गमन-कार्य में सिद्धि (या साफल्य) प्राप्त होती है। जलतत्त्व के प्रवाह-काल में प्रश्न करने पर पैर पर आघात होने की सम्भावना रहती है। जलतत्त्व के उदय काल में युद्धारम्भ करने पर विजय प्राप्त होती है।

यदि रात्रि के समय जल तत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो सारे कार्य लाभ प्रदान करते हैं।

यदि प्रश्नकाल में जलतत्त्व प्रवाहित हो तो शत्रु का आवागमन होता है।

यदि पृथ्वीतत्त्व या जलतत्त्व के प्रवाह-काल में प्रश्न किया गया हो तो प्रवासी को सुख-सन्तोष, पुष्टि, रतिक्रीड़ा, विजय एवं आनन्द की स्थिति में समझना चाहिए।

अग्नितत्त्व—अग्नितत्त्व का उदय होने पर उग्र कार्यों को करने में सिद्धि प्राप्त होती है। अग्नितत्त्व के प्रवाहकाल में प्रश्न करने पर जंघाओं पर घात, आघात का भय रहता है। अग्नि-तत्त्व के उदय-काल में युद्धारम्भ करने पर अंग-भंग होता है।

अग्नितत्त्व के प्रवाह-काल में पिंगला नाड़ी (सूर्यस्वर) चल रहा हो तो स्थायी-अस्थायी, शुभ-अशुभ सभी कार्य सिद्ध होते हैं (सफलता दिलाते हैं)।

वायुतत्त्व—वायुतत्त्व का उदय होने पर यात्रा-गमन-कार्य में साफल्य प्राप्त होता है।

चन्द्र-सूर्य में से कोई भी स्वर चलते समय वायुतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो यह युद्ध-प्रयाण के लिए उपयुक्त समय होता है। इस समय की उक्त यात्रा साफल्य दिलाती है।

प्राण वायु को ऊपर खींचकर सवारी करने एवं श्वास-निकालते समय पैर नीचे रखने पर सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं (इसमें वायुतत्त्व का स्वत: प्रवाह भी आवश्यक नहीं होता)।

वायुतत्त्व जिस भी दिशा में प्रवाहित हो रहा हो, उसी दिशा में युद्ध करने पर इन्द्र को भी युद्ध में पराजित किया जा सकता है।

जिस नाड़ी एवं अंग में प्राण के साथ वायुतत्त्व प्रवाहित हो, उसी नाड़ी एवं अंग में कर्णपर्यन्त वायु खींचकर आगे बढ़ने पर इन्द्र को भी पराजित किया जा सकता है।

जब वायुतत्त्व उदित हो और चन्द्र या सूर्य में से कोई स्वर चल रहा हो तो उस समय चलने पर जयाकांक्षी व्यक्ति अवश्य विजय प्राप्त करता है।

वायुतत्त्व के प्रवाह-काल में प्रश्न करने पर हाथों पर चोट लगने का भय बना रहता है।

वायुतत्त्व के प्रवाहकाल में युद्धारम्भ करने पर मृत्यु होती है।

आकाशतत्त्व—आकाशतत्त्व का उदय होने पर यात्रा-गमन करना अशुभ होता है।

इस समय युद्ध के लिए प्रयाण असफलता देता है।

यदि प्रश्न-काल में आकाश-तत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो शिर में चोट लगने की सम्भावना बनी रहती है।

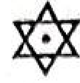
आकाश तत्त्व के उदयकाल में युद्धारम्भ करने पर मृत्यु-कवलित होना पड़ता है।

अग्नितत्त्व से मृत्यु होती है, वायुतत्त्व से विनाश होता है तथा आकाशतत्त्व बड़ी कठिनाई से कभी-कभी लाभकारी हो जाता है; अतः इन स्वर-प्रवाहों के समय कोई भी कार्यारम्भ नहीं करना चाहिए—

वह्नौ मृत्युः क्षयो वायुर्नभस्थानं दहेत्क्वचित्।

यदि प्रश्न-काल में आकाशतत्त्व प्रवाहित हो रहा हो तो प्रवासी के विषय में किया गया प्रश्न यह सूचना देता है कि प्रवासी मरणासन्न स्थिति में है।





द्वादश अध्याय

पीठतत्त्व और शक्ति-साधना

पीठ-साधना शक्ति-साधना है; क्योंकि शरीर और पीठ का आधाराधेय सम्बन्ध है। कामरूप पीठ, स्वयं भूलिंग एवं परावाक्; पूर्णगिरिपीठ, बाण लिंग और पश्यन्ती वाक्; जालन्धर पीठ, इतर लिंग और मध्यमा वाक् तथा उड्डीयान पीठ, परलिंग और वैखरी-वाक्—इन सभी का उद्भव शक्ति से ही तो हुआ है।

यदि शान्ता शक्ति का सामरस्य शिव से न होता तो कामरूप पीठ का आविर्भाव कैसे होता? यदि इच्छाशक्ति का सामरस्य शिव से न होता तो पूर्णगिरि पीठ का उद्भव कैसे हो पाता? यदि ज्ञानशक्ति का सामरस्य शिव से न होता तो जालन्धर पीठ का उद्भव कैसे हो पाता। यदि क्रियाशक्ति का सामरस्य शिव से न होता तो उड्डीयान पीठ का उद्भव कैसे हो पाता?

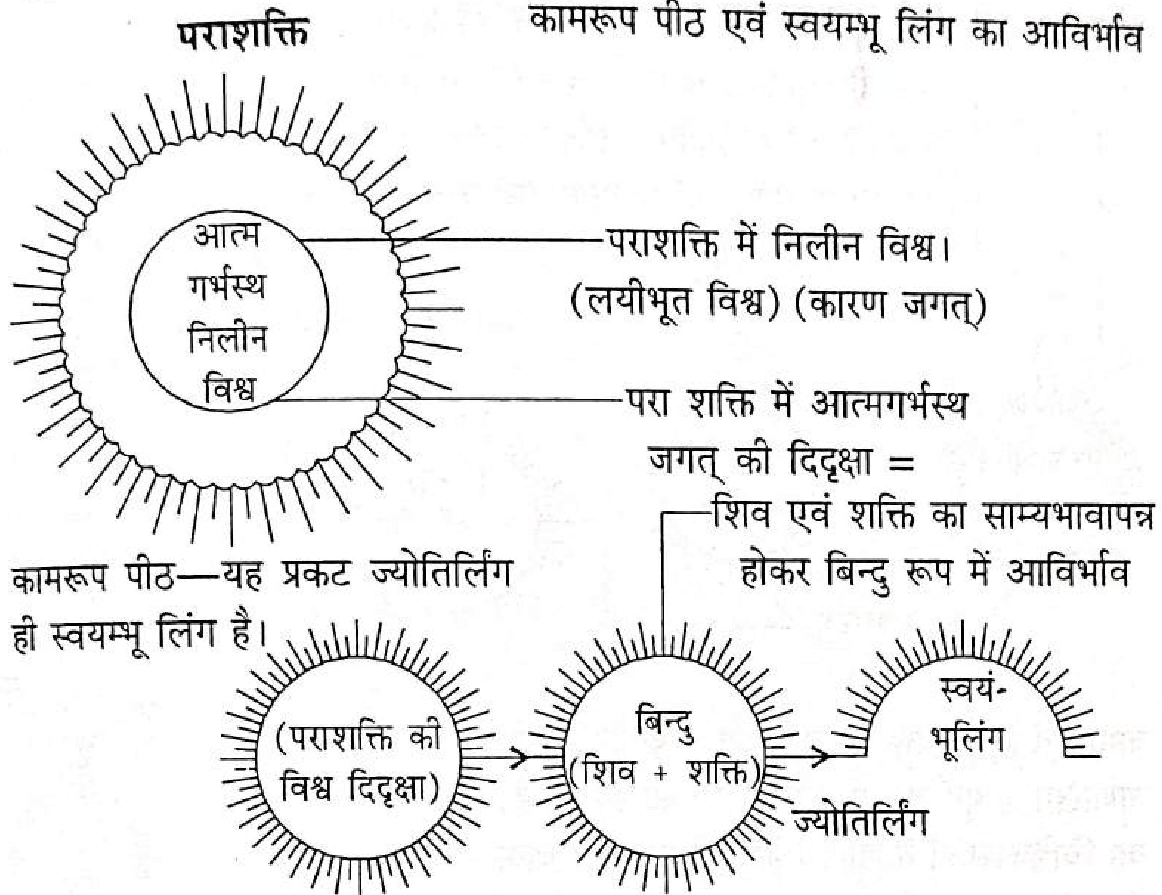
क्या शान्ता शक्ति के विना परावाक् का, इच्छाशक्ति के विना पश्यन्ती वाक् का, ज्ञानशक्ति के विना मध्यमा वाक् का एवं क्रियाशक्ति के विना वैखरी वाक् का उन्मेष सम्भव था? कदापि नहीं। शक्ति ही सर्वाधिष्ठान एवं सर्वाधार है। वही शिव को भी शक्तिमान बनाती है। तन्त्रशास्त्र कहता है कि शिव शब्द के 'शि' में इकार शक्तितत्त्व है। यदि इसे निकाल दिया जाय तो शिव शवमात्र बनकर रह जायेंगे।

सारे शक्तिपीठ, चाहे वे भूमि पर स्थित 52 शक्तिपीठ हों या अन्य पीठ हों, सभी का मूलाधिष्ठान एवं केन्द्र शक्ति ही है; अत: पीठोपासना भी शक्ति की ही उपासना है। पीठ की साधना भी शक्ति की ही साधना है।

कामरूप पीठ—जब परा शक्ति अपने भीतर निलीन विश्व को देखने के लिए उन्मुख होती है तब शक्ति एवं शिव साम्यभाव से युक्त होकर बिन्दु बन जाते हैं। इसके कारण चैतन्य प्रतिफलित होकर ज्योतिर्लिंग के रूप में व्यक्त होता है। यही बिन्दु तान्त्रिक भाषा में कामरूप पीठ कहलाता है।

इस कामरूप पीठ में अभिव्यक्त चैतन्य स्वयम्भू लिंग कहलाता है। पराशक्ति के द्वारा आत्मगर्भस्थ विश्व को देखने की ओर उन्मुखता → शिव-शक्ति में साम्यभावापन्नता → दोनों की एक बिन्दु में परिणति → ज्योतिर्लिंगाविर्भाव। यही बिन्दु कामरूप पीठ है। (इसी) कामरूप पीठ में अभिव्यक्त चैतन्य स्वयम्भू लिंग है।

कामरूप पीठ नामक शक्तिपीठ एक मात्रा शिवांश एवं एक मात्रा शक्त्यंश को लेकर गठित है अर्थात् इसमें शिव एवं शक्ति दोनों के अंश समान मात्रा में हैं। कामरूप पीठ में स्थित समभावावस्थित शिवांश एवं शक्त्यंश अम्बिका शक्ति एवं शान्ता शक्ति कहलाते हैं। कामरूप पीठ में महाशक्ति का आत्मप्रकाशन ही परा वाक् है। यहीं (परा वाक्) से शब्द-साम्राज्य का श्रीगणेश होता है। यही है—प्रणव का परम रूप एवं भेद का तात्त्विक स्वरूप।



एक मात्रा शक्त्यंश एवं एक मात्रा शिवांश को समभाव में लेकर शक्तिपीठ संघटित होता है। शिव एवं शक्ति के अंशद्वय का नाम है—शान्ता शक्ति एवं अम्बिका शक्ति।

परा शक्ति शब्द की प्रथम भूमि में (कामरूप पीठ में) स्वनिलीन जगत् को नित्य वर्त्तमान रूप में देखती है। यह नित्य शान्तिमयावस्था है। इसके अनन्तर इच्छाशक्ति का उन्मेष होता है। यही शब्द का द्वितीय स्तर है।

'सृष्टि' शब्द के प्रत्येक स्तर पर भिन्न-भिन्न होती है। इच्छाशक्ति के उन्मेष से शब्द के द्वितीय स्तर पर सृष्टि का जो विकास होता है, वह नित्यमण्डल है। यहाँ शक्तिगर्भ में स्थित बीजभूत विश्व है। इच्छा के प्रभाव से जब शक्ति के गर्भ के एक देश से विसृष्टि होती है तब उसे 'सृष्टि' कहा जाता है। यहीं से काल अपना प्रभाव प्रारम्भ करता है। यहाँ से सृष्टि एक साथ न होकर क्रमानुसार होती है। यहीं से देश और कार्य-कारणभाव का स्फुरणारम्भ होता है।

अम्बिका शक्ति (शिवांश)
शान्ता शक्ति (शक्त्यंश)

कामरूप पीठ
परावाक्
स्वयंभू लिंग

कामरूप पीठ में अभिव्यक्त चैतन्य

कामरूप पीठ में महाशक्ति की अभिव्यक्ति = परावाक्

कामरूपपीठ का परावाक् = शब्द की प्रथम भूमि। (खण्डकालातीत, अतीत अनागत काल से अतीत, दूर एवं निकट से अतीत, कार्यकारणातीत, आवरणातीत, विक्षोभातीत, चांचल्यातीत एवं कार्यकारणभाव के स्फुरण का प्रथम केन्द्र)

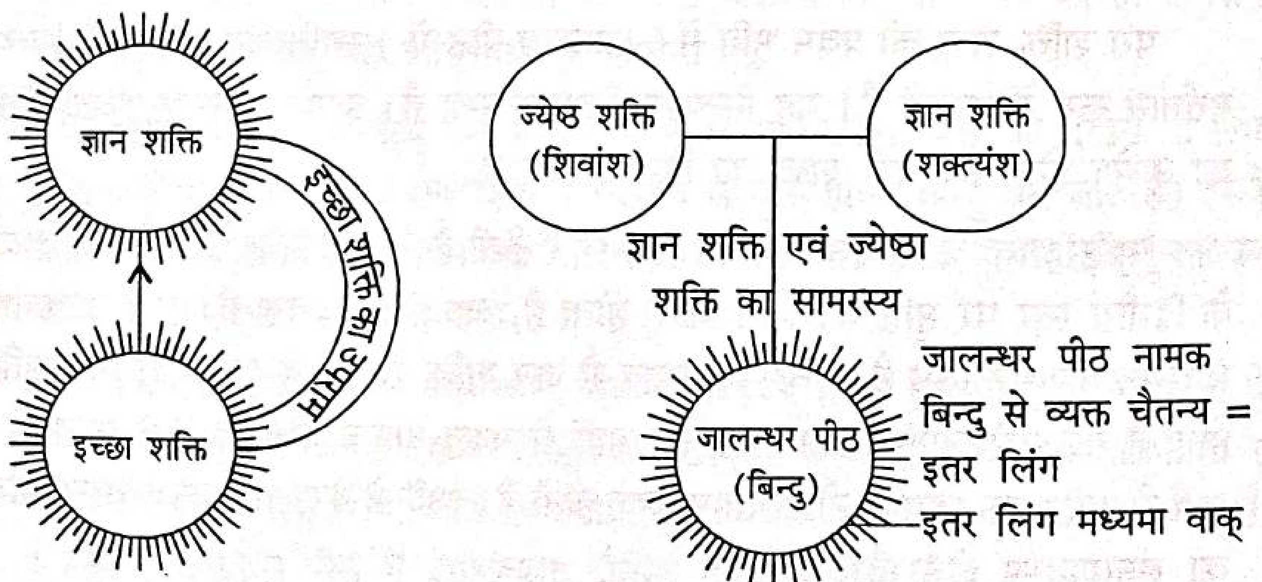
परावाक् = प्रणव एवं वेद का स्वरूप

परावाक्
पश्यन्ती वाक्
मध्यमा वाक्
वैखरी वाक्

इच्छाशक्ति (शक्त्यंश)
वामाशक्ति (शिवांश)
वामा + इच्छा का सामरस्य
(बिन्दु) पूर्णगिरि पीठ (बाणलिंग)
पश्यन्ती वाक्

वामा एवं इच्छाशक्ति का सामरस्य = पूर्णगिरिपीठ। वाणलिंग = पूर्णगिरि पीठ में चैतन्य का स्फुरण है। यह चिद्विकास ही बाणलिंग है। यही पश्यन्ती वाक् की अवस्था है।

इच्छाशक्ति का उपराम होने पर ज्ञानशक्ति का उदय होता है।



विश्व की तीन अवस्थायें—

विश्व = शक्ति का आत्मप्रकाश।

1. सुसूक्ष्म = कारण जगत्
2. लिंगात्मक = सूक्ष्म जगत्
3. इन्द्रियगोचर = स्थूल जगत्।

} विश्व के रूप में शक्ति का विकास

निष्कल अवस्था

निष्कल सकल अवस्था

सकल अवस्था

आत्मा, देवता एवं भूत भी शक्ति की ही तीन अवस्थायें हैं।

स्थिति शक्ति की क्षीणता होने पर अन्तर्मुख आकर्षण का प्राबल्य और उसके पश्चात् संहार शक्ति की क्रिया का आरम्भ होता है।

ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति के रूप में परिणत होकर शिवांश रौद्री शक्ति से सामरस्य प्राप्त करके बिन्दु को जन्म देती है। ज्ञानबिन्दु का नाम ही है—उड्डीयान पीठ।

ज्ञान शक्ति

ज्ञान शक्ति का परिणमन

क्रिया शक्ति (शक्त्यंश)

रौद्री शक्ति (शिवाश)

उड्डीयान पीठ (वैखरी वाक्)

क्रिया शक्ति और रौद्री शक्ति का सामरस्य

शब्द की वैखरी भूमि

परलिंग

उड्डीयान पीठ = संहार-शील, क्षयधर्मी जगत् से सम्बद्ध पीठ।



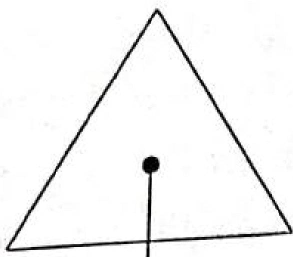
पश्यन्ती वाक् | पूर्ण गिरिपीठ
बाण लिंग
(शब्द की द्वितीय भूमि)



मध्यमा वाक् | जालन्धर पीठ
इतर लिंग
(शब्द की तृतीय भूमि)



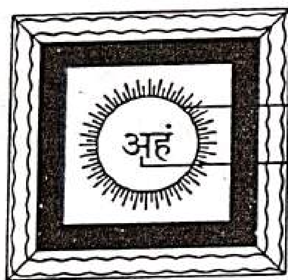
वैखरी वाक् | उड्डीयान पीठ
परलिंग
(शब्द की चतुर्थ भूमि)



बिन्दुगर्भित महात्रिकोण
↓
समस्त बाह्य जगत् का आविर्भाव

त्रिकोण का मध्य बिन्दु = परावाक् (परावाक् = शान्ता शिव-शक्त्यंशों का साम्य भाव)। इस बिन्दु में शिव एवं शक्ति दोनों का अंश है। तथापि बिन्दु में शिव एवं त्रिकोण में शक्ति का प्राधान्य है; क्योंकि बिन्दु शिवरूप में एवं त्रिकोण शक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं।

शक्ति और शिव में अहं-बोध (अहं का ज्ञान)—आद्या शक्ति = सर्वतत्त्वमयी + प्रपञ्चस्वरूपा = नित्या। परमानन्दरूपा। चराचर जगत् का बीज। इसी आद्या शक्ति के मुकुर में शिव को अहं (मैं) का बोध होता है; क्योंकि शक्ति विमर्श है। शक्ति शिव का मुख है—'शैवीमुखमिहोच्यते'। अहं का ज्ञान ही शिव का स्वरूपज्ञान है।



—शक्तिरूपी दर्पण (विमर्श का दर्पण)
—शिव = प्रकाश।
—शक्ति के दर्पण में शिव को अहं का बोध होता है। शिव शक्ति के दर्पण में ही प्रतिबिम्बित होकर अपने को पहचानते हैं।

जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से घृत गलकर धारारूप में बहने लगता है, उसी प्रकार प्रकाशात्मक शिव के सम्पर्क में आकर विमर्शरूपा परमा शक्ति द्रुत होती है (गलकर बहने लगती है) और उससे परमानन्दमयी पीयूषधारा प्रवाहित हो उठती है। यही अमृतधारा चित्कला एवं ब्रह्मानन्द है।

शुद्ध प्रकाश एवं शुद्ध विमर्श 'बिन्दु' नहीं कहे जा सकते। निखिल प्रपञ्च को स्वान्त:विलीन करके स्थित परा शक्ति के साथ संसर्ग स्थापित करने पर अनुत्तर (अक्षर) प्रकाश 'बिन्दु' बन जाता है।

शिव का शक्ति के साथ संसर्ग क्या है? यह संसर्ग है—प्रकाश का विमर्श शक्ति में अनुप्रवेश। यही बिन्दु 'प्रकाशबिन्दु' कहलाता है। प्रकाशबिन्दु विमर्श शक्ति के गर्भ में स्थित रहता है। इसके बाद विमर्श शक्ति प्रकाशबिन्दु में अनुप्रवेश करती है, जिससे बिन्दु उच्छून हो जाता है। तब उससे बीजस्वरूप नाद निर्गत होता है। नाद में समस्त तत्त्व सूक्ष्मरूप से निहित रहते हैं। यह नाद आविर्भूत होकर त्रिकोण का स्वरूप धारण करता है। यही अहंसंज्ञक बिन्दुनादात्मक प्रकाश विमर्श का कलेवर है। इसमें प्रकाश शुक्ल बिन्दु है और विमर्श रक्त बिन्दु है। इन दोनों का पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक

साम्य मिश्रबिन्दु है। इसी साम्य की अन्य संज्ञा 'परमात्मा' है। इसे ही 'रवि' या 'काम' कहा गया है। अग्नि और सोम इसी काम के कलाविशेष हैं। अतः 'कामकला' कहने से तीनों बिन्दुओं का बोध होता है। इन तीनों बिन्दुओं का समष्टिभूत महात्रिकोण ही आद्या शक्ति का स्वस्वरूप है।

सारांश यह कि विमर्श शक्ति में प्रकाश का अनुप्रवेश होता है। (यही बिन्दु कहलाता है—प्रकाशबिन्दु)। प्रकाशबिन्दु में विमर्श शक्ति के अनुप्रवेश से तेजोमय एवं बीज-रूप नाद का उदय होता है। नाद की अभिव्यक्ति ही त्रिकोण है। महात्रिकोण में स्थित रविबिन्दु देवी का मुख है एवं अग्नि और सोमबिन्दु उनके स्तनद्वय हैं। साथ ही हकार की अर्धकला (हार्धकला) ही देवी की योनि है।

त्रिकोण का बिन्दु 'अहं' है। यह सदाशिव तत्त्व का स्वरूप है। मध्य बिन्दु एवं मूल त्रिकोण से ही सृष्टि के समस्त तत्त्वों एवं पदार्थों का आविर्भाव होता है।

त्रिकोण के बिन्दु को अहं क्यों माना जाय? इसलिए माना जाय, क्योंकि इस बिन्दु में 'अ' (शिव) एवं 'ह' (शक्ति) दोनों अवस्थित हैं।





हार्धकला—इसे हकार की अर्धकला या 'हार्धकला' या 'योनि' कहा जाता है। शिव-शक्ति के मिलन से उत्पन्न पीयूष-धारा प्रवाहित होने पर उससे जिस लीलारूप तरंग का आविर्भाव होता है, उसे ही 'हार्धकला' कहते हैं।

त्रिकोण भी आद्या शक्ति का वाक्स्वरूप ही है; क्योंकि त्रिकोण की तीनों रेखायें पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी हैं। केन्द्रस्थित बिन्दु ▽ पर मातृका का विलास या सदाशिव तत्त्व है। मध्यबिन्दु एवं त्रिकोण ही समस्त तत्त्वों एवं पदार्थों की उत्पत्ति के मूल केन्द्र हैं।

प्रत्येक स्तर के मूलतत्त्व या देवता की चरमावस्था में लिंगयोनि का समन्वित त्रिकोण-मध्यस्थ बिन्दु या बिन्दुगर्भित त्रिकोण ही दृष्टिगत होगा। इसी कारण प्रत्येक देवता के चक्र में सर्वत्र यह बिन्दु और त्रिकोण मूलस्थान में दृष्टिगत होगा।

त्रिकोण के विभिन्न स्पन्दनों से वासना के विभिन्न रूप एवं तदनुरूप चक्र की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का उदय होता है। महाबिन्दु अव्यक्त के गर्भ से अहं रूप में उदित होता है।

कला की निरन्तर और क्रमिक पूर्णता से बिन्दुरूप पूर्ण कला या अहं तत्त्व का विकास होता है एवं कला के निरन्तर एवं क्रमिक क्षय से अहंभावरहित आत्मभाव का भी उदय होता है।

कला की पूर्णता एवं कला का क्षय दोनों ही अवस्थाओं में पूर्णकला की एक कला नित्य ही साक्षी रूप में विश्व के प्रलयोपरान्त भी शेष रहती है और वही है— उन्मनी अवस्था में अवस्थित निर्वाणकला।

निर्वाणकला की भी निवृत्ति होने पर उदित निष्कल अवस्था का विकास ही शिव-शक्तितत्त्व है और वही महाबिन्दु है।

समस्त विश्व का पर्यवसान होने पर विराट 'अस्मि' स्वरूप (बिन्दुस्वरूप सदाशिव तत्त्व) का उदय होता है।

बिन्दुस्वरूप अहंकार ▽ (अहं) (बिन्दु में स्थित अ + हं शिव + शक्ति) के आत्मसमर्पण के विना महाबिन्दु (पूर्णाहन्ता) की उपलब्धि सम्भव नहीं है। शिवभाव जीवभावमुक्त है। जीव पाशमुक्त होने के पूर्व शिवरूप में स्थित नहीं होता और तबतक महाशक्ति का सन्धान भी सम्भव नहीं है। शिवभावोपरान्त उसमें शवभाव भी आवश्यक है; अन्यथा महाशक्ति का उन्मेष सम्भव नहीं। शवासन भी आवश्यक है;

जगत् तो बिन्दु का बाह्य प्रसारमात्र है। ऐन्द्रिय प्रत्याहार से बाह्य जगत् वाह्य बिन्दु में विलीन हो जाता है। लिंगात्मक आभ्यन्तरिक जगत् (जो कि विक्षुब्ध अन्तःकरण का बाह्य विलास है) विलीन होने पर कारणबिन्दु में लयीभूत हो जाता है।

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणरूप बिन्दुत्रय ही त्रिकोण के तीनों कोणों के तीन बिन्दु हैं। इन्हें सांकेतिक भाषा में 'अ' 'उ' 'म' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

तुरीय बिन्दु या महाबिन्दु—उपर्युक्त बिन्दुत्रय रेखारूप में भीतर की ओर प्रवाहित होकर एक महाबिन्दु में पर्यवसित होते हैं और वही 'तुरीय बिन्दु' या 'महाबिन्दु' कहलाते हैं। यही है—त्रिकोणस्थ महाबिन्दु। इसी महाबिन्दु में अनादि काल से शिव-शक्तिस्वरूप दम्पति (परम पुरुष-परा प्रकृति) का विलास चलता रहता है। इसी के नामान्तर हैं—राधाकृष्ण मिलन, बुद्ध-प्रज्ञापारमिता का युगनद्ध स्वरूप, (God, the Father + God, the Son + Holy spirit (Ghost) का आभ्यन्तरिक सम्मिलन।

त्रिकोण क्या है? त्रिकोण प्रणव का स्वरूप है। भगवती कुण्डलिनी भी इसी का नामान्तर है। कुण्डलिनी की प्रबुद्धता अर्थात् शिव-शक्ति का भेदविगलन एवं शिव-जीव की पृथकता का भी अन्त।

शक्ति-साधना का मूल सूत्र नादानुसन्धान कहा गया है। बिन्दु या कुण्डलिनी का विक्षोभ है—नाद का विकास। चिदाकाशावस्थित नाद शक्ति निम्न शक्तियों को विक्षुब्ध नहीं कर सकती—

कुण्डलिनी शक्ति और अकुल कमल—जब कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार के अधोदेश में ऊर्ध्वमुख सहस्रार (अकुल कमल) में रहती हैं, तब विश्वोत्तीर्णावस्था में अव्यक्त के नाम से अभिहित की जाती है। जाग्रत होने पर वह अधोमुखी सहस्रदल कमल में निमग्न हो जाती है, लयीभूत हो जाती है।

एक अकुल (ऊर्ध्वमुखी) से दूसरे अकुल (अधोमुखी सहस्रार) पर्यन्त यात्रा का पथ ही विश्व का मूलभूत चक्र है। चक्रों की संख्या कितनी है? इसका संख्या के द्वारा निर्धारण करना सम्भव नहीं है, तथापि अपने प्रयोजन या उद्देश्य हेतु उनका मूलाधार, स्वाधिष्ठान, विशुद्ध, लम्बिकाग्र एवं आज्ञा आदि के नाम से निर्धारण किया गया है। चक्र शक्ति के ही रूप हैं।

मूलाधार से आज्ञापर्यन्त समस्त चक्र 'अज्ञान राज्य' के चक्र हैं। उत्तरवर्ती चक्र पूर्ववर्ती चक्रों से उत्कृष्टतर हैं। आज्ञाचक्र का वेधन करने से ही ज्ञान का उदय हो पाता है।

आज्ञाचक्र और बिन्दुस्थान—आज्ञाचक्र बिन्दुस्थान नहीं है। आज्ञाचक्र के बाद तृतीय नेत्र, बिन्दु, ज्ञानचक्षु या बिन्दुस्थान है। बिन्दुस्थान ज्ञानराज्य का प्रथम द्वार या ज्ञानभूमि की सूचना का स्थान है। बिन्दुस्थान की सम्प्राप्ति का साधन है—चित्त को एकाग्र करके उसको उपसंहृत करना; क्योंकि चित्त की विक्षिप्त अवस्था में बिन्दु-प्राप्ति असम्भव है। क्षिप्त, मूढ़ एवं विक्षिप्त—तीनों चित्तावस्थायें बिन्दु की पहुँच के बाहर हैं।

बिन्दु एवं महाबिन्दु—बिन्दु की अवस्था में पदार्पणोपरान्त भी लक्ष्य अप्राप्त ही रह जाता है। बिन्दुभाव की अवस्था में व्यक्ति अहंभाव में प्रतिष्ठित होकर और आपेक्षिक द्रष्टा बनकर निम्नवर्ती प्रपञ्च को निरपेक्षभाव से देखता है। इसमें बिन्दु की विद्यमानता बनी ही रहती है।

महाबिन्दु में पहुँचने के लिए बिन्दु को तिरोहित होना आवश्यक है। अहंभाव का पूर्ण विसर्जन भी आवश्यक है; क्योंकि इसके पूर्व महाबिन्दु (शिवभाव) व्यक्त नहीं होता। एतदर्थ कलाओं का क्षय करके विगतकल होना पड़ता है। बिन्दु ही चन्द्रबिन्दु है। बिन्दु के बाद अर्धचन्द्र या बिन्द्वर्ध है।

रोधिनी—शक्ति की नौ कलाओं के क्षीण होने पर एक महावरण या महावरोधमयी अवस्था आती है, जिसे कि बड़े-बड़े देवता भी भेद नहीं पाते। इसी का नाम है—रोधिनी शक्ति। रोधिनी का भेदन होने पर ही नादभूमि आती है। नाद की अवस्था में चिति शक्ति अधिक स्पष्ट हो जाती है। नाद चैतन्य का अभिव्यञ्जक है। 'चैतन्यमात्मा' चैतन्य ही आत्मा है।

त्रिकोणस्वरूपा व्यापिका के बाद समना शक्ति है। यह शिवाधिष्ठित शक्ति समस्त ब्रह्माण्डों का भरण-पोषण करती है। यहाँ आरूढ़ शिव पञ्चकृत्यकारी हैं। समना चिदानन्दरूपा परा शक्ति है। समना से और आगे मन, काल, देश, तत्त्व, देवता, कार्य-कारणभाव सभी तिरोहित हो जाते हैं।

आज्ञाचक्र तक वर्णों के उच्चारण का आवर्तन एक मात्रा से कम नहीं हुआ करता; किन्तु बिन्दु में पहुँचने पर वह अर्धमात्रा हो जाता है। बाद में वह क्षीण होते-होते समना भूमि में एक क्षण हो जाता है। समना के आगे मन स्पन्दनशून्य हो जाता है। देश एवं काल रह ही नहीं जाते और सारा मानसिक विक्षोभ प्रशान्त हो जाता है? अतः इस समय निर्विकल्पक निवृत्तिभाव का उन्मेष होता है। यह भी निष्कल दशा नहीं है; क्योंकि इस दशा में भी एक चिद्रूपा कला (निर्वाण कला) शेष रह जाती है। यह 'द्रष्टा' एवं 'साक्षी चैतन्य' कही जाती है।

सांख्य का कैवल्य निर्वाण कला की प्राप्ति ही है। सांख्य की प्रकृति पञ्चदश-कलात्मिका और उसका पुरुष षोडशी या निर्वाणकलास्वरूप है—

पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्।

महाबिन्दु की अवस्था (शिवतत्त्व की प्राप्ति) इस कला से भी अतीत है।

महाबिन्दु की अवस्था—सांख्य के पुरुष की अवस्था से अतीत, सांख्य के कैवल्य से अतीत एवं एक कलामात्रावशिष्ट निर्वाणभूमि या उन्मना भूमि को अतिक्रान्त करके पूर्णाहन्तास्वरूप 'महाबिन्दु' की अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है।

महाशक्ति की अवस्था—पूर्णाहन्ता तो शिवभाव है और यही महाबिन्दु है। जब शिवभाव की स्फूर्ति का भी परिहार हो जाता है—बिन्दुक्षय होते-होते उन्मनी अवस्था का भी अवसान हो जाता है और बिन्दु शून्य हो जाता है तब पूर्णस्वरूप महाशक्ति का उदय होता है (अर्थात् महाबिन्दु के पूर्ण रूप में अवस्थित होने पर उसमें परा शक्ति की अभिव्यक्ति होती है)। महाबिन्दु के रिक्त हो जाने पर परमशिव का आविर्भाव होता है। महाबिन्दु पूर्ण एवं रिक्त होने की अवस्था नित्यसिद्ध है। इसकी रिक्त दशा 'अमावस्या' एवं पूर्ण दशा 'पूर्णिमा' है।

काली और षोडशी शक्ति में भेद—महाशक्ति-प्राधान्य अंगीकार करने पर अमा-वस्योन्मुख होने वाली प्रवृत्ति ही काली शक्ति है एवं पूर्णिमोन्मुखी होने वाली प्रवृत्ति षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी एवं श्रीविद्या कहलाती है। कालीकुल एवं श्रीकुल में यही भेद है।

महाशक्ति को प्रधान स्वीकार करने पर तो उक्त अवस्थायें आयेंगी, किन्तु शिव-प्राधान्य स्वीकार करने पर यह अवस्था अनिर्वाच्य कही जाती है।

शक्ति की अवस्थायें—शक्ति की तीन अवस्थायें है—सकल अवस्था, निष्कल अवस्था एवं मिश्र अवस्था।

उपासना में वरीयता का क्रम—उपासनायें क्रमशः तीन प्रकार की होती हैं—सकल भावोपासना = निकृष्ट उपासना। मिश्रभावोपासना = मध्यम उपासना एवं निष्कल भावोपासना = श्रेष्ठ उपासना; लेकिन हमारी व्यावहारिक (सामान्य) उपासनायें इन भेदों में से किसी में भी परिगणित नहीं हैं।

उपासना की अधिकार-प्राप्ति—गुरु-कृपा से कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन एवं उसका सुषुम्णा-पथ में प्रवेश होने पर ही उपासना का अधिकार मिलता है; अत: हम लोगों की कोई भी उपासना उक्त उपासनाभेदों में नहीं आ पाती।

अधमाधम उपासना—इन्द्रियपञ्चक, मन एवं प्राण की गति को अवरुद्ध करके कुलपथ में प्रवेश किये विना निष्पादित पूजा देवी की अधम उपासना भी नहीं कही जा सकती।

निकृष्ट उपासना—मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक निष्पादित शक्ति की चक्रेश्वरी के रूप में उपासना निकृष्ट उपासना है।

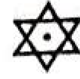
अपरा पूजा—मूलाधार चक्र से सहस्रदल कमलपर्यन्त आवरणदेवतासहित देवी-चक्र की उपासना (कर्मात्मक) अपरा पूजा है। षट्चक्रों के क्रियारूप अनुष्ठान का आश्रय लिये विना निष्पादित पूजा अभेदज्ञान को उदित नहीं कर सकती। भगवान् शंकर भी भगवती की अपरा पूजा करते हैं। अत: चक्रपूजा त्याज्य नहीं है।

निम्नभूमि की उपासना → अधिकार-बल में वृद्धि → भेदाभेदावस्था की मध्यम भूमि में अवस्थित होकर पूजन → ज्ञान में कर्म की परिसमाप्ति → अद्वैतात्मक अभेद ज्ञान → परापूजा का उदय। ब्रह्मज्ञान ही परा पूजा है।

उपासना के भेद—उपासना के तीन भेद हैं—द्वैत उपासना, द्वैताद्वैत उपासना एवं अद्वैत उपासना।

शाक्तोपासना में बीजतत्त्व, मन्त्रविज्ञान, नाद-बिन्दु-कला का स्वरूप-विमर्श, मन्त्र-चैतन्य, दीक्षा, गुरु, अध्वशुद्धि, मातृका, पीठविमर्श, न्यास, प्राणप्रतिष्ठा आदि अनेक तत्त्व अन्तर्भूत हैं।





त्रयोदश अध्याय

यन्त्र, चक्र एवं पीठ तथा शक्ति-साधना

यन्त्र-शक्ति—'यन्त्र' शक्तियों के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होने एवं अनन्त शक्तियाँ प्राप्त करने का सोपान है। यन्त्र 'शक्ति' का आसन है।

यन्त्र का स्वरूप—भारतीय दार्शनिकों एवं रहस्यवेत्ता ऋषियों ने विश्व की समस्त शक्तियों की परम केन्द्रस्वरूपा एवं आराध्या परा शक्ति एवं शक्तिमान से तादात्म्य प्राप्त करके अनन्त शक्तियाँ प्राप्त करने के लिये शक्ति एवं शक्तिमान के घर, उनके आसन एवं उनके शरीर को पाने का साधन खोजा। उनका यही घर, आसन एवं (शिव-शक्ति का) शरीर 'यन्त्र' कहलाता है—'चक्रः श्रीशिवयोर्वपुः।' यही शक्ति की स्फुरत्ता भी है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।।

(योगिनीहृदय-1.9)

यन्त्र शिव-शक्ति का विकास और उनका संयोग है—

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः ।।

(योगिनीहृदय-1.8)

यन्त्र चिदानन्दघन है—

नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्।।

अर्थात् नवयोन्यात्मक यह यन्त्र (चक्र) चिदानन्दघन है।

चक्रोत्पत्ति (यन्त्राविर्भाव)—जब शक्ति अपनी स्फुरत्ता का साक्षात्कार करती है तभी चक्र की उत्पत्ति हो जाती है—

स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः।

यन्त्र एवं पीठ शक्ति—जो यन्त्रित करे, वही 'यन्त्र' है। जहाँ भी देवशक्तियों के अवस्थित होने का समुचित आसन निर्मित होता है, वही 'पीठ' कहलाता है। यन्त्र

और चक्र भी देवताओं के प्रतिष्ठित या अवस्थित किये जाने का स्थान है। तत्त्वत: यन्त्र, चक्र एवं पीठ में कोई भेद नहीं है, तथापि स्थूल रूप में कुछ अन्तर अवश्य है। सारे तीर्थ पीठ हैं, किन्तु वे यन्त्र एवं चक्र नहीं हैं, किन्तु सारे यन्त्र एवं चक्र पीठ हैं। पीठ सत्त्वमूलक होने के कारण आनन्दप्रदाता होते हैं। महर्षि अंगिरा कहते हैं—

पीठमानन्दप्रदं सत्त्वप्राधान्यात्। (1.20)

यन्त्र और उसका विश्वात्मक स्वरूप—यन्त्र विश्वात्मक एवं विश्वातीत शिव-शक्ति के विश्वात्मक एवं विश्वातीत दोनों स्वरूपों का रूपायन है। यन्त्र देवी-देवताओं, उनकी शक्तियों, उनके धामों, उनके वाहनों, ब्रह्माण्डों, अनेक शक्ति-स्तरों, मन्त्रों, मन्त्रेश्वरों, मन्त्रमहेश्वरों, योगिनियों, यक्षिणियों, गन्धर्वों, यक्षों, किन्नरों, उनकी पुरियों, तीर्थों, तीर्थ-शक्तियों, पिण्डस्थ चक्रों, यन्त्र-चक्रों, त्रिगुणों, पञ्चभूतों, इन्द्रियों, तन्मात्राओं आदि का केन्द्र है।

यन्त्र को भगवान् के बैठने का आसन भी कहा गया है। यन्त्र शक्ति का स्थूल एवं विश्वात्मक शरीर भी है। श्रीचक्र को ही ले लीजिये। यह कामेश्वर और कामेश्वरी का शरीर है—'श्रीचक्रं शिवयोर्वपु:।'

चक्र या यन्त्र शक्ति एवं शक्तिमान के निवास करने का घर है। चक्र या यन्त्र का मूल स्वरूप अकथ्य महिमापूर्ण है। यह अनन्त सृष्टि-चक्र का रेखात्मक एवं संक्षिप्त मानचित्र है। यामल में कहा गया है कि श्रीयन्त्र (यन्त्रराज) के दर्शनमात्र से साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है। यन्त्रराज के दर्शनमात्र से निम्न उपलब्धियाँ या फल प्राप्त हो जाते हैं—

1. 100 यज्ञ करने का फल।
2. महाषोडश दान करने का फल।
3. साढ़े कोटि तीर्थों में स्नान करने का फल।

सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत् फलं समवाप्नुयात्।
तत् फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

महाषोडशदानानि कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत् फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमश्नुते।
तत् फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

सुभगोदयवासना में कहा गया है कि जो अहन्ता एवं इदन्ता का बीज है, जो रसात्मक है, जो शिव-शक्तिमय है और जो विश्वाकार है, वही चक्र है—वही यन्त्र है।

शक्ति, पिण्ड एवं चक्र—महाशक्ति परब्रह्मरूप से अवस्थित रहती है—

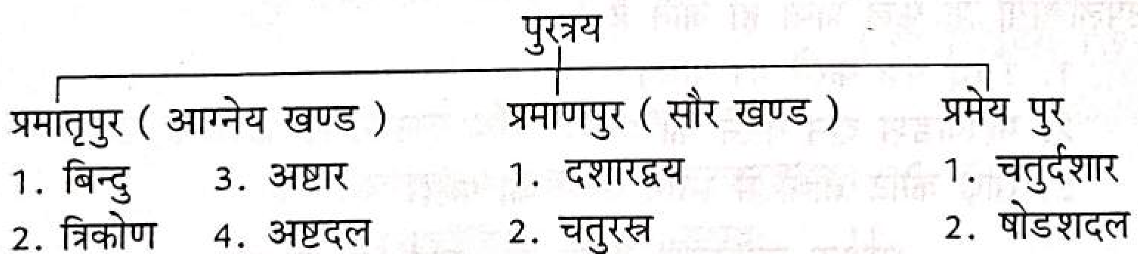
अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्तिः।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकम्या त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।।

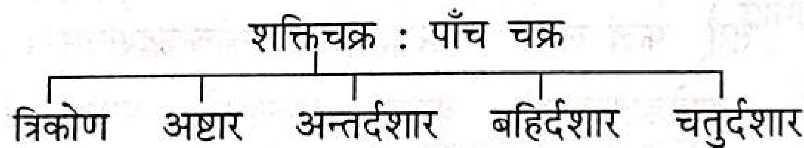
जगत् के परम कारण में संलीन हो जाने के कारण उस समय ब्रह्म एकमात्र स्वरूपावस्थित रहता है। इस अवस्था की आख्या 'महाबिन्दु' है। महाबिन्दु वह सृष्टिप्राक् अवस्था है, जब भास्य-भासक, स्रष्टव्य-स्रष्टा, ज्ञाता-ज्ञेय आदि कुछ भी नहीं रहता। इसे ही शिवविश्राम की अवस्था कहते हैं—

सुप्त्याह्वयं किमपि विश्रमणं शिवस्य।[1]

पिण्ड एवं श्रीचक्र : अन्तःसम्बन्ध

शरीर में स्थान	चक्र का नाम	दलसंख्या	चक्र का नाम
1. भ्रूमध्य	आज्ञा चक्र	द्विदल	बिन्दु
2. लम्बिका	इन्द्रयोनि	अष्टदल	त्रिकोण
3. कण्ठ	विशुद्धि चक्र	षोडशदल	अष्टकोण
4. हृदय	अनाहत चक्र	द्वादशदल	अन्तर्दशार
5. नाभि	मणिपूर चक्र	दशदल	बहिर्दशार
6. बस्ति	स्वाधिष्ठान चक्र	षड्दल	चतुर्दशार
7. मूलाधार	मूलाधार चक्र	चतुर्दल	अष्टदल
8. तदधोदेश	कुल	षड्दल	षोडशदल
9. तदधोदेश	अकुल	सहस्रदल	भूपुर





यन्त्राविर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टियाँ—योगिनीहृदय में कहा गया है कि जब परमा शक्ति अपनी स्फुरत्ता का साक्षात्कार करती है तब चक्र (यन्त्र) का आविर्भाव हो जाता है।

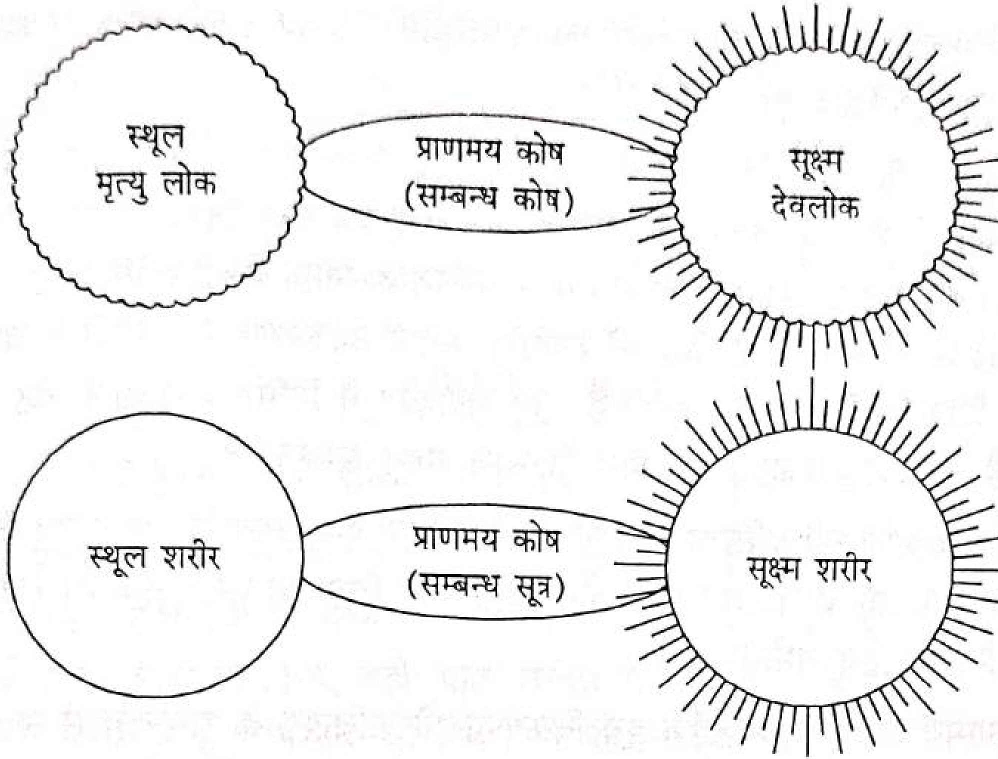
महर्षि अंगिरा दैवी मीमांसादर्शन में कहते हैं कि यन्त्र (पीठ) का उदय प्राणमय कोश में होता है। पीठ भी यन्त्र के ही प्रकार हैं।

स्थूल शरीरात्मक अन्नमय कोष एवं सूक्ष्मशरीर के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने

---

1. मातृकाचक्रविवेक

वाला सेतु प्राणमय कोष है। यह मृत्यूपरान्त जीव के साथ परलोक भी जाता है। यही कोष मृत्युलोक एवं सूक्ष्म दैवीलोक में सम्बन्ध स्थापित रखता है।



प्राणमय कोष की सहायता से दैवी शक्ति का विकाशक या देवाताओं के आसन का उपयोगी जो आवर्त बनता है, उसे पीठ कहते हैं—

देव्याः शक्तेर्विकाशस्य देवानामासनस्य वा।
उपयोगी जायतेऽसावावर्तः पीठ उच्यते।।

पीठ का उदय प्राणमय कोष में होता है—

पीठस्याविर्भावः प्राणमये।(दैवी मीमांसादर्शन-1.16)

प्राणमय कोश की सहायता से पीठ का निर्माण होता है एवं पीठ दैवी शक्तियों का आसन है।

भगवान् सूर्य ऋषियों से कहते हैं कि—सूक्ष्म दिव्य लोक के साथ स्थूल लोक का सम्बन्ध-स्थापन करने वाला प्राणमय कोष है। वह ज्ञातव्य है। यदि कोई प्राणमय कोष में पीठ-स्थापना कर सके तो वह मेरी दैवी शक्ति का अनुभव कर सकेगा। दैवी शक्तियों का आसनरूपी पीठ प्राणमय कोष की सहायता से निर्मित होता है और उसी पीठ के ऊपर देवता आदि का आविर्भाव हुआ करता है—

सूक्ष्मेण दिव्यलोकेन स्थूललोकस्य देहिनः।
सम्बन्धकारको ज्ञेयः कोशः प्राणमयश्चरः।।

यदि प्राणमये कोशे पीठं स्थापयितुं क्षमः।
कथञ्चित् स हि मे शक्तिं दैवीमनुभवत्यसौ।।

भारतीय ऋषियों ने मृत्युलोक में देवताओं को बुलाने और देवलोक को मृत्युलोक पर उतारने के लिए पीठस्थापना एवं चक्र-साधना का अवलम्बन लिया। इस प्रकार पीठ या चक्र देवताओं को पृथ्वी पर उतारने का 'एयरोड्रोम' है। यह उनकी शक्ति के प्रतिबिम्ब को पकड़ने का रेडार है।

पीठ देवयोनि का अधिष्ठान है—'तदधिष्ठानं देवयोने:।'[1] जब प्राणमय कोश में कारणविशेष से पीठ उत्पन्न होता है तब वही पीठ सभी प्रकार के देवयोनियों का अधिष्ठान बन जाता है। पीठ पर आकर देवयोनियाँ अधिष्ठित हो जाती हैं। देवयोनियों को स्थायी रूप से स्थित कराना हो तो पीठ की स्थापना कराना आवश्यक है (गाँवों में जो प्रेत-पूजा के लिए मिट्टी का चौरा बनाते हैं, वह प्राणकोष में निर्मित होने वाले पीठ की ही नकल है)। उपासनाकाण्ड का पीठ के साथ गहन सम्बन्ध है।

पीठाविर्भाव की प्रक्रिया—जगत् में दो शक्तियाँ हैं—आकर्षण शक्ति एवं विकर्षण शक्ति या राग और द्वेष। आकर्षण रजोमूलक है और विकर्षण तमोमूलक है। राग रजोमूलक है और द्वेष तमोमूलक है।

प्राणमय जगत् में आकर्षण एवं विकर्षणरूपी शक्तिद्वय के समन्वय से सत्त्वगुण-मूलक और देवाधिष्ठानात्मक पीठ का आविर्भाव होता है। महर्षि अंगिरा कहते हैं कि दोनों शक्तियों के समन्वय से उसका आविर्भाव होता है—

तदाविर्भाव: शक्त्यो: साम्यात्। (अं. दैवी मी.-1.18)

चक्र—पीठ को उत्पन्न करने के लिए जो स्वाभाविक या अस्वाभाविक कौशलपूर्ण क्रिया निष्पादित की जाती है, उसे योगी 'चक्र' कहते हैं—

स्वाभाविक्यस्वभावा वा पीठस्योत्पादनाय या।
विधीयते क्रिया सम्यक् सत्सु कौशलपूरिता।
चक्रं तदेव सम्प्राहु: योगतत्त्वविशारदा:।।

मानवपिण्ड पीठ बनने या स्वयं अपने शरीर तथा प्राण में पीठोत्पत्ति करने की सामर्थ्य रखता है—

नात्र कश्चन सन्देहो विद्यते विश्वभूतिदा:।
पीठोत्पादकसामर्थ्यं मर्त्यपिण्डो बिभर्त्यसौ।।

पीठ के भेद

स्थावर पीठ	सहज पीठ	दैवी पीठ	यौगिक पीठ
(तीर्थ आदि)	(नर-नारी के संगम से उत्पन्न पीठ)	(इन्द्रलोक आदि लोक)	(भगवद्विग्रह या यन्त्र)

1. दैवी मीमांसादर्शन

चक्र के भेद

सहज चक्र (आवागमन चक्र आदि चक्र)	ब्रह्माण्ड चक्र (ग्रहोपग्रह नक्षत्रादिक)	सगर्भचक्र (ब्रह्मचक्र, शक्तिचक्र आदि)	अगर्भ चक्र (मन्त्रशुद्धि-क्रिया शुद्धिशून्य चक्र)
स्वाभाविक चक्र।		अस्वाभाविक चक्र।	
अगर्भ चक्र = अगर्भं पितरः तद्वन्नूनमभ्युदयप्रदम्।		याथार्थ्यानुष्ठितं चक्रं सगर्भं मुक्तिदं भवेत्।	

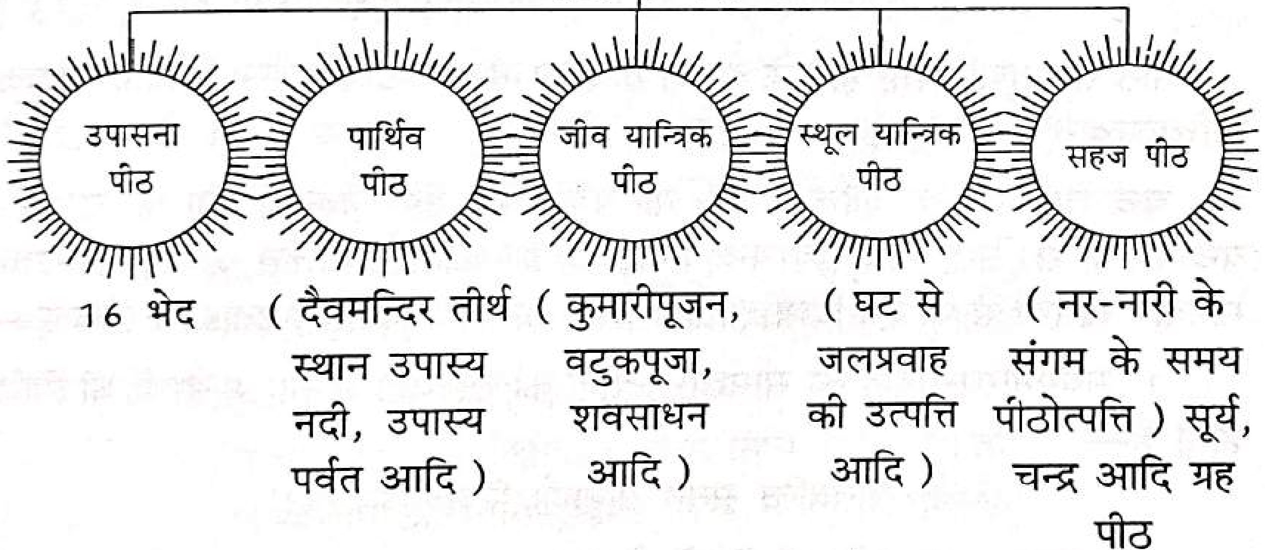
पीठशुद्धि के प्रकार

देशशुद्धि — कालशुद्धि — मनःशुद्धि — क्रियाशुद्धि — द्रव्यशुद्धि

ध्यातव्य बिन्दु—ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड के प्राणमय विभाग में जहाँ कहीं भी आकर्षण एवं विकर्षण शक्तिरूपिणी परस्पर द्वन्द्वशक्तियों का समन्वय अपने-आप या कौशल कर्म से उत्पन्न हुआ करता है, वहीं 'पीठ' उत्पन्न हो जाता है। द्वन्द्व शक्तियाँ रजस्तमो-मूलक हैं और वे ही समन्वय की स्थिति में पीठनिर्माण करती हैं—

'ते तु रजस्तमोमूले।' (दैवी मीमांसादर्शन-1.19)

पीठों के भेद



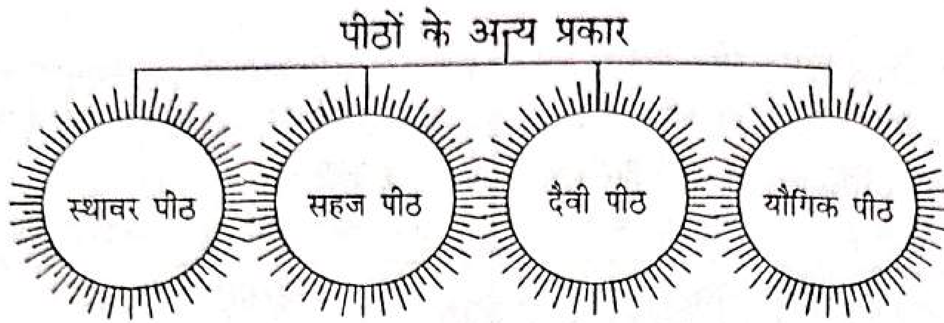
पीठों की संख्या तो असंख्य है; किन्तु उन्हें पाँच भागों या भेदों में बाँटा गया है।

पीठ का महत्त्व—अधिष्ठान-स्थान होने के कारण पीठ उपासना के सहायक हैं—'तदुपास्तावपेक्ष्यमधिष्ठानभूमित्वात्।'[1] पीठ देवताओं का अधिष्ठान है; इसीलिए इसे उपासना काण्ड में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

---

1. महर्षि अंगिरा : दैवी मीमांसादर्शन (1.22)

पीठों के अन्य प्रकार



उपासना-हेतु पीठ अनिवार्य हैं।

उपासना के भेद—

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना
2. सगुण ब्रह्म की उपासना
3. लीलविग्रह की उपासना
4. पितृ, देवता एवं ऋषिगण की उपासना
5. क्षुद्र देवों (प्रेतादि) की उपासना

उपास्य एवं उपासक के मध्य सम्बन्ध-स्थापनार्थ पीठ सहायक तत्त्व है। ऋषि, देवता, पितर, असुर, प्रेत—आदि सभी पीठ में अधिष्ठित किये जा सकते हैं। उपासना के सोलह दिव्यदेश प्रकारान्तर से पीठ ही हैं।

पीठ स्थूल-सूक्ष्म जगत् एवं सत्ताओं का संयोजक होने के कारण दैवजगत् का प्रमापक है—

दैवजगतः प्रमापकं स्थूलसूक्ष्मसंयोगकत्वात्।

(अंगिरा : दैवीमीमांसा दर्शन-1.23)

पीठ सत्त्वगुणविशिष्ट होने के कारण तीर्थ का भी प्रतिष्ठापक है—'तीर्थप्रतिष्ठापकं सात्त्विकत्वात्।' (दैवी-1.24)

यन्त्रतत्त्व—'यन्त्र' शक्ति-साधना का पर्याय है। यह शक्ति-साधना का पीठ है। यन्त्रोपासना से सिद्ध किये गये यन्त्र सैकड़ों प्रकार की इन्द्रियातीत अवाङ्मनसगोचर मानवीय सामर्थ्य से परे एवं दिव्य शक्तियाँ प्रदान करते हैं। कतिपय उदाहरण लीजिए—

1. सर्वमनोरथ-सिद्धि का सामर्थ्य—यन्त्रों की सहायता से सारे मनोरथों की सिद्धि होती है—

यैः साधयन्ति सततं मन्त्रिणो निजवाञ्छितम्।[1]

2. समस्त आपदाओं एवं विघ्नों से रक्षा—

मार्णे लिखेत् सार्णयुतं स्वसाध्यं वर्गाट्यपत्रे स्वरकेशरेऽब्जे।
बहिः सदीर्घैर्गगनैः प्रवीतं रक्षाकरं यन्त्रमिदं प्रशस्तम्।।

3. सभी को वशीकृत करने का सामर्थ्य—

पुटीकृते भूमिपुरस्य युग्मे मायां लिखेत् मध्यगसाध्ययुक्ताम्।
वकारकोणेन महीपुरेण संवेष्टितं वश्यकरं तदुच्चैः।।

1. शारदातिलक (24.1)

4. मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य[1]—

मध्ये सार्णविदर्भितं प्रपुटितं मृत्युञ्जयं त्र्यक्षरैः
शान्तःस्थं निजसाध्यनाम विलिखेत् किञ्जल्कसंस्थान् स्वरान्।
पत्रेष्वष्टसु नाममन्त्रपुटितं वर्गांस्तदग्रेष्वथो
यन्त्रं पद्मपुटीकृतं निगदितं मृत्युञ्जयाख्यं परम्।।

5. विषज्वरनाश, शिरोरोग-नाश, विजय-कान्ति-पुष्टि आदि प्रदान करने का सामर्थ्य—

विषज्वरशिरोरोगनाशनं श्रीजयप्रदम्।
कान्तिपुष्टिप्रदं सर्वकामार्थसाधकम्।।

यह यन्त्र समस्त कामनाओं को सिद्ध करता है।

6. ज्वर दूर करने का सामर्थ्य—

7. भीषण से भीषण ज्वरों को निर्मूल करने का सामर्थ्य—

साध्याढ्यचिन्तामणिमग्निगेहे विलिख्य बाह्येऽनलगेहवीतम्।
प्रवेष्टयेत् तत् बहिरष्टवर्णं मन्त्रेण यन्त्रं ज्वरशान्तिदं स्यात्।।

8. समस्त ग्रह-बाधाओं एवं ज्वर-बाधाओं के निवारण का सामर्थ्य—

संप्लवसः प्लावयसो मन्त्रोऽष्टाक्षर ईरितः।
एष एव भवेद् दक्षो ग्रहज्वरविनाशने।।

9. सर्पों को अन्त करने का सामर्थ्य—

तारठद्वयपुटं कुरुकुल्ले मन्त्रमत्र हुतभुग्गृहयुग्मे।
मध्यकोणविवरेषु लिखेत्तद्यन्त्रमाशु विनिहन्ति भुजङ्गान्।।

ॐकारमायादिकमेखलेऽग्निवधूमनुं वह्निगृहस्य युग्मे।
मध्यादिकोणेषु विलिख्य भूर्जे यन्त्रं विदध्यात् रिपुनागहारि।।

10. पिशाच-भूत नष्ट करने का सामर्थ्य—

हुताशगेहद्वितयं लिखित्वा वैवस्वताय द्विठवर्णमन्त्रम्।
मध्यान्तमाकल्पितमिन्दुबिम्बे यन्त्रं महाभूतपिशाचवैरि।।

11. शत्रुओं में विद्वेष बढ़ाने का समर्थ्य—

नामालिख्य मकारकोष्ठयुगले कोणेषु कस्यालिखेत्
मन्त्रज्ञो ङत्रणान्तकारसहितान् धूमावती यन्त्रगान्।
वीतं घुर्मुटिकादिना परमिदं वायुत्रिगेहावृतं
यन्त्रं प्राणपरेतभूमिनिहितं विद्वेषणं स्याद् द्विषाम्।।

---

1. ग्रन्थ के विस्तारभय से इन श्लोकों का अर्थ एवं यन्त्र के आकार पर प्रकाश नहीं डाला जा रहा है।

12. दूसरों को अकालमृत्यु देने (मारण करने) का सामर्थ्य—

प्राक् प्रत्यग्दक्षिणोदग्विधिवदभिलिखेत् स्पष्टरेखाचतुष्कं
कोणोद्यच्छूलयुक्तं वलययुगयुतं मध्यपूर्वं तदन्तम्।
मन्त्रस्याऽर्णान् परस्तात् वसुपदविवरेष्वष्टवर्णान् लिखित्वा
शूलोद्यद्द्वादशार्णं विधिवदभिहितं प्रेतराजस्य यन्त्रम्।।

यमराजसदोमेय यमेदोरुणयोदय।
यदि योनिरपक्षेय यक्षेयवनिरामय।
उक्तो धूमान्धकाराय स्वाहेत्यष्टाक्षरो मनुः।।

धूमान्धकाराय स्वाहा (अष्टाक्षर मन्त्र)

ॐ ष्ट्रीं दंष्ट्रा विकृताननाय स्वाहा (द्वादशाक्षर मन्त्र)

मन्त्र-यन्त्र का स्वरूप[1]—

प्रणवः ष्ट्रीं ततो दंष्ट्रा तत्परं विकृतान्ततः।
आननाय वधूर्वह्नेर्मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः।।

* * * * * *

विषवृक्षस्य फलके नृचर्मणि पटेऽथवा।
आलिख्याष्टविषैरेतत् श्मशाने निखनेत् निशि।
ज्वरेण महताविष्टो मूर्च्छाकुलितमानसः।
रिपुर्गच्छति पक्षेण यमलोकं न संशयः।।

(15 दिनों में शत्रु की अवश्यमेव मृत्यु हो जाती है।)

13. वशीकरण, ग्रह-बाधा-दूरीकरण एवं क्षुद्रमारण की शक्ति को नष्ट करने एवं अन्य सामर्थ्य प्राप्त करना—

आख्यां तुम्बुरुमध्यतः स्मरगतामालिख्य जम्भादिकां
विद्यां दिग्गतपत्रकेष्वथ लिखेत् देवीर्दलेषु स्मरम्।
कोणस्थेषु सनामकं बहिरतः पाशाङ्कुशाभ्यां वृतं
यन्त्रं वश्यकरं ग्रहादिभयहृत् क्षुद्राभिचारापहम्।।

14. समस्त क्षुद्र रोगों को नष्ट करने का सामर्थ्य (सञ्जीवन यन्त्र का स्वरूप)—

मध्ये वर्णं भृगुस्थं विलिखतु विधिवत्साध्यनाम्ना समेतं
किञ्जल्केषु स्वराः स्युर्वसुदलविवरेष्वालिखेन्मध्यबीजम्।
काद्यर्णान् केसरेषु द्विगुणवसुदलेष्वर्पयेत् मध्यबीजं
यन्त्रं सञ्जीवनाख्यं सलिलपुरगतं क्षुद्ररोगापहारि।।

---

1. ग्रन्थ-विस्तार के भय से श्लोकार्थ—यन्त्राकार प्रस्तुत नहीं किये जा रहे हैं।

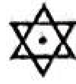
15. सौभाग्य, लक्ष्मी एवं विजय-प्राप्ति का सामर्थ्य (मन्मथ यन्त्र)—

कामं लिखेत्साध्ययुतं सरोजे स्वरोल्लसत् केसरवर्गपत्रे।
उदीरितं मन्मथयन्त्रमेतत्सौभाग्यलक्ष्मीविजयप्रदायि।।

16. वशीकृत करने का सामर्थ्य—

शक्तौ नाम लिखेत् चतुर्भिरभितो बीजैः समावेष्टयेत्
वीतं शक्तिमनोभवाङ्कुशमनुप्रोंबीजकैः पिष्टजे।
रूपे साध्यनरस्य जप्तपवने त्रिस्वादुना भर्ज्य तत्
खादेत्तस्य वशं प्रयाति नियतं साध्यः सदा दासवत्।।





चतुर्दश अध्याय

प्राण-विज्ञान एवं शक्ति-साधना

प्राण शक्ति सच्चिदानन्द ब्रह्म की प्रत्यक्ष शक्ति है। आधिदैविक धरातल पर प्राण-तत्त्व हिरण्यगर्भ है। सूर्य बाह्य प्राण है—'आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणः' (प्र. उप.)। आकाश की शक्ति समान प्राण है। वायु में व्यान और अग्नि में उदान प्राण है (प्र. उप.)।

सृष्टि के पूर्व संवित् शक्ति प्राणशक्ति के रूप में परिणत हो जाती है; अतः प्राणोपासना (प्राण-साधना) शक्ति की साधना है। कहा गया है कि 'सृष्टिः प्राक् संवित् प्राणे परिणता'। प्राण की उत्पत्ति ब्रह्म या आत्मा से हुई है—

स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु नाम च। (प्रश्नोपनिषद्-6.4)

अथर्ववेद (प्राणसूक्त, मं.-1) में ऋषि ने प्राण को नमस्कार करते हुये कहा है कि प्राण के वश में ही सभी हैं। वही सर्वेश्वर है और उसी में सभी प्रतिष्ठित हैं—
ॐ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे, यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्।

प्राण ही सभी में श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ है—'प्राणो वा व ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।' (छा. उप.)।

उपनिषदों की प्राणतत्त्वविषयक दृष्टि—उपनिषदों में कहा गया है कि प्राण आत्मा की सन्तान है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं, उसी प्रकार आत्मा से प्राण निकलते हैं—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः।
(बृहदारण्यकोपनिषद्-2.1.20)

प्राण ब्रह्म का ही रूपान्तरण है और उसी से उत्पन्न हुआ है—
एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।[1]
स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां एवं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नम्।
(प्रश्नोपनिषद्-6.4)

आत्मन एषः प्राणो जायते। (प्रश्नोपनिषद-3.3)

---

1. मुण्डकोपनिषद्-2.1.3

प्राण से ही समस्त सृष्टि सत्ता में आई—

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।

(कठोपनिषद्-6.3)

सृष्टि के पूर्व जिसे असत् कहा गया है, वे ऋषि थे। प्राण ही ऋषि थे—

तेऽग्रेऽसदासीत् तदाहुः के ते ऋषयः इति, प्राणा वा ऋषयः।

(शतपथब्राह्मण)

तैत्तिरीयोपनिषद् की प्राणतत्त्वविषयक दृष्टि—तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है कि 'प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते।' अर्थात् प्राणिक शक्ति सकल भूतों की आयु है। वही सर्वायु है, जीवन का विश्वतत्त्व है।

प्राण विश्व के समस्त प्राणियों की आयु (जीवन) है। वह सभी की आयु है।

प्राण संवित् शक्ति का रूपान्तरण है।

श्री अरविन्द की प्राणतत्त्वविषयक दृष्टि—योगिराज अरविन्द घोष ने The Life Divine नामक अपने (अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के) ग्रन्थ में लिखा है—

1. मन शक्ति के एक विशिष्टीकरण में अभिव्यक्त हुआ है। इसे ही हम 'प्राण' कहते हैं।

2. शरीर की मृत्यु हो जाने पर भी प्राण की मृत्यु नहीं होती।

3. प्राण एक सर्वव्यापी क्रियात्मक ऊर्जा है।

4. प्राण भौतिक विश्व के सारे रूपों का स्रष्टा है।

5. प्राण के स्थूल एवं भौतिक रूप उसकी बाह्यतम क्रिया हैं। प्राणतत्त्व तो अविनाशी एवं शाश्वत है।

6. यदि विश्व की समस्त आकृति नष्ट-भ्रष्ट हो जाय तब भी प्राण अस्तित्व में रहेगा और वह उसके स्थान पर एक नव्य जगत् उत्पन्न करने में समर्थ रहेगा।

7. जब तक कि कोई उच्चतर शक्ति प्राण को विश्राम करने के लिए रोककर नहीं रखती तब तक प्राणशक्ति अपने को कभी विश्राम करने के लिए नहीं रोकेगा; प्रत्युत अविराम सृजन करता जायेगा।

8. प्राण वह शक्ति है, जो जगत् में रूपों का निर्माण, संरक्षण एवं विनाश करती है।

9. प्राण ही पृथ्वी के रूप में, वनस्पति के रूप में एवं उन पशुओं के रूप में अभिव्यक्त करती है, जो कि वनस्पति-निहित प्राणशक्ति को खाकर जीवित रहते हैं।

10. इस जगत् में सारा जीवन ही विश्वगत प्राण है। यही जड़तत्त्व का रूप ग्रहण करता है। प्राण सर्जनकारी तत्त्व है।

11. प्राण शक्ति की क्रीड़ा का विशेष परिणाम है।

12. प्राण श्वास भी है; किन्तु विश्व प्राण की श्वास के रूप में है।

13. शक्ति की क्रीड़ा के तीन क्षेत्र हैं—पशु जगत्, वनस्पति जगत् एवं जड़ जगत्। पशु-जगत् में मानव एवं अन्य इतर सारे प्राणी आते हैं।

14. धातु-जगत् में भी प्राण उसी प्रकार है, जैसे पशु-जगत् में। यदि उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया होती है तो यह प्राण का ही लक्षण है; अतः वनस्पति एवं धातु (जड़ कही जाने वाली वस्तु) में भी प्राण है।

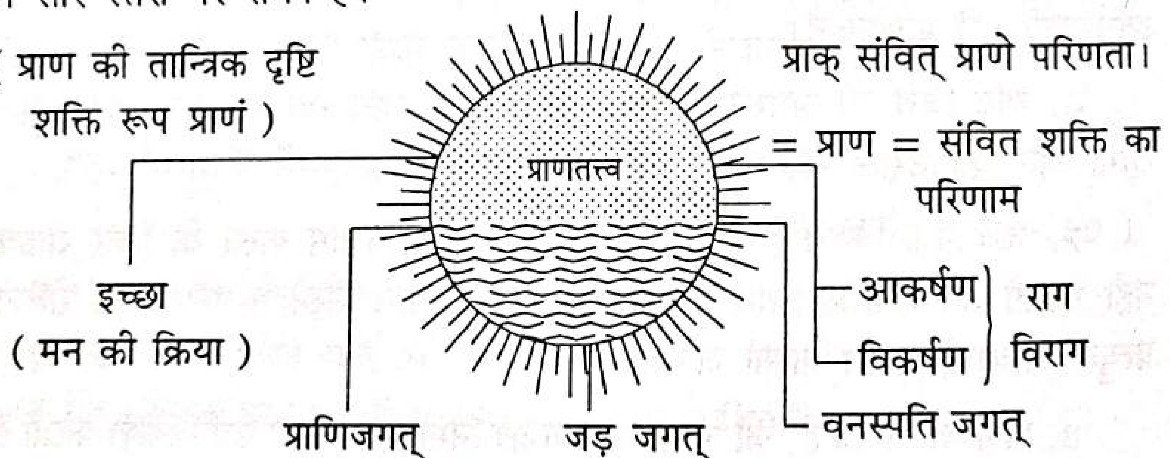
15. प्राण सर्वत्र व्याप्त है। वह चाहे गुप्त रूप में हो या व्यक्त रूप में, संगठित हो या असंगठित, संवृत हो या विवर्तित; किन्तु वह विश्वगत, सर्वव्यापी एवं अविनाशी है। उसके रूप एवं संगठन अवश्य भिन्न-भिन्न हैं।

16. जड़ वस्तु, पदार्थ, वनस्पति, पशु या धातु—सभी में वही निरन्तर सक्रिय शक्ति सञ्चित एवं क्रियारत है।

17. मानस ऊर्जा, प्राण ऊर्जा एवं जड़ ऊर्जा—ये एक ही जगत्-शक्ति की विभिन्न गति-धारायें हैं।

18. प्राण एक विश्वव्यापी शक्ति की सक्रिय क्रीड़ा है। इसमें स्नायविक प्राणसत्ता एवं मानसिक चेतना—दोनों अन्तर्निहित हैं।

19. स्वयं परमाणु में भी कुछ ऐसी वस्तु है, जो हमारे अन्दर इच्छा और कामना बन जाती है; एक आकर्षण और विकर्षण है, जो अन्यथा प्रतीत होते हुये भी मूलतः वही वस्तु है, जो चेतन जगत् में अनुराग और विराग है। इच्छा और कामना सृष्टि में सारे स्तरों पर सर्वत्र है।



20. प्राण जड़तत्त्व में भी विद्यमान है। यह परमाणु से लेकर मनुष्य तक एक-जैसा ही व्यक्त है। प्राण यथार्थतः चित् शक्ति की एक विश्वव्यापी क्रिया है, जो कि सारे रूपों का सर्जन, संरक्षण, विनाश एवं पुनः सर्जन करती है।

स्वामी विवेकानन्द की प्राणतत्त्वविषयक दृष्टि—स्वामी विवेकानन्द कहते

हैं कि समस्त जगत् मात्र दो पदार्थों से निर्मित हुआ है—आकाश एवं प्राण।

आकाश—जिस किसी भी वस्तु का आकार है, जो कोई वस्तु कुछ वस्तुओं के मिश्रण से बनी है, वह इस आकाश से ही उत्पन्न हुई है। आकाश ही वायु में परिणत हो जाता है। यही तरल पदार्थ का रूप धारण करता है और यही फिर ठोस आकार प्राप्त कर लेता है। यह आकाश ही सूर्य, पृथ्वी, तारा एवं धूमकेतु आदि में परिणत हो जाता है। संसार में जो कुछ वस्तु है, सभी आकाश से ही उत्पन्न हुई है।

प्राण—जिस शक्ति के प्रभाव से आकाश का जगत् के रूप में परिणाम होता है, वही है—प्राण की शक्ति। आकाश इस जगत् का कारणस्वरूप, अनन्त, सर्वव्यापी मूल पदार्थ है। प्राण भी उसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति की कारणस्वरूपा, अनन्त, सर्वव्यापी एवं विक्षेपकारी शक्ति है।

कल्पादि एवं कल्पान्त में सम्पूर्ण सृष्टि आकाशरूप में परिणत हो जाती है और इस जगत् की समस्त शक्तियाँ प्राण में लयीभूत हो जाती हैं। अगली सृष्टि में इसी प्राण से शक्तियों का विकास होता है। यह प्राण ही गतिरूप में प्रकाशित हुआ है। यही गुरुत्वाकर्षण या चुम्बक शक्ति के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

प्राण ही स्नायविक शक्तिप्रवाह (Nerve current) के रूप में, विचारशक्ति के रूप में और दैहिक क्रिया के रूप में प्रकाशित हुआ है। विचारशक्ति से लेकर अति सामान्य दैहिक शक्ति तक सब कुछ प्राण का ही विकास है। प्राण समस्त प्राणियों में जीवनी शक्ति के रूप में स्थित है। हमारी प्राण-तरंग अनन्त प्राणसमुद्र का एक-एक क्षुद्र बिन्दु है। समस्त ईथर (आकाश तत्त्व) प्राण की शक्ति से ही स्पन्दित हो रहा है। सारे ग्रह-नक्षत्रों का भी आधार यही प्राण है।

प्राणायाम और शक्ति का अन्तःसम्बन्ध—भारतीय योगियों द्वारा प्राणों की शक्ति को बढ़ाने का उद्देश्य शरीर की शक्ति बढ़ाना या स्वस्थ रहना नहीं था। उनका उद्देश्य प्राणायाम की सिद्धि द्वारा खेचरत्व की प्राप्ति भी नहीं था; प्रत्युत अपनी अपूर्णता की रिक्तता को भरने के लिए शक्ति का आयत्तीकरण करना था, अपने को पूर्ण बनाना था; क्योंकि उनका लक्ष्य 'पूर्णतावाद' था—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

इस पूर्णता की प्राप्ति के लिये उन्हें शक्ति की आवश्यकता थी—लोकोत्तर परा-शक्ति की कामना थी; अतः योगियों ने प्राणायाम के द्वारा प्राणशक्ति को कुण्डलिनी शक्ति से सम्बद्ध करने की साधना की। गोरक्षनाथ प्राणायाम-पद्धति में इसी का उपदेश दे रहे हैं—

1. अपान वायु को ऊपर की ओर आकृष्ट करके प्राण से मिलाना चाहिये।

2. कुण्डलिनी शक्ति को इस प्रकार उत्थापित करने से योगाभ्यासी सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

3. नौ द्वारों को निरुद्ध करके योगी को वायु का पान करना चाहिये और उसे दृढ़तापूर्वक धारण करना चाहिये।

4. अग्नि और अपान वायु के योग से जाग्रत कुण्डलिनी को ऊपर स्थित करके वायु से संयुक्त करना चाहिए।

5. जो योगी इस प्रकार आत्मा का ध्यान करता है, वह जबतक संसार में जीवित रहता है तब तक बड़े-बड़े योगेश्वर भी उसकी स्तुति करते हैं।[1]

चूँकि मन को परम शक्ति स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि मन ब्रह्म है। मन ही विश्व का मूल तत्त्व आत्मा है। मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है; अत: तुम मन की उपासना करो। वह जो मन की ब्रह्म के रूप में उपासना करता है, उसकी गति वहाँ तक हो जाती है, जहाँ तक मन की गति होती है।[2]

चन्द्रमा का ध्यान एवं प्राणायाम : अन्त:सम्बन्ध—प्राण को शक्तिशाली बनाने के लिए और मन को स्थिर रखकर अतुल्य शक्ति आयत्त करने के लिये साधक को चाहिये कि वह प्राणायाम करने के पूर्व, मध्य एवं अन्त में भी चन्द्रमा का ध्यान करे। गोरक्षनाथ का कथन है कि ऐसा करने से प्राणायामाभ्यासी सुख प्राप्त करता है—

अमृतद्रवङ्काशं गोक्षीरधवलोपमम्।
ध्यात्वा चन्द्रमयं बिम्बं प्राणायामी सुखी भवेत्।।[3]

कुम्भक एवं सूर्य का ध्यान : अन्तःसम्बन्ध—जब साधक पूरक की समाप्ति के बाद कुम्भक करता है तो उस समय उसे नाभि में स्थित अग्निपुञ्ज के समान प्रदीप्त सूर्यमण्डल का ध्यान करना चाहिये। इससे अभ्यासी को सुख की प्राप्ति होती है—

प्रज्वलज्वलनज्वालापुञ्जमादित्यमण्डलम् ।
ध्यात्वा नाभिस्थितं योगी प्राणायामे सुखी भवेत्।।[4]

गोरक्षयोग में रजरेतस योग की दृष्टि और मुक्ति—योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं कि जो प्राण एवं अपान का ऐक्य है, स्वकीय रज एवं रेतस् का योग है, सूर्य एवं चन्द्र का योग है तथा जीवात्मा और परमात्मा का योग है और इस प्रकार समस्त द्वन्द्वों के समूह का संयोग है, वही योग है—

योऽपानप्राणयोर्योग: स्वरजोरेतसोस्तथा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनो:।
एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।। (योगबीज)

1. योगमार्तण्ड
2. छान्दोग्योपनिषद् (अ.-7, खण्ड तृतीय)
3. योगमार्तण्ड (85)
4. योगमार्तण्ड (87)

इसी प्राणायाम-विधान से ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि का भेदन होता है और उसके परिणामस्वरूप प्राणी मुक्त हो जाता है।

प्राणायामाभ्यास से ही सुषुम्णा नाड़ी में प्राण का प्रवेश होता है और उससे कुण्डलिनी जीव को लेकर परमशिव धाम तक यात्रा करती है और जीव को मोक्ष प्रदान करती है। 'प्राणायामेन पातकम्' (गोरक्षपद्धति-2.21) कहकर योगी गोरक्षनाथ ने प्राणायाम की साधना द्वारा पापों के नष्ट होने का भी प्रतिपादन किया है।

योग-शास्त्र में लिखा कहा गया है कि मृत्यु के भय से ब्रह्मा भी भयभीत रहते हैं; अतः इस भय से मुक्त रहने के लिये वे भी प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास किया करते हैं; अतः प्राणायामाभ्यास सभी व्यक्तियों को करना चाहिए।

प्राण-साधना मृत्यु पर विजय की साधना है। योगशास्त्र कहता हैं कि जब तक देह में वायु स्थित है तब तक जीव उसे नहीं छोड़ता। प्राण की बहिर्निष्क्रमणता ही मृत्यु है। अतः वायु का निरोध करना चाहिये। जबतक शरीर में वायु स्थिर है (निरुद्ध है), जब तक दृष्टि दोनों भौहों में स्थिर है, तब तक मृत्यु कहाँ?

यावद् बद्धो मरुद् देहे तावच्चित्तं निरामयम्।
यावच्चक्षुर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुतः?।।

(हठयोगप्रदीपिका)

प्राणायाम : उन्मनीभाव की प्राप्ति की साधना—योगियों ने प्राणायाम का विधान इसलिये किया; क्योंकि जबतक प्राण अस्थिर रहता है तबतक चित्त भी अस्थिर रहता है और जबतक चित्त स्थिर रहता है तबतक प्राण भी स्थिर रहता है; अतः स्थाणुत्व (स्थिर जीवन शक्ति) प्राप्त करने के लिए प्राण-संयम का विधान रक्खा गया—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।[1]

जबतक वायु (प्राणतत्त्व) स्थित है, तब तक ही व्यक्ति जीवित रहता है और उसके निष्क्रान्त होते ही व्यक्ति मर जाता है; अतः वायु (प्राणतत्त्व) का संयम आवश्यक है—

मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।[2]

मलाकुल नाड़ियों में प्राण प्रवेश नहीं कर सकता और नाड़ियों में प्राण को प्रविष्ट कराये विना प्राण एवं मन दोनों की अतुल्य ब्राह्मी शक्ति (क्योंकि प्राण एवं मन दोनों को 'ब्रह्म' कहा गया है) का उपयोग ही नहीं किया जा सकता।

मन शक्तियों का अनन्त भण्डार है; किन्तु इसकी शक्तियों से तभी लाभान्वित हुआ जा सकता है; जब कि प्राण के द्वारा मन की अस्थिरता रोकते-रोकते उसे उन्मन

1. हठयोगप्रदीपिका
2. हठयोगप्रदीपिका- 2.3

न कर दिया जाय। यह उन्मनीभाव (भगवान् की परा शक्ति) बिना प्राणायाम के कैसे सम्भव है?

मलाकुल नाड़ियों में प्राण प्रविष्ट नहीं हो सकता; अत: प्रथमत: तो नाड़ीशोधन प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों के कचरे (मल) को बाहर निकालना पड़ता है और तभी प्राणायाम की अग्रिम साधनाओं द्वारा उन्मनीभाव सम्भव हो पाता है—

मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यग:।
कथं स्यादुन्मनीभाव: कार्यसिद्धि: कथं भवेत्।।[1]

नाड़ियों की शुद्धि होने पर ही प्राणसंग्रहण सम्भव होता है—

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ीचक्रं मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षम:।।

प्राणायाम : कालभोक्त्री सुषुम्णा में प्राणप्रवेश—कालभोक्त्री सुषुम्णा नाड़ी में प्राण का प्रवेश होने पर प्राण अनन्त शक्तिशाली हो जाता है।

प्राणायाम नाड़ी-मल का विशोधक भी है और कुण्डली शक्ति का बोधक भी है—

कुण्डली-बोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम्।
ब्रह्मनाड़ीमुखे संस्थं कफाद्यर्गलनाशनम्।।[2]

प्राणायाम : ग्रन्थित्रय का भेदक—प्राणायाम ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि का भेदन करके उनके द्वारा निरुद्ध शक्तियों को भी आयत्त करके परम शक्तिशाली बन जाता है। भस्त्रा नामक प्राणायाम ग्रन्थिभेदन का प्रधान उपाय है—

सम्यग्गात्रसमुद्भूतं ग्रन्थित्रयविभेदकम्।[3]

प्राणायाम : कुण्डलिनी का जागरणकर्त्ता कहा भी गया है—

कुम्भकात् कुण्डलीबोध: कुण्डलीबोधतो भवेत्।[4]

प्राणायाम : राजयोग (योग की सर्वोच्चावस्था) **का प्रदाता**—प्राप्त कराता है। योगियों का कहना है—

कुम्भकप्राणरोधान्ते कुर्याच्चित्तं निराश्रयम्।
एवमभ्यासयोगेन राजयोगपदं व्रजेत्।।[5]

प्राणायाम : शक्तिप्रदाता—प्राणायाम अनेक क्षमतायें, शक्तियाँ एवं सामर्थ्य

---

1. मारुते मध्यसञ्चारे मन: स्थैर्यं प्रजायते।
   यो मन: सुस्थिरीभाव: सैवावस्था मनोन्मनी।। (2.42)
2. हठयोगप्रदीपिका-66
3. हठयोगप्रदीपिका-67
4. हठयोगप्रदीपिका-75
5. हठयोगप्रदीपिका-77

प्रदान करता है। चूँकि प्राणायाम की सिद्धि नाड़ी-विशोधन के विना सम्भव नहीं है; अत: प्राणायाम-सिद्धि के लिये प्राणायाम-साधन के पूर्व नाड़ी-विशुद्धि करनी चाहिये। नाड़ी-विशुद्धि भी प्राणायाम की ही एक प्रणाली है और यह निम्न सामर्थ्य प्रदान करती है—

1. 'वपु: कृशत्वं' (अतिरिक्त मज्जा, मेद, अनर्गल पदार्थों को शरीर से बाहर निकालकर शरीर को दुबला-पतला करके उसको स्वस्थ करना)।

2. 'वदने प्रसन्नता' (आनन्दमयता)।

3. नादस्फुटत्वं (10 प्रकार के नाद एवं अनाहत नादस्वरूप शब्दब्रह्म की अभिव्यक्ति)।

4. 'नयने सुनिर्मले' (आँखों के दोषों को दूर करके और उनको गारुड़ नेत्रशक्ति प्रदान करके उन्हें निर्दोष एवं निर्मल बनाना)।

5. आरोगता (वात-पित्त-कफजनित दोषत्रय दूर करना)।

6. बिन्दुजय (शुक्र की स्थिरता)।

7. अग्नि-दीपन।

इसलिए योगियों ने कहा है कि—

प्राणायाम: तत: कुर्यान्नित्यं सात्त्विकया धिया।
यथा सुषुम्नानाडीस्था मला: शुद्धिं प्रयान्ति हि।।

मल-शुद्धि के विना प्राण सुषुम्णा में प्रवेश नहीं कर सकता और सुषुम्णा में प्राण के प्रविष्ट हुये विना वह अपनी अनन्त ब्राह्मी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता और न तो मन को ही सुषुम्णा में प्रवेश करा सकता है। इस स्थिति में प्राण एवं मन की निर्बल, अस्थिर शक्ति विश्व की सर्वोच्च शक्ति को मूलाधार में सोते से जगाने में कैसे समर्थ हो सकती है? इसी समस्या के समाधान के लिये योगियों ने ब्रह्माण्ड की सञ्चालिका शक्ति 'प्राण' की साधना की और इसकी शक्ति को आयत्त करके शिव की शक्ति कुण्डलिनी शक्ति को सोते से जगाया।

नाड़ी-शोधन प्राणायाम की सिद्धि के निम्न लक्षण हैं—

1. वायु का यथेष्ट संग्रहण।
2. पाचन शक्ति की वृद्धि (अग्नि-प्रदीपन)।
3. नादाभिव्यक्ति।
4. आरोग्य।

चूँकि अमल शक्ति को पाने के लिये साधन के रूप में अमल शक्ति ही चाहिये; इसीलिये प्राणायाम को इस उद्देश्य का साधन बनाया गया; क्योंकि—

प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला: इति।

और यही मल-विशोधन प्राण को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराता है—

विधिवत्प्राणसंयामैर्नाड़ीचक्रे विशोधिते।
सुषुम्णा वदनं भित्वा सुखाद्विशति मारुत:।।

प्राणायाम : जीवन्मृत्यु एवं अमृतत्त्व की साधना—सोम-सूर्य-अग्नि (इड़ा-पिंगला-सुषुम्णा) का एकीकरण ही भौतिक जीवन की मृत्यु एवं आध्यात्मिक अमृतत्व की प्राप्ति है। ये भी प्राणायाम-साधना की निष्पत्तियाँ हैं—

सोमसूर्याग्निसम्बन्धो जायते चामृताय वै।
मृतावस्था समुत्पन्ना ततो वायुं विरेचयेत्।। (3.28)

प्राणायाम : बिन्दु-साधना एवं ब्रह्मचर्य की साधना है—प्राण के चञ्चल होने पर ही बिन्दु चञ्चल होता है; अत: प्राणों की साधना बिन्दु एवं ब्रह्मचर्य की स्थिरता एवं दृढ़ता की साधना है। खेचरी मुद्रा सिद्ध होने पर लम्बिका के छिद्र को बन्द करने पर कामिनी से आश्लेषित होने पर भी बिन्दु का क्षरण नहीं होता—

खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वत:।
न तस्य क्षरते बिन्दु: कामिन्याश्लेषितस्य च।।

किन्तु इस खेचरी मुद्रा का अभ्यास किया कैसे जाता है? इसमें जिह्वा को कपाल-कुहर में प्रविष्ट कराया जाता है और भ्रूद्वय के मध्य दृष्टि स्थिर की जाती है। किन्तु दृष्टि-स्थिरत्व प्राणायाम-सिद्धि के विना सम्भव ही नहीं है।

प्राणायाम कुण्डलिनी को जागृत और उत्थापित करता है। कुम्भक प्राणायाम से कुण्डलिनी सोते से जागती है।

प्राणायाम शरीर के समस्त चक्रों एवं ग्रन्थियों का भेदन करता है। कुण्डलिनी की सुषुप्ति, चक्रों की मुकुलितावस्था एवं ग्रन्थियों के वेधन का अभाव ही जीवों के अज्ञान एवं सारे दु:खों का कारण है—

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च।।[1]

प्राणायाम : काल-वञ्चन की साधना—

तदा चित्तं निरालम्बं तदा कालस्य वञ्चनम्।

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध एवं मूलबन्ध आदि बन्ध के साथ-साथ प्राणायाम से भी सम्बद्ध हैं। इनके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जग उठती है और इड़ा-पिंगला की मृत्यु हो जाती है—

ऋज्वीभूता तथा शक्ति: कुण्डली सहसा भवेत्।
तदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रया।।

1. हठयोगप्रदीपिका

खेचरी-साधना—खेचरी मुद्रा की सारी दुर्बलताओं एवं विवशताओं का अन्त कर डालती है। खेचरी मुद्रा सिद्ध होने पर यह रोग, मृत्यु, तन्द्रा, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्च्छा आदि सभी का विनाश कर देती है—

न रोगो मरणं तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।।

पीड्यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।।

उसका बिन्दु भी क्षरित नहीं होता; अतः वह ब्रह्मचर्यव्रती भी बन जाता है—

न तस्य क्षरते बिन्दुः कामिन्याश्लेषितस्य च।

ब्रह्मचर्य मृत्युञ्जयत्व की शक्ति प्रदान करता है—

ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत। (श्रुति)

खेचरी से अमरत्वप्राप्ति—खेचरी मुद्रा अमरत्व प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में योगी अमृतपान करने लगता है और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है—

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युं जयति योगवित्।।

प्राणायाम विषों के प्रभावों को नष्ट कर डालता है—

तक्षकेणापि दष्टस्य विषं तस्य न सर्पति।

तक्षक नाग के काटने पर भी वह विष से प्रभावित नहीं होता।

उड्डीयान बन्ध भी मृत्युमातङ्ग के लिए सिंह बन जाता है—

उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी।

उड्डीयान बन्ध मुक्ति दिलाता है—

उड्डीयाने दृढ़े बन्धे मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।

उड्डीयान बन्ध वृद्ध को भी तरुण बना देता है—

अभ्यसेत् सततं यस्तु वृद्धोऽपि तरुणायते।

उड्डीयान मृत्यु पर विजय दिलाता है—

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः।

मूलबन्ध प्राणापान एवं नाद-बिन्दु में ऐक्य स्थापित करता है—

प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम्।
अपानप्राणयोरैक्यं क्षयो मूत्रपुरीषियोः।।

यह मूलबन्ध वृद्ध को युवा बना देता है—

युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात्।

प्राणापानैक्य कुण्डलिनी शक्ति को जगा देता है—

तेन कुण्डलिनी सुप्ता सन्तप्ता सम्प्रबुध्यते।

प्राणायामाभ्यास की पद्धति—प्राणायाम करने की भी एक विशिष्ट पद्धति है और वह निम्नाकार है—

1. साधक को पद्मासन लगाकर बैठना चाहिये।

2. भगवान् शिव को गुरु मानकर नमस्कार करना चाहिये।

3. फिर नासा के अग्र भाग पर दृष्टि को स्थिर करके प्राणायामाभ्यास का प्रारम्भ करना चाहिये—

बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्वा गुरुं शिवम्।
नासाग्रे दृष्टिमादाय प्राणायामं समभ्यसेत्।।

प्राणायाम-सिद्धियाँ प्रदान करता है—

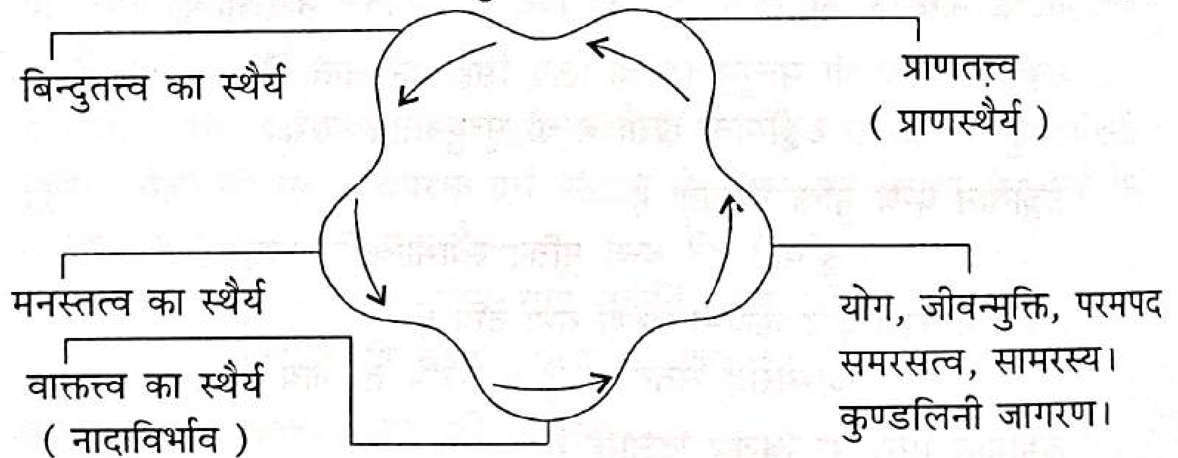
क्रीडति त्रिषु लोकेषु जायन्ते सिद्धयोऽखिला:। (गोरक्षनाथ)

प्राण-साधना परमपद प्राप्त कराती है। प्राणों को स्थिरत्व प्रदान करती है। प्राण की साधना से बिन्दु स्थिर होता है। बिन्दु की स्थिरता से मन स्थिर होता है। मन की स्थिरता से वाक्तत्त्व स्थिर होता है। यही मन ही तो मोक्ष का कारण है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।

मन:स्थैर्य ही द्रष्टा को स्वरूपावस्थान कराता है—

तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्। (योगसूत्र)



प्राणायाम रोगों एवं जड़ता के प्रणाश का भी साधक है—

आदौ रोगा: प्रणश्यन्ति पश्चाज्जाड्यं शरीरगम्।

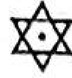
प्राणायाम विभिन्न नादों को उदित करता है—

नानानादा: प्रवर्तन्ते मार्दवं स्यात्कलेवरे।

प्राणायाम खेचरत्व प्रदान करता है—

सर्वज्ञोऽसौ भवेत्कामरूप: पवनवेगवान्।
क्रीडति त्रिषु लोकेषु जायन्ते सिद्धयोऽखिला:।।





पञ्चदश अध्याय

प्राणलय और शक्ति-साधना

मानव-अस्तित्व, मानव-शरीर, मानव-व्यक्तित्व एवं मानव-शक्ति के संघटक चरम तत्त्व चार हैं—प्राण, मन, बिन्दु एवं नाद (वाक् शक्ति)। इन चारों में प्राण को 'ब्रह्म' कहा गया है—'प्राणं ब्रह्म।' प्राणों से ही जगत् की सृष्टि कही गई है।

प्राणशक्ति और उसका महत्त्व—प्राणशक्ति अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न है; अत: जब उसका लय होता है तो लय के तारतम्य में ही वह आन्तरिक महाशक्तियों से जुड़ती जाती है और उनकी भी शक्ति आयत्त करके उनसे भी महत्तर शक्तियों की ओर बढ़ती है और उन्हें भी आयत्त करके परमात्मा की सर्वोच्च शक्तियों से ऐकात्म्य प्राप्त करके स्वयं सर्वोच्च हो जाती है। इस साधना के मूल सूत्र दो हैं—प्राणलय एवं मनोलय। यत: 'बाह्यचिन्ता न कर्तव्या' 'सर्वचिन्तां परित्यज्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत।' यह इसका प्रथम सूत्र है।

इस प्राणलय-साधना में चित्त के लयीभूत हो जाने पर प्राण का भी लय हो जाता है। मन एवं पवन दोनों का लय हो जाने पर शब्द-स्पर्श आदि इन्द्रियार्थों (पञ्च महा-विषयों) का भी लय हो जाता है। इन्द्रियार्थों का लय होने से बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता है और उसके कारण सर्वसमत्व की दृष्टि का उन्मेष होता है। इससे योगी लय प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति में स्थित लययोगी—

> सुखदु:खे न जानाति शीतोष्णं न च विन्दति।
> विचारं चेन्द्रियार्थं च न वेत्ति विलयं गत:।।
>
> निर्जीव: काष्ठवत्तिष्ठेत् लयस्यश्चाभिधीयते।।

प्राणतत्त्व—'संवित् प्राक् प्राणे परिणता' कहकर भारतीय ऋषियों एवं आगमिकों ने समाधि में इस सत्य का साक्षात्कार किया था कि प्राणवायु कोई Oxygen नहीं है और न तो शुद्ध वायु है; प्रत्युत यह एक अचिन्त्य, लोकोत्तर एवं असीम ब्रह्माण्डीय परा शक्ति है।

प्राण-साधना की दिशायें—प्राणलय-साधना की अनेक दिशायें हैं। यथा—प्राणायाम, हंसयोग (अजपा जप), विपश्यना, स्वर-साधना-योग, नाडी-योग (सुषुम्णा में प्राणारोहण), प्राणलय योग आदि।

प्राण-लय-योग की साधना में सिद्धि प्राप्त होने पर अचिन्त्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

गोरक्षोक्त प्राणलयात्मक शक्ति और उसकी साधना—प्राणायाम में पूरक-कुम्भक-रेचक के माध्यम से प्राण खींचने, रोकने एवं छोड़ने का अभ्यास कराया जाता है। 'हंसयोग' में पूरक और रेचक के माध्यम से 'हं' 'सः' के उच्चरित होने की काल्पनिक पुनरावृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास कराया जाता है। 'स्वर-साधना' में स्वर-परिवर्त्तन, स्वरानुकूल कार्य-साधन, पञ्चभूतानुकूल कार्य-साधन आदि की शिक्षा दी जाती है। 'विपश्यना' में स्वरों (श्वास-प्रश्वास) की गति (आवागमन चक्र) पर ध्यान केन्द्रित करने की शिक्षा दी जाती है; किन्तु श्वास-सञ्चार की दैशिक-कालिक गतियों को निरन्तर कम करते हुये प्राण-लय की साधना करते रहने की शिक्षा प्राणलयात्मक 'लययोग' में ही दी जाती है।

प्राणलयात्मक शक्ति-योग—सर्वसमत्व, परब्रह्मसायुज्य एवं लय ही इस योग-साधना का चरम लक्ष्य है—

यदा सर्वसमे जाते भवेद् व्यापारवर्जितः।
परब्रह्मणि सम्पन्नो योगी प्राप्तलयस्तदा।।

लय के लक्षण—सुख-दुःख, शीत-ताप, शब्दादि पञ्च विषय, जीवन-मृत्यु, निमेषोन्मीलन-निमीलन, मान-अपमान आदि मनोवृत्तियों एवं शारीर संवेदनाओं की जिसमें कोई अनुभूति ही न हो, वही अवस्था 'लय' है।

निश्चलतत्त्व, जल में छोड़े गए नमक की भाँति मन के लुप्त होने की स्थिति, सर्व-चेष्टाराहित्य, काष्ठवत् स्थिति, मन की ब्रह्ममयता, घृत में डाले घृत की भाँति पूर्ण अपृथक्त्व या अभेदभावानुभूति आदि के लक्षण जहाँ दिखाई पड़ें, वही 'लय' है।

प्राणलय एवं शक्ति-विचार के सोपान

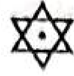
प्राणलयात्मक क्रिया का स्वरूप	प्राणलय से प्राप्त शक्तियाँ
1. प्राण-लय : एक निमेष	परतत्त्वसंस्पर्श।
2. प्राण-लय : छः निमेष	ताप-शान्ति।
3. प्राण-लय : एक श्वास	अपने-अपने स्थानों में प्राण-प्रवाह।
4. प्राण-लय : दो श्वास	कूर्म, नाग आदि प्राण क्रियाओं का अन्त एवं धातु-पुष्टि।
5. प्राण-लय : 4 श्वास	सप्त धातुओं की पुष्टि, वायु-समत्व।
6. प्राण-लय : 1 पल	श्वास-प्रश्वास, निमेषोन्मेष में न्यूनता तथा आसन-सिद्धि, यथाकाम समय तक एक आसन में बैठने की सामर्थ्य-प्राप्ति।

प्राणलयात्मक क्रिया का स्वरूप	प्राणलय से प्राप्त शक्तियाँ
7. प्राण-लय : 2 पल	हृदयनाडी का जागरण। अनाहत नाद।
8. प्राण-लय : 4 पल	कानों में मधुर नाद-श्रवण।
9. प्राण-लय : 8 पल	कामवासना-निवृत्ति। काम का अभाव।
10. प्राण-लय : चतुर्थ कला	प्राणादि का सुषुम्णा में प्रवेश।
11. प्राण-लय : 1/2 घड़ी	कुण्डलिनी का जागरण।
12. प्राण-लय : 1 घड़ी	वायु-रोध -> कुण्डलिनी का सुषुम्णा नाड़ी में ऊर्ध्वारोहण।
13. प्राण-लय : 2 घड़ी	योगी के मन में एक क्षण में एक बार प्रकम्पन।
14. प्राण-लय : 4 घड़ी	निद्राभाव की निवृत्ति और हृदय में तेजोबिन्दु का दर्शन।
15. प्राण-लय : 1/4 दिन	आहार में न्यूनता, मूत्र-पुरीष में कमी तथा शरीर में लघुता।
16. प्राण-लय : 1/2 दिन	आत्मज्योति दर्शन।
17. प्राण-लय : एक दिन	आत्मतत्त्व का प्रकाशन। इन्द्रियों को सम्पूण ब्रह्माण्ड का ज्ञान।
18. प्राण-लय : अहोरात्र	चित्तवृत्ति-निरोधजन्य अद्भुत सुगन्ध-प्रसार या सञ्चार।
19. प्राण-लय : 2 अहोरात्र	दूर से ही रसानुभूति।
20. प्राण-लय : 3 अहोरात्र	दूर से ही दूरस्थ वस्तु का दर्शन।
21. प्राण-ल्य : 4 अहोरात्र	दूर से ही स्पर्शप्राप्ति (स्पर्शानुभूति)।
22. प्राण-लय : 5 अहोरात्र	दूरश्रवण-सामर्थ्य की प्राप्ति। विश्वैकत्व, ब्रह्माण्डव्यापी ज्ञान, सकल विश्व में व्याप्ति।
23. प्राण-लय : 6 अहोरात्रः	महाबुद्धि। अतीतानागत-बोध।
23. प्राण-लय : 7 अहोरात्र	ब्रह्मपर्यन्त श्रुतिज्ञान, विश्वज्ञान।
24. प्राण-लय : 8अहोरात्र	परम तत्त्व में सहज लय। आरोग्य, क्षुधा-प्यास-निवृत्ति।
25. प्राण-लय : 9 अहोरात्र	आत्मज्ञानजन्य निर्वेद-सिद्धि, शापानुग्रह एवं वाक् सिद्धि।
26. प्राण-लय : 10 अहोरात्र	गुप्त महाश्चर्यों का साक्षात्कार।
27. प्राण-लय : 11 अहोरात्र	मन एवं काया की गति में साम्य।
28. प्राण-लय : 12 अहोरात्र	भूचरत्व, 1/2 निमेष में समस्त भूतल की परिक्रमा या परिभ्रमण की द्रुत गति-प्राप्ति।
29. प्राण-लय : 13 अहोरात्र	चिन्तनमात्र से अद्भुत खेचरी-सिद्धि।
30. प्राण-लय : 14 दिन	(14 दिन लयस्थिति होने पर) अणिमा-सिद्धि की प्राप्ति।
31. प्राण-लय : 16 दिन	(आत्मलीन होने पर) महिमा-सिद्धि की प्राप्ति।

प्राणलयात्मक क्रिया का स्वरूप	प्राणलय से प्राप्त शक्तियाँ
32. प्राण-लय : 18 दिन	गरिमा-सिद्धि की प्राप्ति।
33. प्राण-लय : 20 दिन	लघिमा-सिद्धि की प्राप्ति।
34. प्राण-लय : 22 दिन	(लक्ष्यभूत परम तत्त्व में लय होने पर) प्राप्ति की प्रप्ति।
35. प्राण-लय : 24 दिन	प्राकाम्य नामक सिद्धि की प्राप्ति।
36. प्राण-लय : 26 दिन	(परतत्त्वलय) ईशित्व सिद्धि की प्राप्ति।
37. प्राण-लय : 28 दिन	वशित्व नामक यौगिक सिद्धि।[1]
38. प्राण-लय : एक मास	मोक्षपर्यन्त सुषुप्ति।
39. प्राण-लय : 9 मास	पृथ्वी-तत्त्व की सिद्धि।
40. प्राण-लय : 1-1/2 वर्ष	जल-तत्त्व की सिद्धि।
41. प्राण-लय : तीन वर्ष	अग्नि-तत्त्व की सिद्धि।
42. प्राण-लय : 6 वर्ष	वायु-तत्त्व की सिद्धि।
43. प्राण-लय : 12 वर्ष	आकाशतत्त्व की सिद्धि।
44. प्राण-लय : 24 वर्ष	शक्ति-तत्त्व की सिद्धि। यथाकाम स्वरूप-रचना, ब्रह्माण्ड को हस्तामलकवत् देखने की शक्ति का आयत्तीकरण, परमानन्द भोग, महातत्त्व में लय, अनन्त अमरत्व।[2]



1. अ. योग (गोरक्षनाथ) 2. अ. योग (गोरक्षनाथ)



षोडश अध्याय

मनस्तत्त्व एवं शक्ति-साधना

मनस्तत्त्व और उसका स्वरूप

1. **ऋग्वेद की दृष्टि—**

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्। (10.129)

(काम → मन। काम = मन का रेतस् या मूल बीज।)

2. **शतपथ ब्राह्मण**—(14.4.3.9) में कहा गया है कि काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, बुद्धि, भय आदि सभी मन के अन्तर्गत ही उसके रूपान्तर हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में भी यही बात कही गई है।

3. **निरुक्तकार यास्क की दृष्टि**—मनु धातु से 'मन' शब्द की रचना हुई है। मनु धातु का अर्थ है—अवबोध करना, मनन करना (नैगम काण्ड-4.1.5)।

4. **उपनिषद**—छा. उप. (3.18.1) में मन को इन्द्रियरूपी घोड़ों का लगाम कहा गया है। कठोपनिषद भी कहता है—'मन: प्रग्रहमेव च।'

5. **ऐतरेयोपनिषदकार की दृष्टि**—ऐतरेयोपनिषद् (3.2) में कहा गया है कि 'मन' जानने, धारण करने, देखने, संकल्प करने आदि शक्तियों से सम्पन्न है।

6. **गीताकार की दृष्टि**—मन एक चञ्चल वस्तु है, जो कि वायु से भी अधिक चञ्चल है—

चञ्चलं हि मन: कृष्ण: प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।

7. **योगवाशिष्ठ**—मन संसार का उत्पादक, संकल्प-विकल्प करने वाला अति बलशाली तत्त्व है और मनोजय से ही शान्ति एवं कल्याण पाना सम्भव है; अन्यथा नहीं।

8. **न्याय एवं वैशेषिक**—मन सुख-दु:ख आदि की अनुभविता ग्यारहवीं इन्द्रिय है। यह प्रत्येक आत्मा के साथ पृथक्-पृथक् रूप से आबद्ध है और नित्य, परमाणुमय एवं अनन्त है।

9. **सांख्य एवं योग**—इसके अनुसार पञ्चतन्मात्राओं से ही मन की उत्पत्ति होती है। यह उभयेन्द्रिय है। यह वह ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जो कि व्यापक नहीं है।

10. **बौद्ध दर्शन**—विज्ञानस्कन्ध या चेतना ही मन है। इसकी उत्पत्ति अविद्या एवं तृष्णा से हुई है।

11. **वेदान्त दर्शन**—अन्त:करण के चार भेद हैं। उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये चार अंग हैं। इन चार अंगों में प्रथमांग मन ही है—

मनस्तु सङ्कल्पविकल्पनादिभिर्बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः।
अत्राभिमानादहमित्यहंकृतिः स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम्।।[1]

मन एक भौतिक पदार्थ है। यह ज्ञानाप्ति का साधन एवं संकल्प-विकल्प वाली शक्ति है। इसी से बन्धन एवं मोक्ष दोनों होते हैं। भारतीय दर्शनों ने मन को वशीभूत करने पर सर्वाधिक बल दिया है।

यूनानी दार्शनिकों की भी अपनी दृष्टियाँ हैं—

12. **एनैक्सेगोरस**—इनके अनुसार मन एक ऐसी शक्ति है, जो समस्त चेतन प्राणियों पर अपना प्रभुत्व रखती है और असीम तथा सर्वथा स्वशासित है। इसमें किसी भी पदार्थ का मिश्रण नहीं है। यह समस्त भावों का केन्द्र है। सांसारिक परिवर्तनों का कारण भी यही है। इसकी प्रेरणा से ही हल्के पदार्थ परिधि में घूमते रहते हैं तथा भारी पदार्थ केन्द्र की ओर गिरा करते हैं।

13. **यूनानी दार्शनिक** Plato महोदय ने कहा है कि मन सर्वोच्च तत्त्व है। सत्तायें दो प्रकार की हैं—बुद्धिगत या स्वतन्त्र एवं परतन्त्र या परचालित। प्रथम मन से सम्बद्ध है और मन ही स्वतन्त्र है। यह स्वशासित है।

14. **अरस्तू**—मन विचार की शक्ति है। मन आत्मा से सर्वथा भिन्न है।

15. **प्लैटिनस**—मन दैवी गुणों से सम्पन्न है। आत्मा इन्द्रियातीत है।

16. **बेनेडिक्ट स्पिनोजा**—मन द्रव्य (Substance) है।

17. **जान लाक**—मन द्रव्य है।

18. **जार्ज वर्कले**—मन सर्वज्ञाता है। जगत् मन का विचारमात्र है।

19. **डेविड ह्यूम**—मन अविच्छिन्न सप्रवाह विभिन्न प्रत्ययों की राशि है।

20. **लिबनीज**—मन प्रत्यक्षों एवं प्रवृत्तियों से निर्मित एक चिद्बिन्दु है।

21. Hegel (हीगल)—मन एक Logical idea (या तर्कपूर्ण प्रत्यय) का विकास है।

22. **हर्बर्ट स्पेंसर**—इनका कथन है कि मन या Absolute (अज्ञेय) शक्ति के उन्मेष हैं।

---

1. विवेकचूड़ामणि

23. स्टाउट—इनका कथन है कि मन तथा जड़ पदार्थ एक विवाद का विषय है। इसके तीन सिद्धान्त हैं—

1. परस्पर क्रियावाद (Interactionism)
2. समानान्तरवाद (Parellelism)
3. जड़वाद (Materialism)

स्टाउट प्रथम सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये मन एवं जड़ पदार्थों को परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करने वाला तत्त्व स्वीकार करते हैं।

24. फ्रायड—फ्रायड के अनुसार मन के दो रूप हैं—चेतन एवं अचेतन। चेतन मन से अधिक सशक्त एवं महत्त्वपूर्ण है—अचेतन मन। अचेतन मन में काम या इच्छायें दमित रूप में विद्यमान रहती हैं और वे स्वप्नों, दिवास्वप्नों, भूलों, कला, परिहास, धर्म एवं अन्य मानसिक उपद्रवों, पागलपन आदि के रूप में प्रकट होती रहती हैं।

25. Jung (जंग)—इनका कथन है कि यह तो सत्य है कि अचेतन मन अधिक महत्त्वपूर्ण है तथापि यह मन दमित काम या इच्छाओं का स्थान नहीं है। यह सम्पूर्ण भलाइयों का मूल एवं चेतना का मूल स्रोत भी है।

26. एडलर—फ्रायड के दूसरे शिष्य एडलर महोदय ने कहा कि यह तो अविवादास्पद तथ्य है कि अचेतन मन अधिक महत्त्व का है, तथापि उसमें कामप्रवृत्ति की अपेक्षा समाज की स्थापना या शक्तिप्राप्ति (Will to Power) की प्रवृत्ति अधिक प्रबल है।

पाश्चात्य विद्वान् पहले तो मन को एक आध्यात्मिक सत्ता के रूप में स्वीकार करते थे और उसे वह स्वतन्त्र इकाई मानते थे, जो कि निर्माण, धारणा, अनुभव आदि कार्यों का निष्पादन करती है; किन्तु परवर्ती मनोवैज्ञानिक गवेषणाओं ने यह स्थापित किया कि मन एक स्वतन्त्र एवं पूर्ण इकाई नहीं है। मन विभिन्न इकाइयों का मिश्रित स्वरूप है। उसके चेतन एवं अचेतन दो रूप हैं। अचेतन मन द्वारा ही चेतन मन की समस्त क्रियायें सञ्चालित होती हैं। अत: यही मानसिक क्रियाओं का मूल है। मन एवं शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। मन ही चेतना है, जिसकी तीन प्रक्रियायें होती हैं—इच्छा (Feeling), ज्ञान (Cognition) एवं क्रिया (Conation)।

'इच्छा' वेदना, संवेग एवं भावना की समष्टि है। 'ज्ञान' संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना एवं विचारणा की समष्टि है। 'क्रिया' ध्यान एवं अवधान की समष्टि है।

भारतीय मनीषियों ने समाधि के धरातल पर जो अन्वेषण किया, उसका निष्कर्ष इस प्रकार है—

1. प्राण संवित् शक्ति का परिणमन है। प्राण ब्रह्म है।
2. मन ब्रह्म है—'मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

मनसा जातानि जीवन्ति। मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।' (तैत्तिरीयोपनिषद्)

3. प्राण ब्रह्म है—'प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्, प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रत्यन्त्यभिसंविशन्तीति।' (तैत्तिरीयोपनिषद्)

चित्त क्या है? छान्दोग्योपनिषद् (7.5) कहता है कि—

(क) चित्त ही आत्मा है। चित्त ही प्रतिष्ठा है। तुम चित्त की उपासना करो। वह जो चित्त की—'यह ब्रह्म है'—इस प्रकार उपासना करता है ....जहाँ तक चित्त की गति है, वहाँ तक उसकी स्वेच्छा गति हो जाती है।

(ख) मन ही आत्मा है। मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है। तुम मन की उपासना करो। वह जो कि मन की 'यह ब्रह्म है'—इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक स्वेच्छागति हो जाती है। (छान्दोग्योपनिषद्-7.3)

मन और चित्त पृथक्-पृथक् हैं और दोनों ब्रह्म हैं।

प्राणतत्त्व परमात्मा से उत्पन्न होता है—

आत्मन एष प्राणो जायते। (प्रश्नोपनिषद्-3.3)

मन की साधना : शक्ति की साधना—मन की साधना अनेक रूपों में की जाती है; यथा—मनोमय कोश के रूप में। ज्ञानेन्द्रियाँ और मन 'मैं, मेरा' आदि विकल्पों का कारण मनोमय कोश कहलाता है और अन्नमय, प्राणकोशों को व्याप्त करके स्थित है—

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्।
कोशो ममाहमिति वस्तु विकल्पहेतुः।।
(शंकराचार्य : विवेकचूडामणि)

मन ही अविद्या है—'न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता।'

मनोमय कोश की साधना के चार प्रधान अंग हैं—ध्यान, त्राटक, जप एवं तन्मात्र-साधन।

परभैरव स्वरूप की प्राप्ति—मन की साधना से साधना का एवरेस्ट शिखर एवं उसकी सर्वोच्च सिद्धि भैरवत्व की भी प्राप्ति होती है।

जन्माग्र, मूल, कन्द, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र, शक्ति एवं व्यापिनी—इन बारह चक्रों (द्वादश स्थानों) के स्वरूपों को सम्यक् रूप से समझकर उनमें अकार से विसर्गपर्यन्त स्वरों का ध्यान करना चाहिये। (ऋ, ॠ, ऌ, ॡ—इन नपुंसक चार स्वरों को निकालकर) शेष बारह स्वरों का उक्त बारह चक्रों में ध्यान करते हुये स्थूल ध्यान का त्‍ ...रके स्पन्दावस्था में अवस्थित सूक्ष्म ध्यान एवं सूक्ष्म ध्यान का त्याग करके ज्योतिर्मय परवस्तु का ध्यान करने पर साधक स्वात्म-

स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर स्वयं शिव बन जाता है—

क्रमद्वादशकं सम्यग् द्वादशाक्षरभेदितम्।
स्थूलसूक्ष्मपरिस्थित्या मुक्त्वा मुक्त्वाऽन्ततः शिवः।।[1]

2. जन्माग्र प्रभृति द्वादशस्थानों को भेदित करने वाली प्राणशक्ति से मूर्धान्त (द्वादशान्त) को भरकर और उस द्वादशान्त को भ्रूक्षेप से (भ्रूभेद के क्रम द्वारा) अतिक्रान्त करके मन को निर्विकल्प-निश्चल बनाकर द्वादशान्त के भी ऊर्ध्व में स्थित परमाकाश में पहुँचने पर योगी सर्वव्यापक परभैरवस्वरूप में समावेश प्राप्त कर लेता है।[2]

पाँच इन्द्रिय-मण्डलों से विविधाकार बने जगत् के प्रति अपने हृदय में पाँच इन्द्रियमण्डलों के स्थान पर पाँच शून्यों की भावना करने पर योगी अनुत्तर शून्य (परमाकाश) में समाविष्ट हो जाता है।[3]

कन्द, नाभि, हृदय, कण्ठ, बिन्दु, नाद एवं शक्ति—परतत्त्व तक पहुँचाने वाले सोपानों पर चढ़ते हुये अन्त में योगी सर्वोत्तीर्ण होकर शिवमय हो जाता है—

सर्वोत्तीर्णं रूपं सोपानपदक्रमेण संश्रयतः।
परतत्त्वरूढिलाभे पर्यन्ते शिवमयीभावः।।

हृत्प्रदेश के मध्य स्थित सुषुम्णा नाड़ी में चिदाकाश का ध्यान करने पर (सोम-सूर्यस्वरूप) प्राणापान एवं मन के सुषुम्णा में लयीभूत हो जाने के कारण प्रकाशस्वरूप शिव प्रकट हो उठते हैं।

मध्यनाडी मध्यसंस्था बिससूत्राभरूपया।
ध्याताऽन्तर्व्योमया देव्या तया देवः प्रकाशते।।[4]

परा संवित् देवीस्वरूपा परमा स्थिति को प्राप्त करने का उपाय सोपान-क्रम में इस प्रकार है—

1. मुद्रा के द्वारा इन्द्रियमार्गावरोध
2. भ्रूमध्य में स्थिति
3. ग्रन्थि-भेदन। ज्योति बिन्दु के दर्शन।
4. ब्रह्मरन्ध्र में स्थित बोध, गगन में परा संवित् दर्शन।[5]

द्वादशान्त में मन का लय होने पर परतत्त्व प्रकाशित हो उठता है।[6]

मन को जिस किसी भी प्रकार बार-बार द्वादशान्त में ले जाकर वहाँ उसे एकाग्र करना चाहिये। ऐसा करने से साधक विलक्षणस्वरूप परभैरव का साक्षात्कार करता है।[7]

---

1. विज्ञानभैरव
2. विज्ञानभैरव
3. विज्ञानभैरव-(32)
4. विज्ञानभैरव (35)
5. विज्ञानभैरव (36)
6. विज्ञानभैरव
7. विज्ञानभैरव (50)

मनोलय होगा कैसे? भुवन, तत्त्व, कला, मन्त्र, पदं वर्ण (षडध्व), जो कि स्थूल, सूक्ष्म एवं पररूप में स्थित एवं जगदाकार है—तबतक ध्यान का विषय बन रहना चाहिये, जबतक कि मन उसमें लयीभूत न हो जाय।

विश्व को शून्य मानते हुये उसका शून्य के रूप में चिन्तन करना चाहिये। अन्ततः मन उसी में लयीभूत हो जाता है। फिर साधक स्वस्वरूप में तल्लीनता प्राप्त कर लेता है।

अपने समस्त शरीर को विश्व के रूप में या पूर्णतया चिन्मय रूप में कल्पित करना चाहिये। ऐसा होने से मन के निर्विकल्प होने पर आध्यात्मिक परमोत्कर्ष के स्वरूप वाली परमा स्थिति उदित हो उठती है (सर्वचिन्मयवाद)—

सर्वं देहं चिन्मयं हि जगद्वा परिभावयेत्।
युगपन्निर्विकल्पेन मनसा परमोदयः।।

सर्वानन्दवाद की भावना द्वारा आनन्दस्वरूप ब्रह्माप्ति—अमृतात्मक आनन्दावस्था की प्राप्ति—

सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।
युगपत् स्वामृतेनैव परमानन्दमयो भवेत्।।

आनन्द ही सृष्टि का मूल है और वही परमतत्त्व तथा ब्रह्म है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।।[1]

समस्त जगत् को मन से दग्ध कल्पित करके या अपने देह में जगत् के अवस्थित होने की कल्पना करके समस्त तत्त्वों को उनके कारणों में लय करके साधक परा शक्ति प्राप्त कर लेता है।[2]

सूक्ष्मीकृत प्राणशक्ति को हृदय एवं द्वादशान्त में प्रवेश कराकर और हृदय में प्रविष्ट होकर स्थित रहने पर वह शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति (परा शक्ति) भी प्राप्त कर लेता है—

पीनां च दुर्बलां शक्तिं ध्यात्वा द्वादशगोचरे।
प्रविश्य हृदये ध्यायन् मुक्तः स्वातन्त्र्यमाप्नुयात्।।[3]

इसी प्रकार—

1. परादेवी प्रकाशते। (वि. भै.-74)
2. यत्र-यत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत्।
तत्र-तत्र परानन्दस्वरूपं सम्प्रवर्तते।। (वि. भै.-73)
3. तैमिरं भावयन् रूपं भैरवं रूपमेष्यति। (वि. भै.-85)
4. उदेति देवि सहसा धानौघः परमेश्वरः। (वि. भै.-88)

1. तैत्तिरीयोपनिषद् (3.6) 2. विज्ञानभैरव (29.30) 3. विज्ञानभैरव (54)

5. निराश्रया चितिः शक्तिः स्वरूपं दर्शयेत् तदा। (वि. भै.-90)

हाँ, इसके लिये मन से भावना करनी चाहिये कि—

6. सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च व्यापकः परमेश्वरः।
स एवाहं शैवधर्मा इति दार्ढ्याच्छिवो भवेत्।।

7. प्रसार्य भैरवं रूपं भावयंस्तन्मयो भवेत्।।

इस स्थिति में 'प्रविष्टस्याद्वये शून्ये तत्रैवात्मा प्रकाशते' और इस स्थिति में—

यत्र-यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र-तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति?[1]
सा शक्तिः शाङ्करी नित्यं भावयेत्ता ततः शिवः।।[2]

इस स्थिति में 'सर्वत्र भैरवो भावः सामान्येष्वपि गोचरः'[3] और ऐसी स्थिति में ही साधक स्पन्दकारिकाकार की भाँति कह उठता है—

न सावस्था न यः शिवः।

भारतीय योगशास्त्र में मनःप्रधान साधना पर बल

भारतीय योगशास्त्र में योगसाधना की जो अनेक प्रणालियाँ (हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग आदि) हैं, उनमें मन को सर्वाधिक प्राधान्य देने वाली योग-प्रणाली—राजयोग को ही योग में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है—

राजयोगं विना पृथ्वी राजयोगं विना निशा।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्राऽपि न शोभते।।[4]

सारे हठयोग एवं लययोग के उपाय मात्र राजयोग के लिये हैं—

सर्वे हठलयोपायाः राजयोगस्य सिद्धये। (हठयोग-4-103)

ज्ञान की सातों भूमियाँ—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी एवं तुर्यगा में भी मन की ज्ञानात्मिका भूमिका ही प्रधान है।

राजयोग मन की साधना का योग-विधान है। राजयोग मन का योग है। यही समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, परमपद, अमनस्क, जीवन्मुक्ति, सहजावस्था एवं तुर्यावस्था है—

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम्।।

अर्थात् इस मनःप्रधान साधना से सर्वोच्च शक्ति के आयत्तीकरण की यौगिक स्थितियाँ, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, परमपद, अमनस्क, जीवन्मुक्ति,

1. विज्ञानभैरव (113)
2. विज्ञानभैरव (118)
3. विज्ञानभैरव (121)
4. हठयोगप्रदीपिका

सहजावस्था, राजयोग एवं अद्वैत प्राप्त हो जाती हैं।[1]

मन की साधना से प्राप्त मनोन्मनी नामक चिदात्मिका शक्ति से बढ़कर तो कोई है ही नहीं; क्योंकि यही परमशिव की परा शक्ति है—स्वातन्त्र्य शक्ति है; अत: इसे योगियों ने नमस्कार किया है—

मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।

राजयोगी कालजयी हो जाता है—

राजयोगसमारूढ़: पुरुष: कालवञ्चक:।[2]

मन का यथार्थ स्वरूप

भगवान् की सृष्टि में मन से अधिक शक्तिशाली तत्त्व कोई नहीं है। यह बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिनी, नाद, नादान्त, व्यापिनी, शक्ति और सारे शक्तिकेन्द्रों में स्थित है। मन विश्वव्यापी है। आपका मन, मेरा मन—ये सब विभिन्न मन समष्टि मन के अंशमात्र हैं।

हिरण्यगर्भ विश्व का समष्टि मन है। मनुष्य का मन समष्टि मन का एक अंशमात्र है। प्रत्येक मन दूसरे हर एक मन से संलग्न है। प्रत्येक मन, वह चाहे जहाँ भी रहे, सम्पूर्ण विश्व के व्यापार में प्रत्यक्षत: भाग ले रहा है। यदि आपका मन एक स्वतन्त्र वस्तु होता और मेरा मन आपके मन से पूर्णतया स्वतन्त्र वस्तु होता तो इन दोनों मनों में कोई सम्बन्ध नहीं होता। ऐसा होने पर एक के विचार दूसरे व्यक्ति के पास कैसे पहुँच पाते। यदि प्रत्येक मन स्वतन्त्र होता तो—

1. टेलीपैथी की क्रियायें कैसे सम्भव हो पातीं?

2. हिप्नोटिज्म एवं मेस्मेरिज्म की सम्मोहनात्मक क्रियायें कैसे निष्पादित हो पातीं?

3. मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण, स्तम्भन की क्रियायें कैसे सम्पन्न हो पातीं?

4. टेली रेसपौंस एवं मान्त्री शक्तियों का सुप्रभाव-दुष्प्रभाव आदि कैसे सम्भव हो पाता?

5. परचित्तज्ञान एवं Thought transference की क्रियायें कैसे सम्भव हो पातीं?

6. परमात्मा के प्रति की गई प्रार्थना, भक्ति, उपासना, पञ्चोपचार, षोडशोपचार आदि से सम्पन्न सेवा के भाव भगवान् के पास कैसे पहुँच पाते?

7. आज की वैज्ञानिक शब्दावली में प्रयुक्त Brain washing, Post hynotism आदि कैसे सम्भव हो पाते?

---

1. हठयोगप्रदीपिका, चतुर्थ उपदेश (3-4)
2. हठयोग- प्रदीपिका

८. प्रेतावेश के समय प्रेताविष्ट के मन पर प्रेत के मन का पूर्णाधिकार कैसे हो पाता?

मन के सम्बन्ध में उपनिषदों की दृष्टि

वेदों में मन को ब्रह्म कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही ब्रह्म है। तुम मन की उपासना करो। जो मन की ब्रह्म के रूप में उपासना करता है, उसकी गति मनोगति (मन की स्वेच्छागति) हो जाती है।

वैदिक काल में आर्य लोग मन को एक पृथक् देवशक्ति मानकर उससे प्रार्थना करते थे कि वह सर्वकर्माधिष्ठान, सर्वज्ञानाश्रय, वेदप्रतिष्ठित, सर्वनियन्त्रक, हृत्प्रतिष्ठ, दूरंगम, ज्योतिषां ज्योतिरेकं, यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु, अजिर, जविष्ठ, चित्ताश्रय, यज्ञाश्रय, कर्माश्रय, सर्वप्रेरक, सर्वानुस्यूत एवं अमृतात्मा मन शुभ संकल्पों वाला हो। यजुर्वेद (34.1-6) में मन से प्रार्थना की गई है कि वह दूर से भी दूर जाने वाला, ज्योतियों का भी ज्योति, भूत-भविष्य का आधार और कर्मों का अधिष्ठान मन शिवसंकल्पों वाला हो—

यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यत्प्रज्ञानुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता स्थनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमातं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

तुषारथिरश्वानिव यन्मुष्यान्नेनीयतेऽभी शुभिर्वाजित इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

योगवासिष्ठ में कहा गया है कि एक वादी के मत में मन जड़ है तो दूसरे के मत से जीव से भिन्न है। तीसरे के मत से वह अहंभाव का प्रतीक है तथा चौथे के मत से वह बुद्धि है। मन ही मूलभूत एवं एकमात्र ध्यातव्य वस्तु है; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् मन से व्याप्त है। मन से भिन्न केवल परमात्मा ही है। वसिष्ठ के मत में मन ही क्रिया है और शरीरों का कारण है। मन जन्म लेता है और मरता है। मन ही एक

ऐसी वस्तु है, जिसका विचार करने से वह नहीं रह जाता। मन नामक क्रिया का विनाश ही मुक्ति है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। (श्रुति)

मन ही बन्धन एवं मोक्ष दोनों का कारण है। मन की मृत्यु से उद्धार होता है। मन के स्थिरीकरण से व्यक्ति त्रैलोक्य (आवागमन चक्र) से तर जाता है। मन ही आरम्भ, मध्य एवं अन्त है। मन मारने वाला एवं मरने वाला दोनों है। मन ही तरने वाला एवं तारने वाला दोनों है। सारे विषय-विकारों का भी मूल मन ही है।

गोरक्षनाथ की दृष्टि—

मन मारै, मन मरे, मन तारै, मन तिरै।
मन जै अस्थिर होई तृभुवन भरै।
मन आदि, मन अन्त, मन मधे सार।
मन ही तै छूटै बाबू विषै विकार।।[1]

1. मन शून्यस्वरूप है—अवधू मन का सुंनिरूप।

2. मन विना पंखों का तोता है—मन पंखि बिन सूवा।

3. मन उन्मन कहाँ होता है?—गगन अस्थाने मन। उनमन रहै।

4. किसके परिचय से माया एवं मोह दोनों नष्ट हो जाते हैं?—अवधू मन परचै माया मोह टूटै।

5. मन एवं पवन का निवास कहाँ है?—अवधू हिरदा वसै मन नाभी बसै पवन।

6. मन कैसे उत्पन्न होता है?—प्राण उदपदिते मन।

मन को कबीर (निर्गुणपन्थी सन्त) ने निरञ्जन, काल, धर्मराज, कालनिरञ्जन कहा है। मन काल तो है; किन्तु पवन के साथ ऐकात्म्य प्राप्त कर लेने पर यही मन कालहन्ता भी बन जाता है। इसीलिए योगिराज गोरक्षनाथ ने कहा है—

मन पवन ले रहै समाइ। (आत्मबोध)

प्रश्न उठता है कि मन पवन में साम्य हो कैसे? गोरक्षनाथ कहते हैं—

अवधू मन सरोवर, पवन सनाल।
उरध मुष होइ वंचिए जम काल।।

अरध उरध अगोचर लिव लहै।
मन पवन ऐसैं समि रहै।।

हृदय न होता तो मन शून्य में रहता—

अवधू हिरदा न होता तब सुनि राता मन।

---

1. गोरखबानी

मन स्थैर्य कहाँ पाता है?—

सहज सुन्नि मैं मन थिर रहै।

मन का प्राण एवं पवन का आधार क्या है?—

अवधू मन का पवन जीव। पवन का सुन्नि बेसास।।
बेसास का ब्रह्म आधार। ब्रह्म का अच्यंत रूप।।[2]

योगिराज अरविन्द घोष की दृष्टि—मन का स्वभाव यह है कि यह जिसके भी सम्पर्क में आता है, तदाकार हो जाता है। यह एक दर्पण है। इसके समक्ष जो भी बिम्ब आयेगा, इसमें प्रतिबिम्ब के रूप में आकारित हो उठेगा।

संस्कृत व्याकरण ने मन को नपुंसक लिंग का शब्द माना है अर्थात् यह किसी भी लिंग में नहीं है अर्थात् तटस्थ है। तटस्थ होने के कारण ही यह सारे आकारों को ग्रहण करके तद्रूप हो जाता है। इसमें आकार भी प्रतिबिम्बित होते हैं और विचार भी। यह सृष्टि का विचित्र दर्पण है। यह है तो निराकार; किन्तु सृष्टि के सारे आकारों का संग्रह-कोष है। यह है तो निर्विचार; किन्तु सृष्टि के सारे विचारों का संग्रह-कोष है। यह अनन्त जन्मों के बिम्बों, प्रतिबिम्बों, विचारों, भावनाओं, वासनाओं, संकल्पों, आकारों, संस्कारों एवं वृत्तियों का आश्रयस्थान है; किन्तु मूलतः यह सबसे रहित कोरा ब्लैक बोर्ड या कोरी स्लेट है। इसमें बाहर से विचार, आकार, बिम्ब आदि आते हैं, न कि इसके स्वयं के होते हैं।

मन का कार्य है—स्वयम्भू, अखण्ड एवं एकात्मक सद्वस्तु का कोई अंश काट लेना और उसके इस सीमांकन या माप को समग्र या अखण्ड मान लेना। सत्य को पाने हेतु मन को अपने भीतर स्थान खाली करना होगा, जो कि मन को अतिक्रान्त करके मन को परिपूर्ण करे। मन इन्द्रिय है, सत्य इन्द्रियातीत है। हमें मानस से उच्चतर मन (आलोकित मन) और उससे ऊपर सम्बोधि, फिर अधिमानस और अन्त में अति-मानस तक पहुँचना है।

मन के दो रूप हैं—विभक्त मन (व्यष्टि मन) एवं अविभक्त मन (समष्टि मन : ब्रह्माण्डीय मन)।

अरविन्द घोष ने ठीक ही कहा है कि विभक्त एवं मर्त्य मन, जो परिसीमन, अज्ञान और द्वन्द्वों का जनक है, ज्योतिर्मय अतिमानस की एक अँधेरी आकृति-मात्र हैं। अधिमानस ज्योतियों से परिपूर्ण है। यहीं से जीव अज्ञान में उतरता है। शक्तियों का विभाजन होता है। विश्वातीत मन या अतिमानस सत्य को एक अखण्ड समग्रता में देखता है। यहाँ समस्यायें नहीं होतीं। यह सच्चिदानन्द और निम्नतर सृष्टि के मध्य स्थित है। यही शक्ति मन, प्राण तथा शरीर का रूपान्तरण करती है।

---

1. गोरखबानी

मन्त्र के कार्य करने की पद्धति—चूँकि प्रत्येक व्यक्ति का मन संसार के प्रत्येक व्यक्ति से सम्बद्ध है; अतः प्रत्येक व्यक्ति का विचार दूसरे को प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। हमारे ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सामने-पीछे और दसों दिशाओं में सर्वत्र विचारमण्डल Ideosphere है। हम विचारों के समुद्र में गोता लगा रहे हैं। विश्व के प्रत्येक प्राणी के मन के विचार इसी विचारमण्डल में आकर तैर रहे हैं।

मन के विचारों की कार्य-पद्धति—किसी भी व्यक्ति का विचार किसी दूसरे व्यक्ति के पास सीधे नहीं पहुँचता। हमारे विचारों को आकाशतत्त्व (Ether) के स्पन्दनों में रूपान्तरित (परिणत) होना पड़ता है। ये ही स्पन्दन दूसरों के मस्तिष्क में पहुँचते हैं। इन्हीं आकाशीय स्पन्दनों का ग्रहीता के मन में विचारों के रूप में रूपान्तरण होता है। सारांश यह कि—

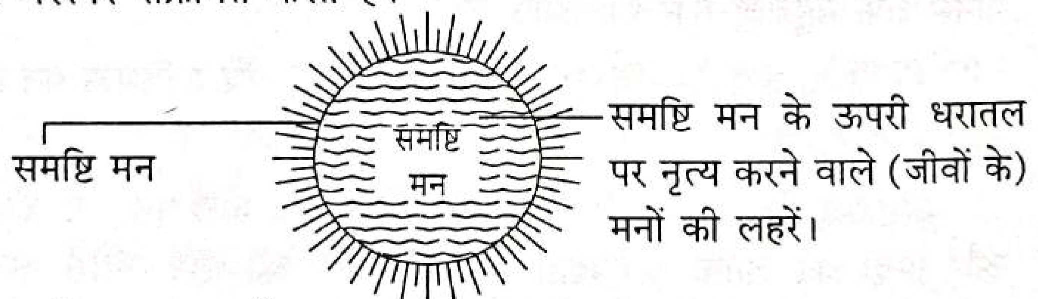
1. यदि मेरा विचार आपके पास पहुँचता है तो पहले यह आकाशतत्त्व के स्पन्दनों में परिणत होगा और फिर ये आपके मन में पहुँचते हैं।

2. आपके मन में इन स्पन्दनात्मक विचारों का पुनः विचारों के रूप में रूपान्तरण होता है।

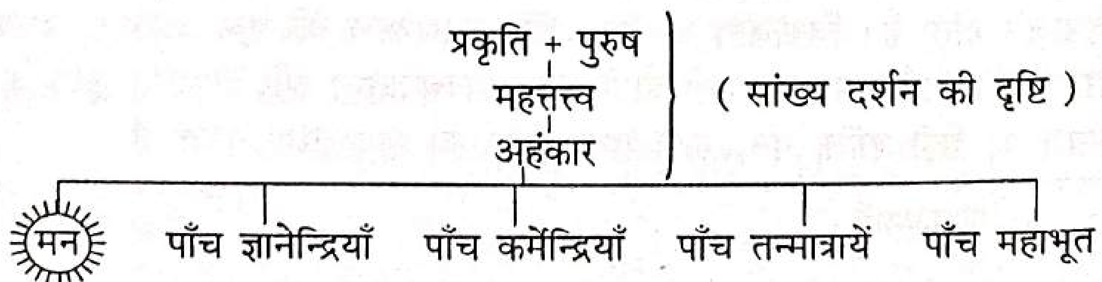
3. हमारे मन का विचार विश्लिष्ट होकर आकाशतत्त्व में मिल जाता है एवं वहाँ संश्लेषण हो जाता है और इस प्रकार ही यह चक्राकार क्रिया सतत चलती रहती है।

4. विचारसंक्रमण (Thought transference) में ऐसा नहीं होता। यहाँ चक्राकार क्रिया नहीं होती। मेरा विचार सीधे आपके पास पहुँच जाता है। योगियों का कथन है कि मन एक अखण्ड वस्तु है। यह विश्वव्यापी है। समष्टि मन एक समुद्र है। प्राणियों के मन उस समष्टि मन पर नृत्य करने वाली तरंगे हैं।

5. मन की इसी अखण्डता के कारण हम अपने विचारों को सीधे (विना किसी माध्यम के) परस्पर संक्रमित करते हैं।



मन की सृष्टि पर ध्यान दें—



मन का प्रपितामह प्रकृति, पितामह महत्तत्त्व एवं पिता अहंकार है और उसके भाई दस इन्द्रियाँ एवं तन्मात्रायें हैं। चूँकि समस्त स्थावर-जंगम का रचना-विधान, उसकी संरचना पद्धति एवं निर्माणोपादान एक हैं; अत: उनमें अन्त:सम्बन्ध तो रहेगा ही। चेतन प्राणियों के सम्बन्ध की तो बात छोड़िये; मनुष्य-मनुष्य, मनुष्य-देव, मनुष्य-भगवान्, मनुष्य-पशु, मनुष्य-वनस्पति, मनुष्य-जड़ जगत् एवं इसी प्रकार मनुष्य एवं समस्त विश्व एवं विश्वातीत—सभी परस्पर सम्बद्ध हैं। वे स्वतन्त्र एवं पृथक् होकर भी (पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्र से बँधे होने के कारण) पूर्णत: स्वतन्त्र एवं पृथक् नहीं हैं, परस्पर बँधे हुये हैं। इसीलिए काश्मीरी शैव तान्त्रिकों ने अहं, अहमस्मि, अहमिदम्, इदमहम् की आत्मानुभूति करने को आदर्श साधना माना है। यदि प्रत्येक मन, पदार्थ एवं सत्ता पृथक् होती तो—

सोऽहं ममायं विभव इत्येवं परिजानत:।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरोऽपि महेशता।।[1]

स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वर:।
विश्वरूपोऽहमिदमित्यखण्डामर्शबृंहित: ।।[2]

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या। (4.4)

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु प्रमाता कथ्यते पति:। (3.14) को आदर्श मानकर विश्वोऽहं की साधना क्यों की जाती?[3] पूर्णाहन्ता की भावना क्यों की जाती? सद्विद्या (शुद्धविद्या—विश्वोऽहं की प्रतिपत्ति) का अभ्यास क्यों किया जाता?

कबीरपन्थ में मन का स्वरूप—आदिपुरुष (सत्यपुरुष, सत्पुरुष) ने सृष्टि-क्रम में इच्छा के द्वारा प्रथम सृजन के रूप में शब्द की सृष्टि की। द्वितीय शब्द से कूर्म, तृतीय शब्द से ज्ञानी, चतुर्थ शब्द से विवेक एवं पाँचवें शब्द से कालनिरञ्जन को आविर्भूत किया। कालनिरञ्जन ने एक पैर से खड़े रहकर सहस्रों वर्ष तक तप किया। धर्मराज (कालनिरञ्जन) सृष्टि की रचना के लिये अपने अग्रज कूर्म के तीनों सिर (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के प्रतीक) और उसमें निहित पञ्चतत्त्व, सूर्यादिक उपादान पाकर भी रचना नहीं कर सके; अत: पुन: चौंसठ युगों तक एक पैर पर खड़े रहकर तप किया। तब सत्तपुरुष साहिब सुहंग (जीव) स्वरूप बीज (ईश्वरांश) और शक्ति स्वरूप 'खेत' प्रदान किया। सत्तपुरुष ने आदिकुमारी (अष्टंगी कन्या) को उत्पन्न करके मानसरोवर भेजा। कालस्वभाव, कालनिरञ्जन (या मन) ने उसे निगल लिया। धर्म द्वारा शीश पर प्रहार करने से आदिभवानी के पेट में से बाहर निकलने पर काल-

1. प्रत्यभिज्ञाकारिका (उत्पलदेव)
2. प्रत्यभिज्ञाकारिका (4.1)
3. साधना में पूर्णता प्राप्त करने के लिये विश्वाभेद प्रथा, विश्वात्मैक्य एवं पूर्णाहन्ता अनिवार्य है।

निरञ्जन ने उस कन्या से अपने को पत्नी के रूप में समर्पित करने के लिये कहा। उस कन्या के यह कहने पर कि सम्बन्ध में 'तुम मेरे बड़े भ्राता हो, मुझे उदर में रखने के कारण तुम मेरे पिता हो; अतः मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती'—कालनिरञ्जन नहीं माना और अपने नखों से उसके शरीर में जननेन्द्रिय बनाकर सम्भोग करने लगा। तीन बार सम्भोग करने से उससे तीन पुत्र ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश हुये। प्रथम शुक्र बिन्दु से ब्रह्मा, द्वितीय से विष्णु एवं तृतीय से रुद्र उत्पन्न हुये। इसके बाद काल राज्य आदिभवानी को देकर तप करने चला गया और शून्य गुफा में अदृश्य रहकर तप करने लगा। इसे ही कबीर ने 'मननिरञ्जन' कहा है—

वह गुप्त भा पुनि संग सबके मन निरञ्जन जानिए।

कालनिरञ्जन या मननिरञ्जन के आदेशानुरूप आदिभवानी (नारी, भवानी, आदि कुमारी, अष्टंगी कन्या, आद्या) ने तीनों पुत्रों को समुद्र-मन्थन करने के लिये आदेशित किया और उनके चले जाने पर आदि भवानी ने तीन कन्यायें उत्पन्न करके उन्हें भी समुद्र भेज दिया, जिन्हें पाकर तीनों पुत्र घर लौटे। भवानी ने सावित्री ब्रह्मा को, लक्ष्मी विष्णु को एवं पार्वती शंकर को पत्नी के रूप में दे दिया। कबीरदास ने 'नारी भयी हती सो माता' कहकर मातृसम्भोग-जैसी लज्जास्पद बात कहकर काम की निन्दा की है।

पुत्र ब्रह्मा द्वारा कालनिरञ्जन (पिता) के दर्शनार्थ तप करने जाने पर और पुनः न लौटने पर आदि भवानी ने अपने शरीर उबटन एवं अपने अंश से गायत्री को तथा गायत्री ने अपने अंश से सावित्री को उत्पन्न किया। गायत्री ने अपने अग्रज से स्वयं भी सम्भोग किया एवं अपनी कन्या सावित्री से भी सम्भोग कराया। माता (आद्या) के पास ब्रह्मा, गायत्री एवं सावित्री तीनों झूठ बोले और फलस्वरूप आद्या ने तीनों को शाप दिया।

आगे कबीरदास ने अलख निरञ्जन, मन निरञ्जन, धर्मराय, धर्म या कालनिरञ्जन को मन का स्वरूप बताकर माता द्वारा विष्णु को यह उपदेश दिलवाया है—

मन स्वरूप करता कहँ जानो। मन ते दूजा और न मानो।।
स्वर्ग पताल दौर मन केरा। मन अस्थिर मन अहै अनेरा।।
छन महँ कला अनन्त दिखावे। मन कह देख कोइ नहिं पावे।।
निराकार मन ही को कहिए। मन की आस दिवस दिनि रहिए।।
देहलु पलटि सुन्य महँ जोती। जहना झिलमिल झालर होती।।
फेरहु श्वास गगन कह धाओ। मार्ग अकासहिं ध्यान लगाओ।।

त्रिदेवों के साथ ही साथ भवानी भी कालस्वरूप मन से मुक्त नही हैं; क्योंकि—

काल अंग ह्वै रही भवानी।

आख्यान से यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्गुणपन्थी सन्तों की दृष्टि में—

1. मन त्रिलोकी के जीवों को भक्षण करने वाला काल है; क्योंकि उसे खाने के लिए जीव ही आहार बनाया गया है। जीव जगत् का बीज भी है और काल का भोजन भी है।

2. ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसी काल के पुत्र हैं, जो काल हजारों वर्षों तक तप करने के बाद भी अपनी सगी बहन या पुत्री के साथ सम्भोग करता है और तपोपरान्त भी एक नारी को देखकर इतना कामान्ध हो उठता है कि उसे अपने पेट में डाल लेता है।

3. ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी अपनी सगी बहन से विवाह कर लेते हैं तथा ब्रह्मा तो अपनी पुत्री एवं नातिन के साथ भी दुष्कर्म करता है और झूठ बोलकर तथा झूठ बोलने के लिये प्रेरित करके शापग्रस्त होता है।

4. ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इनके माता-पिता सभी कालस्वरूप हैं। आदि भवानी काल की पत्नी है। यह काल ही मनस्तत्त्व है।

दादू दयाल कहते हैं कि चेतना की अस्थिरता एवं परमतत्त्व के दर्शन के अभाव का कारण मन की अस्थिरता है—

जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होई।
दादू मनुवाँ थिर भया सहजि मिलैगा सोइ।।

मन को नाम में स्थिर कर लेने पर सर्वत्र राम ही राम दिखाई पड़ने लगते हैं—

मन इस्थिर कर लीजै नाम। दादू कहै तहाँ ही राम।।

मन एक बार स्थिर हो जाने पर कहीं नहीं जाता; यथा पानी में घुला हुआ नमक—

जब मन लागै राम सैं तब अनत् काहे को जाइ।
दादू पाणी लूँण ज्यूं, ऐसे रहै समाइ।।

मन के मलिन रहने पर ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है—

ध्यान धरें का होत है जे मन का मैल न जाइ।
वग मीनी का ध्यान धरि, पसू विचारे खाइ।।

मन का प्रकाशपक्ष भी है। दादू दयाल कहते हैं—

मन ही सन्मुख नूर है मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख ज्योति है, मन ही सन्मुख सेज।।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।





सप्तदश अध्याय

मन्त्रतत्त्व और शक्ति-साधना

मन्त्रों की रचना—मन्त्रों की रचना परभैरवीय परावाक् शक्तियों से निष्पन्न हुई है। मन्त्रों की रचना का मूल ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति (परम शिव की शक्तियों में से तीन शैवी शक्तियाँ) स्वरूप शक्तियाँ हैं अर्थात् परमशिव की जो पाँच शक्तियाँ—

चित् शक्ति, आनन्दशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिस्वरूप हैं; उनमें से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति से ही परा वाक्, पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् एवं वैखरी वाक् का आविर्भाव हुआ है।

इन्हीं वाक् शक्तियों का परिणमन या स्थूल रूपायन विश्व की समस्त वर्णमालायें एवं ब्रह्माण्ड की समस्त ध्वनियाँ, नाद, स्फोट, आहत-अनाहत शब्द एवं अक्षर हैं। सारांश यह कि—

सर्वे वर्णात्मका: मन्त्रा: ते च शक्त्यात्मका: प्रिये शक्तिश्च मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।। (श्रीतन्त्रसद्भावकार की दृष्टि)

इन मन्त्रों में जो वर्ण हैं, उन वर्णों की जननी (इच्छा, ज्ञान, क्रिया/ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिकास्वरूपा) परभैरव की मूल शक्तियाँ हैं।

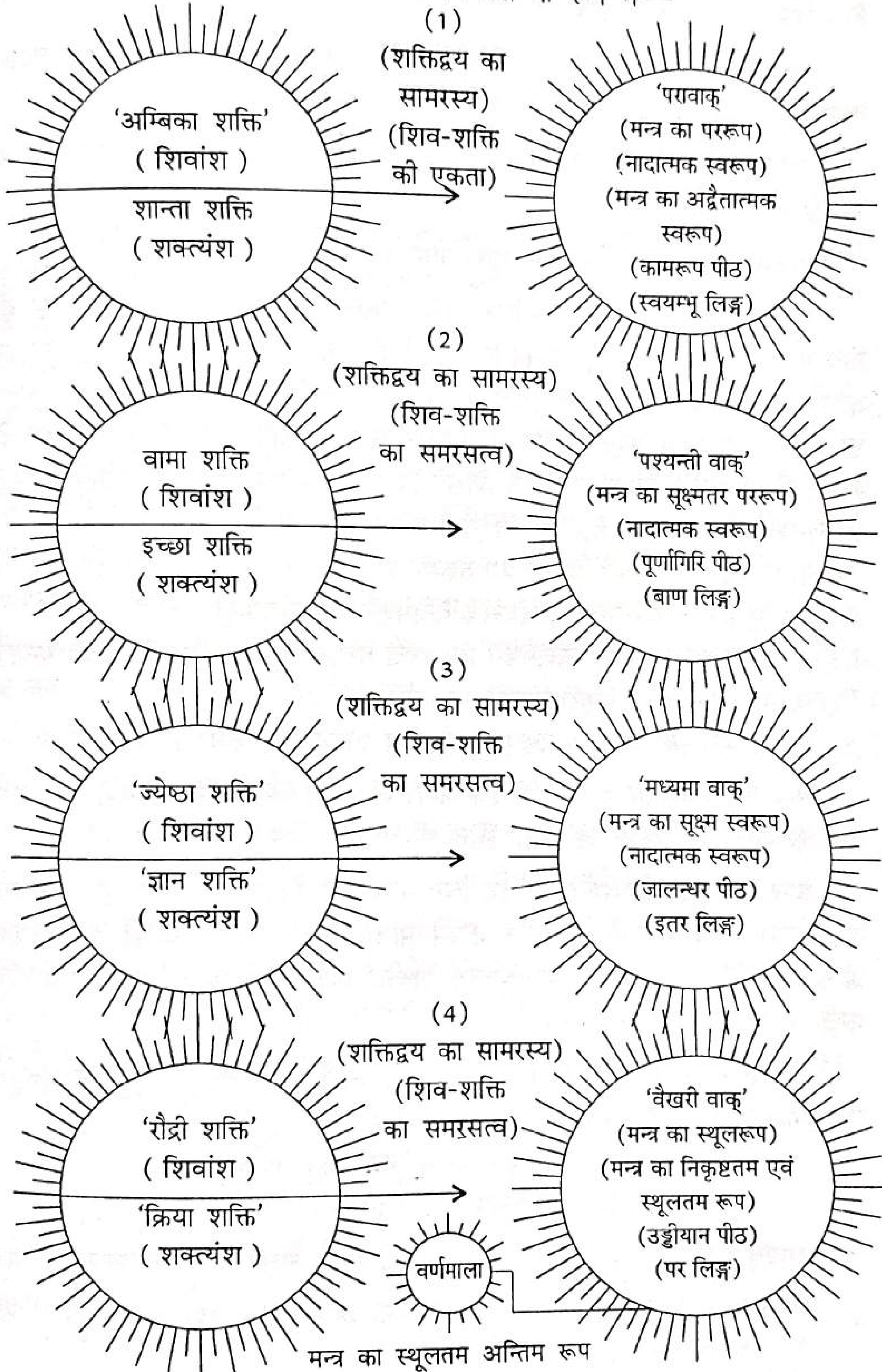
अत: सुस्पष्ट है कि मन्त्रों की साधना परभैरव (परम शिव) की शक्तियों की साधना है।

जिस प्रकार बीज के ऊपरी धरातल पर वृक्ष नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु ध्यानयोग या समाधि द्वारा उसे बीज के भीतर सुषुप्त अवस्था में देखा जा सकता हैं (जो कि बीज के गहरे अन्तस्तल में सो रहा है); ठीक उसी प्रकार मन्त्र के वर्णों में मातृका शक्तियाँ या परभैरव की मूल शक्तियाँ (इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति आदि) नहीं दिखाई पड़तीं; किन्तु ध्यानयोगात्मक साधना से अवश्य दिखाई पड़ती हैं।

इसीलिये मन्त्र परभैरवीय शक्तियों का प्रतिफलन है—उनका प्रकाशन है—उनका स्वरूपविस्तार है।

वाणी का उद्भव-क्रम एवं मन्त्र

मन्त्र तत्त्व—परभैरवीय शक्तियों के विकास के रूप में—



मन्त्र-शक्ति—त्रिक दर्शन के महान् आचार्य एवं दार्शनिक क्षेमराज कहते हैं कि शक्ति का मन्त्र से इतना गम्भीर सम्बन्ध है कि मन्त्रवीर्यस्कारात्मा सामर्थ्य ही 'शक्ति' है—'तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्काररूपा।'[1]

आचार्य क्षेमराज ने मन्त्र के दो धर्म एवं लक्षण स्वीकार किये हैं—परस्फुरत्तात्मक-मननधर्मात्मता भेदमय संसार की प्रशमनात्मक त्राणधर्मता।

'अतएव च परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता च अस्य निरुच्यते।'

त्रिकनय में मन्त्र की साधना शाक्तोपाय के अन्दर गृहीत है।

शिवसूत्रकार की दृष्टि—'चित्तं मन्त्रः' कहकर शिवसूत्रकार तो चित्त को ही मन्त्र मानते हैं। आचार्य क्षेमराज का निदर्शन है कि जिस साधन (चित्त) के द्वारा परम तत्त्व का विमर्शन होता है, वही चित्त है। यह विमर्शन किस स्वरूप का है? इस प्रश्न पर आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि पूर्णस्फुरत्तासतत्त्व प्रासाद प्रणवादि का संवेदन ही विमर्श है। यह विमर्शन या संवेदन, जिसमें कि परमात्मा का अभेदभाव (अद्वैतभाव) से विमर्शन किया जाता है, उसे ही मन्त्र कहते हैं—

1. चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्।
2. पूर्णास्फुरत्तासतत्त्वाप्रासादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्।
3. तदेव मन्त्र्यते गुप्तमन्तरभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपमअनेन इति कृत्वा मन्त्रः।
4. अतएव च परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता।
5. भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता च अस्य निरुच्यते।

मन्त्र के दो व्यापार हैं—मनन एवं त्राण। जो मनन किये जाने पर त्राण करे, वही मन्त्र कहलाता है। इसके अतिरिक्त चित्त भी मन्त्र है। कैसा चित्त मन्त्र है?

मन्त्र का यथार्थ स्वरूप—जिस चित्त ने मन्त्र के देवता का गम्भीर एवं एकनिष्ठ तथा सतत विमर्शन करने के कारण उससे सामरस्य प्राप्त कर लिया हो, (आराधक का) वही चित्त मन्त्र है—'मन्त्रदेवताविमर्शत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव मन्त्रः' (आचार्य क्षेमराज)।

विशिष्ट वर्णों के संघट्टनमात्र को मन्त्र नहीं कहते—(मन्त्रः) 'न तु विचित्रवर्ण-सङ्घट्टमात्रकम्'। सर्वज्ञानोत्तर में कहा भी गया है—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्रांश्चापि तान्विदुः।
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः।।

अर्थात् जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, वे तथाकथित मन्त्र 'मन्त्र' नहीं हैं।

श्रीतन्त्रसद्भाव में कहा गया है कि मन्त्रों की जीवभूता जो सामर्थ्य है, वह संवित्

1. शिवसूत्रविमर्शिनी।

शक्ति है। उसी अव्यया संवित् शक्ति से परिपूर्ण होने पर शब्द-संघट्टना मन्त्र का स्वरूप ग्रहण करती है; अन्यथा तो शरत् कालीन बादलों की भाँति वह निरर्थक ही होती है—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फला: शरदभ्रवत्।।

जबतक मान्त्रिक एवं मन्त्र में तादात्म्यभाव स्थापित नहीं हो जाता तबतक मन्त्र सिद्ध नहीं हुआ करते। इसीलिये स्पन्दकारिका में कहा गया है कि 'सहाराधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिण:'।

सारे मन्त्र वर्णात्मक तो हैं, किन्तु वे शक्त्यात्मक भी हैं—'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मका: प्रिये'। यदि ये शक्त्यात्मक नहीं रहते तो फिर वे मन्त्र भी नहीं कहे जा सकते।

मन्त्रों का रहस्य क्या है? इस पर शिवसूत्रकार कहते हैं—'विद्या शरीरसत्ता मन्त्र-रहस्यम्' (शिवसूत्र-2.3)।

आचार्य क्षेमराज ने इसे मार्मिक ढंग से समझाया है। शिवसूत्रकार के उक्त सूत्र का सारांश यह है कि—पराद्वयप्रथास्वरूप विद्या ही जिसका शरीर (स्वरुप) हो, उस विद्या-शरीरी शब्दराशि (मन्त्र के वर्णसमूह) की सत्ता (सम्पूर्ण विश्व के साथ अभेदात्मक प्रतिपत्ति या अभेदात्मक पूर्णाहन्तास्वरूप विमर्शन की स्फुरत्ता) ही मन्त्र का रहस्य है—'विद्या पराद्वयप्रथा, शरीरं स्वरूपं यस्य स विद्याशरीरो भगवान् शब्दराशि:। तस्य या सत्ता अशेषविश्वाभेदमयपूर्णाहंविमर्शनात्मा स्फुरत्ता सा मन्त्राणां रहस्यम् उपनिषत्।'[1]

मन्त्रसद्भाव में कहा गया है कि सारे मन्त्र वर्णात्मक एवं शक्त्यात्मक हैं। इन मन्त्रों की शक्ति 'मातृका' है और मातृकायें शिवात्मिका हैं—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मका: प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

यह भी कहा गया है कि जो लोग गुरुतत्त्व, शास्त्रोक्त समयतत्त्व नहीं जानते एवं दम्भ-कौटिल्य-लौल्यक्रिया में निरत हैं और शास्त्रीय क्रियाओं का परित्याग कर चुके हैं, उनके द्वारा मन्त्रशक्ति का कुप्रयोग न किया जा सके; अत: मन्त्र की शक्ति को गुप्त कर दिया गया है। अत: जो मन्त्र का गुप्त तत्त्व है, वह तो मन्त्र अवश्य है; किन्तु शेष वर्णादि-समूह तो मात्र वर्ण हैं, वे मन्त्र नहीं हैं—

न जानन्ति गुरुं देवं शास्त्रोक्तान्समयांस्तथा।
दम्भकौटिल्यनिरता लौल्यार्था: क्रिययोज्झिता:।।

अस्मात्तु कारणाद्देवि मया वीर्यं प्रगोपितम्।
तेन गुप्तेन ते गुप्ता: शेषा वर्णास्तु केवला:।।[2]

1. शिवसूत्र (2.3)   2. शिवसूत्रविमर्शिनी में उद्धृत

ऊपर मन्त्रों के संघटक तत्त्व को 'मातृका' कहा गया है। यह मातृका क्या है? आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि मातृका परतेजसमन्वित वह शक्तितत्त्व है, जिसने सारे विश्व को व्याप्त कर रक्खा है।

उसी विश्वव्यापक एवं परतेजसमन्वित मातृका शक्ति से मन्त्र का गठन होता है; किन्तु वह तेज मातृका की ऊपरी सतह पर नहीं, अन्तस्तल में होता है और सामान्य आराधक मन्त्र के उस स्तर—मातृका के अन्तस्तल तक पहुँच ही नहीं पाते; किन्तु मन्त्र का घटक तत्त्व वही परतेजसंवलित मातृका है—

या सा तु मातृका देवि! परतेज:समन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्।।

यह मातृका है क्या? यह मातृका है—परभैरवीय परवाक्शक्त्यात्मक तत्त्व।

'परभैरवीयपरवाक्शक्त्यात्मकं मातृका।'

यही समस्त वर्णों की जननी है। समस्त वर्णसंघट्टनारूप शरीरों (मन्त्रों) की वही भगवती मातृका स्फुरत्ता (विद्याशरीरसत्ता) है।[1] ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बिका शक्तियों के उपादान से ही तो समस्त वर्णों का आविर्भाव हुआ है। अत: मन्त्र के अन्तस्तल में ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बिका, इच्छा-ज्ञान-क्रिया आदि परशिव की सर्वोच्च शक्तियाँ अवस्थित हैं।

आचार्य क्षेमराज शिवसूत्रविमर्शिनी में उसी बात को अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'परभैरवीयपरवाक्शक्त्यात्मकमातृका अतएव ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बाख्य-शक्तिप्रसर-सम्भेदवैचित्र्येण सर्ववर्णोदयस्य उक्तत्वात् वर्णसंघट्टनाशरीराणां मन्त्राणां सैव भगवती व्याख्यातरूपा विद्याशरीरसत्ता रहस्यम् इति प्रदर्शितम्।'

क्या 'मन्त्र' साधक का साधनात्मक प्रयत्न नहीं है? शिवसूत्रकार एवं आचार्य क्षेमराज इस दिशा में अपनी मौलिक दृष्टि रखते हैं। कबीरदास जी की भी दृष्टि वही है। सन्त कबीरदास शिवसूत्रकार की ही दृष्टि का अनुसरण करते हुए कहते हैं—

पण्डित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै, खाँड़ कहे मुख मीठा।
पावक कहे पाँव जो दाझैं, जल कहे तृषा बुझाई।

---

1. सारांश—विद्या = पराद्वय प्रथा।
शरीर = स्वरूप = स्वरूप।
सत्ता = स्फुरत्ता।
शब्द-राशि = मन्त्र में स्थित वर्णस्वरूप = मातृकाओं का समूह।
सत्ता (स्फुरत्ता)। कैसी स्फुरत्ता? अशेष विश्वाभेदमयपूर्णाहंविमर्शनात्मा स्फुरत्ता।
विद्याशरीर = विद्यारूप स्वरूप वाले। (मन्त्र की शब्दराशि = मातृकायें) मातृका रूप स्वरूप वाले अर्थात् मन्त्र।।

भोजन कहे भूख जो भागै, तो दुनिया तरि जाई।
साँची प्रीति विषय-माया सों, हरि-भगतन की हाँसी।।

शिवसूत्रकार एवं क्षेमराज का मत यह है कि—

1. जहाँ शक्ति का स्फुरण नहीं है, वहाँ मन्त्र नहीं है।

2. शक्ति की वर्णात्मक या ध्वन्यात्मक परिणति या अभिव्यक्ति ही मन्त्र है।

3. चूँकि शक्ति चेतन है; अत: मन्त्र एवं उसके सारे वर्ण (शक्ति की प्रतिमूर्ति होने के कारण) चेतन हैं।

4. चूँकि शक्ति का आदिमन्त्रात्मक स्वरूप ओंकार अनाहत नाद है; अत: (उससे उत्पन्न होने के कारण) सारे मन्त्र भी अनाहत नाद के स्वस्वरूप हैं।

5. चूँकि अनाहत नाद (स्वयम्भू होने के कारण) अकृतिक एवं अप्रयत्नज है; अत: मन्त्र भी अकृतिक एवं अप्रयत्नज है—प्रयत्न-व्यापार से अतीत है। इसी दृष्टि को केन्द्र में रखकर शिवसूत्रकार कहते हैं—'प्रयत्न: साधक:' (शिवसूत्र-2.2) अर्थात् 'अकृतको य: प्रयत्न: स एव साधक:'। साधक का क्या अर्थ है?

साधक अर्थात् (मन्त्र-साधक, मन्त्र एवं मन्त्र के देवता के साथ तादात्म्य स्थापित करने में) सहयोगी 'अकृतको य: प्रयत्न: स एव साधको मन्त्रयितुर्मन्त्रदेवातातादात्म्यप्रद:' (शिवसूत्रविमर्शिनी)। अकृतिक प्रयत्न ही मन्त्र का साधक (सहयोगी) है। अकृतिक प्रयत्न क्या है? निजोद्योग बल ही अकृतिक प्रयत्न है—'अकृतिकनिजोद्योगबलेन योगीन्द्रो मन: कर्म (शिवसूत्रविमर्शिनी) अर्थात् मन्त्र का साधक (मन्त्रोदय का सहायक तत्त्व) निजोद्योगबल अर्थात् आत्मबल है। इसी बात को स्पन्दकारिकाकार ने इन शब्दों में कहा है—

अयमेवोदयस्तस्य ध्येयस्य ध्यायिचेतसि।
तदात्मतासमापत्तिरिच्छत: साधकस्य या।।

मन्त्र और नाद—मन्त्र मृत वर्णों की समष्टि नहीं है, प्रत्युत शिव की चेतन परा शक्ति का नादात्मक चेतन शक्ति-प्रवाह है। मन्त्र नाद की अभिव्यक्ति है? किन्तु नाद क्या है? नाद शिव एवं शक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध है। नाद शक्ति का उत्तरवर्ती विकास है—

1. आसीच्छक्तिस्ततो नाद: (शारदातिलक)

2. मिथो: समवाय: (शारदातिलक)

अर्थात् शिव-शक्ति का क्षोभक-क्षोभ्य सम्बन्ध है।

3. नाद भगवती का स्वस्वरूप है—

नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।।[1]

4. भगवती परा पश्यन्ती मध्यमा एवं वैखरी वाक् है—

1. ललितासहस्रनाम।

परा प्रत्यक् चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।।

भगवती मन्त्रस्वरूपा है—

5. महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।
6. सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी।
6. मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा।

वह मन्त्र का सार है—

छन्द:सारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी।

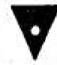
वह वर्ण है—

उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी।
माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी।।

पूर्णाहन्ता और मन्त्र—मन्त्र मनन एवं त्राण करने की अप्रतिम शक्ति के अतिरिक्त पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा हैं—

पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मत:।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते।।[1]

मन्त्र शक्ति का अनुभव कैसे होता है?



1. सौभाग्यभास्कर में उद्धृत।



अष्टादश अध्याय

नादतत्त्व एवं शक्ति-साधना

नाद शक्ति—भारतीय ऋषियों ने नादतत्त्व पर गहन चिन्तन किया और उसकी साधना की। 'नाद' शक्ति है। 'नाद' समस्त सृष्टि का मूल है। संगीत की तो नींव ही 'नाद' है। मन्त्रयोग का प्रस्थानबिन्दु भी नाद ही है। वर्णों का मूल भी नाद है। नाद ही समस्त शाब्दी-आर्थी सृष्टि का आधार है। नाद संसार की समस्त भाषाओं का मूल केन्द्र है। नाद ही शब्दब्रह्म है। नाद परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी भी है। सृष्टि के मूलभूत छत्तीस तत्त्वों का जनक भी नाद ही है। नाद शिव की परा शक्ति है। बिन्दु शिवात्मक है, बीज शक्त्यात्मक है और नाद शिवशक्त्यात्मक है—

बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।
बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः।।[1]

शिव जब शक्ति में क्षोभ उत्पन्न करता है तब उससे नाद की उत्पत्ति होती है और वही जगत् की सृष्टि का सूत्रधार है। नाद शिव एवं शक्ति दोनों का समवाय है— 'नादस्तयोर्मिथः। समवायः समाख्यातः' (शारदातिलक)।

समवाय अर्थात् सम्बन्ध। कैसा सम्बन्ध? क्षोभ्य-क्षोभक सम्बन्ध—'समवायः सम्बन्धः क्षोभ्यक्षोभकरूपः सृष्टिहेतुः'। बिन्दु से रौद्री, नाद से ज्येष्ठा एवं बीज से वामा की उत्पत्ति हुई है।

बिन्दु, बीज एवं नाद—प्रयोगसार में कहा गया है—

बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्।
तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः।।

नाद परमशिव और परा शक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध है।

स्थूल से सूक्ष्म स्तर पर पहुँचने का एक सरल मार्ग नाद भी है, जो कि साधक को भौतिक स्तर से ऊपर उठाकर दैवीय दिव्य स्तर पर पहुँचा देता है।

प्रश्न उठता है कि नाद के स्तर तक पहुँचें कैसे? योगियों ने अपनी साधना के

1. शारदातिलक (1.8-9)

अनुभवों के आधार पर बताया कि इस सूक्ष्म स्तर तक पहुँचने के लिए नादानुसन्धान प्रधान साधन है।

नाद-साधना की पद्धति—लक्ष्मणदेशिकेन्द्र कहते हैं कि साधक को चाहिये कि वह समस्त ज्ञानेन्द्रियों को बन्द करे अर्थात् दोनों अँगूठों से दोनों कान बन्द करे, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्र बन्द करे, दोनों मध्यमाओं से दोनों नासा-छिद्र बन्द करे एवं शेष उँगलियों से मुख बन्द करे। साथ ही समस्त ज्ञानेन्द्रियों को बन्द करके आत्मा, प्राण एवं मन में एकत्व की भावना करते हुए वायु को भीतर रोके। इस प्रकार के योग के निरन्तराभ्यास से नाद श्रुतिगोचर होने लगता है।

नादाभ्यास से श्रुतिगोचर नाद-ध्वनियाँ

1. प्रथम ध्वनि मत्तभृङ्गाङ्गनागीतसदृशः प्रथमो ध्वनिः। (शा. ति.) मतवाली भ्रमरी के गीत, (मत्त भृंगांगना के गीतसदृश मधुर गीत की ध्वनि)।

प्रथम ध्वनि—मतवाली भ्रमरी का गुञ्जन।

द्वितीय ध्वनि बाँस के छिद्रों में वायु के भर जाने पर उत्पन्न बाँस की ध्वनि के समान ध्वनि।

द्वितीय ध्वनि—बाँस की सङ्गीतमयी ध्वनि।

वंशिकस्याऽनिलापूर्णवंशध्वनिनिभोऽपरः। (शा. ति.)

तृतीय ध्वनि घण्टा के समान ध्वनि—घण्टारवसमः।

तृतीय ध्वनि—घण्टा-ध्वनि।

चतुर्थ ध्वनि बादल के समान ध्वनि—घनमेघस्वनोपमः।

चतुर्थ ध्वनि—मेघ-गर्जन

मत्तभृङ्गाङ्गना-गीतसदृशः प्रथमो ध्वनिः।
वंशिकस्याऽनिलापूर्णवंशध्वनिनिभोऽपरः।
घण्टारवसमः पश्चात् घनमेघस्वनोपमः।।
एवमभ्यसतः पुंसः संसारध्वान्तनाशनम्।
ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वं हंसलक्षणमव्ययम्।।[1]

फल—

1. संसार के अज्ञानान्धकार का विनाश।
2. तात्त्विक ज्ञान का उदय।

नाद के मात्र चार ही प्रकार नहीं हैं; प्रत्युत उसके 10 प्रकार हैं—

1. शारदातिलक (25.48-49)

1. चिणी
2. चिञ्चिणि (चिणिचिणी)
3. घण्टानाद
4. शंखनाद
5. तन्त्रीनाद
6. तालनाद
7. वेणुनाद
8. भेरीनाद
9. मृदंगनाद
10. मेघनाद

प्रयोगसारोक्त सिद्धिसूचक 10 अवस्थायें—

1. कम्प
2. रोमोद्गम
3. आनन्द
4. विमलत्व
5. स्थैर्य
6. लाघव
7. प्रकाश
8. ज्ञान
9. वैदुष्य
10. अद्वैतात्मसञ्चय का भाव

प्रकम्परोमोद्गमानन्दं वैमल्यस्थैर्यलाघवम्।
प्रकाशज्ञानवैदुष्यं भावोऽद्वैतात्मसञ्चयः।।

सम्भवन्ति दशाऽवस्था योगिनः सिद्धिसूचका।
ततस्त्रैकाल्यविज्ञानं महाप्रज्ञा मनोज्ञता।।

छन्दतः प्राणसंरोधो नाडीनां क्रमणं तथा।
वाचां सिद्धिश्चिरायुष्यमिन्द्रजालानुवर्तनम्।।

देहाद्देहान्तरप्राप्तिरात्मज्योतिःप्रकाशनम्।
प्रत्यया दश दृश्यन्ते प्राप्तयोगस्य योगिनः।। (प्रयोगसार)

चिचिचाकी तृतीयस्तु चतुर्थो घर्घरः स्वरः।
पञ्चमस्तु मनागुच्चः षष्ठो मदलकध्वनिः।।
सप्तमः सूक्ष्मनादः स्यादष्टमो वेणुवर्धनः।

नवम नाद का त्याग करके दशमनाद सुनना चाहिए। दशम ध्वनि दुन्दुभिनाद है—

नवमो मधुर ध्वानो दशमो दुन्दुभिस्वनः।

योग की सारी साधनाओं के पृष्ठभाग में मन की ही शक्ति काम करती है, वही शक्तिदायक स्रोत है। मन का लय ही सर्वोच्च उपलब्धि है। मन का लय शिवस्थान में होता है—

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते।
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते।।

नाद-साधना में भी मन की एकाग्रता प्रधान है। नाद की जो चार अवस्थायें हैं—आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था एवं निष्पत्त्यवस्था—इन सभी में नाद-साधना

में सफलता केवल मन की एकाग्रता से ही सम्भव है; अन्यथा नहीं। नादानुसन्धान-साधन की भी रीढ़ मन की एकाग्रता ही है।

नामजपात्मक शक्ति—अजपा जप की साधना भी शक्ति की ही साधना है; क्योंकि यह साधना 'सः' 'हं' की साधना है। अजपा मन्त्र आत्ममन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता आत्मा, शक्ति 'स' एवं 'ह' बीज है। सोऽहं मन्त्र के दो भाग हैं—शक्ति एवं बीज। यह मन्त्र शिव-शक्ति-संघटित मन्त्र है। संविद्रूपिणी शक्ति ही सकार है और परमशिव ही हकार है। 'स' प्रकृति है और 'ह' पुरुष है। बिन्दु एवं पुरुष को प्रकृत्यात्मक कहा गया है—

हकारः पुरुषः प्रोक्तः स इति प्रकृतिर्मता।
पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ बिन्दुसर्गौ मनीषिभिः।।

ताभ्यां क्रमात्समुद्भूतौ बिन्दुसर्गावसानकौ।
हंसौ तौ पुंप्रकृत्याख्यौ हं पुमान् प्रकृतिस्तु सः।
अजपा कथिता ताभ्यां जीवोऽयमुपतिष्ठति।
पुरुषं स्वाश्रयं मत्वा प्रकृतिर्नित्यमास्थिता।।
यदा तद्भावमाप्नोति तदा सोऽहमयं भवेत्।।

सकारार्णं हकारार्णं लोपयित्वा ततः परम्।
सन्धिं कुर्यात् पूर्वरूपस्तदाऽसौ प्रणवो भवेत्।।

(शारदातिलक-25.50-53)

बिन्दु (अनुस्वार) तथा विसर्ग पुरुष तथा प्रकृति है। बिन्दु (अनुस्वरात्मक 'हं') विसर्गान्त (सः) इस प्रकार 'हंसौ' दो—पुरुष एवं प्रकृति हुये। हँ = पुरुष। सः = प्रकृति। जीव नित्यप्रति इसका जप करता रहता है।

प्रकृति पुरुष को अपना आश्रय मानकर निरन्तर उसी के आश्रित रहती है। जब प्रकृति पुरुष में मिल जाती है तब जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाता है और तब जीव 'सोऽहं' की प्रतीति करने लगता है।

'हँ' पुरुष के पूर्व अकार का निपातन कर देने पर 'अहम्' हो जाता है। 'सः' रूप प्रकृति के उससे मिलने पर (सन्धि करने पर) सः और अहम् के मध्य अकार (एङः पदान्तादति' से) पूर्वरूप होकर लुप्त हो जाता है; अतः 'सोऽहं' प्रणव बन जाता है। यह प्रणव कैसा है? शारदातिलक (25.55) में कहा है—

परानन्दमयं नित्यञ्चैतन्यैकगुणात्मकम्।
आत्माभेदस्थितं योगी प्रणवं भावयेत्सदा।।

यह परानन्दमय है—

'आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षे प्रतिष्ठितम्'। (श्रुति)

प्रणव परमानन्दमय, नित्य ज्ञानस्वरूप, अविक्रिय, एकरस एवं आत्मा से अभिन्न रूप में अवस्थित है। यह वाणी-बोध्य नहीं है तथापि आद्य है। यह स्वसंवेद्य है—

आम्नाय वाचामतिदूरमाद्यं वेद्यं स्वसंवेद्यगुणेन सन्तः।

आदरपूर्वक, निरन्तर, दीर्घ कालपर्यन्त अभ्यासरत योगीजन ही आत्मस्वरूप आनन्द रस के एकमात्र समुद्र इस प्रणव का दर्शन कर पाते हैं—

आत्मानमानन्दरसैकसिन्धुं पश्यन्ति तारात्मकमात्मनिष्ठाः।

प्रणव सत्य, नित्य, अकारण, श्रुति का भी आदि, संसारोत्पादक, चराचर में व्याप्त, अनुपमेय, अद्वितीय, आत्मरूप चैतन्य से अन्तःकरण में स्थित, सूर्य-चन्द्र-अग्निवत् स्वयम्प्रकाश, तारात्मक एवं शाश्वत, नित्यानन्दरूप गुणों का निकेतन है और मात्र इन्द्रियविजयी एवं पुण्यात्मा योगीन्द्रों मात्र द्वारा ही इसका दर्शन किया जा पाता है, अन्यथा नहीं।

इसका संकेत प्रणव के अकार-उकार-मकार-बिन्दु-नाद-शक्ति एवं शान्त—इन सात भेदों से ही प्राप्त हो पाता है; अन्य साधनों से नहीं। यह संवित्स्वरूप है, सर्व-व्याप्त है, अविनाशी है और अच्युत है। अतः इस घने अमृतसिन्धुस्वरूप परम तेज का ही भजन करना चाहिए—

तेजः परं भजत सान्द्रसुधाम्बुराशिम्।[1]

श्वास-प्रश्वास का कारण क्या है? इसका कारण है—चित्त का विक्षेप। विक्षेप का क्या कारण है? प्रत्यक् चैतन्य की अप्राप्ति। जिस उपाय से प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार होता है, उसी के प्रभाव से श्वास-प्रश्वासरूप काल की क्रीड़ा भी निवृत्त होती है। प्रणव जप एवं अजपा-जप इस उद्देश्य का अन्यतम साधन है।

मनुष्य अहोरात्र में 21600 श्वास-प्रश्वास लेता एवं छोड़ता है। 'हम' ध्वनि करता हुआ श्वास बाहर निकलता है और सः ध्वनि करता हुआ श्वास भीतर आता है—

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।



---

1. शारदातिलक (26.57)



एकोनविंश अध्याय

वाक्तत्त्व एवं शक्ति-साधना

वाक्साधना ही शक्ति की साधना है।

वाणीरूपा शक्ति—वाणी के सारे प्रकार शक्ति के ही विभिन्न रूप हैं। वाणी के सारे रूप महाशक्ति के ही अपने रूप हैं। परा वाक् से ही वाणी के सारे रूपों का आविर्भाव हुआ है और परा वाक् परमशिव की स्वातन्त्र्य शक्ति नामक शक्ति है। शक्ति की स्फुरत्ता, हृदय, सार, विमर्श, स्वातन्त्र्य आदि जो नामावली है; उसमें 'परा वाक् स्वरसोदिता' भी एक नाम है और ये सारे नाम परमशिव की शक्ति के नाम हैं।

आचार्य उत्पलदेव प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (1.44-45) में कहते हैं—

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः।।

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।

सूक्ष्मा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाक् परमशिव की सर्वसमरसवृत्ति, इच्छा-शक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (50) में महेश्वरानन्द कहते हैं—

वैखारिका नाम क्रिया ज्ञानमयी भवति मध्यमा वाक्।
इच्छा पुनः पश्यन्ती सूक्ष्मा सर्वासां समरसा वृत्तिः।।

योगिनीहृदय में भी शिव की इच्छादिक शक्तियों के ही रूपान्तरण को मध्यमादिक वाणी स्वीकार किया गया है। यथा इच्छाशक्ति एवं पश्यन्तीवाक्—

1. इच्छाशक्तिस्तथा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता।

2. ज्ञान शक्ति एवं मध्यमा वाक्—

ज्ञानशक्तिस्त्रिधा प्रोक्ता मध्यमा वागुदीरिता।

3. क्रियाशक्ति और वैखरीवाक्—

क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।

अभिनवगुप्तपादाचार्य की दृष्टि—

प्राक्पश्यन्त्यथ मध्याऽन्या वैखरी चेति ता इमाः।
परापरा परा देवी चरमा त्वपरात्मिका।।
इच्छादिशक्तित्रितयमिदमेव निगद्यते।
एतत्प्राणित एवायं व्यवहारः प्रतायते।।

महेश्वरानन्द के अनुसार क्रियाशक्ति ही वैखरी वाक् है, क्योंकि—'तत्र वैखरीति प्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपारूढस्फुरणतया क्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते।'

ज्ञानशक्ति ही मध्यमा वाक् है, क्योंकि—'मध्यमा च बुद्धिवृत्तिमात्रप्रवर्त्यमानत्वाद् ज्ञानशक्तिः।'

इच्छाशक्ति ही पश्यन्ती वाक् है; क्योंकि—'पश्यन्ती पुनरिच्छा, बहिःप्रसरणाभ्युपगमरूपत्वात् तस्याः यतः परा वाक् पश्यन्तीति पश्यन्त्या व्युत्पत्तिः।'

सूक्ष्मा वाक् परमेश्वर की उद्योगलक्षणा वृत्ति है—'सूक्ष्मा तु शिखण्डयरसन्यायादुक्तवाक्त्रयशबलीभावस्वभावा प्रत्यग्द्रष्टुः परमेश्वरस्योद्योगलक्षणा वृत्तिरित्याख्यायते।'

परा वाक् और परमेश्वरस्वरूपानुप्रवेश

परावाक् पुनस्तस्यैव परमेश्वरस्य स्वरूपमनुप्रविशन्ती परिस्फुरति।

ऋजुविमर्शिनीकार की दृष्टि—ऋजुविमर्शिनी में भी इसी बात की पुष्टि की गई है कि परा वाक् आदि मातृकायें भट्टारक परमशिव एवं छत्तीस तत्त्वों की प्रसरणकर्त्री संवित् शक्ति से अभिन्न हैं—'मातृकां परवागात्माऽनाहतभट्टारकपरमशिवस्वरूपां षट्त्रिंशतत्त्वप्रसरणहेतुभूतां संविदमित्यर्थः।'

साम्बपञ्चाशतकार की दृष्टि—साम्बपञ्चाशत में भी वाणियों को शक्ति का ही स्वरूप मानते हुए कहा गया है कि—

या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिषष्टिं
वर्णानत्र प्रकटकरणैः प्राणसङ्गात् प्रसूते।
तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां
वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये।।

शक्ति के अनेक रूप

महेश्वरानन्द की दृष्टि—एक ही तत्त्व अवस्थान्तर से विभिन्नाकार हो जाता है। जिस प्रकार अत्यन्त शैत्य में पानी तरल से ठोस होकर कठोर बर्फ बन जाता है, तापाधिक्य में उड़कर भाप और बादल बन जाता है और सामान्य तापमान रहने पर तरल जल बन जाता है, उसी प्रकार शक्ति सत्त्वगुण स्वभाव वाली होने पर ज्ञानशक्ति, रजोगुण स्वभाव वाली होने पर क्रियाशक्ति, तमोगुण स्वभाव वाली होने पर मायाशक्ति,

विभाग या विभक्त अवस्था होने पर ज्ञानक्रियामायात्मिका एवं अविभक्त, एकरस अवस्था में यही मूल शक्ति प्रकृति 'शाम्भवी शक्ति' कहलाती है। महार्थमञ्जरी में कहा भी है— 'ज्ञानक्रियामायानां गुणानां सत्त्वरजस्तमस्वभावानां अविभागावस्थानां तत्त्वं प्रकृतिरिति शाम्भवी शक्तिः।'

यही शक्ति शम्भु की 'विमर्श शक्ति' कहलाती है—'विमर्शसंरम्भमयी उज्जृम्भते शम्भोर्महाशक्तिः।'
(महार्थमञ्जरी)

भासा शक्ति—भगवान् शिव की पाँच शक्तियाँ हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्य एवं भासा। परमेश्वर की तत्त्वरूपिणी परम स्वतन्त्र चिच्छक्ति ही भासा शक्ति है। सृष्टि तो भासा शक्ति का स्फुरणमात्र है। सृष्टि की आदि भूमि भासा शक्ति है।

सृष्टि, स्थिति, संहार और अनाख्य से आक्रान्त और विश्ववैचित्र्य-व्यवहार में सर्व-व्याप्त तथा सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट पारमेश्वरी चिच्छक्ति तो भासाशक्ति ही है, जो कि सर्व-व्यापिका है। इसी शक्ति में मातृमेयात्मक जगत् प्रतिबिम्ब के रूप में भासित होता है। भासा शक्तिमय भगवान् ही गुरु है; अतः भासा गुरुमयी भी है। यह स्वातन्त्र्यस्वभावा है। इसमें सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्य-जैसे विभाग नहीं हैं; अतः यह विकल्प-शून्य तथा सर्वानुग्रहमयी है। भासाशक्ति निष्कल (कलारहित) एवं परमेश्वर की स्वतन्त्र शक्ति है। यही चिच्छक्ति है। यह विक्षोभरहित है। सृष्टि भासा शक्ति का स्फुरणमात्र है और 'भासा' सृष्टि का आदिकन्द है। तत्त्वतः सृष्टि की नींव—आदि भूमि भासाशक्ति ही है। भासा का सबसे प्रथम स्फुरण होने से इसे सृष्टि का मूल स्वीकार किया गया है। भासा संवित् (चिच्छक्ति या ज्ञानकला) के परामर्श (स्फुरण) का परम चमत्कार है। विश्वप्रतिबिम्ब में अनुप्रविष्ट प्रपञ्च में भासा पञ्चम है। सृष्टि, स्थिति, संहार एवं अनाख्य में इसी पञ्चम 'भासा' कला का ही प्राधान्य है।

महेश्वरानन्द की दृष्टि—

सृष्टेः पञ्चमकला भासेति जनो गणयति व्यवधानम्।
सृष्टेर्मूलकन्दो भासा भासायाः पल्लवः सृष्टिः।।[1]

परमेश्वर की इस सर्वानुग्रहमयी सर्वोत्तीर्णा सर्वमयी भासाशक्ति में विकल्प स्फुरित नहीं होते। यदि कोई शक्ति स्फुरित होती है तो वह सत्रहवीं शक्ति है—

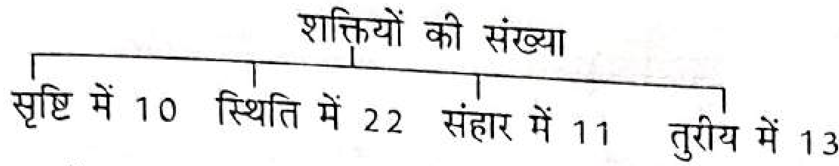
भासायां ना विकल्पः स्फुरति स्फुरदेकनिष्कलश्रियाम्।
यदि प्रतिबिम्बगत्या स्फुरति परं षोडशाधिका देवी।।

1. सृष्टि में—सृष्टि, स्थिति, अनाख्य, भासा—चार कलायें।[2]
2. अनाख्य में—सृष्टि, स्थिति, संहार, भासा—चार कलायें।
3. संहार में—सृष्टि, स्थिति, अनाख्य और भासा—चार कलायें।

1. महार्थमञ्जरी (41) 2. महार्थमञ्जरी (40)

भासा कला में इस प्रकार के विभाग (कलाओं के विभाग) नहीं हैं। इन सोलह विकारों से भासा निर्मुक्त है। इसीलिए भासाशक्ति निष्कल (कलारहित) कही जाती है।

अनाख्यापर्यन्त निरूपित सोलह शक्तियाँ ही विश्व-प्रतिबिम्ब-स्वभावा हैं। भासा शक्ति षोडश विकार-प्रतिबिम्बित समष्टिस्वभावा कोई सत्रहवीं शक्ति है। यही विश्वात्मिका काली है।



महेश्वरनन्द ने वाणी के चतुर्धा प्रकारों में परा वाक् नाम छोड़कर उसके स्थान पर सूक्ष्मा वाक् ग्रहण किया है—'वात्तत्त्वं तावत् क्रमात् सूक्ष्मा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीति चतुर्धा भिद्यते।'[1]

महेश्वरानन्द कहते हैं कि इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि का स्वभाव ही स्वात्मस्फुरत्ता है और तन्मयी अनुभूति ही मन्त्र भी है।

'इच्छा' पश्यन्ती वाक् आदि का भी अर्थ देती है। अविभक्त विश्व का शक्ति ही परा वाक् है। वह शक्ति स्वप्रकाशनविमर्शनात्मिका होने के कारण जो विमर्शन करती है—कहती है, वही वाक् है। संवित्स्तोत्रकार कहते हैं—'त्वामुपासितगुरूत्तमाः परां वाचमाहुरविभक्तविश्वकां स्वप्रकाशनविमर्शनात्मिकां वक्ति वागिति निरुक्तिमास्थिता।' बाहर प्रसरित होने के कारण इच्छामयी वाणी ही पश्यन्ती है। परमेश्वरपरक प्रत्येक दृष्टि स्वभाव वाली होने के कारण सर्वसमरसवृत्ति ही सूक्ष्मा या परा वाक् है। परमेश्वर की उद्योगलक्षणा वृत्ति ही सूक्ष्म वृत्ति है। यह परमेश्वर के स्वरूप में अनुप्रविष्ट रहकर स्फुरित होती है। परा वाकमयी स्वात्मस्फुरत्ता ही अनुभूति है, जो कि 'मन्त्र' भी कही जाती है। आत्मशक्ति का विमर्श ही इस अनुभूतिरूप मन्त्र को अनुप्राणित करता है। आत्म-विमर्श-स्वरूप परा वाक् ही सर्वसम रस है।

शक्तियों के व्यापारों का ऐक्य ही शिव है। महार्थमञ्जरी (13) में कहा गया है कि—'तथा तथा दृश्यमानानां शक्तिसहस्राणामेकसङ्घट्टः। निजहृदयोद्यमरूपो भवति शिवो नाम परमस्वच्छन्दः।'

सृष्टि, संहार आदि विभिन्न रूपों में दृष्टिगत शक्ति के हजारों-हजारों व्यापारों का ऐक्य ही निज हृदय उद्यमरूप सर्वतन्त्रस्वतन्त्र परमशिव नाम से अभिव्यक्त होता है। क्रियाशक्ति के सहस्रों व्यापारों का ऐक्य ही शिवस्वरूप की अभिव्यक्ति है; अतः 'स्व-शक्तिप्रचयो विश्वम्' अर्थात् परमशिव की शक्ति का विकास ही विश्व है।[2]



1. परिमल 2. शिवसूत्र (वसुगुप्त)



विंश अध्याय

सूर्यविज्ञान एवं शक्ति-साधना

सूर्य समस्त शक्तियों एवं वर्णों का केन्द्र है। सूर्य को भगवान् भी कहा गया है। गायत्री मन्त्र की साधना का भी सूर्य से सम्बन्ध है। सन्ध्या-कर्म से भी सूर्य का सम्बन्ध है। सूर्य भगवान् के नेत्र हैं—'चक्षोः सूर्योऽजायत'। भगवान् के चक्षुओं से सूर्य का जन्म हुआ है।

सूर्य ही विश्व का उत्पादक (प्रसवितृ) है। सूर्य की रश्मियों को (रश्म्यात्मक वर्णमाला को) सम्यक् रूप से जानने वाले तत्त्वज्ञ ज्ञानी रश्मि-वर्णों को विशोधित करके उनका परस्पर सम्मिश्रण करते हैं। ऐसे रश्मिविशेषज्ञ लोग सभी पदार्थों का संघटन एवं विघटन कर सकते हैं।

समस्त पदार्थों का मूल बीज रश्मिमाला के विभिन्न प्रकार के संयोग से आविर्भूत होता है।

रश्मिभेद एवं विभिन्न रश्मियों के मिश्रण-भेद से विश्व के अनेकविध पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त गर्भ में ही बीज रहता है। बीज न रहने पर रश्मियों के संयोग-वियोग से और इच्छाशक्ति या सत्य संकल्प की शक्ति से भी सृष्टि नही हो सकती।

रश्मियों को पहचान कर उनकी योजना करना ही सूर्यविज्ञान का विषय है। इसकी सामर्थ्य रखने वाले सभी प्रकार की स्थूल-सूक्ष्म सृष्टि कर सकते हैं।

रश्मियों के संयोग के परिणाम

सुख-दुःख पाप-पुण्य काम-क्रोध प्रीति-भक्ति लोभ-भय आदि

समस्त चित्तवृत्तियों, मानसिक विकारों एवं संस्कारों की उत्पत्ति रश्मियों के संयोग से ही होती है। रश्मियों को शुद्ध रूप में पहचान कर उनकी योजना-वियोजन् की प्रक्रिया में कुशल योगी सृष्टि एवं संहार सभी कुछ कर सकते हैं। इसके विशेषज्ञ हिमालय और तिब्बत की गुफाओं में गुप्त रूप से आज भी रहते हैं। तिब्बत में ज्ञानगञ्ज नामक स्थान के योगाश्रम में आज भी इसकी शिक्षा दी जाती है।

सूर्यविज्ञान-जैसे अनेक रहस्यविज्ञान हैं एवं ऐसी अनेक रहस्यविद्यायें हैं।

सूर्यविज्ञान या सावित्री-विद्या वैदिक साधना की नींव थी। भारतीय दृष्टि यह है कि सूर्यमण्डल तक ही विश्व है। उसको अतिक्रान्त किए विना मुक्ति सम्भव नहीं है। सूर्य-मण्डल तक ही वेद एवं शब्दब्रह्म भी है। उसके बाद परब्रह्म है—

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

ध्यातव्य बिन्दु यह है कि सूर्यमण्डल को अतिक्रान्त किए विना सत्य या मुक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है। सूर्यमण्डल तक ही जगत् है, उसके बाद नहीं है।

भागवतकार की दृष्टि—श्रीमद्भागवत की दृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है—

कर्मात्मक संसार-वृक्ष के दो बीज हैं। इसके एक सौ मूल हैं। इसमें तीन नाल हैं। इसमें पाँच स्कन्ध हैं। इसमें पाँच रस हैं। इसमें ग्यारह शाखायें हैं। इसमें दो पक्षियों का वास है एवं इस पर रहने वाले पक्षी के तीन वल्कल एवं दो फल हैं।

संसार चक्र की व्याख्या—

1. बीज (पुण्य-पाप)
2. मूल (वासना)
   (शत = असंख्य)
3. नाल (गुण)
4. स्कन्ध (भूत)
5. रस (शब्दादिक)
6. शाखा (इन्द्रियाँ)
7. फल (सुख-दुःख)
8. सुपर्ण—(क) जीव (ख) परमात्मा
9. नीड (वासस्थान)
10. वल्कल (वात, पित्त, कफ धातुत्रय)

य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चमरसप्रसूतिः दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः।

(श्रीमद्भागवत-11.12.21-22)

भाष्यकार श्रीधरस्वामी की दृष्टि—श्रीधरस्वामी एवं विश्वनाथ दोनों ने इसी तथ्य को स्वीकार किया है कि—'अर्कं प्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः। तर्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात्।' मैत्री उपनिषद् (6.35) में भी कहा गया है कि 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम्।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दृष्टि—'बृहत् योगी याज्ञवल्क्य' में कहा गया है कि सविता (सूर्यदेव) समस्त भावों के जनक हैं। वे सवन एवं प्रेरणा के सूत्रधार होने के कारण ही सविता कहे जाते हैं—

सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूयते।
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते।।

सूर्योपनिषद् में उपन्यस्त दृष्टि—इसमें कहा गया है कि सूर्य के द्वारा ही सारे प्राणियों का जन्म होता है। सूर्य के द्वारा ही सारे प्राणी पालित-पोषित होते हैं। सारे प्राणी (अन्त में) सूर्य में ही लयीभूत हो जाते हैं। जो सूर्य है, वही मैं हूँ—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च।।

आचार्य शौनक की दृष्टि—आचार्य शौनक बृहद्देवता में कहते हैं कि केवल आदित्य ही भूत-भविष्य-वर्त्तमान के समस्त स्थावर-जंगम पदार्थों का जनक है और वही उन सबका लय-केन्द्र है। यही सत्, असत् का योनि है। यह अक्षर, शाश्वत, अव्यय ब्रह्म है। समस्त देवता इसीं की रश्मि में स्थित हैं—

भवद् भूतं भविष्यंश्च जङ्गमं स्थावरं च यत्।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं बिदुः।।

असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम्।।

कृत्यैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु।।

भारतीय ज्योतिष की दृष्टि—ज्योतिष के प्रख्यात ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि आदित्य निःशेष विश्व के आदि हैं और वे जगत् का प्रसव करते हैं। वे परमज्योतिस्वरूप हैं अर्थात् शब्दब्रह्म (ॐ) हैं—वे अन्धकार से परे हैं वे तमोमण्डल को अतिक्रान्त करके अवस्थित हैं अर्थात्—

आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।
परं ज्योतिः तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च।।

'षूङ् प्राणिप्रसवे' धातु से 'सविता' शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ निम्नांकित है—

(क) सुनोति, सूयते वा उत्पादयति चराचरं जगत् सः सविता।

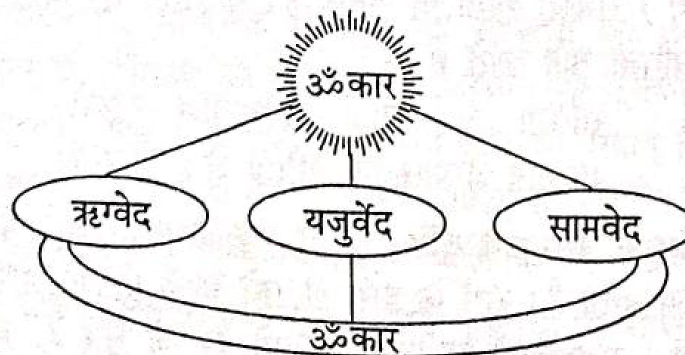
(ख) षु प्रसवैश्वर्ययोः—सर्ववस्तूनां प्रसवः उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यस्य च।

आदित्य परम ज्योति है अर्थात् शब्दब्रह्मस्वरूप मन्त्रज्योति है। इसी का विभाजन ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदरूप में (त्रयी रूप में) हुआ है।

(क) ॐ → ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद।

(ख) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद = ॐ।।

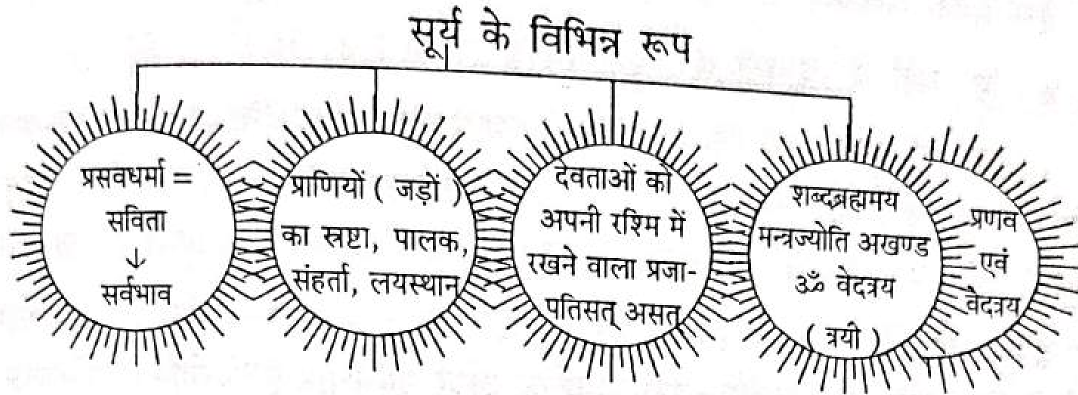
(ग)



ॐकार ही विभक्त होकर वेदत्रयी बन गया है। नाथपन्थी योगी भी ॐकार को ही वेद मानते हैं। सूर्यपुराण में सूर्य को परम धाम एवं ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद कहा गया है—

नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम्।

सूर्य ऋग्वेद है, यजुर्वेद है, सामवेद है और प्रणवरूप (शब्दब्रह्मरूप) परम ज्योति है।



ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्नः। सामवेदेनास्तमये महीयते वेदैरशून्यस्त्रिभिरिति सूर्यः।

1. सूर्य पूर्वाह्ण में ऋग्वेद से युक्त रहता है।
2. सूर्य मध्याह्न में यजुर्वेद से युक्त रहता है।
3. सूर्य अस्तकाल में सामवेद से युक्त रहता है।

रश्मिविज्ञान और सृष्टि-संहार की प्रक्रिया—सूर्य की रश्मियों के संयोजन-वियोजन (या वर्ण-संयोजन-वियोजन) से सृष्टि कैसे होती है?

1. यदि आपको हीरे का सृजन करना है और आप यह मानकर चलते हैं कि 'क' 'च' 'ट' 'त' 'प'—इन रश्मियों का क्रमबद्ध संयोग कर देने से हीरा उत्पन्न हो जायेगा तो उद्बुद्ध श्वेत वर्ण के ऊपर क्रमानुसार इन 'क' 'च' 'ट' 'त' 'प' नामक रश्मियों को डालने से हीरा उत्पन्न होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायगी और इस प्रक्रिया का समापन हीरे के जन्म पर ही होगा।

2. एक साथ सभी रश्मियों (क, च, ट, त, प) को डालना न तो सम्भव है और न ही लाभप्रद।

3. क्योंकि सृष्टि क्रमिक होती है, अकस्मात् नहीं होती। कालक्रम भी सृष्टि की शर्त है। क्रम से सृष्टि का अर्थ है—काल-क्रम से धीरे-धीरे सृजन होना। क्रम का अतिक्रमण सम्भव नहीं है।

4. रश्मि में निहित विशुद्ध सत्त्वस्वरूप शुक्ल वर्ण का शोधन (सत्त्व-शोधन) करके उसके ऊपर प्रथमतः 'क' वर्ण डालें। तभी निर्मल सत्त्व 'क' के स्वरूप में

आकारित एवं उसके वर्ण में रञ्जित हो सकेगा। शुद्ध सत्त्व ही आकर्षण शक्ति का मूल केन्द्र है। इसी के कारण वह 'क' को अपनी ओर आकृष्ट करेगा और स्वत: भी उसी भाव में भावित हो जायगा।

5. इसके अनन्तर 'च' वर्ण को शुक्ल वर्ण पर डालें। वह भी उससे आकृष्ट होकर तन्मय होकर 'म' के भाव में भावित हो जाएगा।

इसी प्रकार यथाक्रम 'ट' फिर 'त' एवं अन्त में 'प' वर्ण को शुक्ल वर्ण पर डालें।

6. 'प' वर्ण को शुक्ल वर्ण पर डालते ही हीरा उत्पन्न हो जाएगा।

7. हीरे की गुप्त, अव्यक्त या तिरोभूत सत्ता की अभिव्यक्ति ही उसके जन्म का प्रथम क्षण है। हीरे का लगातार हीरा बने रहना सम्भव नहीं है। यह तभी सम्भव है जब कि 'क' 'च' 'ट' 'त' 'प' वर्णों के यथानिर्दिष्ट पूर्वक्रम को अक्षुण्य रक्खा जाय।

8. अव्यक्त हीरे की अभिव्यक्ति तो हो गई; किन्तु अभिव्यक्ति होते ही उसे धारण करने के लिए कोई यन्त्र चाहिए। इसी यन्त्र का अपर अभिधान है—योनि। योनिस्वरूपा शक्ति प्रकृति की स्वान्तर्गर्भित अरुणिमा है। यह भी शिवसापेक्ष है; क्योंकि उसका आविर्भाव शिव पर निर्भर है। यह अरुणिमा भी विश्वव्यापी, किन्तु अभिव्यक्तिधर्मिणी है।

9. अन्तिम वर्ण 'प' के संघर्ष से जिस समय हीरे की सत्ता केवल लिंगरूप में, किन्तु अलिंग, अव्यक्त सत्ता से प्रकट होती है, उस समय यह अरुणिमा ही व्यक्त होकर उसे धारण करती है, उसे स्थूल हीरे के रूप में जन्म देती है।

पदार्थों के जन्म की स्थितियाँ—

1. पदार्थ की सत्तारूप में आविर्भावरूपा सृष्टि।
2. परिमाण या मात्रा-वृद्धि के साथ उसकी वृद्धिरूपा सृष्टि।

मात्रा-वृद्धि सरल है। यह सृष्टि अर्थात् एक क्षुद्र कण को एक क्विण्टल का हीरा बनाना उसकी दूसरी (मात्रात्मक/परिमाणात्मक) सृष्टि है। प्रकृति का भाण्डार अनन्त है; अत: सृष्ट पदार्थ के परिमाण को भी बढ़ाया जा सकता है।

10. प्रकृति के भाण्डार से हीरे का संयोजन करके उसका दोहन कर सकने की क्षमता विकसित कर लेने पर हीरे के कणों को जिस परिमाण में आकर्षित किया जा सकेगा, हीरा उतना ही बड़ा होता जायेगा। जहाँ कुछ है, उसे तो बढ़ाया जा सकता है; जैसे कि शून्य किसी भी छोटी-से छोटी संख्या को बढ़ा देता है; किन्तु कुछ न रहने पर उसे कैसे बढ़ाया जा सकता है? श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के पास से बिन्दु बराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियों को तृप्त कर दिया था।

वस्तु की विशिष्ट सत्ता का प्रादुर्भाव कठिन होता है, परिमाणवृद्धि कठिन नहीं होती। अव्यक्त हीरे की सत्ता मूल बीज है। लिंगरूप में अवस्थित हीरे की सत्ता स्थूल बीज है।

सारांश यह कि—

1. शुक्ल वर्ण (शुद्ध सत्त्व) आगम का बिन्दुतत्त्व है। यही चन्द्रबिन्दु शब्दमातृका एवं चिदाकाश है।

2. इसी बिन्दुतत्त्व (शुद्धसत्त्व, शब्दमातृका या कुण्डलिनी) के विक्षुब्ध होने पर नाद एवं वर्ण उत्पन्न होते हैं।

3. अकार आदि स्वर-व्यञ्जन वाली वर्णमाला शुद्ध सत्त्व (चन्द्रबिन्दु) या शुक्ल वर्ण से ही आविर्भूत होती है।

4. अ, आ आदि स्वर एवं क, च आदि व्यञ्जन अक्षर नहीं हैं। ये सभी वर्ण या रश्मियाँ सहस्रदल पद्म के श्वेत चन्द्रबिम्ब के पिघलने से निर्मित होती हैं।

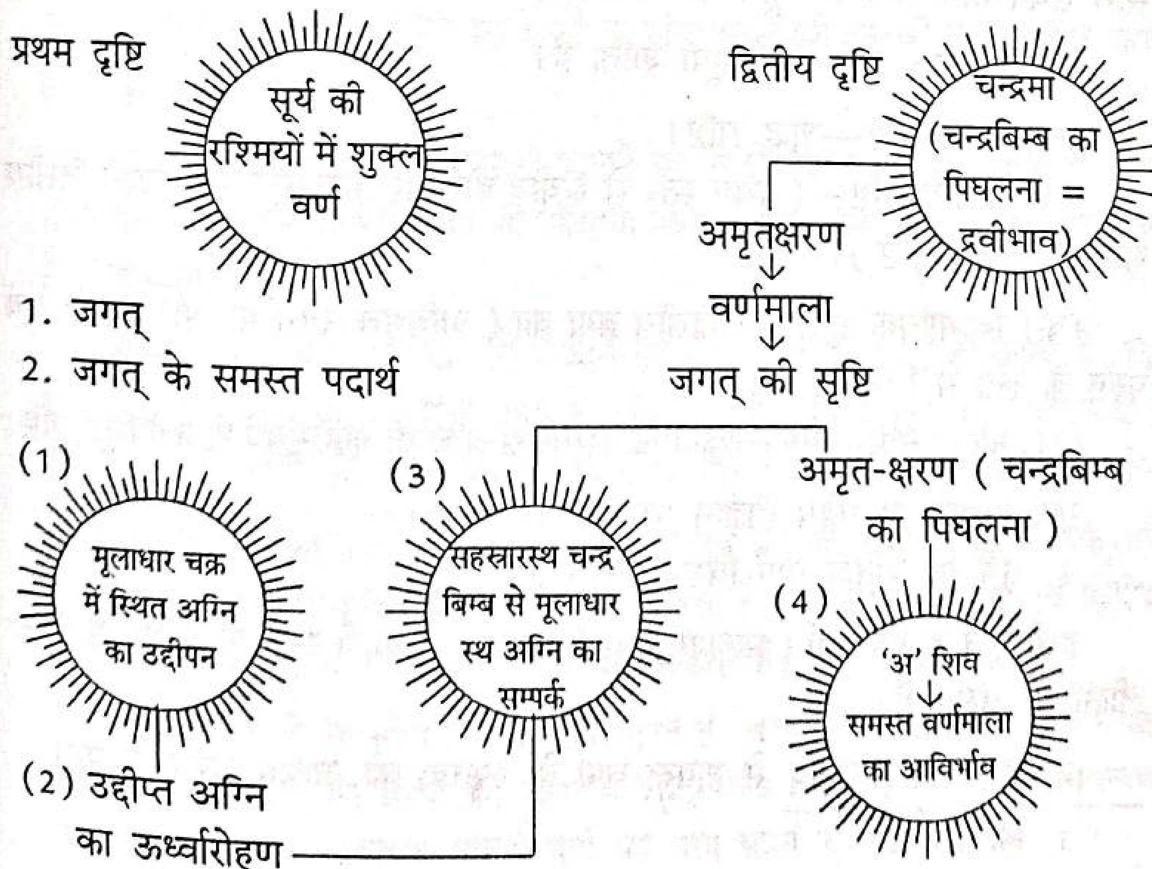
5. मूलाधार चक्र की अग्नि यौगिक क्रियाओं से जागकर ऊपर प्रवाहित होती है और चन्द्रबिन्दु को गला देती है। इसी से रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं। सभी वर्णों के मूल में अकार रहता है। यह उसी मूल वर्ण का प्रतीक है। आगम में कहा भी गया है—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।

सूर्यविज्ञान की दृष्टि से सूर्य की रश्मियों के वर्णों से ही जगत् की सृष्टि होती है।

सूर्यविज्ञान का सुस्पष्ट अर्थ—सूर्यविज्ञान वैदिक एवं तान्त्रिक सृष्टि-विधान की विशिष्ट प्रक्रिया है। विश्व एवं उसके सारे पदार्थ सूर्य की रश्मियों में निहित वर्णों के संयोजन से उत्पन्न होते हैं। सारी वर्णमाला सहस्रार के चन्द्रबिम्ब से उत्पन्न होती है।

पदार्थ एवं वर्णमाला की सृष्टि



इस विश्व से शुद्ध जगत् में जाने के लिए सूर्य ही द्वार है। Pythagoras ने कहा था कि सूर्य एक लेंस है और इसी में प्रविष्ट होकर आत्मज्योति जगत् में अवतीर्ण होती है। Plato के मत से ज्योति परम तत्त्व का प्रथम विकास है। इसी का अभिधान है—Sephrae Divine Intelligence। वैष्णवों की भी मान्यता है कि सूर्यमण्डल में प्रवेश किए विना जीव का लिंगशरीर नष्ट नहीं होता और उसके नष्ट हुए विना मुक्ति नहीं मिलती। रविमण्डल में आने पर ही जीव पवित्र होता है। Pythagoras का भी कथन है कि सूर्य में ही शुद्धिमण्डल की स्थिति है। सूर्य जगत् के मध्य में अवस्थित है। Aristotle कथन है कि Sphere of fire या Jupiter prism सूर्य में स्थित है।

Timaeus के अनुसार परमात्मा ने अपनी रश्मि से जो तेज प्रज्ज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य ताप या प्रकाश नहीं, एक Lens है, Focus है। इसके प्रभाव से आदि ज्योति का रश्मिसमूह स्थूल (Material) बन जाता है और हमारे सौर-मण्डल में एकत्र हो जाता है एवं अनेक शक्तियों का आविर्भाव करता है।[1]

रश्मिविज्ञान—सूर्य अपनी सारी शक्ति रश्मि में ही अनुस्यूत करके रखता है। उसकी अनन्त रश्मियाँ हैं। उसका मूल वर्ण शुक्ल है।

शुक्ल वर्ण → नीला, लाल, पीला आदि वर्ण उपवर्ण।

शुक्ल वर्ण से सर्वप्रथम लाल, नीला आदि प्रथम स्तर का उन्मेष।

प्रथम भूमि का विकास = शुक्ल वर्ण से अतीत वर्णातीत तत्त्व का शुक्ल के साथ संघर्ष होने से प्रथम भूमि का विकास होता है।

यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है।

(क) प्रथम सृष्टि—शुद्ध सृष्टि।

(ख) द्वितीय सृष्टि—(प्रथम स्तर से संयोग होने पर आविर्भूत होने वाली द्वितीय सृष्टि = मलिन सृष्टि)।

(क) स्वाभाविक सृष्टि—अद्वितीय ब्रह्म का (अविभक्त रहने पर भी) प्रकृति एवं पुरुष के रूप में विभाग।

(ख) मलिन सृष्टि—पुरुष-प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध या बहि:संघर्ष से आविर्भूत सृष्टि।

सूर्य विज्ञान या रश्मि विज्ञान पर पुन: विचार करें—

1. सूर्य का शुक्ल वर्ण विशुद्ध सत्त्व है।

इसी मूल शुक्ल वर्ण (प्रकाश) पर निरन्तर होने वाली रंगों की क्रीड़ा ही विश्व-लीला या संसार है।

2. प्रथमत: गुरुप्रसाद से शुक्ल वर्ण के स्फुरण को आयत्त करना पड़ेगा।

---

1. भा. सं. सा.

3. फिर उस शुक्ल वर्ण के ऊपर स्थित उपवर्णों का विश्लेषण करके उससे प्राप्त अनेक वर्णों को (विश्लेषित करके) पृथक्-पृथक् पहचानना होता है। जिस प्रकाश में रंग को पहचानना है, यदि वह प्रकाश स्वयं ही रंगीन हुआ तो मूल वर्ण को कैसे पहचानना सम्भव होगा? अत: मूल वर्ण को पहचानने हेतु श्वेत वर्ण की सहायता लेनी पड़ती है।

4. सूर्यविज्ञान में विना वर्णशुद्धि के वर्णों का भेद समझ पाना उसी प्रकार कठिन है, यथा—चित्तशुद्धि के विना तत्त्वदर्शन होना।

5. जगत् में दृश्य सब कुछ मिश्रण का संसार है। उसका विश्लेषण करने पर संघटक शुद्ध वर्ण दृष्टिगोचर या हृदयंगम होगा।

6. उन सारे वर्णों को पृथक्-पृथक् करके शुक्ल वर्ण के ऊपर डालकर पहचानना पड़ता है।

7. सृष्टि में शुक्ल वर्ण कहीं नहीं है। जो है, वह आपेक्षिक शुक्ल है, यथार्थ शुक्ल नहीं है। इसीलिये प्रथमत: विशुद्ध शुक्ल वर्ण को प्रत्यक्षीकृत करना होगा।

8. शुक्ल वर्ण की प्रत्यभिज्ञा का उपाय—सृष्टि में तो शुक्ल वर्ण कहीं है ही नहीं। विना वर्ण-शुद्धि के वर्णभेद समझना सम्भव नहीं है। विश्लेषण करने पर ही अर्थात् श्वेत वर्ण पर क्रीड़ा करने वाले असंख्य वर्णों की क्रीड़ा को स्थानविशेष में अवरुद्ध कर देने से वहाँ पर तत्काल शुक्ल तेज विकसित हो उठता है। अब इस शुक्ल वर्ण को कुछ काल तक रोककर विभिन्न वर्णों को पहचानना होता है। वर्ण-परिचय प्राप्त कर लेने पर समस्त वर्णों के संयोजन-वियोजन की शक्ति प्राप्त करना होता है।

कतिपय वर्णों के निर्दिष्ट क्रम से मिलने पर निर्दिष्ट वस्तु की सृष्टि होती है, किन्तु क्रम-भंग नहीं होना चाहिए। यह भी सीखना होता है कि कौन-कौन-से वर्ण किस क्रम में अवस्थित रहते हैं।

सम्बद्ध वर्णों को उसी क्रम से सजाने पर उस वस्तु की सृष्टि हो जाती है। किस वस्तु में कौन-कौन से वर्ण किस क्रम से अवस्थित हैं, यह जानना भी आवश्यक है। यदि आप उन वर्णों को उसी क्रम में रख दें तो उस पदार्थ का आविर्भाव हो जायेगा।

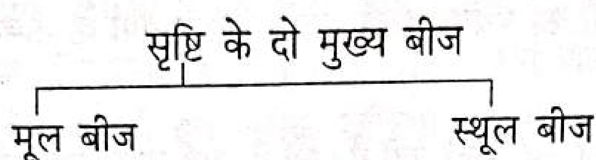
विश्व के समस्त पदार्थ वर्ण-संघर्ष से समुत्पन्न हैं। जो रश्मितत्त्वज्ञ साधक वर्ण-संयोजन एवं वर्ण-वियोजन की प्रक्रिया को जानता है, वह इस संयोजन एवं वियोजन द्वारा पदार्थों की सृष्टि एवं संहार दोनों कर सकता है।

प्रश्न उठता है कि लोग जिसे वर्ण समझते हैं, क्या वही यथार्थत: वर्ण है? नहीं, वह वर्ण नहीं, वर्ण की छाया है। जबतक शुद्ध सत्त्व (शुक्ल वर्ण) का अवलम्बन नहीं लिया जायगा, तबतक यथार्थ वर्ण का पता पाना सम्भव नहीं है।

यह भी ध्यातव्य है कि एक वर्ण से सृष्टि नहीं होती; अपितु अनेक वर्णों के संयोजन से सृष्टि होती है। अतः एकाधिक शुद्ध वर्णों के संयोग की प्रक्रिया जानना आवश्यक है। वर्ण एवं कला नित्य संयुक्त हैं। कला से तत्त्व एवं तत्त्व से भुवन तथा कार्य पदार्थों का सृजन होता है।

शुक्ल वर्ण या शुद्ध सत्त्व ही आगम का बिन्दुतत्त्व है। यह चन्द्रबिन्दु है। यही चिदाकाश, कुण्डलिनी एवं शब्दमातृका है। इसके विक्षोभ से ही नादाविर्भाव एवं वर्णोत्पत्ति होती है।

अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्व (चन्द्र बिन्दु) से—शुक्ल वर्ण से क्षरित होती है।

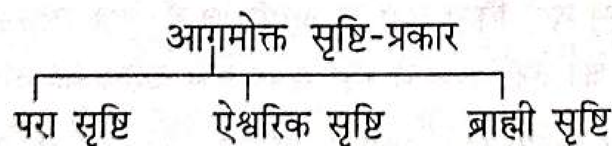


प्रकृति के भाण्डार से हीरे की मात्रा का यथेच्छ दोहन करके हीरे की मात्रा-वृद्धि-रूप सृष्टि स्थूल जगत् की 'बीज सृष्टि' है। बीज-सृष्टि मूल बीज की सृष्टि नहीं है। अव्यक्त हीरे की सत्ता मूल बीज है। लिंगात्मक बीज स्थूल बीज है।

स्थूल बीज विभिन्न रश्मियों के यथाक्रम संयोजन-वियोजन से अभिव्यक्त हो उठता है। किन्तु मूल बीज अलिंग है, अव्यक्त है और प्रकृति की आत्मभूत शाश्वत सत्ता है।

सृष्टि में अनन्त बीज हैं। प्रत्येक बीज में एक आवरण—अवरोधक पर्दा है; अतः वह बीज विकसित नहीं हो पाता। अर्थात् मूल बीज स्थूल बीज के रूप में आकारित नहीं हो पाता। सूर्यविज्ञान रश्मियों के यथाक्रम विन्यास के माध्यम से उस मूल बीज को व्यक्त करके सृष्टि का शुभारम्भ कर देता है।

बीजाभिव्यक्ति की अन्य पद्धतियाँ—उपर्युक्त बीज को अभिव्यक्त करने की अनेक पद्धतियाँ हैं। वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान आदि विज्ञानबल से भी (विना रश्मि-विन्यास के) बीजाभिव्यक्ति की जा सकती है।



सूर्यविज्ञान से होने वाली सृष्टि ब्राह्मी सृष्टि के अन्तर्गत है।





एकविंश अध्याय

जात्यन्तर परिणाम एवं शक्ति-साधना

यह प्रत्येक वस्तु में सारी वस्तुओं के प्रकट करने का एक यौगिक कौशल है।

जात्यन्तर परिणाम : सर्वसर्वात्मकता—इस जगत् में सूक्ष्म रूप से सर्वत्र सभी पदार्थ वर्तमान हैं। हाँ, प्रत्येक पदार्थ में अन्य सत्ताओं का मात्रात्मक स्वल्पाधिक्य अवश्य है। हम जिस भी पदार्थ को जिस रूप में जानते या पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है, यथार्थ नहीं। जो वस्तु जितना एवं जिस रूप में दृष्टिगोचर होती है, वह उतनी ही नहीं; प्रत्युत उससे भी अधिक है। एक लोहा या अयस्कखण्ड लीजिए। वह केवल अयस्क या लोहा-मात्र नहीं है। उसमें समस्त प्रकृति एवं प्रकृति के समस्त तत्त्व विद्यमान हैं। अत: सभी पदार्थों में सभी पदार्थ अर्थात् प्रत्येक सत्ता में सारी सत्तायें, सारे भावों में सारे भाव अन्तर्निहित हैं। अयस्क में अयस्क के अतिरिक्त भी सब कुछ है। बस, उसमें अन्य सत्तायें अव्यक्त हैं—अनभिव्यक्त हैं—उसमें केवल लौह-भाव ही व्यक्त है। उसमें अन्य सत्तायें विलीन भाव में स्थित हैं। वे सारे अन्य भाव उसमें अदृष्ट या अदृश्य अवश्य हैं; किन्तु उसमें अदृश्य रूप में अन्तर्गर्भित अवश्य है। किसी पदार्थ के विलीन भाव को (यथा—लोहे में सोने को) उसमें बढ़ा देने (उसकी मात्रा में आधिक्य कर देने) एवं प्रधान भाव को कम देने से विलीनभाव प्रामुख्य प्राप्त करके पदार्थान्तर के रूप में (यथा—लोहे में सोने के रूप में) दृष्टिगत होने लगेगा। यद्यपि लोहा का सोना दिखाई पड़ता, उसमें पदार्थान्तर की अभिव्यक्ति नहीं है, प्रत्युत लोहे में सुप्त सत्ता (गुप्त अस्तित्व) या अभिभूत भाव का जागरण या व्यक्तीकरण है। जो है, वही अभिव्यक्त होता है; क्योंकि असत् कभी सत् नहीं होता। यथा—शशशृंग या आकाश-कुसुम कभी यथार्थ सत्ता नहीं बन सकते।

आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है। यूरोपीय विज्ञानवादी दार्शनिक बर्कले कहता है कि पौधों के पत्तों में जो हरा रंग दिखता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें अन्य रंग नहीं हैं; बल्कि इसका अर्थ यह है कि उसके अन्य रंगों को सूर्य ने सोख लिया है। यदि लोहे में अभिभूत गुण, धर्म, सत्ता या पदार्थ की मात्रा बढ़ा दी जाय तो उस बढ़ी हुई मात्रा वाला पदार्थ उसमें दिखने लगेगा, जैसे लोहे में सोना, चाँदी, पीतल, ताँबा आदि दिखने लगेगा (दूसरे शब्दों में लोहा गायब होकर सोना,

चाँदी, पीतल, ताँबा आदि दिखने लगेगा)।

यहाँ लोहा सोना, चाँदी या ताँबा नहीं हो गया अर्थात् लोहा गायब होकर सोना, चाँदी या ताँबे में परिणत नहीं हो गया, प्रत्युत अपनी ही पूर्वसत्ता में विलीन हो गया—अभिभूत होकर अदृष्ट हो गया। स्वर्ण अपनी अव्यक्तता के पर्दे को हटाकर भूतपूर्व दृष्ट लौहसत्ता में व्यक्त हो उठा; यथा—बीज में अंकुर एवं अंकुर में जड़, तना, शाखायें, फूल, पुष्प एवं फल।

इस सर्वसर्वात्मकता को ही जात्यन्तर परिणाम का चमत्कार कहते हैं।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि प्रकृति के आपूरण से जात्यन्तर परिणाम हुआ करता है। इसमें एकजातीय वस्तु अन्यजातीय वस्तु के रूप में परिणत हो जाती है—

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्।

निमित्त कारण उपादानस्वरूपा प्रकृति का प्रेरक नहीं है। वह केवल प्रकृति-स्थित आवरण को दूर करके आच्छादित प्रकृति को अनावृत या उन्मुक्त मात्र करता है। इससे वह स्वयमेव विकारान्तर भाव में परिणत होने लगती है। उदाहरण लें—जो लोहा है, उसमें स्वर्ण प्रकृति आवरणाच्छन्न है और लौह प्रकृति आवरणमुक्त है। इसी कारण लौह पदार्थ में लौह परिणाम दृष्टिगत होता है; किन्तु यदि योग-विज्ञान से लोहे में आच्छादित स्वर्णप्रकृति अनावृत कर दी जाय (उसके आवरण को दूरीकृत कर दिया जाय) तो उसकी लौहप्रकृति आच्छादित हो जायगी और उसमें प्रच्छन्न स्वर्ण प्रकृति परिणाम में विकार उत्पन्न होगा, जिससे कि लोहे के स्थान में स्वर्ण ही स्वर्ण दिखने लगेगा।

योगशास्त्र के निम्न सिद्धान्त हैं—

1. असत् को सत् नहीं किया जा सकता अर्थात् जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

2. प्रकृति में विकारोन्मुखता की स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है।

भारत का यौगिक आर्ष विज्ञान यह स्थापना करता है कि जो प्रतिबन्धक तत्त्व है, यदि उसे हटा दिया जाय तो उस पदार्थ या जीव में अन्तर्गर्भित (किन्तु अस्फुट एवं अव्यक्त) शक्तियाँ एवं सत्तायें व्यक्त हो उठती हैं। अतः असुर सुर बन सकता है और पत्थर हीरा बन सकता है। कोई भोगी योगी बन सकता है और कोई डाकू महादानी बन सकता है। कोई ठग एवं हत्यारा ऋषि बन सकता है, यथा—वाल्मीकि एवं अंगुलिमाल।

संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही कहा था कि जो शीतल है, उसमें भी दाहात्मक तेज है तथापि वह गूढ़ (गुप्त) है। सभी पदार्थों में सभी पदार्थ विद्यमान हैं, किन्तु वे उनमें गूढ़ (अव्यक्त/गुप्त) हैं; अतः उनकी क्रिया भी नहीं होती। जो व्यक्त होता

है, उसकी ही क्रिया भी होती है। 'निगूढ़' क्रियाशून्य है और 'व्यक्त' सक्रिय। इसीलिये प्रत्येक पदार्थ में व्यक्तभावावस्थित सत्ता ही दृष्टिगोचर होती है, गुप्त वस्तु नहीं।

शमप्रधान तपोवनों में दाहात्मक तेज भी विद्यमान है और शीतल सूर्यकान्त में दाहक ताप भी—

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति।।

जात्यन्तर परिणाम का सिद्धान्त सांख्य के सत्कार्यवाद की दृष्टि का विरोधी नहीं है।

योगी किसी भी पदार्थ को किसी भी पदार्थ में रूपान्तरित कर सकते हैं, किन्तु यहाँ भी असत् को सत् नहीं किया जाता; प्रत्युत जो है, उसे ही (उसके आवरक या प्रतिबन्धक आवरण को हटाकर) व्यक्त कर दिया जाता है। अन्तर केवल यह रहता है कि वह पहले अव्यक्त रूप में रहती है, बाद में उसे व्यक्त कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए योगिराज विशुद्धानन्द (गन्धी बाबा) जी द्वारा प्रस्तुत जात्यन्तर परिणाम की एक घटना लीजिए।

स्वामी विशुद्धानन्द जी ने अपने आसन पर विद्यमान एक गुलाब का फूल लेकर दर्शकों से कहा—कहो, इसे किस स्वरूप में रूपान्तरित या परिवर्तित कर दूँ?

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने देखा कि वहाँ जवाफूल नहीं था; अतः उन्होंने उसे जवाकुसुम बनाने का आग्रह किया। गन्धी बाबा ने अपने बाँयें हाथ में गुलाब का फूल लेकर दाहिने हाथ से स्फटिक यन्त्र के द्वारा विकीर्ण सूर्य-किरणों को संहत किया। प्रथमतः उस पुष्प में एक लाल कान्ति निकली, फिर गुलाब का पुष्प अव्यक्त हो गया और उसके स्थान पर जवापुष्प प्रकट हो उठा।

समस्त जगत् में प्रकृति की क्रीड़ा इसी प्रकार हो रही है। यथार्थ योगी कुछ भी कर सकता है। उसकी शक्ति की कोई भी सीमा नहीं है। आदर्श योगी कौन है? —

योगीश्वरं शिवं वन्दे, वन्दे योगेश्वरं हरिम्।

भगवान् ही आदर्श योगी हैं। भगवान् सर्वशक्तिसम्पन्न हैं; अतः उनमें मिलकर—उनमें अपना लय करके—शुद्धि के तारतम्यानुसार शक्ति के स्फुरण के अनुकूल कोई भी कार्य किया जा सकता है तथा परमात्मसायुज्य की दशा में तो शक्ति के आयत्तीकरण की कोई सीमा ही नहीं रहती; क्योंकि योगी सर्वशक्ति-केन्द्र शिव बन जाता है—

1. शिवतुल्यो जायते।[1]
2. भूतकञ्चुकी तदा विमुक्तो भूयः पतिसमः परः।[2]
3. विद्यासमुत्थाने स्वाभाविके खेचरी शिवावस्था।[3]
4. शुद्धविद्योदयाच्चक्रेशत्वसिद्धिः।[4]

1. शिवसूत्र (3.25)
2. शिवसूत्र (3.42)
3. शिवसूत्र (2.5)
4. शिवसूत्र (1.21)

5. इति शुद्धविद्याया उदयात् विश्वात्मकस्वशक्तिचक्रेशत्वरूपं माहेश्वर्यस्य सिद्ध्यति।[1]

6. तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्ग-संहारकारि-निजसंविद्देवता चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवतीति शिवम्। (प्रत्यभिज्ञाहृदयम्)

जात्यन्तर परिणाम के उदाहरण एवं सिद्धान्त—योगसुधाकरकार कहते हैं—

1. तत्तु परमेश्वरसमाराधनादितपःप्रभावेणैव नन्दीश्वरो मनुष्यदेहेन देवत्वमगमदित्युपाख्यायते तत्कथम्? मनुष्यदेहस्य देवशरीराकारेण परिणामायोगात्। प्रधानादयः पृथिव्यन्ताः-प्रकृतयः। तासां सर्वत्र विद्यमानतया नरादिदेहावयवेष्वापूराद्धर्मादिनिमित्तानुरोधेनावयवानुप्रवेशाज्जात्यन्तरपरिणामो युज्यत इति।

मणिप्रभाकार कहते हैं—ननु तपःप्रभावादिहैव नन्दीश्वरस्य श्रीगौरीवल्लभकटाक्षवीक्षणेन देवशरीरपरिणामः श्रूयते। तत्र न तावदयं नरदेहो देवादिदेहस्योपादानं तस्मिन् स्थिते परिणामान्तरायोगान्नष्टस्योहेतुत्वात्।

प्रधानादयः पृथिव्यन्ताः प्रकृतयस्तासां सर्वत्र सत्त्वान्तरादिदेहावयवेषु तासामापूराद्धर्मादिनिमित्तानुरोधेनावयवानुप्रवेशाज्जात्यन्तरपरिणामो युज्यते। यथाग्निकणस्य प्रकृत्यानुग्रहाद्वनादौ बहुतृणादिमण्डलव्यापित्वं तद्वदित्यर्थः।

नन्दीश्वर बैल तो नहीं थे। भगवान् शिव के कटाक्षमात्र से उनका देवशरीर परिणाम हुआ।



1. शिवसूत्रविमर्शिनी



द्वाविंश अध्याय

दिव्य दृष्टि एवं शक्ति-साधना

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि हे अर्जुन। तुम मेरे उपदेशों और शिक्षाओं को नहीं समझ पा रहे हो और मैं कितना भी कहूँ, तुम उस पर आचरण भी नहीं करोगे; अत: अब तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ और तुम उसके माध्यम से मुझे देखो। तुम मांस की स्थूल आँखों से मुझे नहीं देख सकते। तुम दिव्य दृष्टि के द्वारा मेरे योगैश्वर्य का साक्षात्कार करो—

दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगमैश्वरम्।

अर्जुन ने इस दिव्य नेत्र से भगवान् का विराट् स्वरूप देखा। Clairvoyance शब्द इसी दूरदृष्टि का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द है। इसका अक्षरश: अर्थ है—Clear seeing स्पष्ट रूप में देखना। इसे Spiritual Vision भी कहा गया है।

सञ्जय हस्तिनापुर के राजमहल में बैठकर कुरुक्षेत्र के कौरव-पाण्डवयुद्ध का आँखों देखा समाचार और प्रत्येक क्षण की घटना का सजीव चित्रण करके धृतराष्ट्र के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते थे।

ऐसी सैकड़ों पौराणिक घटनायें हैं, जिनसे पता चलता है कि व्यक्ति कितनी भी दूरी पर क्यों न स्थित हो; किन्तु वह लाखों-करोड़ों मील की सुदूर वस्तुओं, घटनाओं एवं दृश्यों को देख सकता है।

भारतीय योगशास्त्र दिव्य दृष्टि को सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक दोनों स्तरों पर यथार्थ स्वीकार करता है।

श्री नागभट्ट की दृष्टि—श्री नागभट्ट ने त्रिपुरासारसमुच्चय (पञ्चम पटल) में कहा है कि यदि कोई साधक दोनों भौंहों के मध्य स्थित आज्ञाचक्र का ध्यान करे तो उसे पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों की भी स्मृति हो जायेगी तथा वह व्यक्ति आज्ञाचक्र में ही दूर देश के दृश्यों—घटनाओं को देखने लगेगा। वह दूर देश में होने वाली ध्वनियों, वार्त्तालापों को भी सुनने लगेगा—

आज्ञानाम भ्रूयुगमध्ये दलयुग्मोपेतं पद्मं शारदचन्द्रयूखाभम्।
ध्यानयोगे निरतस्य जायते पूर्वजन्मकृतकर्मणां स्मृति:।
क्षेत्रबिन्दुनिलये च दूरतो दर्शनश्रवणयो: समर्थता।।

इतना ही नहीं; वह खेचरी मुद्रा लगाकर निरन्तर आज्ञाचक्र का ध्यान करे तो अन्तरिक्ष के नक्षत्रसमूह, स्वर्ग, विष्णु के पद्माकाश, पहाड़ों, अप्सरासमूह, कादम्बरी, देवताओं, यक्ष, ताक्ष्यं, वायु, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, प्रेताधिप, राजहंस, वकसमूह, मयूरावली, मतंग, जलहस्ती, मेघमाला, राक्षस, विद्याधर, मातृका, उत्तुंग तरंगावलियाँ, स्वर्गगंगा, विद्युत्, सूर्य, अग्नि आदि सभी (सुदूरस्थ वस्तुओं, दृश्यों, जीवों एवं घटनाओं) को देखता है।[1]

महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि—महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि सिद्धगण आकाश में अदृश्य रूप से बहुत ऊँचाई पर भ्रमण करते रहते हैं; किन्तु मानवीय चक्षु उन्हें देख नहीं पाते; लेकिन यदि मूर्द्धा (कपाल की भीतर ब्रह्मरन्ध्र नामक छिद्र) में विद्यमान ज्योति में ध्यान किया जाय तो ध्यानयोगी को मूर्द्धा में सिद्धों के दर्शन होते हैं। द्यौ और पृथ्वी तथा दोनों के अन्तराल में अदृश्य रूप से विचरण करने वाले इन सिद्धों का साक्षात्कार (ब्रह्मरन्ध्र में प्राण एवं मन को स्थिर करके आज्ञाचक्र में ध्यान करने से) मूर्धा-ज्योति में हुआ करता है। यहाँ दूर और समीप का भेद मिट जाता है। इस मूर्धा ज्योति सत्त्व गुण के प्रकाश में सुदूरस्थ सूक्ष्म जगत् का दर्शन होने लगता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्। (3.32)

स्वार्थ-संयम से होने वाली सिद्धियों में प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद एवं वार्ता-ज्ञान सम्मिलित हैं।

प्रातिभ-सिद्धि—मन में सूक्ष्म (अतीन्द्रिय), व्यवहित (छिपी हुई), विप्रकृष्ट (दूरस्थ), अतीत और अनागत (भविष्यवर्ती) वस्तुओं के जानने की योग्यता प्रातिभ सिद्धि से प्राप्त होती है। 'प्रातिभाद्वा सर्वम्' (3.33) सूत्र भी इसी की पुष्टि करता है।

श्रावणसिद्धि—स्वार्थ-संयम में सिद्धि होने से साधक को श्रावण नामक सिद्धि प्राप्त होती है। श्रोत्रेन्द्रिय की दिव्य एवं दूर के शब्द सुनने की योग्यता प्राप्त करना ही श्रावण सिद्धि है।

वेदना-सिद्धि—स्वार्थ-संयम में सिद्धि हो जाने पर साधक को वेदना नामक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इससे त्वगिन्द्रिय दिव्य स्पर्श प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। स्पर्शेन्द्रिय में उत्पन्न ज्ञान की संज्ञा है—वेदना।

आदर्श-सिद्धि—स्वार्थ-संयम में साफल्य प्राप्त होने पर साधक को आदर्श नामक सिद्धि प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप नेत्रेन्द्रिय को दिव्य रूप देखने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

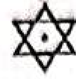
आस्वाद-सिद्धि—स्वार्थ-संयम में सिद्धि प्राप्त होने पर साधक को आस्वाद

1. त्रिपुरासारसमुच्चय (5.30-36)

नामक शक्ति या क्षमता प्राप्त हो जाती है। इसके द्वारा साधक की जिह्वा (रसनेन्द्रिय) दिव्य रसों के आस्वादन की क्षमता प्राप्त कर लेती है।

वार्त्ता-सिद्धि—स्वार्थ-संयम में सिद्धि पाने के अनन्तर साधक को वार्त्ता नामक शक्ति (क्षमता) हस्तगत हो जाती है। वार्त्ता द्वारा घ्राणेन्द्रिय दिव्य गन्धों को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त कर लेती है।





त्रयोविंश अध्याय

उन्मेष एवं शक्ति-साधना

स्पन्दकारिकाकार ने उन्मेष के सन्धान के फलस्वरूप चार प्रकार की शक्तियाँ प्रकट होने का उल्लेख किया हैं। ये योगी की अपर सिद्धियाँ हैं। इनके चार प्रकार हैं—बिन्दु, नाद, रूप एवं रस।

एकचिन्ताप्रसक्तस्य यतः स्यादपरोदयः।
उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत्।।

अतो बिन्दुरतो नादो रूपमस्मादतो रसः।
प्रवर्तन्तेऽचिरेणैव क्षोभकत्वेन देहिनः।।

(स्पन्दकारिका-41-42)

बिन्दु—पृथ्वी तत्त्व की धारणा करने वाले योगियों को एकाग्र ध्यान करने की प्रखरता से भ्रूमध्य में एक विशेष प्रकार का उत्तरोत्तर बढ़ता जो तेज आविर्भूत होता है, उसे ही बिन्दु कहते हैं। इस धारणा को बिन्दुभेद धारणा कहते हैं।[1]

नाद—आकाशतत्त्व की धारणा करने वाले योगियों को एक लोकोत्तर स्वयम्भू, मादक एवं मधुर ध्वनि श्रुतिगोचर होती है। प्रथमतः यह प्रखर वेग से प्रवाहित सरिता की घरघराहट की ध्वनि एवं बाद में उत्तरोत्तर अनेक ध्वनियों के रूप में प्रकट होती हुई मकरन्द पीने वाले मत्त भ्रमर के गुञ्जन की ध्वनि के रूप में श्रुतिगोचर होती है।[2]

रूप—तेजस् तत्त्व की धारणा करने वाले योगियों को प्रगाढ़ान्धकार में वस्तुओं को देख सकने आदि की शक्ति के रूप में रूप-सिद्धि प्राप्त होती है।

रस—जलतत्त्व की धारणा करने वाले योगी जिह्वाग्र या उसके निकटवर्ती लम्बिका (गले की घण्टी) पर धारण करते हैं। इस धारणा के फलस्वरूप स्वादिष्ट पदार्थ खाने के विना ही मुख में अमृतवत् स्वाद की अनुभूति होती है।[3]

इसी प्रकार दिव्य स्पर्श, दिव्य गन्ध आदि की भी अभिव्यक्ति होती है।



---

1. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (4.12)
2. स्पन्दकारिकाविवृत्ति (4.12)
3. स्पन्दकारिकाविवृत्ति



चतुर्विंश अध्याय

मनोविज्ञान एवं शक्ति-साधना

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने यन्त्रों के द्वारा विचार-तरंगों को अंकित करके प्रत्येक व्यक्ति के मनोभाव, स्वभाव एवं प्रकृति को जानने का कौशल सीख लिया है।

महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि—भारतीय योगियों को इसका ज्ञान हजारों वर्षों पहले से ही था और उसे पतञ्जलि ने योगसूत्रों में सूत्रबद्ध किया भी है—

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्। (विभूतिपाद-3.19)

विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि संयम के द्वारा अपने चित्त की वृत्ति का साक्षात्कार कर लेने से योगी संकल्पमात्र से ही दूसरे के चित्त को जान लेता है।

इस सूत्र की अन्य टीकाकारों द्वारा की गई व्याख्या के अनुसार 'प्रत्यय' शब्द चित्तवृत्ति नहीं, चित्त का द्योतक है; क्योंकि इस सूत्र में साक्षात्कार को चित्त का ज्ञान कहा गया है। अगले सूत्र में वृत्तिसहित ज्ञान का निषेध किया गया है; अतः स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि किसके चित्त के साक्षात्कार का यह फल है; किन्तु 'पर' शब्द परचित्त के साक्षात्कार को ही इंगित करता प्रतीत होता है।

वेदों की दृष्टि—महर्षि पतञ्जलि के पूर्व भी वैदिक ऋषियों को इसका परिज्ञान था। शतपथ ब्राह्मण के (का 3/अ.4। प्र2। कण्डिका 6) में कहा गया है कि—देवता लोग मनुष्य के मन को जानते हैं। मनुष्य जो कुछ संकल्प करता है, वह उसके प्राण में चला जाता है और प्राण बाहर की वायु में चला जाता है। वह वायु देवताओं को बता देता है कि मनुष्य के मन में क्या विचार चल रहा है—

मनो देवा मनुष्यस्याजानन्तीति, मनसा सङ्कल्पयति तत्प्राणमभिपद्यते, प्राणो वातम्, वातो देवेभ्य आचष्टे, तथा पुरुषस्य मनः। तस्मादेतदृषिणायनूकम्—

मनसा सङ्कल्पयति तद्वातमपि गच्छति।
वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुष ते मनः।।

पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के जो आन्तरिक विचार होते हैं, उनके अनुसार उसके वातावरण (वायुमण्डल) में वैसे ही परिवर्तन होते रहते हैं। वातावरण की परीक्षा से व्यक्ति के विचार जाने जा सकते हैं कि यह कामी है या क्रोधी है या शप्त।

दूरदृष्टि और दूरबोध की शक्तियाँ प्राप्त करने की दिशा में विदेशी साधकों ने भी सफलतायें प्राप्त की हैं और उसी का नाम है—क्लेयर वायेंस (Clairvoyance) और टेलीपैथी (Telepathy)।

Clair Voyance (दूरदृष्टि)—थियोसाफिकल सोसाइटी नामक अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्था के अध्यक्ष लीडबीटर स्वयं इस क्षेत्र में न केवल विशेषज्ञ थे; प्रत्युत इस शक्ति से सम्पन्न भी थे। उन्होंने इस क्षमता के विकास के लिए एक साधारण नियम का पालन करने के लिए कहा था।

दूरदृष्टि की क्षमता के विकास के लिए मुख्यत: केवल एक ही नियम है, किन्तु आनुषंगिक रूप में उसी नियम के भीतर अनेक उपनियम अन्तर्गर्भित हैं।

दूरदृष्टि का स्वरूप—अंग्रेजी में जिसे Clair voyance कहा जाता है, उसका अर्थ लीडबीटर महोदय ने Clean seeing कहा है और यह भी कहा है जो लोग इसका अर्थ Spiritual vision के रूप में प्रचारित करते हैं, वे भ्रमित हैं; क्योंकि इसे Spiritual vision नहीं कहा जा सकता। वे कहते हैं कि यह वह अर्जित क्षमता है, जिसके द्वारा हम किसी गुप्त एवं अज्ञात वस्तु को देख सकते हैं; किन्तु जिसकी क्षमता के विना हम सामान्य भौतिक आँखों से उसे कथमपि नहीं देख सकते—We may, perhaps, define it as the power to see what is hidden from ordinary physical sight.

इसी प्रंकार की एक दूसरी क्षमता भी है, जिसे Clair Audience कहते हैं और उसका अर्थ है—The power to hear what would be inaudible to the ordinary plysical ear. अर्थात् वह श्रवण-क्षमता, जो सामान्य भौतिक कानों को प्राप्त नहीं है, उस अतीन्द्रिय श्रवण-क्षमता को प्राप्त करने को ही क्लेयर आडिएंस कहते हैं।

यह क्षमता प्रत्येक व्यक्ति में है, किन्तु वह गुप्त है। अत: साधना द्वारा व्यक्त किये विना उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। कभी-कभी यह शक्ति किसी-किसी में (अपवाद-स्वरुप) विना साधना के भी व्यक्त हो जाती है, किन्तु बहुत उच्च स्तर पर व्यक्त नहीं हो पाती।

क्लेयर वायेंस का स्वरूप और उसकी विशेषतायें—हमारी आँखों की देखने, कानों की सुनने, नासिका की सूँघने, जिह्वा की स्वाद लेने और त्वचा की स्पर्श करने की जो क्षमतायें भौतिक ज्ञानेन्द्रियों की सीमा में हैं, वे ही क्षमतायें उन्हीं इन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म स्तर पर आरूढ़ होने पर सैकड़ों गुना बढ़ जाती हैं। उदाहरणार्थ विशिष्ट जाति के कुत्तों में मनुष्य से 1000 गुना अधिक सुनने एवं सूँघने की क्षमता होती है।

एक स्वस्थ मनुष्य के कान 20 से 20000 कम्पन प्रति सेकेण्ड तक की ध्वनि सुन सकते हैं।

(क) 20 से 40 डेसीबल के ध्वनि-स्तर तक कोई भी व्यक्ति एकाग्रतापूर्वक कार्य कर सकता है।

(ख) 65 डेसीबल से कम स्तर की ध्वनि 'शान्त' ध्वनि है।

(ग) 66-75 डेसीबल के स्तर की ध्वनि 'शोर' कहलाती है।

(घ) 75 डेसीबल से ऊपर की ध्वनि शोर-प्रदूषण कहलाती है।

(ङ) 100 डेसीबल के स्तर की ध्वनि से स्वास्थ्य दुष्प्रभावित हो उठता है।

(च) मानव के कर्णों की श्रवण-क्षमता से कई गुना अधिक तीव्रतर ध्वनि चमगादड़ स्वयं उत्पन्न करता है और मनवीय कर्ण उसे नहीं सुन सकते।

(छ) कबूतर विना रुके हुए 500 किलोमीटर उड़ सकते हैं, किन्तु सामान्यत: कोई भी मानव सामान्यतया ऐसा नहीं कर सकता।

(ज) गिद्ध मीलों ऊपर से ही मरे पशुओं को देख लेते हैं, किन्तु मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता।

इस प्रकार जो क्षमतायें मानव जाति में नहीं हैं, वे भी क्षुद्र प्राणियों में होती हैं।

(झ) मनुष्य में वे सामान्य क्षमतायें भले ही विकसित न हों, किन्तु वे शक्तियाँ उनमें गुप्त रूप से निहित हैं और उन्हें साधना द्वारा विकसित किया जा सकता है।

क्लेयर वायेंस की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि—दूरदृष्टिसम्बन्धी Tele-vision और Clairvoyance सिद्धान्तत: पृथक्-पृथक् विधायें है। Tele-vision का दूरदर्शन ट्रांस्मीटर और रिसीवर नामक भौतिक यन्त्रों की परतन्त्रता सापेक्ष है; किन्तु Clairvoyance को किसी भौतिक ट्रांस्मीटर एवं रिसीवर के यान्त्रिक साधनों की अपेक्षा नहीं है। Clairvoyance की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि है—

1. यह स्पन्दनों (Vibration) पर आधृत है। Clairvoyance like so many other things in nature is mainly a question of vibrations.

2. यह केवल उन शक्तियों का विकास है, जिन्हें हम अपने दैनन्दिन जीवन में प्रतिदिन उपयोग में ला रहे हैं।

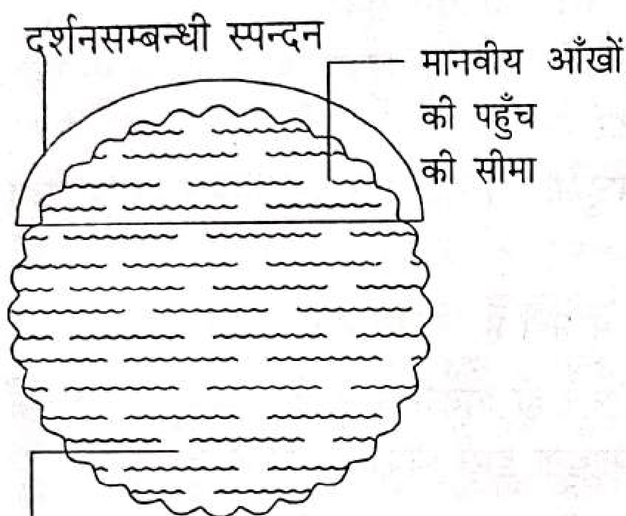
3. हम Air और Ether (वायु और आकाशतत्त्व) के विशाल समुद्र में स्थित हैं। यह विशाल समुद्र वायु एवं ईथर के मिश्रित रूप का समुद्र है। ईथर वायु के माध्यम से स्पन्दनों Vibrations के द्वारा हमें पदार्थों का ज्ञान कराता है। पदार्थों एवं अन्य सत्ताओं के Imprerssions बाहर से हम लोगों तक पहुँचते हैं।

4. इनमें से अधिकतर स्पन्दन (Vibrations) अत्यधिक त्वरित स्पन्दन (Infinitesimal vibrations) हैं।

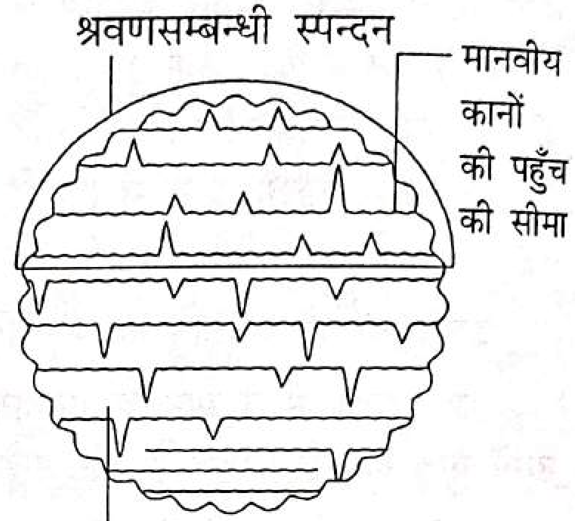
5. ये असामान्य एवं तीव्रतम स्पन्दन, जो कि Ether को प्रभावित करते हैं, उनका अत्यन्त लघु अंश (क्षुद्र भाग) ही (मानवीय आँखों को देखने की क्षमता की

दिशा में) मानवोपयोगी बन पाता है। उसका शेष भाग मानवीय चक्षुओं की पकड़ के बाहर ही रहता है। आँखों की रेटिना इन स्पन्दनों के अत्यन्त क्षुद्रांश को ही ग्रहण कर पाती है। इन त्वरिततम आकाशीय स्पन्दनों के जिस क्षुद्रांश को मानवीय आँखें ग्रहण कर पाती हैं, हम उसे ही प्रकाश (Light) कहते हैं।

6. इसी प्रकार आकाश में प्रसृत तीव्रतम एवं लघिष्ठ स्पन्दनों के विशाल सागर में से जिन थोड़े से स्पन्दनों को हमारे कान ग्रहण कर पाते हैं, हम मात्र उन्हीं को सुन पाते हैं; जबकि अनन्त श्रव्य ध्वनियों के महासागर का हम स्पर्श भी नहीं कर पाते।



मानवीय आँखों की पकड़ के बाहर के स्पन्द अतः अदृश्य दृश्य श्रज्ञेय घटित घटनायें ज्ञात नहीं है।



मानवीय कानों की पकड़ के बाहर के स्पन्द अतः अश्रव्य श्रुति के स्पन्दन अश्रुत हैं।

1. हम उतना ही सुनते हैं, जितना हमारे कान स्पन्दनों को पकड़ पाते हैं। जिन स्पन्दनों को कान पकड़ नहीं पाते, हम उन्हें नहीं सुन पाते। यथा—चमगादड़ की त्वरित ध्वनि या कुत्तों को श्रुतिगोचर मन्द ध्वनि को हमारे कान नहीं सुन पाते।

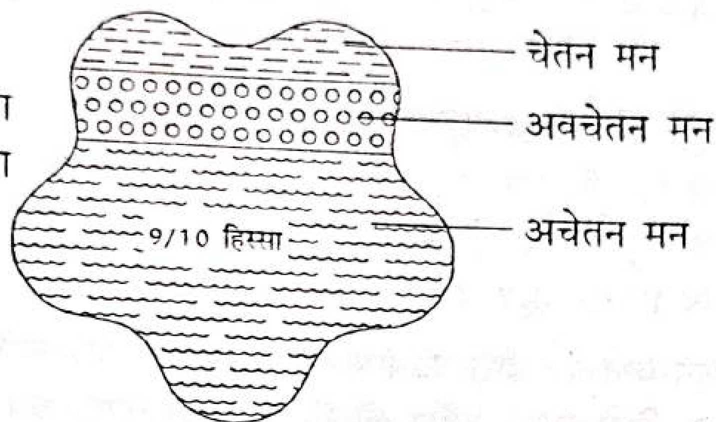
2. हम दृश्य वस्तुओं के उन्हीं संवेदनों (Sensations) एवं स्पन्दनों (Vibrations) को पकड़ पाते हैं, जिन्हें हमारी आँखें ग्रहण कर पाती हैं; अतः हम उन अनन्त स्पन्दनों (दृश्यों एवं घटनाओं के स्पन्दनों) को पकड़ न पाने के कारण देख नहीं पाते, जो वस्तुतः हमारे सामने हैं।

3. यदि हम अपनी आँखों एवं कानों की क्षमता का विकास करके उन अस्पृष्ट एवं अग्राह्य स्पन्दनों को भी पकड़ लें तो हजारों मील पर घटने वाली एवं हजारों मील पर सुनाई पड़ने वाली घटनाओं एवं श्रव्य ध्वनियों को भी देख एवं सुन सकते हैं।

4. हमारे Brain की भी वही स्थिति है। हमारे Brain (मस्तिष्कों) में दर्शनों, श्रवणों, घ्राणों, स्पर्शों एवं आस्वादों की अनन्त स्पन्दन-तरंगें हैं; किन्तु हम उनमें से सबको पकड़ नहीं पाते; अतः 1/10 भाग ही जान पाते हैं।

मनोविश्लेषणात्मक असामान्य मनोविज्ञान और अचेतन मन—मन का सबसे बड़ा भाग अचेतन है। यह समुद्र में तैरते बर्फ के खण्ड के 9 हिस्से के बराबर के हिस्से के समतुल्य है।

मन का अन्तरतम भाग अचेतन है बाहर का भाग चेतन है।



लाइबनीज (Liebnitz) से लेकर मॉर्टन प्रिंस एवं मार्टन प्रिंस से लेकर फ्रायड एवं अडलर तथा जुंग तक के आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मन के अचतेन भाग पर गवेषणायें कीं। अफलातून (Plato), अरस्तू (Aristotle), हार्टमैन (Hartnan) शोपेन हावर (Schopenhaur), हर्बार्ट (Herbart) ने भी अचेतन मन को स्वीकार किया। वह मन, जो अवरोधों के कारण चेतन स्तर पर अभिव्यक्त नहीं हो पाता और जिसके विषय में किसी भी व्यक्ति को जानकारी नहीं होती, वही अचेतन मन है। (That of which the individual is unaware in psycho-analysis it is spoken of as the unconscious and denotes a part of the mind cutoff from consciousness by a resistance)[1]

इसी भाग में जीवन की अस्मृत, दमित, अवरुद्ध एवं लोकातीत, दिव्य, इन्द्रियातीत एवं पूर्वाननुभूत घटनायें, स्मृतियाँ, दृश्य सञ्चित रहते हैं।

यदि मन के इस भाग की किवाड़ें खोलने के लिए ध्यान की साधना के द्वारा मन का सूक्ष्मीकरण कर लिया जाय तो भूत, भविष्य एवं विस्मृत वर्त्तमान—सभी प्रत्यक्षी-कृत हो उठता है।

स्पष्ट है कि हम जो जानते हैं, उसका केवल 1/10 भाग ही हम जान पाते हैं। उसका ज्ञेय 9/10 भाग हमारी जानने की सीमा में होते हुए भी हम उसे नहीं जान पाते।

हाँ, फिर Clairvoyance के विषय पर चर्चा की जाय। माननीय लीडमीटर महोदय का कथन है कि मैं उन लोगों के लिए इस विषय पर प्रकाश डाल रहा हूँ, जो इस अतीन्द्रिय शक्ति में विश्वास नहीं करते और उनको विश्वास भी नहीं दिलाना चाहता, जो कि इस विषय में शंकास्पद स्थिति में हैं। इस तथ्य का संकेत क्या है? यह कथन यह बताता है कि जो लोग इस क्षमता में विश्वास नहीं करते एवं जिन्हें

1. R. Macdonald Ladell : Dictionary of Psychological Terms

इस विद्या के अस्तित्व के विषय में सन्देह है, वे दोनों इस अतीन्द्रिय क्षमता का विकास नहीं कर सकते।

साधना की प्रथम शर्त है—अटूट विश्वास, अविचल मन:स्थिति एवं असन्देहशील आस्था।

दूरदृष्टिसम्बन्धी अनुभूतियाँ साधक की साधना की परिपक्वता के विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न होती हैं। हम वायु एवं ईथर के मिश्रित घोल से समुद्र में डूबे हुए हैं। पदार्थों के विस्तृत समुद्र में स्पन्दनों के माध्यम से हम तक बाहर से प्रभाव निर्बाध एवं अविश्रान्त (अविराम) आते रहते हैं।

दर्शन क्या है? ईथर को प्रभावित करने वाले असामान्य त्वरित स्पन्दनों का वह क्षुद्र भाग, जिसे हमारी आँख की रेटिना ग्रहण करके उसे प्रत्युत्तरित कर सकती है (Responding capacity के भीतर है) और हममें संवेदना (Sensations) उत्पन्न कर सकती है, उसे हम प्रकाश (Light) कहते हैं। प्रकाश ही दर्शन का माध्यम है।

यौगिक दृष्टिसाधन की एक नव्य प्रक्रिया है—अमृतीकरण—

किरन्तीमङ्गेभ्य: किरणनिकुरुम्बाभृतरसं
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलाभूतिमिव य:।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाधारशिरया।।

हृदय में अमृतकला का वास मानकर भगवती अमृतेश्वरी के केशपाश से झरते हुये अमृतकिरणों के द्वारा सारे शरीर का आप्यायन हो रहा है। इस प्रकार छ: मास तक ध्यान करने से दृष्टि में आकर्षण, वशीकरण एवं सम्मोहन की शक्ति आ जाती है।





पञ्चविंश अध्याय

अष्टदल कमल एवं शक्ति-साधना

जितने भी वर्ण हैं और जितने भी प्रत्यय हैं, वे सभी शक्ति के रूपान्तर हैं। यदि हम अपने मन के स्वरूप, चित्तवृत्तियों के मार्ग, मनोविकारों के उद्भवस्थान आदि जान लें तो मन पर नियन्त्रण कर सकते हैं और मन की शक्ति पर प्रभुत्व स्थापित करके एक अनिर्वचनीय शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। हम अष्टदल कमल की सहायता से जान सकते हैं कि हमारा मन किस केन्द्र पर केन्द्रित है, क्या कार्य कर रहा है। वह यह कार्य क्यों कर रहा है और उसे उस कार्य से रोकने या वही कार्य लगातार करने के लिए कैसे आदेशित किया जा सकता है? इसके लिये—

1. हृदय में अष्टदल पद्म पर आत्मस्वरूप हंस का ध्यान करना चाहिए।

2. इस आत्मस्वरूप हंस के दो पंखे हैं।

3. इसका शिर ओंकार है। नेत्र बिन्दु है। मुख रुद्र है। चरण रुद्राणी शक्ति है। बाहुद्वय अग्नि और काल हैं।

4. यह परमहंस करोड़ों सूर्य के प्रकाश से प्रोद्दीप्त है।

5. यह अष्टदल कमल एक करोड़ मन्त्र जप करने से प्रस्फुटित हो उठता है।

6. इसका मन्त्र है—हंस:।

7. 'हं' एवं 'स:' हंस-हंसिनी का जोड़ा है।

8. 'हं' पुरुष है और 'स:' शक्ति है।

9. वह आठों दलों पर क्रमश: कैसे बैठता है, यह भी सुनिश्चित है और किस दल पर बैठने से मानवमन में किस वृत्ति का उदय होगा, यह भी सुनिश्चित है।

10. पूर्व दल पर = पुण्य, मति। आग्नेय दल पर = निद्रा एवं आलस्य। दक्षिण दल पर = क्रूर बुद्धि। नैर्ऋत्य कोण पर = पाप बुद्धि। पश्चिम दल पर = क्रीड़ेच्छा। वायव्य कोण पर = यात्रेच्छा। उत्तरी दल पर = रति की इच्छा। ईशानवर्ती दल पर = धनेच्छा। पुष्प के मध्य में = वैराग्य। पुष्प के केशर पर = जागृति। पुष्प की कर्णिका में = स्वप्न। सूक्ष्म में = सुषुप्ति। पद्म का त्याग करके उड़ने पर तुरीयावस्था एवं समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है।

जब हंस-युगल वार्त्तालाप करते हैं तब योगियों को अट्ठारह विद्यायें आ जाती हैं।

वे अट्ठारह विद्यायें हैं—

1. शिक्षा	5. ज्योतिष	12. न्याय	16. धनुर्वेद
2. कल्प	6. छन्द	13. पुराण	17. गान्धर्व विद्या
3. व्याकरण	7-10. 4 वेद	14. धर्मशास्त्र	18. नीतिशास्त्र
4. निरुक्त	11. मीमांसा	15. आयुर्वेद	

गौड़पादाचार्य-विरचित सुभगोदय के भाष्य में श्रीभगवत्पाद ने हंस के जोड़े का स्वरूप एक दीपशिखा के सदृश बताया है। उसके दक्षिण एवं वाम भाग ही हंसेश्वर एवं हंसेश्वरी हैं। हंसेश्वर को शिखी एवं हंसेश्वरी को शिखिनी कहा है। इनका ध्यान हृदयपद्म में करना चाहिए।

अष्टदल कमल एवं हृदयकमलसम्बन्धिनी विभिन्न दृष्टियाँ—हंसोपनिषद् में कहा गया है कि अष्टदल कमल का स्वरूप इस प्रकार है—

हृदयेऽष्टले हंसात्मानं ध्यायेत्। अग्निषोमौ पक्षौ, ॐकार: शिरो, बिन्दुस्तु नेत्रं मुखो रुद्रो रुद्राणि चरणौ बाहू कालश्चाग्निश्च .... एषोऽसौ परमहंसो भानुकोटि-प्रतीकाश:।

आचार्य शंकर सौन्दर्यलहरी में कहते हैं—

समुन्मीलित्संवित् कमलमकरन्दैकरसिकं
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
र्यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमद्भ्य: पय इव।।

नारायणोपनिषद् (खण्ड-13) में कहा गया है कि—'तस्य मध्ये (हृदयस्य मध्ये) वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थित:। नीलतोयदमध्यस्थाद्विद्युल्लेखेव भास्वरा, नीवार-शूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा। तस्या: शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थित:, स ब्रह्मा, स शिव:, स हरि:, सेन्द्र: सोऽक्षर: परम: स्वराट्।'

सारांश यह कि हृदयकमल के मध्य अग्नि की छोटी-सी शिखा है। वह नील वर्ण के मेघों में चमकने वाली विद्युत् रेखा के समान पीले रंग की, धान्य के तिनके के अग्रभाग जैसी पतली होती है। उस शिखा के मध्य परमात्मा निवास करते हैं। वे ही ब्रह्मा, शिव, हरि, इन्द्र एवं अक्षर परब्रह्म हैं। विद्युत् प्रकाश में दृष्टिगोचर श्याम मेघ के सदृश रंग वाले हंसेश्वर और पीतवर्ण की हंसेश्वरी हैं।

चौदहवें श्लोक में हंसेश्वरी की चौवन वायव्य रश्मियाँ हंसेश्वर और आधी हंसेश्वरी की बताई गई हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् (5.6.1) में हृदय में धान एवं जौ के समान आकार वाले प्रोद्दीप्त मनोमय पुरुष का वर्णन आता है—'मनोमयोऽयं पुरुषों भा: सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये

यथा व्रीहिर्वा यत्रो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किञ्च।'

छन्दोग्योपनिषद् के अष्टम अध्याय में दहर विद्या का वर्णन आता है। कहा गया है कि इस संवित् कमल में ही अहं संवित् के ध्यानपूर्वक ज्योतिदर्शन द्वारा ब्रह्म-प्राप्ति होती है।

कबीरदास आदि सन्तों ने भी अष्टकमल का वर्णन किया है—

अष्ट कमल दल चरखा डोले पाँच तत्त्व गुन तीनी चदरिया।

निर्गुणपन्थी सन्तों द्वारा वर्णित अष्टदल कमल—

1. अष्टदल कमल दोनों नेत्रों के अवयवों की समष्टि है।

2. प्रत्येक नेत्र में 4-4 अवयव हैं। इनमें प्रथम है—आँख का तारा एवं अन्तिम है—अग्रदृष्टि।

3. अग्रदृष्टि सूचिका छिद्र के समान अतिसूक्ष्म रन्ध्र है। सुरति की प्रक्रिया सिद्ध होने पर इस अग्रगति को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए उन्मनी मुद्रा का उपयोग करना पड़ता है।

4. अग्रगति प्राप्त होने पर अष्टदल कमल का भेदन हो जाता है और इसके परिणाम-स्वरूप साकार-निराकार, सविकल्प-निर्विकल्प का भेद तिरोहित हो जाता है।

5. महाशून्य एवं भ्रमरगुहा का भेदन करके सत्यलोक में प्रवेश किया जाता है। यही परब्रह्म का केन्द्र है।

6. बंकनाल (मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक प्रसृत नाड़ी) ही इस यात्रा का महामार्ग है। बंकनाल आज्ञा चक्रस्थ बिन्दु का स्पर्श करके ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है और वहाँ से नीचे की ओर लटकती हुई ऊर्ध्वमुख हो जाती है।

बंकनाल का अवसान हो जाने पर परम शुद्ध बिन्दु की स्थिति साक्षात्कृत होती है। इस साधना द्वारा शब्द की महिमा (शब्दस्वरूपा शक्ति का महत्त्व) अनुभव में आता है। यह शब्द वर्णात्मक नहीं; प्रत्युत ध्वन्यात्मक है। यह शुद्धतम ध्वनिरूप शब्द ही सद्गुरु है। यह ध्वनिरूप शक्ति प्राप्त करना ही अर्थात् शक्तिस्वरूप अनाहत शब्दब्रह्म को प्राप्त करना, जो कि सद्गुरुस्वरूप है, साधक का लक्ष्य है। वैसे वेदों में तो शब्दब्रह्म से परे परब्रह्म की स्थिति भी स्वीकार की गई है।

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

वर्ण, शब्द, वर्णमाला, नाद, अनाहत नाद, परा वाक्, पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक्, वैखरी वाक् आदि सभी भगवती कुण्डलिनी शक्ति के ही विविध स्वरूप हैं। अतः इस परावस्था की प्राप्ति भी शक्ति के परस्वरूप की ही प्राप्ति है।

नाद, वर्ण एवं वर्णमाला तथा वाक् तत्त्व के सारे रूप, उनकी सारी भूमिकायें शक्ति तत्त्व के ही विविध स्वरूप हैं—

माध्वीपानालसा मत्ता मातृका वर्णरूपिणी।
परा प्रत्यविचतीरूपा पश्यन्ती परदेवता।।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका।
नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता।।[1]

आचार्य शंकर कहते हैं कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में अव्यक्त रूप में अवस्थित रहने पर भी ध्वनि करती है—

अप्यव्यक्तं प्रलपति यदा कुण्डलिनी तदा मूलाधारे विसरति सुषुम्नावेष्टनो मुहुः।

इसी मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी शक्ति से परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी नामक वाक् चतुष्टय का क्रमशः जन्म होता है—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः।
पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः।।[2]

ऐसे कितने ही प्रकार के प्रकाश हैं, जिन्हें हम नहीं देख पाते एवं ऐसी कितनी ही ध्वनियाँ हैं, जिन्हें हम सुन नहीं पाते। ध्वनि-तरंगें भी मन्द एवं तीव्र होती हैं और प्रकाशतरंगें भी।

ध्वनि एवं प्रकाश की संवेदना या ग्रहणशक्ति की दिशा में लोगों में भिन्नता भी है। यह भी सत्य है कि एक ही व्यक्ति की विभिन्न परिस्थितियों में उपर्युक्त संवेदनाओं में अन्तर आ जाता है। अतः इनका अभ्यास करके इसे विकसित किया जा सकता है। इसके परिणामस्परूप जो वस्तु दूसरे लोग नहीं देख पा रहे हैं; आप देख लेंगे एवं जो ध्वनि दूसरे लोग नहीं सुन पा रहे हैं, उन्हें आप उन्हें सुन लेंगे इस शक्ति के विकास से आप सन्दूक में बन्द पत्र भी पढ़ सकते हैं। Rontgen rays इसका एक उदाहरण है।

योग की त्राटक क्रिया में शक्तिचक्र पर किया गया अभ्यास भी इसी प्रकार की असामान्य दृष्टि प्रदान करता है।

मनुष्य की Etheric body उसके Physical frame (भौतिक शरीर) से सूक्ष्मतर है। इसी कारण ज्ञानेन्द्रियाँ (Sence organs) यथेष्ट मात्रा में Etheric matter (आकाशीय सामग्री) प्राप्त कर लेती हैं।

मनुष्य की Astral body और Mental body भी होती है। इन्हें क्रिया करने की दिशा में जगाया जा सकता है। साधना के विकास की दिशा में ये अपने-अपने स्तरों पर विद्यमान पदार्थों के स्पन्दनों को (ये ऐस्ट्रल एवं मेण्टल वाडी) उनके गुप्त निहितार्थ को व्यक्त कर देती हैं। साधक इस स्थिति में एक नूतन जगत् में प्रवेश करता है। साधना की विकसित अवस्था में निम्नतम ऐस्ट्रल बाड़ी उच्चतम Physical body में एवं निम्नतम मेण्टल बाड़ी उच्चतम ऐस्ट्रल बाड़ी में पहुँचा देती है। इन परिस्थितियों

1. ललितासहस्रनाम 2. प्रपञ्चसारतन्त्र

में हम देखने एवं सुनने के क्षेत्रों में इतनी उन्नति कर जाते हैं कि जो पहले नहीं दिखाई पड़ता था या नहीं सुनाई पड़ता था, वह अब दिखाई एवं सुनाई पड़ने लगता है। जो Etheric भाग अभी बन्द सन्दूक की भाँति या उसके पदार्थों के स्पन्दन भी हमें प्राप्त होने लगेंगे। रेटिना से गृहीत ये पदार्थ स्पन्दन मूर्त पदार्थ के नहीं Etheric body के होते है। इससे Astral consciousness प्राप्त होगी। Astral body की कोई विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होती। प्रत्येक Physical object (भौतिक पदार्थ) का अपना Astral counterpart भी होता है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ का order उसके Astral पदार्थ से सम्बन्धित होता है; अत: उस पर प्रभाव डालता है।

मनुष्य की Astral body के दो भाग हैं—अधिक सघन भाग एवं Astral पदार्थों के बादल। यह पूर्व भाग को चतुर्दिक घेरे रहता है।

Physical body (भौतिक शरीर) कुछ न कुछ पदार्थ अपने पास रखती है; किन्तु स्थायी रूप में नहीं।

भौतिक चक्षु एवं श्रोत्र ऐस्ट्रल पदार्थ के समधर्मी या स्वप्रतिनिधि (Counterpart) पदार्थ से युक्त रहते हैं। Astral sight and Astral hearing की प्राप्ति इसी क्षमता के विकास से आती है। Astral body में काम करने पर ये प्राप्त होने लगेंगे और हम उनके निहितार्थ को समझने लगेंगे।

इस साधना को स्फटिक गोल्फ पर नेत्र एवं मन को केन्द्रित करके भी किया जा सकता है।

सामान्य एवं सरलतम साधना-पद्धति—प्रतिदिन नियमित रूप से कम से कम 10 मिनट तक निर्विचार स्थिति में बैठे रहने का अभ्यास करें।

यदि इसके मध्य मन में कोई विचार आये तो उसे मन से बाहर फेंक दें। ध्यान की प्रगाढ़ता में डूबते जायँ। अपने को भूलने का प्रयास करें।





षड्विंश अध्याय

ब्रह्मतत्त्व और शक्ति-साधना

भारतीय दार्शनिकों ने मुख्यत: तीन जिज्ञासायें प्रस्तुत की हैं—

1. अथातो धर्मजिज्ञासा (जैमिनि : मीमांसासूत्र)।

2. अथातो शक्तिजिज्ञासा (शाक्तदर्शनम् : आचार्य हयग्रीव)।

3. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (ब्रह्मसूत्र : व्यास)।

इनमें 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ही भारतीय दार्शनिकों की उच्चतम जिज्ञासा है। ब्रह्म कौन है? इस प्रश्न के अनेक उत्तर हैं—

1. तैत्तिरीयोपनिषद् : विश्व का स्रष्टा, पालक और संहर्ता तथा समस्त जगत् का अधिष्ठान ही ब्रह्म है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञास्व। तद् ब्रह्मेति।

2. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म—ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है।

3. ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वत्र।

4. आकाशशरीरं ब्रह्म। सत्यात्मप्राणारामं मन आनन्दम्। शान्तिसमृद्धममृतम्।

5. प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऐतरेयोपनिषद्) प्रकृष्ट ज्ञान ही ब्रह्म है।

6. सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् (माण्डूक्य)।

7. सर्वं खल्विदं ब्रह्म (यह सब कुछ = समस्त विश्व ब्रह्म है।)

8. अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् (तैत्तिरीयोपनिषद्)। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एवं आनन्द अपने तात्त्विक स्वरूप में ब्रह्म हैं।

9. जो वाणी द्वारा अगम्य है, किन्तु जिसके द्वारा वाणी क्रियाशील होती है। जो मन से अगम्य है, किन्तु जिसके द्वारा मन जाना जाता है। जो चक्षु से अदृश्य है; किन्तु जिसके द्वारा चक्षु अपने विषयों को देख पाता है। जो श्रोत्र द्वारा अश्रव्य है, किन्तु जिसके द्वारा श्रोत्र सुना जाता है। जो प्राण से चेष्टावान नहीं होता, किन्तु जिसके द्वारा स्वयं प्राण चेष्टा प्राप्त करता है, वही ब्रह्म है—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
यच्छोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणाः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।। (केनोपनिषद्)

ब्रह्म अज्ञेय है, अज्ञात है और बुद्धि की सीमा से अतीत है। ऋषियों ने कहा कि— यदि तू यह मानता है कि उसे भली-भाँति जान गया हूँ तो निश्चय ही तू उसका स्वरूप थोड़ा ही जानता है; अतः तेरा तद्विषयक ज्ञान यथार्थ नहीं है, मीमांस्य है—

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथनु मीमांस्येव ते मन्ये विदितम्।।

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार तो प्रकृति के गुलाम हैं, उनके विकार हैं। अतः उस अन्तः-करणचतुष्टयातीत, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' के स्वरूप वाले एवं अवाङ्मन-सगोचर ब्रह्म को कोई कैसे जान सकता है?

भारतीय ऋषि कहता है कि जो यह जानता है कि मैं उसे जानता हूँ, वह भी नहीं जानता और जो जानता है कि मैं नहीं जानता, वह भी उसे नहीं जानता—

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।।

इतना होने पर भी यह सत्य है कि जो यह मानता है कि मैं उसे जानता हूँ, वह उसे नहीं जानता; किन्तु जो यह मानता है कि मैं उसे नहीं जानता हूँ, वह उसे जानता है; क्योंकि ज्ञातृत्वाभिमानियों के लिए वह अज्ञात है और ज्ञातृत्वाभिमान-रहित लोगों के लिए वह ज्ञात है—

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।। (केनोपनिषद्)

Bible में भी यही बात कही गई है—

You shall indeed hear but never understand
And you shall indeed see but never perceive
For this people's heart has grown dull
And their ears are heavy of hearing
And their eyes they have closed
Lest they should perceive with their eyes
And hear with their ears
And understand with their heart
And turn for me to heal them.

भारतीय दर्शन-वाङ्मय में उच्चतम उत्कर्ष की अन्त्यभूत कोटि पर प्रतिष्ठित अद्वैत वेदान्त के अप्रमेय, चतुष्कोटिविनिर्मुक्त, अवाङ्मनसगोचर, अनिर्वचनीय, परम तत्त्व ब्रह्म का निरूपण करने में जब भगवती श्रुति और आर्ष ग्रन्थों की विवेचनक्षमता भी इस अक्षम मीमांसा में पर्यवसित होकर निम्न प्रक्रिया से निषेध-पक्ष का आश्रय ग्रहण करती है कि वह ब्रह्म—

अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम्। (अध्यात्मोपनिषद्)

दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। (कठोपनिषद्)

अगोचरम् मनोवाचम्।। (मैत्रेय्युपनिषद्)

तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।। (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्। (कठोपनिषद्)

अवाच्यमनसि व्यक्तमतीन्द्रियमनामकम्। (योगवाशिष्ठ)

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्ति नास्तीति वा पुनः।
(गौड़पाद माण्डूक्यकारिका)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, न मनो न विद्मो न विजानीमो।
(केनोपनिषद्)

न मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।। (केनोपनिषद्)

और ऐसे दुर्दर्श, निर्विकल्प, निर्गुण, निष्क्रिय, निराकार, निष्कल, निरञ्जन, निरीह, निरवद्य, अशब्द, अनिरूप्य, अवाच्य, अवाङ्मनसगोचर, अतीन्द्रिय और इन्द्रियाविषय सूक्ष्मतम परम तत्त्व की मीमांसा में 'नेति नेति' कहकर मूक हो जाती है, तब अल्पज्ञ प्राकृत मानवों की तो बात ही क्या है कि वह उसका वर्णन कर सके; तथापि हम शक्य प्रयास तो करते ही हैं।

ब्रह्मपद की विविध मीमांसायें

क्या ब्रह्म आनन्दस्वरूप है? और यदि आनन्द ही उसका स्वरूप-लक्षण है तब उसकी मीमांसा में लक्षण-वैषम्य कैसे?

इसका समाधान यह है कि विषय-साम्य होने पर भी विषयी के वैषम्य से विषय-प्रतिपादन में वैभिन्न्य का आ जाना तो नैसर्गिक ही है, अतः तदेव ब्राह्म मीमांसा विषय भी इसका अपवाद कैसे रहता? उपर्युक्त नियमानुसार ही विशिष्ट-विशिष्ट दर्शनों एवं सिद्धान्तों के आश्रय से ब्रह्म पद की भी विशिष्ट-विशिष्ट मीमांसायें हुई हैं।

1. व्युत्पत्त्यात्मक दृष्टि से ब्रह्म पद का अर्थ 'उपबृंहण करने वाला' होगा और उपबृंहण का आश्रय ही 'ब्रह्म' कहलायेगा।

2. अथर्वशिखोपनिषद् में ब्रह्म पद की उपर्युक्त व्युत्पत्त्यात्मक मीमांसा ही की गई है—'सर्वाणि बृंहयतीति ब्रह्म।'

3. अथर्वशिखोपनिषद् की ही द्वितीय परिभाषा के अनुसार—'यस्मादुच्चार्यमाण एव बृंहति बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म।'

4. श्रीसम्प्रदाय के आद्य प्रवर्त्तक और विशिष्टाद्वैतवाद के परम आचार्य आचार्यपाद रामानुज के सिद्धान्तानुसार ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण उसकी अशेष सगुणता में ही है और दुर्गुणों के आत्यन्तिक राहित्य एवं सुगुणों की समग्रता का परमाधिष्ठान ही ब्रह्म है। उपर्युक्त विशिष्ट सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्म की विशिष्टाद्वैत पर मीमांसा करते हुए आचार्यप्रवर कहते हैं—

ब्रह्मशब्देन स्वभावतो निरस्तनिखिलदोषोऽनवधिकातिशयासंख्ये कल्याणगुणगण: पुरुषोत्तमोऽभिधीयते। सर्वत्र बृंहत्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्द:। बृंहत्वञ्च स्वरूपेण गुणैश्च यत्रानवधिकातिशयम् सोऽस्य मुख्यार्थ:।

5. प्रणवोपासना में प्रणव ही ब्रह्म माना गया है। आचार्यप्रवर पतञ्जलि के अपने सूत्रों में 'तस्य वाचक: हि प्रणव:' सूत्र द्वारा प्रणव को ब्रह्म का वाचक मात्र घोषित कर देने पर भी प्रणवोपासक प्रणव को ही ब्रह्म मानते हैं। यथा—ॐमित्येतत् (कठोषनिषद्)। ॐमिति ब्रह्म (तैत्तिरीयोपनिषद्)। ॐकार एवेदं सर्वम् (छान्दोग्योपनिषद्)। ॐतद्ब्रह्म (म. उप.)। ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म (गीता)।

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च पर: स्मृत:।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपर: प्रणवोऽव्यय:।।

6. व्याहृत्योपासना में व्याहृतियों को ही ब्रह्म माना गया है—
भूर्भुव: स्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतय:। तस्मासु हस्मैतां
चतुर्थीमह इति। तद्ब्रह्म। मह इति ब्रह्म।

(तैत्तिरीयोपनिषद् : शिक्षावल्ली)

7. सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म (तैत्तिरीयोपनिषद्) का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्म का स्वरूप उपर्युक्त मीमांसाओं के पूर्ण विपरीत है और एतदनुसार अनन्त ब्रह्म सत्य और ज्ञान-स्वरूप है। सत्य और ज्ञान ही उसका पारमार्थिक स्वरूप है।

8. आत्मवादियों की दृष्टि में आत्मा ही ब्रह्म है—अयमात्मा ब्रह्म (तै. उप.)।

एष आत्मान्तर्हृदय एतद् ब्रह्मैतदमिति। (छान्दो. उप.)

9. 'तपो ब्रह्मेति' कहने वाली तैत्तिरीयोपनिषद् की ऋचा तप को ही ब्रह्म मानती है।

10. अक्षमालोपनिषद् में तो अक्षमाला को ही ब्रह्म कहा गया है—यस्यान्तरसूत्रं। तद्ब्रह्म।

11. 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—कहकर आनुश्रविक ऋचा ने उपर्युक्त सभी मीमांसाओं से सम्यक् भिन्न एक नूतन ब्राह्म परिभाषा की मीमांसा कर दी। इसके अनुसार समग्र इन्द्रियगोचर पदार्थ ब्रह्म ही हैं। सब कुछ ब्रह्म ही है।

12. 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।' (तै. उप. भृगुवल्ली। अनुवाक) कहकर ब्राह्म निरूपण करने वाले वरुण ने ब्रह्म को स्रष्टा, पालक और संहर्ता के रूप में अङ्गीकृत किया है। यहाँ ब्रह्म न्याय दर्शन का कर्त्ता-प्रतीत होता है।

13. केनोपनिषत्कार ने—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनसो मतम्।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
यत्प्राणेन न प्राणिति तेन प्राणः प्रणीयते।।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

इत्यादि कहकर ब्रह्म को प्राणिवर्ग मात्र के वाणी, मन, श्रोत्र, चक्षु और प्राण आदि को शान्ति प्रदान करने वाला एवं स्वयं वाणी, मन, श्रोत्र, चक्षु और प्राणों से परे एक अचिन्त्य शक्ति के रूप में निरूपित किया है।

ब्राह्ममीमांसा की विभिन्न मीमांसायें इनते पर ही नहीं रुकतीं; प्रत्युत—

14. नाम ब्रह्मेत्युपास्ते। 15. वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते। 16. मनो ब्रह्मेत्युपास्ते। 17. सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते। 18. चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते। 19. ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते। 20. विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते। 21. बलं ब्रह्मेत्युपास्ते। 22. अन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते। 23. आपो ब्रह्मेत्युपास्ते। 24. तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते। 25. आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते। 26. स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते। 27. आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते। 28. आशां ब्रह्मेत्युपास्ते और अन्त में 29. प्राणो वै ह्येवैतानि सर्वाणि—कहकर कोई उसे नाम, कोई वाक्, कोई मन, कोई संकल्प, कोई चित्त, कोई ध्यान, कोई विज्ञान, कोई बल, कोई अन्न, कोई आप, कोई तेज, कोई आकाश, कोई स्मर, कोई आशा, कोई प्राण के रूप में उसकी उपासना करता है और उसी स्वरूप को ब्रह्म मानता है— (छान्दोग्योपनिषद्)

इस प्रकार भगवती श्रुति स्थूल से सूक्ष्म की ओर सोपान-प्रक्रिया से बढ़ती हुई 1. सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यं, 2. विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यं, 3. मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्यं, 4. श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्यं, 5. निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्यं, 6. कृतिस्त्वेव

विजिज्ञासितव्यं, 7. सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यं—कहकर अन्त में पूर्ववर्ती सभी विजिज्ञासितव्यों का प्रत्याख्यान करके ब्रह्म के शाश्वत परम शिवतत्त्व आनन्द (भूमा) का वरण करती है—'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। भूमेव सुखं। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यम्।'
(छान्दोग्योपनिषद्)

ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप—ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप तो आनन्द-मात्र ही है। ब्रह्म ही आनन्द है और आनन्द ही ब्रह्म है। ब्राह्म मीमांसाओं में प्रथमत: ही आनन्द-तत्त्व का निरूपण न करने का कारण यह है कि वह ब्रह्म का चतुर्थ पाद, वह तुरीय परम शिव तत्त्व 'आनन्द' इतना दुर्बोध और दुर्गम्य है कि वह विना सोपान-प्रक्रिया के अवगत हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि तैत्तिरीयोपनिषद् में भृगु के वरुण से यह प्रार्थना करने पर कि 'अधीह भगवो ब्रह्मेति' वरुण 'तपसा विजिज्ञासस्व' की आज्ञा देकर शनैः-शनैः स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते हैं और भृगु की पूर्ववर्ती अनुभूतियों का प्रत्याख्यान करते हुये पुन:-पुन: तप करने की आज्ञा देकर और अन्त में भृगु के आनन्दतत्त्व के बोध होने पर उसको ही अन्तिम तत्त्व मानकर और उसे ही ब्रह्म का स्वरूप समझकर चुप हो जाते हैं और भृगु भी 1. अन्नो ब्रह्मेति व्यजानात्। 2. प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। 3. मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। 4. विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् की क्रमिक अनुभूति करते-करते अन्त में जाकर ब्रह्मतत्त्व आनन्द को समझते हैं—'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।' आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। और उसी को ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण समझकर विरत हो जाते हैं।

ब्रह्म के तुरीय पाद 'आनन्द' की प्राप्ति ही साधना की चरमावस्था है। वह ब्रह्म सत्-चित्-आनन्द त्रिपादी है। वह सद्घन-चिद्घन-आनन्दघन तत्त्व ही परब्रह्म है—'एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमय:। तेनैष पूर्ण:। आनन्द आत्मा' (तैत्तिरीयोपनिषद्)।

इस विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न तदन्त:स्थ ही कोई आनन्दमय परमात्मा है। उससे विज्ञानमय पूर्णत: व्याप्त है। आनन्द ही आत्मा है।

ब्रह्म की आनन्दमयता—सच्चिदानन्द आनन्दकन्द ब्रह्म रसस्वरूप है। वह रस (आनन्द है)। वह स्वयमेव आनन्द है और दूसरों को भी उस आनन्दतत्त्व से आनन्दित करता है; क्योंकि वही आनन्द का अधिष्ठान है—'यद्वैतत्सुकृतं रसो वै स:। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। .... एष ह्येवानन्दयति।' (तैत्तिरी. उ. 2.7) 'सैवानन्दत्यमीमांसा भवति' (तै. उ.)।

दार्शनिक प्रस्थान के प्रणेता अद्वैताचार्य आचार्यपाद व्यास जी ने ब्रह्मसूत्र वेदान्त में ब्राह्म-मीमांसा करते समय ब्रह्म को आनन्दस्वरूप ही कहा है और उनके लिखे आनन्दमय शब्द का उपयोग किया है—'आनन्दमयोऽभ्यासात्। (वे. सू.-1.1.2), 'मन्त्रवर्णिकमेव च गीयते' (1.1.15), 'विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात्' (1.1.13), 'तद्धेतुव्यपदेशाच्च' (1.1.14), 'नेतराऽनुपपत्तेः' (1.1.16), 'भेदव्यपदेशाच्च',

(1.1.17), 'कामाच्च नानुमानापेक्षा' (1.1.18), 'अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति', (1.1.19)।

एकरस, शाश्वत, निरुपाधिक एवं अन्तिम शिवतत्त्व तो आनन्द ही है और यही ब्रह्म का चतुर्थ तुरीयपाद है। इसी में उसके स्वरूप की पारमार्थिक अभिव्यक्ति और उसके स्वरूप-लक्षण का भी अभिव्यक्तीकरण होता है। ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण आनन्द है; क्योंकि वैसे तो जीव में भी सत् और चित् रहते ही हैं, किन्तु उसमें आनन्द का अभाव होता है और आनन्द की विशिष्टता ही ब्रह्म का जीव से पार्थक्य करती है। आनन्द ही ब्रह्म का विशिष्ट लक्षण है, इसीलिये वह आनन्दमय कहलाता है— 'चिदानन्दमयं ब्रह्म' (पञ्चदशी)।

'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म सर्वकार्यवि क्षणमदृश्यादिधर्मकमेवानन्दम्।' (शंकराचार्य— तैत्तिरीय भाष्य) अर्थात् सम्पूर्ण कार्यवर्ग से विलक्षण अदृश्यादि धर्म वाला वह आनन्द ही है। 'नूनं ब्रह्मैव रसः। परमानन्दमयलिङ्गाधिगमद्वारेणानन्दविवृद्ध्यावसान आत्मा ब्रह्म' (शंकराचार्य) अर्थात् वह ब्रह्म केवल आनन्द ही नहीं; प्रत्युत आनन्द की परा-काष्ठा भी है। आनन्दमय इस लिंग के ज्ञान द्वारा आनन्द के उत्कर्ष का अवसानभूत आत्मा ही ब्रह्म है। वह आनन्द का अधिष्ठान भी है—'आनन्दकारणं रसवद् ब्रह्म। एष ह्येव परमात्मात्मा आनन्दयत्यानन्दयति सुखयति लोकम्।'

वह आनन्दकन्द ब्रह्म स्वयं आनन्द-महार्णव होने के साथ ही साथ जीवों को भी आनन्द प्रदान करता है; क्योंकि जगत् का समस्त आनन्द उसी का एक अंशमात्र है और जीव उसी आनन्द के उपभोक्ता हैं और उसी के आश्रय से जीवित रहते हैं— 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रमुपाजीवन्ति' (बृह. उप.)।

वह तो आनन्द का समुद्र है, इसी से वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीकार ने उसे आनन्द-समुद्र की संज्ञा दी है—'यस्यानन्द समुद्रस्य' और शंकराचार्य ने भी विवेक-चूड़ामणि में ब्रह्म को अखण्डानन्दपीयूष से पूर्ण महार्णव कहा है—'अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे।'

ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण—ब्रह्म का स्वरूप नित्य, अखण्ड, अभेद्य, शाश्वत, चिरन्तन, अनन्त, सत्-चित्-आनन्द है। वह अखण्ड और अनन्त सच्चित् आनन्द है। आनन्द का आनन्त्य और उसकी अखण्डता ही ब्रह्म का अपना विशिष्ट लक्षण है और तदेव ब्रह्म सत्-चित् और आनन्द की समग्रता का एकमात्र परमाधिष्ठान है—

1. 'सः शिवः सच्चिदानन्दो सोऽन्वेष्टव्यो मुमुक्षुभिः' (ब्रह्मोपनिषद्), 2. 'विभुसच्चिदा-नन्दमरूपाद्भुतम्' (कैवल्योपनिषद्), 3. 'तल्लये सच्चिदानन्द पर्यवस्यन्ति साक्षिणि' 4. 'वस्तुसच्चिदानन्दाऽनन्ताद्वयं ब्रह्म अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु' (वेदान्तसार), 5. 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (वृह.उप.), 6. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं च पूर्णानन्दविग्रहम्' (वे. सि. मुक्ता), 7. 'अखण्डं सच्चिदानन्दं परब्रह्मविलक्ष्यते' (आत्मबोध-शंकराचार्य), 8. 'सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्ष्यते' (आत्मबोध), 9. 'तत्त्वज्ञानाच्च तद् ब्रह्म

सच्चिदानन्दलक्षण:' (आत्मबोध), 10. 'सत्यज्ञानानन्तमानन्दरूपं ब्रह्माद्वैतं' (विवेकचूड़ामणि)। 11. 'यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं, चिदद्वयानन्दमरूपमक्रियम्' (वि. पू.), 12. 'आनन्दं स्वरूपमस्येति आनन्द:' (वि. स. शांकर भाष्य), 13. 'एतं आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति' (तैतिरीयोपनिषद्), 14. 'तिर्यगूर्ध्वमध: पूर्ण: सच्चिदानन्दमद्वयम्' (आत्मबोध) रूप में निरूपित किया गया है।

ब्राह्म मीमांसा की विभिन्न मीमांसायें इतने पर ही नहीं रुकतीं; प्रत्युत कोई—

15. नाम ब्रह्मेत्युपास्ते = नाम ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
16. वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते = वाणी ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
17. मनो ब्रह्मेत्युपास्ते = मन ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
18. सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते = संकल्प ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
19. चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते = चित्त ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
20. ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते = ध्यान ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
21. विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते = विज्ञान ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
22. बलं ब्रह्मेत्युपास्ते = बल ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
23. अन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते = अन्न ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
24. आपो ब्रह्मेत्युपास्ते = जल ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
25. तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेज ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
26. आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते = आकाश ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
27. स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते = कामदेव ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
28. आशां ब्रह्मेत्युपास्ते = दिशा ही ब्रह्म है—इस प्रकार कोई उपासना करता है।
29. प्राणो वै ह्येवैतानि सर्वाणि = प्राण ही सब कुछ है (वह ब्रह्म है)—इस प्रकार कोई उपासना करता है (छान्दोग्योपनिषद्)।

इस प्रकार भगवती श्रुति स्थूल से सूक्ष्म की ओर सोपान प्रक्रिया से बढ़ती हुई—

1. सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
2. विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
3. मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
4. श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
5. निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
6. कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्यं।
7. सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यं।

अन्ततोगत्वा भूमा (आनन्द) का ही वरण करती है; क्योंकि आनन्द ही परमतत्त्व है और आनन्द ही ब्रह्म है—'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। भूमेव सुखं। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यं।' (छान्दोग्योपनिषद्)।

तुरीय आनन्दतत्त्व का स्वरूपोद्घाटन तो सबसे अन्त में होता है; क्योंकि वह परमतत्त्व इतना दुर्बोध और दुर्गम्य है कि विना सोपानप्रक्रिया के वह अवगत ही नहीं

हो सकता। इसीलिये उपनिषत् कार ने भूमा को अन्तिम विजिज्ञासितव्य (प्रमेय) बतलाया है और वस्तुतः यही ब्रह्म का स्वरूप है।

तैतिरीयोपनिषद् में वरुण और भृगु के उपाख्यान में वरुण ने क्रमप्रक्रिया से सूक्ष्म से सूक्ष्म की ओर बढ़ते हुये अन्त में वाक्, प्राण, मन, अन्न, विज्ञान आदि सभी का प्रत्याख्यान करके आनन्द को ही ब्रह्म का स्वरूप बतलाया है और भृगु ने भी निम्न क्रम से परमार्थ तत्त्व 'आनन्द' को ही ब्रह्म का स्वरूप समझा है—'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्, प्राणे ब्रह्मेति व्यजानात्, मनो ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्।' और इतनी अनुभूति करने पर भी जब वरुण ने भृगु को पुनः 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व' ऐसी आज्ञा दी, तब अन्त में जाकर पुनः उग्र तपस्या करने के पश्चात् 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।' खल्विमानी भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।' (तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली) और ऐसी अनुभूति की।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। जीवों में सत् एवं चित् तो है; किन्तु आनन्द तिरोहित दशा में है। ब्रह्म में सत्, चित् एवं आनन्द तीनों पूर्णतया जाग्रत दशा में हैं।

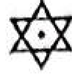
प्रश्न यह है कि जो आनन्द हमें सांसारिक विषय-भोगों से प्राप्त है, उसे क्लिष्ट आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा क्यों प्राप्त करूँ? यदि आनन्द ही ब्रह्म है तो ऐन्द्रिय-संस्पर्श से समुत्पन्न एवं विषयजन्य आनन्दों की प्रतिदिन अनुभूति करते हुए भी हम उसी आनन्द के लिये समाधि क्यों लगायें? ज्ञान एवं भक्ति की साधना क्यों करें? इसका समाधान यह है कि हम सांसारिक दशा में जिसे आनन्द मान बैठे हैं, वस्तुतः वह आनन्द तो ब्रह्मानन्द के समक्ष किसी कोटि में आता ही नहीं। बृहदारण्यकोपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के तृतीय ब्राह्मण के 32वें मन्त्र में आचार्य याज्ञवल्क्य राजा जनक से कहते हैं—'एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्याऽन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।' अर्थात् इस जीवात्मा की ब्रह्मप्राप्ति ही परम गति है। इस जीवात्मा की यही श्रेष्ठ सम्पत्ति है, इसका यही परम लोक है। इसका यही परम आनन्द है। हे राजन्! इसी ब्रह्मानन्द के एक लेशमात्र से सब प्राणी जीवित हैं और आनन्दित होते हैं—

'स यो मनुष्याणां राद्धः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मनुष्याणामानन्दाः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितृणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये शतं पितृणां जितलोकानामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतमाजानदेवानामानन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथैष एष परम आनन्द एष ब्रह्मलोकः।'

(वृहदारण्यकोपनिषद्-4.3.33)

अर्थात् जो पुरुष हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ है; धन, धान्य, पशु, पुत्र, पौत्रादि से पूर्ण है; पृथ्वी के सब मनुष्यों का अधिपति है, स्वतन्त्र राजा है, मनुष्यों के सर्व सुखोपभोग प्राप्त हों—उसका सौगुना जो 1. आनन्द है—वह पितरों के एक आनन्द के बराबर है। 2. पितरों का सौगुना आनन्द गन्धर्वलोक के एक आनन्द के बराबर है। 3. गन्धर्वलोक का सौगुना आनन्द कर्मदेवों के एक आनन्द के बराबर है। 4. कर्मदेवों का सौगुना आनन्द वेदपाठियों एवं निष्काम कर्मसाधकों के एक आनन्द के बराबर है। 5. इन्हीं के बराबर जन्मदेवों का भी आनन्द है। 6. जन्मदेवों का सौगुना आनन्द प्रजापति लोक के एक आनन्द के बराबर है। 7. वेदपाठियों एवं निष्काम कर्म करने वालों का भी आनन्द प्रजापति के आनन्द के बराबर है। 8. प्रजापति लोक का सौगुना आनन्द ब्रह्म-लोक के एक आनन्द के बराबर है।





सप्तविंश अध्याय

आत्मतत्त्व एवं शक्ति-साधना

समस्त विश्व का मूल तो आत्मा ही है—

> आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते।
> कस्य वा भवति पिपासा गङ्गास्रोतसि निमग्नस्य।।
>
> (महेश्वरानन्द : महार्थमञ्जरी)

निखिल साधनाओं की चरम निष्पत्ति स्वरूपावस्थान है। 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (योगसूत्र-1.3) कहकर महर्षि पतञ्जलि ने भी चिन्मात्रस्वरूप आत्मा में अवस्थान प्राप्त करने को योग का चरम लक्ष्य स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से ब्रह्मोपदेश के प्रसंग में 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च' कहकर आत्मदर्शन, आत्मश्रवण, आत्म-मनन और आत्म-निदिध्यासन को ही चरम साधना स्वीकार किया है।

बौद्ध और चार्वाक को छोड़कर संसार के सारे दार्शनिकों का चरम जिज्ञास्य आत्म-तत्त्व ही रहा है। ब्रह्म का स्वरूप आनन्द है। यह आनन्द ही आत्मा है—'आत्माऽ-नन्दमयः, आनन्द आत्मा, (तैत्तिरीयोपनिषद्)। योग भी आत्मा है—'योग आत्मा' (तैत्ति.)। आदेश भी आत्मा है—'आदेश आत्मा' (तैत्ति.)। आकाश भी आत्मा है—'आकाश आत्मा' (तैति.-2)।

इसी आत्मा से समस्त तत्त्वों की एवं जगत् की सृष्टि हुई है—'तस्माद्वा एतस्मा-दात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः' (तैत्तिरीयोपनिषद्)।

शरीर रथ है और उस पर आरूढ़ रथी आत्मा है। इस आत्मा का सारथी बुद्धि है, लगाम मन है, घोड़े इन्द्रियाँ हैं, मार्ग विषय हैं—

> आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
> बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
>
> इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।
> आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। (कठोपनिषद्)

सामान्य धरातल पर तो यही माना जाता है कि सृष्टि के मूल तत्त्व पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रायें एवं प्रकृति या माया है; किन्तु भारतीय ऋषियों ने यह पता लगा लिया कि सृष्टि के मूल तत्त्व न तो पञ्चतन्मात्रायें हैं और न ही पञ्चभूत; न तो प्रकृति है और न ही माया। फिर जगत् के केन्द्र में है कौन? यह वह सत्ता है, जो तिलों में तेल, दही में घी, सोतों में जल और अरणियों में अग्नि की भाँति संसार के सारे प्राणियों में स्थित है और यही आत्मा है—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिराप: स्रोत:स्वरणीषु चाग्नि:।
एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।[1]

शिवदृष्टिकार आचार्य सोमानन्दपाद ने भी यही अनुभव किया कि समस्त भावों—सत्ताओं एवं अस्तित्वों में केवल आत्मा ही अवस्थित है। सारी सत्तायें, सारे अस्तित्व केवल आत्मतत्त्व के ही रूपान्तर हैं—

आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत्तचिद्विभु:।

आत्मतत्त्व की इसी सर्वोच्च महत्ता के कारण काश्मीरीय त्रिक दर्शन के मूल ग्रन्थ शिवसूत्र में (वेदान्त की भाँति) ब्रह्म की जिज्ञासा नहीं की गई; प्रत्युत आत्मस्वरूप की मीमांसा करते हुए उसके प्रथम सूत्र के रूप में कहा गया—'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र : शाम्भवोपाय-1.1) और उसकी व्याख्या में आचार्य क्षेमराज ने कहा कि चैतन्य ही आत्मा है।

1. चैतन्य (आत्मा) विश्व का स्वभाव है—'चैतन्यं विश्वस्य स्वभाव:'।
(शि. सू. वि.)

2. चैतन्य (आत्मा) परमार्थत: शिव ही है और वही विश्वात्मा है—'चैतन्यपरमार्थत: शिव एव विश्वस्य आत्मा।'

3. चैतन्य ही आत्मा है—'चैतन्यमात्मा' (1.1)।

सृष्टि के इसी आद्य तत्त्व के विषय में ऋषियों ने जिज्ञासा व्यक्त किया था; क्योंकि सृष्टि के आदि में जब कुछ नहीं था तब भी अकेला यही अत्मतत्त्व था; क्योंकि वही विश्व का मूल तत्त्व है और उसी ने जगत् की सृष्टि की—'ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चनमिषत्। स ईक्षत लोकानुसृजा इति।'[2]

ऋषियों ने सृष्टि के इसी मूल तत्त्व के विषय में प्रश्न किया कि यह आत्मा कौन है, जिसकी हम उपासना करते हैं?—'कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे। कतर स आत्मा येन वा पश्यति, येन वा शृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति, येन वा वाचं व्याकरोति, येन स्वादु चास्वादु च विजानाति?'[3]

1. श्वेताश्वतरोपनिषद्
2. ऐतरेयोपनिषद्
3. ऐतरेयोपनिषद् (खण्ड 1.1)

भारतीय दर्शनों में आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में आदि काल से ही मत-विप्रतिषेध चलता रहा आया है। दर्शनिकों ने आत्मतत्त्व की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं और अपने-अपने मतानुसार उसके भिन्न-भिन्न स्वरूप भी प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत स्थल पर मैं संक्षेप में प्राय: सभी प्रधान दार्शनिक मतों का दिग्दर्शन करा रहा हूँ।

भगवान् शंकराचार्य ने वेदान्तभाष्य में आत्म-तत्त्व का निरूपण करते हुए सभी आत्मसम्बन्धी मत-मतान्तरों को पूर्वपक्ष में निरूपित किया है। उन्होंने आत्म-तत्त्व-सम्बन्धी नौ मतान्तर प्रस्तुत किये हैं। आचार्य सदानन्द ने 'वेदान्तसार' में आत्म-तत्त्वसम्बन्धी नौ सिद्धान्तों की पूर्वपक्ष में व्याख्या की है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने सिद्धान्तबिन्दु में आत्मासम्बन्धी मत-मतान्तरों को बारह श्रेणियों में विभक्त करके प्रस्तुत किया है। यहाँ मैं आत्म-सम्बन्धी सभी मत-मतान्तरों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

लोकायत या चार्वाक दर्शन में आत्मासम्बन्धी अनेकानेक मतान्तर प्रस्तुत किये गये हैं—

1. **चैतन्योत्पत्तिवाद**—लोकायतिकों की दृष्टि में आत्मतत्त्व की उत्पत्ति भी होती है और वह विनष्ट भी होता है। पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु चार ही तत्त्व हैं और उन्हीं से 'किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत्' चैतन्य या आत्मा उत्पन्न होता है।

पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि। तेभ्यश्चैतन्यम्। किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् चैतन्यम्। भूतान्येव चेतयन्ते (बृहस्पतिसूत्र)।

अथ चत्वारि भूतानि भूमिवाय्वनलानिला:।
चतुर्भ्य: खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते।
किण्वादिभ्यो समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत्।।

2. **भूतात्मवाद**—लोकायतिकों का सम्प्रदाय महाभूतचतुष्टय को ही आत्मा मानता है और यह प्रतिपादित करता है कि उन्हीं भूतों में 'किण्वादिभ्य: समेतेभ्यो मदशक्ति-वत्' चैतन्य उत्पन्न हो जाता है और उसी को आत्मा कहते हैं—'भूतान्येव चेतयन्ते' (बृहस्पति)।

3. **देहात्मवाद**—देहात्मवादियों की दृष्टि में 'चैतन्यविशिष्ट: काय: पुरुष:' (बृहस्पति-सूत्र) अर्थात् चैतन्य से युक्त शरीर ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य आत्मतत्त्व नहीं है। 'चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्' अर्थात् चैतन्ययुक्त शरीर ही आत्मा है; क्योंकि शरीर से अतिरिक्त आत्मा के अस्तित्व में कोई प्रमाण नहीं है (माधवाचार्य : सर्वदर्शनसंग्रह)।

देह: स्थौल्यादि योगाच्च स एवात्मा न चापर:।

ये देहात्मवादी 'स वा पुरुष: अन्नरसमय:' इस श्रुतिवाक्य को ही अपने मत का

प्रमाण मानते हैं और कहते हैं कि श्रुति भी इस महावाक्य के द्वारा हमारे ही सिद्धान्त को प्रतिपादित करती है।

4. इन्द्रियात्मवाद—इन्द्रियात्मवादियों की दृष्टि में इन्द्रियाँ मात्र ही आत्मा हैं—'इन्द्रियाण्येव चेतनान्यात्मेत्यपरे' (शांकर वे. भाष्य)।

(क) असंयुक्त इन्द्रियात्मवाद—कुछ लोकायतिक इन्द्रियात्मवादी चक्षुरादि भिन्न-भिन्न सभी इन्द्रियों को आत्मा मानते हैं और कुछ इन्द्रियात्मवादी इसे नहीं मानते—'चक्षुरादीनि प्रत्येकमित्यपरे' (सिद्धान्तबिन्दु : मधुसूदन सरस्वती)।

(ख) संयुक्त इन्द्रियात्मवाद—कुछ इन्द्रियात्मवादी भिन्न-भिन्न इन्द्रियों को पृथक् रूप से आत्मा न मानकर समवेत रूप में आत्मा मानते हैं—'मिलितानीत्यन्ये' (सिद्धान्त-बिन्दु : आचार्य मधुसूदन सरस्वती)।

5. प्राणात्मवाद—प्राणात्मवादियों की दृष्टि में प्राण ही आत्मा है और इन्द्रियाँ तो उसकी सहायकमात्र हैं—'प्राण इत्यन्ये' (सिद्धान्तबिन्दु)।

ये प्राणात्मवादी 'अन्योन्यतर आत्मा प्राणमय' इस श्रुति को अपने सिद्धान्त का परिपोषक भी मानते हैं अर्थात् उनकी दृष्टि में यह सिद्धान्त श्रुत्युक्त ही है कि इन्द्रियाँ एवं शरीर आत्मा नहीं हैं; अपितु इनसे भिन्न प्राण ही अन्तरात्मा है; क्योंकि प्राण के विना शरीर एवं इन्द्रियाँ कुछ भी चेष्टा नहीं कर सकते। अत: इनके अतिरिक्त कोई है, जो कि इनके द्वारा काम कराता है और वह है—प्राण। अत: प्राण ही आत्मा है (वेदान्त-सार : सदानन्द)।

6. मनसात्मवाद—मनसात्मवादियों की दृष्टि में मन ही आत्मा है। वे आत्मा को मनोमय मानते हैं—'मन इत्यन्ये' (शां. वेदान्त भाष्य), 'मन इत्येके' (सिद्धान्तबिन्दु)। ये लोग 'अन्योन्यतर आत्मा मनोमय:' (श्रुति के) इस वाक्य को अपने सिद्धान्त में प्रमाण मानते हैं। इनकी दृष्टि में प्राण, शरीर, इन्द्रियाँ आदि आत्मा नहीं हैं; अपितु मन ही आत्मा है।

7. बुद्ध्यात्मवाद—बुद्ध्यात्मवादियों की दृष्टि में बुद्धितत्त्व ही आत्मा है। बुद्ध्यात्म-वादी योगाचार मतावलम्बी बौद्ध विज्ञानवाद का प्रतिपादन करते हुए बुद्धि को ही आत्मा रूप में मानते हैं। विज्ञानमय कोश ही जीव है—'विज्ञानमयकोशोऽयं जीव इत्मा-गमा जगु:।' ये सम्प्रदायवादी 'अन्योन्यतर आत्मा विज्ञानमय:' इस श्रुतिवाक्य के आधार पर श्रुति को भी आत्मा के विज्ञानमय स्वरूप मानने में साधक मानते हैं।

'क्षणिकं विज्ञानमिति सौगता:' (सिद्धान्तबिन्दु)—क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है, यही सौगत-मत है।

8. शून्यात्मवाद—माहायानिक शून्याद्वैतवादी बौद्धों की दृष्टि में चतुष्कोटिविनिर्मुक्त शून्य तत्त्व ही आत्मा है। ये सम्प्रदायवादी बौद्ध 'असदेवेदमग्रमासीत्' इस श्रुतिवाक्य

का प्रमाण देकर कहते हैं कि यह नाम-रूपात्मक जगत् सृष्टि के पूर्व शून्य था तथा सुषुप्ति में भी शून्य रहता है और सुषुप्ति से उठने पर 'मैं सुषुप्ति में नहीं था' यह अनुभूति भी होती है; अत: सर्वाभावपूर्ण शून्यतत्त्व ही आत्मा है (वेदान्तसार : सदानन्द)।

9. **अपत्यात्मवाद**—अपत्यात्मवादी लोकायतिकों की दृष्टि में अपत्य ही आत्मा है। 'आत्मा वै जायते पुत्र:' इस श्रुतिवाक्य को अपने सिद्धान्त का आधार मानकर ये नास्तिक पुत्र को ही आत्मा मानते हैं।

10. **अज्ञानात्मवाद**—प्रभाकर मतानुयायी मीमांसक एवं तार्किक कहते हैं कि बुद्धि इत्यादि ज्ञान सुख-दु:ख इच्छा आदि का अज्ञान (ज्ञानभिन्न) आत्मा में लय हो जाता है तथा 'मैं अज्ञानी हूँ' इत्यादि का अनुभव भी होता है; अत: अज्ञान ही आत्मा है—'अहमज्ञोऽहमज्ञानीत्याद्यनुभवाच्चाज्ञानमात्मेति' (सदानन्द : वेदान्तसार)।

11. **अज्ञानोपहितात्मवाद**—कुमारिल भट्ट-मतानुयायी 'प्रज्ञानघन एवानन्दमय:' इस श्रुतिवाक्य का प्रमाण देकर अज्ञानोपहित चैतन्य को ही आत्मा मानते हैं; क्योंकि सुषुप्ति दशा में मन तथा इन्द्रियों का व्यापार नहीं होता। अत: उनके द्वारा उत्पन्न यह ज्ञान कि 'मैं बड़े सुख से सोया' ऐसा परामर्श सोकर उठने के बाद ही होता है। अत: अन्य किसी के अभाव में अज्ञान-संवलित चैतन्य ही आत्मा सिद्ध होता है।

12. **जड़ात्मवाद**—वैशेषिक, नैयायिक एवं प्रभाकर मतानुयायी आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता, विभु एवं जड़ मानते हैं। 'कर्त्ता भोक्ता जड़ो विभुरिति वैशेषिकतार्किकप्रभाकरा:' (सिद्धान्तबिन्दु)। 'जड़ो बोधात्मको इति भाट्टा:' (सिद्धान्तबिन्दु)।

13. **देहपरिमाणात्मवाद**—जैन धर्म मतावलम्बी जीव को शरीर के परिमाण के साथ घटता-बढ़ता हुआ बताते हैं। उनकी दृष्टि में जीव में आकुञ्चन एवं प्रसारण का कार्य होता रहता है। जीव एक सावयव पदार्थ है। जीव में प्रदेश होता है। जीव देह के परिमाण का होता है (स्याद्वादमञ्जरी) मल्लिसेन।

14. **भोक्तृत्वोपहितात्मवाद**—कुछ सम्प्रदायवादी आत्मा को कर्त्ता न मानकर, एकमात्र भोक्ता ही मानते हैं—'भोक्तैव केवलं बोधात्मक इति सांख्या: पातञ्जलयश्च' (सिद्धान्तबिन्दु : मधुसूदन सरस्वती)।

15. **ईश्वरात्मवाद**—ईश्वरात्मवादी देह, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकारादि से व्यतिरिक्त सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान ईश्वर को ही आत्मा मानते हैं—'अस्ति तद् व्यतिरिक्त ईश्वर: सर्वज्ञ: सर्वशक्तिरिति केचित्' (वे. शा. भा.)।

16. **चैतन्यात्मवाद**—प्रत्यभिज्ञादर्शन चिति तत्त्व को ही आत्मा मानता है—'चैतन्यमात्मा' (माहेश्वरसूत्र)।

17. **औपनिषदिक आत्मवाद**—औपनिषदिक मत यह है कि अविद्या में पड़े रहने से कर्त्तृत्व, भोक्तृत्वादि उपाधियों से युक्त अवभासित होने वाला; किन्तु परमार्थत:

निर्धर्मक परमानन्दरूप एवं ज्ञानस्वरूप प्रत्यक् चैतन्य ही आत्मा है। 'अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा' कहकर उपनिषद् ब्रह्म को ही आत्मा एवं आत्मा को ही ब्रह्म सिद्ध करता है और दोनों में तादात्म्य-स्थापन करता है।

'अविद्यया कर्तृत्वादिभाक् परमार्थतो निर्धर्मकः परमानन्दबोधरूप एत्यौपनिषदाः। औपनिषद पक्ष एव श्रेयान्' (सिद्धान्तबिन्दु) यह कहकर आचार्य मधुसूदन सरस्वती आत्मा के स्वरूपसम्बन्धी औपनिषदिक पक्ष को ही यथार्थ एवं श्रेयस्कर मानते हैं।

वस्तुतः औपनिषदिक सिद्धान्त ही आत्म तत्त्व की यथार्थ व्याख्या करते हैं। शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, निर्गुण, निर्लेप, निराकार, निरञ्जन, अखण्ड ज्योतिःस्वरूप प्रत्यक् चैतन्य ही आत्मा है। यही आत्मा शंकराचार्य जी के शब्दों में 'अस्ति आत्मा जीवाख्यः शरीरेन्द्रियपञ्जराध्यक्षः कर्मफलसम्बन्धी' (शांकरवेदान्त भाष्य) अर्थात् शरीर तथा इन्द्रियों का अध्यक्ष एवं कर्मफल का भोक्ता 'जीव' कहलाता है।

आत्म-तत्त्व एवं प्रपञ्च सृष्टि—पारमार्थिक दृष्टि से आत्मा अकर्त्ता, अभोक्ता, अविकारी, अपरिणामी, अज, अव्यय, अखण्ड, अव्यक्त, निरञ्जन, निराकार, निर्लेप, निर्मल, निर्विकार, निरवद्य, निर्गुण, निष्क्रिय, निश्चल, निष्कल, निर्विकल्प, निरामय, निराभास, शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, नित्य, अच्युत, कूटस्थ तत्त्व है। व्यावहारिक दृष्टि से वही अविक्रिय, अद्वैत, अनुपादेय, अनाधेय, अनिरूप्य, अप्रमेय, असङ्ग, अलिङ्ग, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अद्वय आत्मतत्त्व सगुण, साकार, सच्चिदानन्दस्वरूप, स्रष्टा, पालक, संहारक, सर्वाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्ववित्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परम तत्त्व भी है।

आत्मा ही प्रपञ्च-संसृति का आदि कारण भी है। भगवती श्रुति कहती है—'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।'

अर्थात् आत्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु उत्पन्न हुई। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न हुईं। औषधियों से अन्न उत्पन्न हुआ और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषत् में सनत्कुमार जी नारद को उपदिष्ट करते हुए आत्मा को स्रष्टा के रूप में निरूपित करते हैं—

'आत्मतः प्राण, आत्मत आशात्मतः स्मर, आत्मत आकाश, आत्मतस्तेज, आत्मत आप, आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतो अन्नं आत्मतो बलं आत्मतो विज्ञानं आत्मतो ध्यानं आत्मतश्चित्तं आत्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नाम, आत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माणि आत्मनि एवेदं सर्वमिति।'

अर्थात् आत्मा से ही प्राण, दिशायें, काम, आकाश, तेज, जल, आविर्भाव-

तिरोभाव, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाणी, नाम-मन्त्र, कर्म आदि सभी समुत्पन्न हुये और यह सब कुछ दृश्यादृश्य नानात्मक प्रपञ्च आत्मा में ही प्रतिष्ठित है।

इसी प्रकार अनेकानेक श्रुतियाँ आत्मा के तटस्थ लक्षण के रूप में उसे स्रष्टा भी निरूपित करती हैं।

आत्मतत्त्व एवं पालन तथा संहति—व्यावहारिक दृष्टि से वही अविकारी, अव्यक्त, अज आत्मतत्त्व साकार, सगुण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान के रूप में पालन एवं संहार भी करता है। वैसे पारमार्थिक दृष्टि से तो वह निष्क्रिय ही है। भगवती श्रुति कहती है—'आत्मत: आविर्भावतिरोभावौ' (छान्दोग्योपनिषद्) अर्थात् आत्मा से ही विश्व की सृष्टि एवं संहार भी सम्पन्न होता है।

बृहदारण्यक श्रुति आत्मा को ही सर्वनियामक, सर्वाधिष्ठान, एकायन पालक तत्त्व भी उद्घोषित करती है—

'य: सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरोऽयं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं य: सर्वाणि भूतान्यन्तरोऽयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत:।'

अर्थात् सभी के अन्दर वर्त्तमान होते हुये भी जिसको प्राणी नहीं जानते हैं और जिसके सब प्राणी शरीर हैं, जो भीतर रहकर सभी को स्फूर्ति प्रदान करता है, वही यह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मतत्त्व है।

बृहदारण्यकोपनिषत् में ही याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं—हे गार्गी! तुम्हारा यह प्रष्टव्य अक्षरतत्त्व ही आत्मा है। इसी के प्रशासन एवं नियन्त्रण में सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि सभी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। इसी अक्षर तत्त्व के नियन्त्रण में ही समस्त प्रपञ्च अनुशासित एवं पालित-पोषित हो रहा है।

इस प्रकार आत्मा व्यावहारिक दृष्टि से स्रष्टा-पालक एवं संहर्त्ता भी है।

आत्मतत्त्व एवं कैवल्य—आत्म-साक्षात्कार ही कैवल्य प्रदान करता है। इसीलिये याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' अर्थात् हे मैत्रेयी! यह आत्मा ही दर्शन करने योग्य, श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य एवं निदिध्यासन करने योग्य है। हे मैत्रेयी! इस आत्मा के दर्शन करने, श्रवण करने, मनन करने एवं ज्ञान करने से ही यह समस्त नानात्मक प्रपञ्च एवं परमतत्त्व ज्ञात हो जाता है।

आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है। महर्षि पतञ्जलि योगसूत्रों में कहते हैं—

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' (1.2), 'तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्' (1.3) अर्थात् चित्त-वृत्तियों का निरोध ही 'योग' है और इसी योगावस्था में ही द्रष्टा की अपने स्वरूप में

स्थिति होती है। यही स्वरूपावस्था ही कैवल्य है—'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिरक्तेरिति' (4.34) अर्थात् पुरुषार्थशून्य गुणों का प्रति-प्रसव या चिति शक्ति की स्वरूपप्रतिष्ठा ही कैवल्य है।

अपना स्वरूप क्या है? भगवान् शंकराचार्य उत्तर देते हैं—'एष आत्मा भवतां स्वरूपम्' (छा. भाष्य) अर्थात् यह सच्चिदानन्दघन आत्मतत्त्व ही आपका वास्तविक स्वरूप है।

आचार्य भगवत्पाद शंकर की दृष्टि में इस आत्मावबोध से ही मोक्ष सम्भव है, अन्य किसी भी योग-सांख्य-मीमांसादि प्रतिपादित साधनों से नहीं—

न योगेन सांख्येन कर्मणा न च विद्यया।
ब्रह्मात्मैक्यबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा।।

यह आत्मतत्त्व जिसे संवरण करता है, उसे ही आत्मसाक्षात्काररूप मोक्ष-प्राप्ति होती है। कठोपनिषत् में यमराज नचिकेता से कहते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

अर्थात् यह आत्मा प्रवचन करने से, कुशाग्र बुद्धि से एवं बहुश्रवण से प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत यह जिसका स्वतः संवरण करती है, उसे ही प्राप्त होती है और उसी के समक्ष अपने स्वरूप का उद्‌घाटन करती है।

अर्थात् आत्मसाक्षात्काररूप मोक्ष की प्राप्ति आत्मा की महती अनुकम्पा से ही प्राप्य है, न कि वैदुष्य या अन्य साधनों से।

मोक्ष है ही क्या? अनात्म में आत्मबुद्धि का निराकारण करके आत्मस्वरूप का साक्षात्कार ही मोक्ष है—

अनात्मनि च देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनाम्।
अविद्या तत्कृतो बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते।।

इसीलिये भगवान् शंकराचार्य ने वेदान्तभाष्य में कहा है कि—देह, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण एवं इन्द्रियों के धर्मों का आत्मा में अध्यारोप एवं इतरेतराध्यास ही अज्ञान है और अतस्मिंस्तद्बुद्धिः रूप अध्यास का निराकरण करके आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अवबोध हो जाना ही मोक्ष है।

योग एवं सांख्य की दृष्टि में भी स्वरूपावस्थान ही कैवल्य माना गया है। 'ज्ञ' नित्य, सर्वव्यापी, निष्क्रिय, त्रिगुणातीत, निर्गुण, असंग चित् तत्त्व है। यही अविद्या में संसक्त होकर 'पुरुष' कहलाता है और अपने आत्मस्वरूप को विस्मृत करके कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष आदि अनात्म भावों में आत्मभाव करके तथा शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण, इन्द्रिय आदि के धर्मों को अपने में अध्यारोपित करके

भ्रान्त हो जाता है। यह असंग, निष्क्रिय, शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव चित् तत्त्व प्रकृति के संयोग से ही बन्धनग्रस्त है, अत: संयोगाभाव होने पर जैसे ही यह आत्मतत्त्व का वास्तविक स्वरूप देख लेता है, वैसे ही उसे कैवल्याप्ति हो जाती है। महर्षि पतञ्जलि योगसूत्रों में लिखते हैं—'द्रष्टा दृशिमात्र: शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्य:' (2.20)। अर्थात् चेतनमात्र (ज्ञानस्वरूप आत्मा) द्रष्टा स्वभाव से सर्वथा निर्विकार होते हुये भी बुद्धिवृत्ति के अनुरूप ही देखता है। आचार्य वाचस्पति मिश्र भी सांख्यतत्त्वकौमुदी में लिखते हैं—'पुरुषस्तु सुखाननुषङ्गी चेतन:। सोऽयं बुद्धितत्त्ववर्तिना ज्ञानसुखादितत्प्रतिबिम्बितस्तच्छायापत्या ज्ञानसुखादिमानिवद्भवतीति चेतनोऽनुगृह्यते। चितिच्छायापत्याऽचेतनाऽपि बुद्धिस्तदध्यवसायोऽप्यश्चेतनवद्भवतीति। तथा च वक्ष्यति—

तस्मात्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीन:।।

इसी बुद्धिवृत्ति में संसक्त यह पुरुष अनात्म में आत्मतत्त्व एवं आत्मतत्त्व में अनात्मतत्त्व का इतरेतराध्यास करके बन्धनग्रस्त हो जाता है। बन्धन का कारण संयोग है और संयोग का कारण अविद्या है—'स्वस्वामिशक्त्यो: स्वरूपोपलब्धिहेतु: संयोग:' (योग सूत्र-2.23) और 'तस्य हेतु: अविद्या' (2.4)।

'अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या' अर्थात् अनित्य, अशुचि दु:खादि अनात्म तत्त्वों में नित्य शुचि एवं सुखादि की भावना ही अविद्या है। इस अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हो जाता है और इससे आत्मा की स्वरूपोपलब्धि हो जाती है। यही 'हान' एवं चेतन आत्मा का कैवल्य है—'तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशे: कैवल्यम्' (2.25) अर्थात् उस अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हो जाता है और वही 'हान' कहलाता है तथा वही चेतन आत्मा का कैवल्य है।

इस प्रकार अन्तिम निष्कर्ष यही निकला कि 'स्वस्वरूपोलब्धि: मोक्ष:' अर्थात् आत्मसाक्षात्कार (आत्मस्वरूपाप्ति) ही मोक्ष या कैवल्य है।

आत्मतत्त्व एवं उसका स्वरूप—बौद्ध तो रूपस्कन्ध, संस्कारस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्धरूप पञ्चस्कन्धों के समुदाय को ही आत्मा मानते हैं और इनके गुणों को ही आत्मा के गुण मानते हैं। पञ्चस्कन्धरूप आत्मा के विनाश को ही मोक्ष मानते हैं—'आत्मोच्छेदो मोक्ष:' अर्थात् आत्मविनाश ही मोक्ष या निर्वाण है। वे आत्मा को प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील, परिणामी, विकारतत्त्व मानते हैं।

जैनियों की दृष्टि में आत्मा एक प्रदेशवान या सावयव पदार्थ है। यह पदार्थ देह के परिमाण का है। चैतन्य ही उसका प्रधान गुण है, जो कि ज्ञान एवं दर्शन में प्रस्फुटित होता है। मुक्तावस्था में भी आत्मा में अनन्त बुद्धि एवं अनन्त दर्शन वर्त्तमान रहते हैं। ज्ञान जीव का धर्म या गुण नहीं; प्रत्युत उसका स्वरूप ही है। कर्मपुद्गलों के संयोग से ज्ञान की अभिव्यक्ति में अन्तराय पड़ जाता है। 'कार्माणवर्गणा' के विनष्ट हो जाने

पर यह अनन्त ज्ञान एवं अनन्त दर्शनशक्ति पुनः अभिव्यक्त हो जाती है।

नैयायिकों एवं वैशेषिकमतानुयायियों के मत में आत्मा विविधात्मक, विभु, चेतन, नित्य तत्त्व है। उनकी दृष्टि में आत्मा में ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग एवं विभाग जीवात्मा के गुण या धर्म हैं। ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक धर्म न होकर, आगन्तुक धर्म है। यह आत्मा में नित्य प्रति नहीं रहता। आत्मा ज्ञानाधिकरण होने पर भी ज्ञानस्वरूप नहीं है; अपितु एक ज्ञानरहित जड़ पदार्थ है। मन के संयोग से ही आत्मा में यह औपाधिक आगन्तुक धर्म—ज्ञान एवं चैतन्य समुत्पन्न हो जाता है। अतः आत्मा ज्ञानस्वरूप एवं चेतन भी नहीं है। मोक्षावस्था में ज्ञान एवं चैतन्य आत्मा में नहीं रहते। नैयायिकों एवं वैशेषिक मतानुयायियों की इसी आत्मस्वरूप की कल्पना एवं उनके मोक्ष-विचार का उपहास करते हुए कहा था—

वरं वृन्दावनेऽरण्ये शृगालत्वं भजाम्यहम्।
न पुनर्वैशेषिकीं मुक्तिं प्रार्थयामि कदाचन।।

अर्थात् वृन्दावन के जंगल में शृगाल हो जाऊँ—यह भी श्रेष्ठ है; किन्तु मैं वैशेषिक-प्रतिपादित मुक्ति की कभी भी कामना नहीं करता।

मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।

कह कर अद्वैत वेदान्ती श्रीहर्ष ने भी न्याय-वैशेषिक के मोक्षदशा एवं उनके आत्म-स्वरूप-विवेचन का उपहास किया है।

मीमांसकों की दृष्टि में स्वप्नावस्था में विषयभाव रहने पर कोई ज्ञान नहीं होता। अतः आत्मा जड़ एवं बोधस्वरूप भी है। आत्मा नित्य तत्त्व है और यही कर्त्ता, भोक्ता भी है। यह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है और देश-कालादि परिच्छेदों से स्वतन्त्र है। यह संख्या में अनन्त है।

मीमांसक प्रभाकर के मत में आत्मा भोक्ता है। भाट्ट मीमांसकों की दृष्टि में 'प्रपञ्च सम्बन्ध विलय' ही मोक्ष है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा में ज्ञानाभाव रहता है। उसमें केवल ज्ञान शक्ति मात्र वर्त्तमान रहती है।

कुमारिल भट्ट के मतानुसार आत्माभिव्यक्ति प्रत्येक ज्ञान-व्यापार में नहीं होती। प्रभाकर के मत में प्रत्येक ज्ञान-व्यापार में आत्माभिव्यक्ति होती है। प्रभाकर आत्मा एवं संवित् तत्त्व को भिन्न-भिन्न मानते हैं। भाट्ट मीमांसक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। इनके मत में ज्ञान आत्मा का ही परिणाम या विकार है। कुमारिल भट्ट आत्मा में अचित् तत्त्व का अंश भी मानते हैं। यही अचित् तत्त्व प्रत्यक्ष का विषय बनता है।

मीमांसक प्रभाकर आत्मा एवं संवित् को पृथक् तत्त्व मानते हैं। वे आत्मा को जड़ एवं संवित् तत्त्व को प्रकाशस्वरूप मानते हैं। आत्मा शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय

आदि से भिन्न एक नित्य तत्त्व है। ज्ञान आत्म द्रव्य में वर्त्तमान रहने वाली एक क्रिया है। इनके मत में आत्मा में क्रिया होती है, तथापि आत्मा अविनाशी नित्य तत्त्व है।

शास्त्रदीपिकाकार के मत में आत्मा विभु है। आत्मायें अनन्त हैं। जितने जीव हैं, उतनी ही आत्मायें हैं। सभी पृथक्-पृथक् आत्मायें हैं। प्रभाकर के मत में आत्मा जड़ है; अत: ज्ञान, सुख, दु:ख, द्वेष, धर्माधर्मादि गुण आत्मा में उत्पन्न होते हैं। यह आत्मतत्त्व बाह्य प्रत्यक्ष एवं मानस प्रत्यक्ष—दोनों प्रत्यक्षीकरण से असम्भव हैं। आत्मा स्वयंप्रकाश नहीं है। संवित् स्वयंप्रकाश है। अन्यथा सुषुप्तिकाल में आत्मानुभूति की स्थिति वर्त्तमान रहती; किन्तु वस्तुत: रहती नहीं। स्वप्रकाश संवित् विषय एवं आत्मा दोनों को प्रकाशित करती है। आत्मतत्त्व गृहीता के रूप में प्रकट होता है, ग्राह्य विषय के रूप में नहीं। आत्मा अचेतन होने पर भी कर्त्ता एवं भोक्ता है। जीव, शरीर, इन्द्रिय, भोग्य एवं ज्ञाता—इन पाँचों की समुपस्थिति में ही आत्मा को ज्ञान होता है; अत: ज्ञान आत्मा का आगन्तुक धर्म है।

इनके कथनानुसार मोक्षावस्था में आत्मा में सुख, आनन्द, चैतन्य एवं ज्ञान—सभी का लोप हो जाता है। शास्त्रदीपिकाकार कहते हैं कि 'निस्सबन्धो निरानन्दश्च मोक्ष:' अर्थात् मुक्तावस्था में शरीर, इन्द्रिय एवं मन का संयोगाभाव रहता है; अत: मुक्त जीव को आत्मज्ञानाप्ति सम्भव ही नहीं है। मुक्ति का साक्षात् कारण ज्ञान है भी नहीं।

पार्थसारथि के मतानुसार आत्मा को ग्राह्य एवं गृहीता, ज्ञेय एवं ज्ञाता रूप में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। उनकी दृष्टि में संवित् तत्त्व आत्मा को प्रकाशित करता है। आत्मा संवित् का प्रमेय या विषय हो जाता है। किसी भी वस्तु का निर्विषय होना सम्भव नहीं है; अत: आत्मानुभूति का विषय आत्मा स्वत: होता है और आत्मा का मानस प्रत्यक्ष भी सम्भव है।

प्रत्यभिज्ञानदर्शन 'चैतन्यमात्मा' (शिवसूत्र) कहकर चैतन्य को ही आत्मा का स्वरूप बताता है और चित् शक्ति, आनन्दशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति आदि शक्तियों को उसकी विशेष शक्तियाँ स्वीकार करता है।

केवलाद्वैत दर्शन आत्मा को चेतन एवं ज्ञानस्वरूप मानता है। इस दर्शन की दृष्टि में आत्मा निष्क्रिय, निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार, निराकार, निरवद्य, निरामय, निर्गुण, निष्कल, नित्यमुक्त, निश्चल, निर्लिप्त, अविक्रिय, असंग, अखण्ड, सच्चिदानन्द तत्त्व है। आत्मा एक ही है और वही उपाधिभेद से नानात्मक दिखाई पड़ रही है। जीवात्मा परमात्मा ही है। अविद्या के कारण ही द्वैतबुद्धि है। वस्तुत: जीवात्मा एवं परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिये भगवान् शंकराचार्य अपरोक्षानुभूति में कहते हैं—

यद्वन्मृदि घटभ्रान्ति: शुक्तौ वा रजतस्थितिम्।
तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं भ्रान्त्या पश्यति न स्वत:।।

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य भ्रमवश मिट्टी में घट एवं सीपी में चाँदी देखता है, वैसे ही भ्रम से ही ब्रह्म में जीवभाव देखता है; वस्तुतः जीवत्व तो भ्रान्तिमात्र है।

यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे।।

अर्थात् जिस प्रकार मिट्टी में घट एवं सुवर्ण में कुण्डल एवं सीपी में चाँदी नाममात्र को है, उसी प्रकार परब्रह्म में 'जीव' शब्द भी नाममात्र ही है।

इस प्रकार केवलाद्वैत दर्शन की दृष्टि में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' अर्थात् ब्रह्ममात्र ही सत्य तत्त्व है, जगत् मिथ्या प्रतीति-मात्र है एवं जीव ब्रह्ममात्र है, उससे व्यतिरिक्त उसकी सत्ता ही नहीं है।

आत्मा नित्य, अमृत, विभु, स्वयंप्रकाश, चेतन, ज्ञानस्वरूप, शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव परमात्म तत्त्व ही है। घट-पट-मठादि उपाधियों के भग्न हो जाने पर जिस प्रकार घटाकाश, पटाकाश, मेघाकाश, करकाकाश, मठाकाश आदि महाकाश में विलीन हो जाते हैं और उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, उसी प्रकार जीवत्वरूप उपाधि के भग्न हो जाने पर आत्मा भी परमात्मा में एकाकार हो जाती है। जीव परमात्मा का विवर्त है, यह परिणाम नहीं है।

विशिष्टाद्वैतवाद दर्शन के अनुसार आत्मा परमात्मा का विवर्त न होकर, परिणाम है; इसे ही परिणामवाद कहते हैं। इस दर्शन की दृष्टि में ईश्वर, अचित् एवं चित्— तीन तत्त्व हैं और यद्यपि चित् एवं अचित् ईश्वर के ही अधीनस्थ हैं तथापि उससे भिन्न भी हैं। चित् एवं अचित् तत्त्व परमात्मा के परिणाम हैं। ये जल के तरंगरूप विवर्त न होकर, दुग्ध के दधिरूप परिणाम हैं।

आत्मा अणु एवं चेतन है। यह 'विशेष्य' परमात्मा का विशेषण, 'प्रकारी' परमात्मा का प्रकार, 'अंशी' परमात्मा का अंश एवं 'स्वामी' परमात्मा का सेवक है। जीव अणु परिणामी है।

यह आत्मतत्त्व अंगुष्ठमात्र परिमाण का है या बालाग्र के शतभाग करने पर अवशिष्ट सौवें टुकड़े का फिर शतभाग करने पर जो सूक्ष्माणु बचता है, वही जीवात्मा का परिणाम है—

अंगुष्ठमात्रः पुरुषः मध्य आत्मनि तिष्ठति। (कठ)

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

धर्मभूत ज्ञान से नित्य सम्बद्ध होने के कारण जीवात्मा एक साथ ही विविध पदार्थों में निवास कर सकती है। ज्ञान द्रव्य है और वह जीव एवं ईश्वर का धर्मभूत (गुण)

भी है। इस धर्मभूत ज्ञान में ही सुख-दु:ख, इच्छा-द्वेष, प्रयत्नादि सभी गुण विद्यमान हैं। श्रद्धा-अश्रद्धा, काम, इच्छा, विचिकित्सा संकल्पादि सभी चित्तवृत्तियाँ ज्ञानस्वरूप हैं। यही धर्मभूत ज्ञान मन से संयुक्त होकर इन्द्रियों के साथ क्रियमाण होता है और प्रत्यक्ष, अनुमान, संशय, भ्रम, राग, द्वेष, मोह, मात्सर्यादि में परिणत हो जाता है। यह व्यापक है; अत: मुक्त जीवात्मा के अणु होने पर भी उसमें अनन्त ज्ञान सम्भव है।

मोक्षावस्था में आत्मा में शरीरज्ञान एवं आनन्द का भाव बना रहता है; किन्तु मुक्ति का शरीर नित्यविभूति का कार्य होता है। मुक्त जीव भगवान् के ही समान होते हैं। 'केवली' मुक्त अपने स्वरूप पर मनन-निदिध्यासन करके प्रकृति से रहित होकर ऐकान्तिक मुक्तावस्था में अलग पड़े रहते हैं। मुक्त जीव वैकुण्ठ में शरीर धारण करके सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्ति का अनुभव करते हैं एवं एकाकार होकर सायुज्य की प्राप्ति कर लेते हैं।

ईश्वर, जीव आत्मा एवं जगत्—तीनों की पारमार्थिक सत्ता है; केवल व्यावहारिक सत्तामात्र नहीं है।

द्वैताद्वैतवादी निम्बार्काचार्य के मतानुसार आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान आत्मा का गुण भी है। गुण एवं गुणी में तादात्म्य सम्भव नहीं है, तथापि उनका पार्थक्य देखा भी नहीं जा सकता। जीव आकार में अणुपरिणामी है—'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:'। प्रत्येक प्राणी में जीवात्मायें भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा ज्ञानाश्रय एवं ज्ञानस्वरूप भी है। इसीलिये इन्द्रियों से रहित होने पर भी जीवात्मा में ज्ञान सम्भव है। यही जीवात्मा द्रष्टा, भोक्ता, कर्त्ता है। इसका ज्ञान गुण व्यापक है। इसमें प्रत्येक दशा में आनन्द वर्त्तमान रहता है। ईश्वर, जीव एवं प्रकृति में अत्यन्त भेद या अत्यन्त अभेद नहीं है।

द्वैतवादी आचार्य पूर्णप्रज्ञ की दृष्टि में जीव, ब्रह्म एवं जगत् तीनों भिन्न-भिन्न सत्तायें हैं। प्रत्येक भौतिक पदार्थ आत्मा या जीव है। 'परमाणुप्रदेशेष्वनन्ता प्राणिराशय:' कहकर आचार्य घोषणा करते हैं कि एक परमाणु के समान स्थान में अनन्त जीव निवास करते हैं। जीवात्मा में स्वभावतया आनन्द वर्त्तमान है, जो कि मोक्षावस्था में भी रहता है। जीव चेतन नित्य तत्त्व है। जड़ तत्त्व का संयोग ही जीव के दु:ख का कारण है।

शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य अणुभाष्य में लिखते हैं कि भगवान् सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं, किन्तु जीव का आनन्द बद्ध दशा में है। अविद्या के कारण ही जीव बन्धनग्रस्त है। अविद्या का आश्रय जीव है। जीव अणु है। भक्ति ही उसके मोक्ष का साधन है। एक ब्रह्म ही तत्त्वपदार्थ है और वह निर्गुण न होकर सगुण है। वस्तुत: जीव एवं ब्रह्म एक ही हैं। अग्नि से निकलने वाले स्फुलिंग की ही भाँति ब्रह्म से चित् अचित् उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार द्वैत है ही नहीं, अद्वैत ही परमार्थ है। जीव की मुक्ति का अर्थ भगवान् के साथ रहकर उसकी लीलाओं का आनन्द लेना है। ज्ञानी जीवात्मा का भगवान् में लय हो जाता है। शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड में लिखा है—'ये तु ज्ञानैकसन्निष्ठास्तेषां लय

एव हि। भक्तानामेव भवति लीलास्वाद: अतिदुर्लभ:' अर्थात् जो केवल ज्ञानी हैं, उनका भगवान् में लय हो जाता है। किन्तु अपने व्यक्तित्व की रक्षा करके भगवान् की लीलाओं का अतिदुर्लभ आस्वाद तो मात्र भक्तों के लिये ही है।

अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में अविद्या की उपाधि से उपहित ब्रह्म का विशुद्ध चैतन्य ही जीव बन जाता है। प्रत्येक जीव के साथ एक अन्त:करण की उपाधि रहती है, अत: जीव परिच्छिन्न एवं अल्पज्ञ बन जाता है। जीव अविद्योपहित होता है और ईश्वर मायोपहित होता है। कुछ वेदान्तियों के मत में अन्त:करण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है और माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही ईश्वर है। स्वामी विद्यारण्य के मत में मन में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है और समस्त प्राणियों के वासना-संस्कारों से युक्त माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ईश्वर है। पञ्चपादिकाविवरणकार के मत में—'प्रतिबिम्बो जीव: विम्बस्थानीयो ईश्वर:' अर्थात् बिम्बस्थानीय ईश्वर का प्रतिबिम्ब ही जीव है। मुख्य जीव हिरण्यगर्भ है, और सभी जीव तो उसकी छायामात्र हैं। कुछ लोगों के मत में जीव एक है, शरीर अनेक हैं। सभी शरीरों में अवास्तविक जीव हैं। कुछ लोगों के मतानुसार एक ही जीव अनेक शरीरों में विद्यमान है। कुछ लोगों के मतानुसार एक ही जीव है और एक ही शरीर है, शेष जीव एवं शरीर उक्त एक जीव की ही कल्पना-मात्र हैं। अप्पय दीक्षित ने इन भ्रान्त मत-मतान्तरों को निरस्त किया है।

विद्यारण्य के मत में ब्रह्म, साक्षी, ईश्वर एवं जीव व्यावहारिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं। उपाधिशून्य चेतन तत्त्व ब्रह्म है। यही अन्त:करण की उपाधि से साक्षी बन जाता है। जीव बुद्धिवृत्तियों से अधिक सम्बद्ध है। साक्षी ईश्वर से भी भिन्न है; क्योंकि ईश्वर सक्रिय है, जबकि साक्षी निष्क्रिय है।

कौमुदीकार के मत में एक विशेष रूप ही साक्षी है। वेदान्तपरिभाषा की दृष्टि में जीव ही एक दृष्टि से 'साक्षी' है और दूसरी दृष्टि से जीव। अन्त:करण से उपहित चैतन्य साक्षी है। प्रत्येक प्राणी में साक्षी भिन्न-भिन्न हैं। सिद्धान्तलेशकार के मत में अन्त:करणविशिष्ट प्रमाता साक्षी है।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो के कथनानुसार विवेक, इच्छा एवं तेज (Spirit)— ये ही तीन आत्मा के तत्त्व हैं। श्रेष्ठ जीवन संगीतमय जीवन है, जिसमें आत्मा के सभी तत्त्वों का पूर्ण समन्वय रहता है। **अरस्तू** के कथनानुसार वास्तविक आत्मा बुद्धि-प्रधान है। उसका प्रधान कर्म विचार या चिन्तन है। चिन्तन की सक्रियता बुद्धिप्रधान आत्मा के वास्तविक अभिव्यक्तीकरण का साधन है। **ग्रीन** के मत में प्रकृति का अन्त:स्थ तत्त्व एक आध्यात्मिक तत्त्व है। वह अनन्त चैतन्य नित्यतत्त्व है। जीव उसी अनन्त आत्मा का परिच्छिन्न रूप है। **ब्रैडले** के कथनानुसार 'आत्मा' अनन्त आत्मा परमात्मा ही है। **बोसाँकेट** के कथनानुसार आत्मप्राप्ति का अर्थ सत्य, सौन्दर्य एवं शुभादि जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्राप्ति है। उसके अनुसार हमें सर्वोच्च मूल्य की आत्मा को ही

प्राप्त करना चाहिये। **बटलर** की दृष्टि में नैतिक विवेक या बुद्धि ही आत्मा का सर्वोच्च तत्त्व है।

आत्मा का तटस्थ एवं स्वरूप-लक्षण—माण्डूक्योपनिषद् श्रुति कहती है— 'आत्मैवेदं सर्वम्' अर्थात् यह सब कुछ आत्मा ही है। बृहदारण्यक श्रुति कहती है 'इदं सर्वं यदयमात्मा' अर्थात् यह सब कुछ जो भी है, सभी आत्मा ही है। 'अयमात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ही ब्रह्म है और यह ब्रह्मरूप आत्मा त्रिविध है—

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतद्' अर्थात् भोक्ता, भोग्य एवं प्रेरकरूप तीन भेदों को जानकर ब्रह्म को त्रिविध बतलाया गया है। तटस्थ रूप में आत्मा द्रष्टा, स्त्रष्टा आदि सभी है—

'एष हि आत्मा द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः' (श्रुति) अर्थात् यह आत्मा द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता एवं विज्ञानात्मा भी है। प्रश्नोपनिषद् में इसे पृथ्वी-पृथ्वीमात्रा, तेजतेजोमात्रा, वायु-वायुमात्रा, चक्षु एवं द्रष्टव्य, श्रोत्र एवं श्रोतव्य, घ्राण एवं घ्रातव्य, रस एवं रसयितव्य, त्वक् एवं स्पर्शयितव्य, वाक् एवं वक्तव्य, हस्त एवं आदातव्य, मन एवं मन्तव्य, बुद्धि एवं बौद्धव्य, चित्त एवं चेतयितव्य, तेज एवं विद्योतयितव्य, प्राण एवं विधारयितव्य आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में वही आत्मा सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध आदि कहा गया है—'सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः' छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार यही आत्मा— 'अदृष्टं द्रष्ट्रा श्रुतं श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञाताविज्ञातृ' अर्थात् वह आत्मा अदृष्ट होकर भी द्रष्टा, अश्रुत होकर भी श्रोता, अमन्तव्य होकर भी मन्ता, अविज्ञात होकर भी विज्ञाता आदि भी है।

शतपथब्राह्मण में कहा गया है कि 'शृण्वन् श्रोत्रं भवत, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयश्चित्तं भवति, अहंकुर्वाणो अहंकारो भवति' अर्थात् यह आत्मा श्रवण करती हुई श्रोत्र हो जाती है, स्पर्श करती हुई त्वक् हो जाती है, दर्शन करती हुई चक्षु हो जाती है, रस ग्रहण करती हुई रसना हो जाती है, घ्राण लेती हुई घ्राणेन्द्रिय हो जाती है, मनन करती हुई मनेन्द्रिय हो जाती है, ज्ञान करती हुई बुद्धि हो जाती है, चिन्तन करती हुई चित्त हो जाती है तथा अहंकार करती हुई अहंकारस्वरूप हो जाती है।

यही आत्मा ऊपर-नीचे सर्व दिशाओं में सर्वरूप है। भगवती श्रुति कहती है— 'आत्मैव अधस्तादात्मा उपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणात् आत्मा उत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति' (छान्दोग्योपनिषद्)।

छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है। आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है। आत्मा ही दक्षिण एवं आत्मा

ही उत्तर में है। यह सब कुछ आत्मा ही है।

प्रजापति बृहदारण्यकोपनिषद् में कहते हैं—'य आत्मोपहतपाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोको-विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः विजिज्ञासितव्यः' अर्थात् यह आत्मा अपहतपाप्मा, जराहीन, मृत्युहीन, शोकहीन, विजिघित्स, अपिपास, सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प है। यही अन्वेषणीय है और यही विजिज्ञासितव्य है।

इन श्रुतियों द्वारा आत्मा स्रष्टा, पालक, संहर्ता, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, घ्राता, सर्वकाम, सर्वसंकल्प आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है। किन्तु यह आत्मा का तटस्थ लक्षण है।

इसी रूप में कठोपनिषद् में—'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च' आदि श्रुतियाँ कहकर आत्मा का रूपक बताया गया है, जिसमें आत्मा रथी है, शरीर रथ है। बुद्धि सारथी है। मन प्रग्रह है। इन्द्रियाँ अश्व हैं। विषय मार्ग हैं और आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त चेतन तत्त्व भोक्ता है।

उपर्युक्त धर्म एवं लक्षणों में अनेकानेक धर्म मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि के धर्म हैं; किन्तु आत्मा का सब पर शासन है और सभी आत्मा में ही अधिष्ठित हैं; अतः सभी धर्म भी आत्मा के कहला सकते हैं; किन्तु परमार्थतः आत्मा निष्क्रिय, अश्रोता, अघ्राता, अरसयिता, अस्प्रष्टा, अज, अव्यय, अविक्रिय, निर्गुण, निराकार, अखण्ड, अनिरूप्य चेतन तत्त्व है। इसलिये प्रश्नोपनिषद् में आत्मा का स्वरूप-लक्षण इस प्रकार दिया गया है—'एष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते।'

आचार्य गार्ग्य पिप्पलाद से कहते हैं—यह आत्मा न तो सुनती है, न देखती है, न सूँघती है, न रस लेती है, न स्पर्श करती है, न अभिवादन करती है, न लेती है, न आनन्दित होती है, न विसर्ग करती है आदि-आदि। 'न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' कहकर श्रुति आत्मा को अजर, अमर, अज, नित्य, शाश्वत, पुराण बतलाती है। मुण्डकोपनिषद् कहता है—'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा' अर्थात् वह आत्मा चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य नहीं है, वाणी से प्राप्तव्य नहीं है एवं अन्य देवों की तपस्या अथवा कर्मानुष्ठान द्वारा भी लभ्य नहीं है।

भगवती श्रुति कहती है कि 'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो' अर्थात् वहाँ तक न चक्षु जा पाता है, न वाणी जा पाती है और न ही मन जा पाता है और जिसे मन जान भी नहीं पाता, वह आत्म तत्त्व है। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (श्रुति) अर्थात् जहाँ से वाणी (आत्मतत्त्व को) प्राप्त किये विना ही मन के साथ निष्फल होकर लौट आती है, वही आत्मतत्त्व है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में उसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—'तदक्षरं गार्गि ....बाह्य' अर्थात् वह अक्षरतत्त्व अस्थूल, अह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित, अस्नेह, अच्छाय, अतम, अवायु, अनाकाश, असंग, अरस, अगन्ध, अशुष्क, अश्रोत्र, अवाक्, अमन, अतेजस्क, अप्राण, अमुख, अमात्रा, अनन्तर, अबाह्य एवं अभोज्य है।

आत्मतत्त्व के विविध रूप—एक ही आत्मा अनेकानेक उपाधियों के संसर्ग से विविध रूप में दिखाई पड़ती है। यद्यपि परमार्थत: आत्मा एक ही है, न तो उसके भेद या प्रकार हैं और न ही उसमें वैविध्य है, तथापि व्यावहारिक दृष्टि से तो वैविध्य है ही। भगवती श्रुति कहती है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।।

अर्थात् जैसे एक ही अग्नि संसार में प्रविष्ट होकर अनेकानेक रूप धारण कर लेती है, ठीक उसी प्रकार समस्त प्राणियों में वर्त्तमान एक ही अन्तरात्मा अनेकानेक रूप धारण कर लेती है। जैसे एक ही वायु संसार में प्रविष्ट होकर अनेकानेक रूप धारण कर लेती है और उपाधियों के भंग होने पर पुन: एक ही हो जाती है, ठीक उसी प्रकार समस्त प्राणियों में वर्त्तमान एक ही अन्तरात्मा उपाधियों के भेद से अनेकानेक रूप धारण कर लेती है (और उपाधियों के भंग होने पर केवल एक ही महाकाशरूप आत्मा अवशिष्ट रह जाती है)।

भगवान् शंकराचार्य की दृष्टि में 'एतद्' ही सत्य है, 'तद्' तो मिथ्या भ्रान्तिमात्र है और इसी एतद् में तद् की भ्रान्ति हो रही है; परमार्थत: तो तद् है ही नहीं—

अतस्मिंस्तद्बुद्ध प्रभवति विमूढस्य तमसा,
विवेकाभावाद्वै स्फुरति भुजगे रज्जुधिषणा।। (विवेकचूड़ामणि)

अर्थात् प्राणियों के अज्ञानान्धकार के कारण ही अतस्मिन् में तद्बुद्धि हो रही है। यह भ्रान्ति उसी प्रकार से है, जिस प्रकार कि विवेकाभाव से सर्प में रज्जु का भान होने लगता है।

आत्मा है क्या? भगवान् शंकराचार्य तत्त्वबोध में कहते हैं—'स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद् व्यतिरिक्त: पञ्चकोशातीत: सन् अवस्थात्रयसाक्षीसच्चिदानन्दस्वरूप: सन् यस्तिष्ठति स आत्मा' अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीर से भिन्न पञ्चकोशों से भिन्न एवं जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिरूप अवस्थात्रय का साक्षी जो सच्चित् आनन्दस्वरूप होता हुआ स्थित है, वही आत्मा है।

शंकराचार्य जीवात्मा और परमात्मा में कोई पारमार्थिक भेद मानते ही नहीं। इसीलिये

जीवन्मुक्त एवं ईश्वर में भी कोई भेद ही नहीं देखते—'असङ्गः सच्चिदानन्दस्वरूपः स्वप्रकाशः सर्वान्तर्यामी चिदाकाशरूपोऽस्मि इतिदृढ़निश्चयः रूपापरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः।'

शंकराचार्य जी की दृष्टि में जब तक जीवात्मा एवं ईश्वर की भेदबुद्धि बनी हुई है तब तक मुक्ति सम्भव ही नहीं है और संसरणचक्र का अनवरत गत्यवरोध भी सम्भव नहीं है। तत्त्वबोध में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं—

'उपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्यन्तं तिष्ठति तावत्पर्यन्तं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते। तस्मात् कारणात् न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः कार्या।'

अर्थात् जबतक मिथ्या उपाधि-भेद से जीव एवं ईश्वर में भेदबुद्धि बनी हुई है तब तक जन्म-मरणादिरूप संसार निवर्तित नहीं होता है। इस कारण जीव एवं ईश्वर में भेदबुद्धि नहीं की जानी चाहिये।

भगवान् रामानुजाचार्य जी की दृष्टि में जीवात्मा परमात्मा का विवर्त न होकर परिणाम है। जिस प्रकार दूध का परिणाम दहि दूध से भिन्न है और सदैव भिन्न रहता है, उसी प्रकार जीव परमात्मा का परिणाम होने से परमात्मा से सदैव भिन्न रहा है और सदैव भिन्न रहेगा। सायुज्य मुक्ति में जीवात्मा का परमात्मा में लय हो जाता है, किन्तु वह परमात्मा नहीं हो जाता। 'सर्वदर्शनसंग्रह' में माधवाचार्य जी ने रामानुजीय दर्शन की व्याख्या करते हुए अपने शब्दों में यही बात कही है—'ईश्वरश्चिदचिच्चेति पदार्थत्रितयं हरिः' अर्थात् रामानुजीय दर्शन में चित् अचित् एवं ईश्वर (एक-दूसरे से भिन्न किन्तु) अपृथक् सम्बद्ध स्वतन्त्र सत्तावान् तीन तत्त्व हैं।

'जीवात्मा हि ब्रह्मणः शरीरतया प्रकारत्वात् ब्रह्मात्मकः' (सर्वदर्शनसंग्रह) अर्थात् रामानुजीय दर्शन में जीवात्मा ब्रह्म का शरीर एवं प्रकार होने से ब्रह्मात्मक है, भाव यह है कि यद्यपि जीवात्मा ब्रह्मात्मक होने से ब्रह्म से भिन्न हो ही नहीं सकता; किन्तु जिस प्रकार शरीर शरीरी से तथा प्रकार प्रकारी से भिन्न होता है और उनमें तादात्म्य नहीं होता, उसी प्रकार जीवात्मा भी ब्रह्म से भिन्न है और वह ब्रह्म नहीं बन सकती।

योगवाशिष्ठ में जीव एवं ब्रह्म में भेद का प्रतिषेध प्रतिपादित करते हुये कहा गया है—

यथैव भेदोऽस्ति न कर्मदेहयोस्तथैव भेदोऽस्ति न देहचित्तयोः।
यथैव भेदोऽस्ति न देहचित्तयोस्तथैव भेदोऽस्ति न चित्तजीवयोः।
यथैव भेदोऽस्ति न चित्तजीवयोस्तथैव भेदोऽस्ति न जीवब्रह्मणोः।।

अर्थात् जिस प्रकार कर्म एवं देह में भेद नहीं है, उसी प्रकार देह और चित्त में भी भेद नहीं है एवं जिस प्रकार देह और चित्त में भेद नहीं है, उसी प्रकार चित्त और जीव में भी कोई भेद नहीं है। ठीक इसी प्रकार जीव और ब्रह्म में भी कोई भेद नहीं है।

एक स्थल पर जहाँ श्रुति 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि वाक्यों से आत्मा एवं परमात्मा

में अभेद मानती है, वहीं 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' आदि वाक्यों से आत्मा एवं परमात्मा में भेद का भी प्रतिपादन करती है। इसीलिये भगवान् रामानुजाचार्य जी ने जीवात्मा को परमात्मा से अपृथक् सम्बन्द्ध मानते हुये भी आत्मा को परमात्मा से भिन्न माना है।

श्रुति में वही आत्मा एक स्थल पर (छान्दोग्योपनिषद् में) 'आत्मापहतपाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' के रूप में निरूपित की गई है और वहीं दूसरे स्थल पर (बृहदारण्यकोपनिषद् में) 'ते आत्मा सर्वान्तरः............। न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं शृणुयान्न मतेर्मन्तारं मन्त्रीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः। एव त आत्मा सर्वान्तरो' (अर्थात् तुम्हारी आत्मा सभी के अन्दर वर्त्तमान है। तू दर्शन-शक्ति के द्रष्टा को नहीं देख सकता, श्रवण शक्ति के श्रोता को नहीं सुन सकता, मनन शक्ति के मन्ता का मनन नहीं कर सकता, विज्ञान शक्ति के विज्ञाता को नहीं जान सकता। तुम्हारी यह आत्मा सर्वान्तर्यामी है) रूप में निरूपित की गई है। कहीं सगुण साकार रूप में आत्मा का निरूपण है तो कहीं निर्गुण एवं निराकार रूप में निरूपण है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं—'स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ। चाराः सर्वे समर्पिताः एमवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एव आत्मानः समर्पिताः' अर्थात् हे मैत्रेयि! यही परमात्मा सब भूतों का अधिपति है। यही समस्त प्राणियों में प्रकाशस्वरूप है और जैसे रथचक्र की नाभि में और परिधि में समस्त अरे संयुक्त रहते हैं, इसी प्रकार आत्मा में ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त अग्नि आदि सभी देवता, भूरादि सभी लोक, वागादि सभी इन्द्रियाँ, सभी जीव समर्पित रहते हैं।

'अमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्' (बृहदारण्यकोपनिषद्) अर्थात् यह अमरधर्मा पुरुष है। यही वह है। जो यह आत्मा अमर है, यही ब्रह्म है। यही सर्वशक्तिमान है।

'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्मसर्वानुभुः' (बृह. उपनिषद्) अर्थात् यही प्रत्यगात्मा व्यापक ब्रह्म है, यही अद्वितीय है, यही अनपर, अनन्तर और अबाह्य है और यही प्रत्यगात्मा सबका अनुभवी है।

'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुषरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदु..................।' (बृ. उप.) अर्थात् जो यह जानते हैं कि यह अपना जीवात्मा प्राण का प्राण है नेत्र का नेत्र है, श्रोत्र का श्रोत्र है और मन का मन्ता मन है (वे ही मात्र ब्रह्म का स्वरूप जान पाये हैं, अन्य नहीं)। 'मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन' (वृह. उप.) अर्थात् वह आत्मा मन से पर्यालोचित की जानी चाहिये। इस आत्मा में नानात्व नाम की कोई चीज नहीं है।

बृहदारण्यक श्रुति कहती है कि आत्मा सर्वायतन है—'स यथा सर्वासामपां समुद्र

एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनम् एवं.................. सर्वेषां वेदानाम् वागेकयनम्' अर्थात् जैसे जब जलों का एक स्थान समुद्र है, जैसे सब स्पर्शों का एक स्थान त्वचा है, जैसे सब गन्धों का एक स्थान घ्राणेन्द्रिय है.................. और जैसे सब वेदों का एक स्थान वाणी है, ठीक उसी प्रकार यह अपना आत्मा सब ज्ञानों का एक स्थान है।

बृहदारण्यक (अध्याय-4, ब्राह्मण-5, मन्त्र-7) श्रुति ही पुन: कहती है—'ब्रह्म .... यदयमात्मा' अर्थात् हे मैत्रेयि! ब्रह्मत्व को आत्मा से भिन्न समझने वाले को, क्षत्रियत्व को आत्मा से भिन्न समझने वाले को, स्वर्गादिकों को आत्मा से भिन्न समझने वाले को, वेदों को आत्मा से भिन्न समझने वाले को, प्राणियों को आत्मा से पृथक् समझने वाले को, आत्मा से सभी को पृथक् समझने वाले को क्रमश: ब्रह्मत्व, क्षत्रियत्व, स्वर्गादिलोक, देवता, वेद, सब प्राणी एवं सभी लोग त्याग देते हैं। यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय, यह लोक, यह देवता, यह वेद, यह प्राणी—यह जो कुछ भी है, वह सब अपनी आत्मा है। आत्मा से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽमयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि ब्रह्म भवति य एवं वेद' अर्थात् हे राजा जनक! यह आत्मा सबसे बड़ा है, अमर है, अजन्मा है, जरारहित है, मरणधर्मरहित है, यही अभय है, यही अभय ब्रह्म है। जो पुरुष इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्मस्वरूप होता है।

'स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसङ्गो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातरमरे केन विजानीयात्' अर्थात् वही यह आत्मा 'न इति न इति' शब्दों द्वारा निरूपित किया जाता है। वह अग्राह्य है; क्योंकि ग्रहण नहीं किया जा सकता। अशीर्य है; क्योंकि शीर्ण नहीं होता। असंग है; क्योंकि संसक्त नहीं होता। न वह किसी में आसक्त है, न कभी वह दु:खित होता है, न वह आहत होता है। इस विज्ञाता रूप आत्मा को किस साधन से जाना जाय? अर्थात् यह दुर्विज्ञेयस्वरूप है।

'मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञानमिदं सर्वं विदितम्' हे मैत्रेयि! आत्मा के देख लेने पर सुन लेने पर, समझ लेने पर, समस्त ब्रह्माण्ड जान लिया जाता है।

'छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोक:' (बृहदारण्यकोपनिषद्) अर्थात् जो शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहितचित्त होकर अपने में ही अपनी आत्मा को देखता है और जब सब जगत् को अपनी ही आत्मारूप में देखता है तब वह ज्ञानी सब पाप को पार कर जाता है। उस ज्ञानी को पाप नहीं तपाता, किन्तु वह ज्ञानी समस्त पापों को नष्ट कर देता है। वह पापरहित, विरज एवं अविचिकित्स हो जाता है। हे जनक! यही ब्रह्मलोक है।

'स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमय: प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्त-

स्मिंच्छेते सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सन् साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण' (बृह. उप.) अर्थात् वही यह जीवात्मा अत्यधिक महान् है और अजन्मा है। जो यह आत्मा चक्षुरादिकों में चैतन्यरूप से स्थित (विज्ञानमय है) और जो यह हृदय के भीतर आकाश में शयन करता है, वही सबको अपने वश में करने वाला है, वही सबको शासित करता है, वही सबका अधिपति है। वह अच्छे कर्म करके न तो पूज्य होता है और न ही बुरे कर्म करके अपूज्य होता है। वही यह आत्मा सबका ईश्वर है, वही यह आत्मा सभी प्राणियों का स्वामी है, वही यह आत्मा सभी प्राणियों का पालक है, वही इन लोकों की रक्षा करने के लिए उनका धारण करता है।

'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति' अर्थात् इसी को जानकर पुरुष 'मुनि' हो जाता है।

'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (बृहदारण्यकोपनिषद्) अर्थात् आत्मा में जो नानात्व देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है।

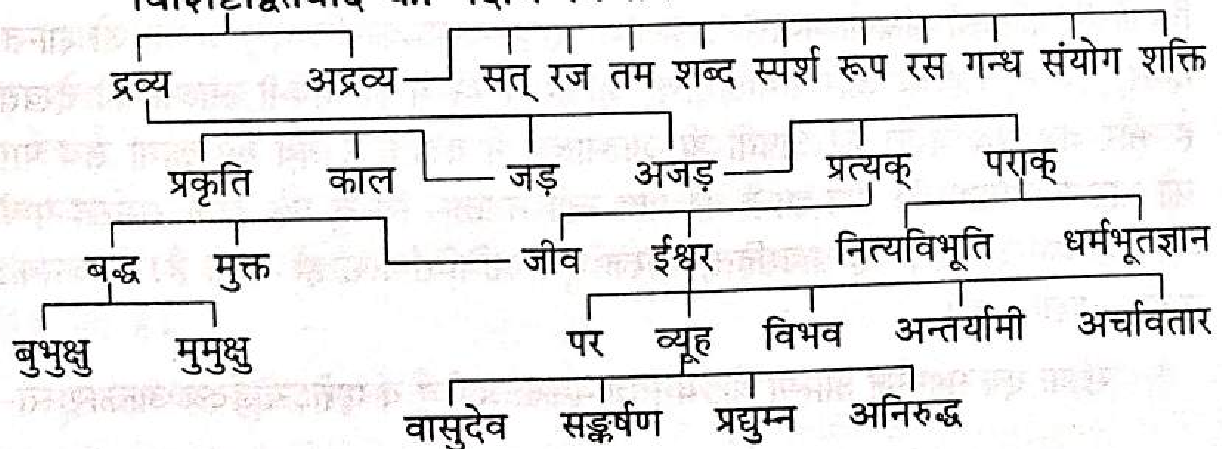
एक ओर यह आत्मा मन भी नहीं है, विज्ञानरूप भी नहीं है, पृथ्वीमय, वायुमय, आप-मय, काममय, क्रोधमय, धर्ममय भी नहीं है, वहीं दूसरी ओर यह आत्मा सर्वमय भी है।

'स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमय वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमय' (बृहदारण्यकोपनिषद्) अर्थात् वही आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, विज्ञानमय है, मनोमय है, प्राणमय है, चक्षुमय है, श्रोत्रमय है, पृथ्वीमय है, आपोमय है, वायुमय है, आकाशमय है, तेजोमय है, अतेजोमय है, काममय है, अकाममय है, क्रोधमय है, अक्रोधमय है, धर्ममय है, अधर्ममय है, सर्वमय है।

'यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः' (बृहदारण्यकोपनिषद्) अर्थात् हे याज्ञवल्क्य! जो यह आत्मा निश्चय ही साक्षात् और प्रत्यक्ष ब्रह्म है और (जो) आत्मा सबके अभ्यन्तर है।

इन उपर्युक्त श्रुतियों से आत्मा के वास्तविक स्वरूप का पूर्णावबोध हो जाता है।

विशिष्टाद्वैतवाद का पदार्थ-विभाग



उपर्युक्त पदार्थ-विभाग आचार्य वेदान्तदेशिककृत है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' में वेंकटनाथ वेदान्तदेशिककृत पदार्थ विभाग का यही निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

जीव तथा ब्रह्म का सम्बन्ध—आचार्य रामानुज की दृष्टि में जीव ईश्वर की भाँति ही नित्य है, वह अविद्या-प्रकल्पित नहीं है। मुक्ति में भी जीव ब्रह्म से भिन्न व्यक्तित्व रखता है और ब्रह्म के सानन्द सान्निध्य का उपभोग करता है। जीव ईश्वर का अंश, प्रकार या विशेषण है। जीव भगवान् की उद्देश्य-पूर्ति का साधन और अपने स्वामी भगवान् का दास है। 'ब्रह्म' प्रकारी, विशेष्य या अंशी है और 'चित्' तथा अचित् तत्त्व प्रकार, विशेषण या अंश हैं। आचार्य रामानुज 'सत्कार्यवाद' के समर्थक हैं और शांकर 'विवर्तवाद' के विरोध में 'परिणामवाद' के प्रतिपादक हैं। कारण-कार्य की शृंखला पर विचार-विमर्श करने पर आचार्यश्री कहते हैं कि—क्योंकि प्रकारी उपादान है, अतः प्रकार उपादेय होता है और यह ब्रह्म के परिणमन का फल है। ब्रह्म का जीव एवं जगत् के रूप में परिणमन होता है तथापि ब्रह्म निर्विकार रहता है। जिस प्रकार शरीर की आत्मा जीव है, उसी प्रकार जीव की आत्मा ईश्वर है। ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है— 'अन्तर्याम्यमृतः'। प्रकार और प्रकारी में गुण और द्रव्य का सम्बन्ध है, किन्तु रामानुजाचार्य जी द्रव्य एवं गुण में तादात्म्यभाव नहीं मानते; अपितु गुण को गुणी से भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार गुण एवं गुणी में, प्रकार एवं प्रकारी में तादात्म्य नहीं; अपितु सामानाधिकरण्य है। प्रकार, प्रकारी का अपृथक् विशेषण है। जीव और जगत् रूप प्रकार या विशेषण ब्रह्मरूप प्रकारी एवं विशेष्य से अपृथक् सम्बद्ध होते हुए भी उससे भिन्न है। ईश्वर अंशी है और जीव तथा जगत् अंश हैं—

ममैवांशो हि जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता)

जीव और जगत् शरीरी ब्रह्म के शरीर हैं। जीव ईश्वर का उसी प्रकार अंश है, जैसे रश्मि सूर्य का या गुण (गोत्वादि) गुणी (गो आदि) का अंश होता है। जीव और जगत् रूप अवयव, अवयवी ब्रह्म से पृथक् नहीं किये जा सकते। विशेष्य, प्रकारी, अवयवी, गुणी, शेषी एवं अंशी रूप ब्रह्म को अपने विशेषण, प्रकार, अवयव, गुण, शेष एवं अंशरूप जीव तथा जगत् से पृथक् करके निरूपित नहीं किया जा सकता। दोनों में अपृथक्त्व है, उनमें अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध है।

जीवात्मा का स्वरूप—जीव अणुरूप एवं चेतन है। वह श्रोत्र, चक्षु, कर्णादि इन्द्रियों से पृथक् है तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप अन्तःकरणचतुष्टय से भी पृथक् है। वह पञ्च प्राणों से तथा शरीर एवं पञ्चकोशों से भी पूर्णतया भिन्न है। जीव नित्य तत्त्व है। 'अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति' (कठोपनिषद्) एवं 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते' (श्वेताश्वतरोपनिषद्) आदि श्रुतियों के भिन्न-भिन्न परिमाण-निरूपण के आधार पर हम उसे अंगुष्ठमात्र वाला या बाल के अग्रभाग के दस हजारहवें भाग के परिमाण वाला

कह सकते हैं। यह स्वप्रकाश, अतीन्द्रिय, आनन्दरूप, नित्य, अणु, निरवयव, अखण्ड, अभेद्य, अच्छेद्य, अक्लेद्य, त्रिगुणातीत, निर्विकार, निराकार, विभु तत्त्व है। ईश्वर ही इसका नियामक एवं धारक तथा अंगी है (तत्त्वत्रय)। इसका ज्ञान सर्वव्यापी होता है। इसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि कर्म ईश्वर-प्रेरणा से उद्भूत होते हैं, स्वाभाविक रूप से नहीं। जीव का स्वातन्त्र्य भी ईश्वरप्रदत्त है (तत्त्वत्रय)। ईश्वर की बुद्धि के अधीनस्थ ही इसके समस्त व्यापार क्रियान्वित होते हैं (तत्त्वत्रय)।

कर्म करने में स्वतन्त्र होता हुआ भी जीव ईश्वर की सहायता के विना कर्म नहीं कर सकता। चित् और अचित् से विशिष्ट ईश्वर ही जगत् का उपादान कारण है। नाम-रूपविभागानार्ह सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही कारण है और नाम-रूपविभागार्ह स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही कार्य है। जीवात्मा, जगत् और ईश्वर तीनों की पारमार्थिक सत्ता है, न कि व्यावहारिक। शंकराचार्य जी ने जीवात्मा एवं जगत् की सत्ता पारमार्थिक नहीं; अपितु उसे अविद्या-प्रकल्पित माना था और व्यावहारिक दृष्टिमात्र से ही सत्य माना था; किन्तु आचार्य श्रीरामानुज इस मत का खण्डन करते हैं। जीव निर्विकार है। विकार केवल 'धर्मभूत ज्ञान' मात्र में होता है।

जीवात्मा के भेद—जीवात्मा के तीन भेद हैं—बद्ध, मुक्त एवं नित्य।

बद्धजीव—मायोपहित जागतिक जीवन में संसक्त प्राणी ही बद्ध हैं। ब्रह्मा से लेकर कीड़े-मकोड़े तक सभी बद्ध हैं। यतिपतिमतदीपिता में बद्ध जीवों की उत्पत्ति का वंशवृक्ष बताते हुए ब्रह्मा रुद्र, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारदादि **देवर्षि**, वशिष्ठ, भृगु आदि **ब्रह्मर्षि**, पुलस्त्य, मरीचि, दक्ष, कश्यप आदि **प्रजापति,** वह्नि, वरुण, मरुतादि **दिक्पाल**, विश्वभुक्, विपश्चित, मनोजव, क्रतुधातादि **चौदह इन्द्र,** स्वयम्भुव, सावर्णि, दक्षसावर्णि आदि **असुर,** सिद्ध आदि **आठ वसु,** अहिर्बुध्न, पिनाकी आदि **ग्यारह रुद्र,** त्वष्टा, सवितादि **बारह आदित्य,** पिशाच, गुह्यकादि **'देवयोनि',** मनुष्यगण, तिर्यग्गण तथा स्थावरों का भी बद्ध जीवों के रूप में निरूपण किया है। इन बद्ध जीवों में कुछ मोक्षाप्ति की इच्छा रखते हैं और कुछ भोगेच्छा रखते हैं। भोगेच्छुकों में भी कुछ अर्थलिप्सु एवं कामलिप्सु होते हैं और कुछ धर्मप्रिय होते हैं। मुमुक्षुओं में कुछ विवेक द्वारा और कुछ भक्ति तथा प्रपत्ति द्वारा मुक्ति-प्राप्ति के इच्छुक होते हैं।

अपना सर्वस्व समर्पण करके भगवान् मात्र की शरण ग्रहण करने वाले 'प्रपन्न' कहलाते हैं। शरीर से मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करने वाले 'दृप्त' एवं तत्काल ही शरीर से मुक्ति न प्राप्त करने के कारण अत्यधिक विषण्ण तथा शीघ्रातिशीघ्र दैहिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्ति के इच्छुक साधक 'आर्त' कहलाते हैं।

मुक्त जीव—ये जीव बद्ध जीवों से भिन्न होते हैं। भगवान् की सेवा-आराधना में सतत रूप से निरत, भक्तानुचर ये जीव शरीरत्याग के समय अपने समस्त सञ्चित क्रियमाण एवं प्रारब्ध कर्मों के फलों के भोग द्वारा सभी कर्मफलों का विनाश करके

परमात्मा का ध्यान करके अग्निलोक को प्रस्थान करते हैं। अपने यात्रामार्ग में दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, संवत्सर के अभिमानी देवता वायु द्वारा सत्कृत होकर और सूर्य-मण्डल को भेद कर सूर्यलोक में पहुँचने पर चन्द्र, विद्युत्, वरुण, इन्द्र, प्रजापतियों द्वारा इङ्गित यात्रापथ पर चलते हुये तथा चन्द्रादि लोकों को पार करते हुये विरजा तीर्थ में पहुँच कर सूक्ष्म शरीर का त्याग करते हैं। यहाँ दिव्य शरीर धारण करते हैं और ब्रह्मालंकारों से युक्त होकर वैकुण्ठ में प्रवेश करते हैं। वहाँ भगवान् का दर्शन करते हैं और भगवान् उन्हें अपनी गोद में बैठा कर पूछते हैं कि तुम कौन हो? फिर मुक्त जीव उत्तर देते हैं—'मैं ब्रह्म प्रकार हूँ।' ये मुक्त जीव ब्रह्म के समान भोग करते हैं और संख्या में अनेक होते हैं।

नित्य जीव—यतिमतदीपिका के मतानुसार ये वे जीव हैं, जो कभी संसार में संसरण ही न किये हों। ये अनन्त ज्ञानसम्पन्न होते हैं। ये सदैव भगवान् के अनुकूल आचरण करने वाले होते हैं। इनके भी स्वेच्छा से अवतार होते हैं। अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेनादि नित्य जीव हैं।

मुक्त जीव भगवान् के अत्यन्त समान होता है, किन्तु उत्पत्ति-प्रलयादि में उसका अधिकार नहीं होता। केवली जीव वे हैं, जो आत्मस्वरूप पर मनन करके निदिध्यासन करके मुक्त हो जाते हैं और सदैव एकान्तवासी रहते हैं।

शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य जी ने जीवों के तीन प्रकार बताये हैं—

पुष्टि जीव—जो भगवान् के अनुग्रह पर ही भरोसा रखते हैं और नित्यलीला में प्रवेश पाते हैं।

मर्यादा जीव—जो वेदादि की विधियों का अनुसरण करते हुये स्वर्गादि लोक पाते हैं।

प्रवाह जीव—जो संसारप्रवाह में पड़े हुये होकर सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही निरत रहते हैं।

प्रवाहजीव के दो भेद हैं—दुर्ज्ञ और अज्ञ। 'सम्बन्धि जीव' वे हैं, जो स्थिर स्वरूप वाले नहीं होते, प्रत्युत जिस प्रकार के सम्पर्क में पड़ते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। 'मिश्र पुष्टि जीव' वे जीव हैं, जो प्रवाह एवं मर्यादा में पड़ जाते हैं; किन्तु पुष्टिसम्पन्न होने से उनका कोई अकल्याण नहीं होता।

चैतन्य महाप्रभु की दृष्टि में विष्णु ही अन्तिम तत्त्व हैं। उनकी तीन शक्तियाँ हैं—चित्, माया एवं जीव। चित् शक्ति से भगवान् अपनी गुणाभिव्यक्ति करता है। आनन्द शक्ति से स्वत: राधिका हैं। माया शक्ति से भगवान् जड़ शक्ति को उत्पन्न करता है तथा अपनी जीव शक्ति से आत्माओं को उत्पन्न करता है। जीव भगवान् से भिन्न अणु-परिमाणी चेतन तत्त्व है। जीव एवं जगत् भगवान् के विशेषण न होकर उनके शक्ति की स्फुरणमात्र हैं।

न्याय तथा वैशेषिक की दृष्टि में आत्मा दो प्रकार का है—जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न है। प्रत्येक जीव व्यापक एवं नित्य है। आत्मा ही इन्द्रियों का एवं चैतन्य का सम्पादक है।

आचार्य शंकर ने 'तत्त्वबोध' में आत्मा के विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ संज्ञा वाले भेद-त्रय का निरूपण किया है। स्थूल शरीराभिमानी आत्मा 'विश्व' कहलाता है। सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्मा 'तैजस' कहलाता है और कारण शरीराभिमानी आत्मा 'प्राज्ञ' कहलाता है।

माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा के भेदों का निम्न निरूपण किया गया है—

वैश्वानर वह है, जो जागरित स्थान है, बहिष्प्रज्ञ है, सप्तांग है, एकोनविंशतिमुख है तथा स्थूल विषयों का भोक्ता है। यह आत्मा का प्रथम पाद है।

तैजस वह है, जो स्वप्नस्थान है, अन्त:प्रज्ञ है, सप्तांग है, एकोनविंशतिमुख है तथा प्रविविक्तभुक है। यह आत्मा का द्वितीय पाद है।

प्राज्ञ—जहाँ सोता हुआ होने पर कोई कुछ भी इच्छा नहीं करता, कोई भी स्वप्न नहीं देखता, उसे ही 'सुषुप्ति' कहते हैं। जो सुषुप्त स्थान एकीभूत प्रज्ञानघन आनन्दमय आनन्द भोक्ता तथा चेतोमुख है, वह प्राज्ञ है। यह आत्मा का तृतीय पाद है। इस प्रकार एक ही आत्मा के तीन भेद हैं—

बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्त:प्रज्ञस्तु तैजस:।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृत:।।

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजस: प्रविविक्तभुक्।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत।।

स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तं तु तैजसम्।
आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत।।

(गौड़पादाचार्य : माण्डूक्यकारिका)

तुरीय चैतन्य वह है, जो न तो अन्त:प्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ है, न उभयप्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ है। अपितु 'अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं' (माण्डूक्यकारिका) है।

केवलाद्वैतवादी आचार्य विद्यारण्य ने पञ्चदशी में चैतन्य के चार भेद निरूपित किये हैं—कूटस्थ, ब्रह्म, जीव एवं ईश्वर।

कूटस्थो ब्रह्म जीवेशावित्येवं चिच्चतुर्विधा।
घटाकाशमहाकाशौ जलाकाशाभ्रखे यथा।।

किसी अंग्रेज ने दर्शन का मजाक उड़ाते हुए कहा था कि अन्धेरी कोठरी में किसी काली बिल्ली को अन्धे द्वारा खोजना ही दर्शन है। इस कथन का सारांश यह है कि

दर्शन अव्यावहारिक अधिक होता है। यद्यपि मेरा मत इसके प्रतिकूल है। उस आलोचक की दृष्टि में दर्शन में सबसे बड़ी कमी अव्यावहारिकता की है। आचार्य श्रीशंकर का 'केवलाद्वैत वेदान्त' ज्ञानमात्र को ब्रह्मावगति का परम साधन मानने से एवं व्यावहारिक सत्ता को मिथ्या मानने से उपर्युक्त दोष से लाञ्छित किये जाते हैं, किन्तु आचार्य श्री-रामानुज ने दर्शन की व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है और अव्यावहारिकता के आक्षेप का निराकरण किया है। स्वयं शंकर ने भी प्रस्तुत शब्दों द्वारा आचार्य श्रीरामानुज का ही मण्डन किया है—

हे नाथ! यद्यपि आपमें और हममें कोई भेद नहीं है, तथापि मैं आपका ही हूँ। आप मेरे नहीं हैं। तरंगें समुद्र की होती हैं, किन्तु समुद्र तरंगों का नहीं होता'।

'सामुद्रो वै तरङ्गः' 'न तु तारङ्गो वै समुद्रः' अर्थात् तरंगें समुद्र की ही होती हैं और समुद्र से ही निर्मित होती हैं, समुद्र तरंगों से निर्मित नहीं होता; उसी प्रकार 'तवैवाहं' अर्थात् मैं आपका (ईश्वर का) ही हूँ, आप मेरे नहीं हैं।

आचार्य श्रीरामानुज का दर्शन सर्वसाधारण से लेकर शीर्षस्थ दार्शनिकों तक का दर्शन है। देवराज जी ने लिखा है कि—रामानुज का दर्शन जनता का दर्शन है। जनता के धार्मिक और नैतिक विश्वासों का जैसा समर्थन रामानुज ने किया, वैसा किसी ने नहीं किया। .... शंकराचार्य ने जीव और व्यक्तित्व को मिथ्या या माया का कार्य बता दिया था, जिससे हिन्दू जाति वास्तविक आत्मा की सत्ता में सन्देह करने लगी थी। रामानुज ने जीव की पारमार्थिक सत्ता का खण्डन किया। .... जीवात्मा, जगत् और ईश्वर तीनों की पारमार्थिक सत्ता है, न कि केवल व्यावहारिक। इस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन और नैतिक प्रयत्नों का महत्त्व बढ़ जाता है। रामानुज ने द्वैत के साथ अद्वैत की भी रक्षा की। विशिष्टाद्वैत दर्शन ने भक्ति, प्रेम, कर्तव्य आदि के लिये शंकर की अपेक्षा अधिक जगह निकाल ली। वह भगवद्गीता के भी अधिक अनुकूल हैं। इसीलिये आज भारत की अधिकांश जनता ज्ञात या अज्ञातरूप से रामानुज की अनुयायिनी है।

मैक्समूलर (Max Muller) नाम के जर्मन दार्शनिक ने Six Systems of Indian Philosophy में ठीक ही कहा था कि आचार्य श्रीरामानुज जी ने हिन्दुओं की अपहृत आत्माओं को उन्हें वापस दे दिया।

आचार्य श्रीरामानुज का विशिष्टाद्वैतवादी दर्शन द्वैत और अद्वैत दोनों का समन्वय करके पूर्ण व्यावहारिक एवं तर्कसंगत दर्शन का सूत्रपात करता है। केवलाद्वैत दर्शन उतना व्यावहारिक नहीं है, जितना कि रामानुजीय दर्शन। शंकर भी जीवात्मा और परमात्मा का पूर्ण अभेद मानते हुये भी रामानुज का ही इन वाक्यों में समर्थन करते हैं—

सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

यह बात ऊपर ही लिखी जा चुकी है। किसी भक्त ने ठीक ही लिखा है—

श्रृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेताङ्गणे मया दृष्टम्।
गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः।।

स्वतः भगवान् शंकराचार्य जी ने ही कहा है कि भगवान् कृष्ण की भक्ति के विना आत्मशुद्धि होती ही नहीं—

शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।

इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर ने स्वतः प्रार्थनासूक्तों में अनेकानेक देवी-देवताओं की स्तुति की है। जब एक निर्गुण, निराकार ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या ही है तो इन देवी-देवताओं की स्तुति क्यों की?

अन्त में मैं जीवात्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में आचार्य श्रीरामानुज के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता हुआ आचार्य श्रीशंकर के शब्दों में कहूँगा—

सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।





अष्टाविंश अध्याय

मायातत्त्व और शक्ति-साधना

शैवदर्शन के अनुसार भेदात्मक सृष्टि का छठवाँ तत्त्व मायातत्त्व है। माया भगवान् की कर्तुं, अकर्तुं एवं अन्यथाकर्तुं की सामर्थ्य वाली स्वातन्त्र्य शक्ति का ही रूपान्तर है। परापरा अवस्था से निम्न भूमि पर स्पन्दन करता हुआ परमशिव अपने प्रकाशस्वरूप के प्रच्छादन की क्रीड़ा द्वारा भेददशा पर अवतरित होकर सर्वप्रथम मायातत्त्व का ही अवभासन करता है। माया परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति ही है, जो कि भेद-भूमिका का अवभासन करने के कारण मायाशक्ति कहलाती है। प्रमाता का स्वरूप-संकोच न करके उसमें भेददृष्टि उत्पन्न करना ही उसका प्रधान कार्य है।

माया की शक्तियाँ—आचार्य शंकर ने माया की दो शक्तियाँ मानी हैं—आवरण शक्ति एवं विक्षेप शक्ति। आचार्य शंकर कहते हैं—

विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।
रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखादयो ये मनसो विकाराः।।
(विक्षेपशक्ति)

एषावृतिर्नाम तमोगुणस्य शक्तिर्यया वस्त्वभासतेऽन्यथा।
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेर्विक्षेपशक्तेः प्रशरस्य हेतुः।।
(आवरणशक्ति)

माया परमेश्वर की त्रिगुणात्मिका, अविद्यात्मिका, अनादि परा शक्ति है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।

माया का स्वरूप—शंकर के अनुसार माया न सत् है और न असत्; प्रत्युत—

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभ्यात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।।

शैवमत में माया अनिर्वचनीया नहीं; प्रत्युत सत् शक्ति है। यह परमेश्वर की स्वरूप-गोपनात्मिका इच्छाशक्ति है।

त्रिकनय की दृष्टि—भेदावसान की अवस्था में परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका क्रीड़ा हेतु उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति द्वारा भेदावभासनात्मक स्वरूप धारण कर लेना ही

मायाशक्ति है। माया भेदावभासन की क्रीड़ा है—

जयरथ—परमेश्वररस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्यं तदेवाव्यतिरेकिणी अपूर्णताप्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिः।

जयरथ—मायास्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तीः।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकार—

भेदे त्वेकरसे भातेऽहन्तयानात्मनीक्षते।
शून्ये बुद्धौ शरीरे वा मायाशक्तिर्विजृम्भते।।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीकार—ग्राहकग्राह्यविपर्यासद्वयप्ररूढौ तु मायाशक्तिः।

विज्ञानभैरव—मायाविमोहिनी नाम।

माया नाम च देवस्य शक्तिरव्यतिरेकेणी।
भेदावभासस्वातन्त्र्य तथा हि स तया कृतः। (तं.)
तिरोधानकरी मायाभिधा। (ई. प्र.)

माया और शुद्धविद्या—'सा भवति शुद्धविद्या येदन्ताहन्तयोरभेदः' (शुद्ध विद्या) 'माया विभेदबुद्धिः' (ष. त्रि. त. सं.)। अभेद में भेद-सृष्टि करने की स्वातन्त्र्य शक्ति ही मायाशक्ति है। मालिनीविजय में कहा गया है कि माया शक्ति एक सर्व-व्यापक, सूक्ष्म, खण्डों से हीन, समग्र संसार को अपने गर्भ में धारण करने वाली अनादि, अनन्त, स्वातन्त्र्यशक्तिपरिपूर्ण और व्ययहीन पारमेश्वरी शक्ति है—

सा चैका व्यापिनीरूपा निष्कला जगतो निधिः।
अनाद्यन्ता शिवेशानी व्ययहीना च कथ्यते।।

परमं यत्स्वातन्त्र्यं दुर्घटसम्पादनं महेशस्य।
देवी मायाशक्तिः स्वात्मावरणं शिवस्यैतत्।।

माया के दो रूप हैं—शक्तिरूपा एवं तत्त्वरूपा। इनमें शक्तिस्वरूपा माया 'महामाया' या 'मायाशक्ति' शक्ति है एवं तत्त्वरूपा माया 'माया' या 'मायातत्त्व' है।

तत्त्वरूपा माया अशिवाभेदप्रथाप्रदा है।

जो यागियों के लिए हेय एवं त्याज्य है—'मीयते हेयतया परिच्छिद्यते योगिभिः।' जो पञ्चतन्मात्राओं (पञ्च महाविषयों) में व्याप्त रहती है—'सर्वत्र मातीति' (तं. वि.), जो स्वयं 'मा' शब्द से वाच्य-निषेध का विषय नहीं बनती—'माशब्दवाच्याद्विनाशरूपान्निषेधाद् यातेति।' जिसके गर्भ में सारा विश्व व्यवस्थित रहता है—'मात्यस्यां विश्वमिति' (तं. वि.), जिस शक्ति के द्वारा परमेश्वर अपने अभिन्न स्वरूप में भी अपने को भिन्नवत् प्रतिष्ठित करता है—'स्वात्माभिन्नमपि भावमण्डलं शिवो यया मिमीयते भिदा व्यवस्थापयति।' एवं जो अपूर्णता की अनुभूति कराकर स्वरूप की हिंसा करती है—'अपूर्णताप्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिः (तं. वि.)' स्वातन्त्र्य शक्ति की वह अवस्था,

जिसमें अहन्ता स्वरूप में अवस्थित इदन्ता को भेदरूप में अवभासित करने की ओर प्राथमिक स्फुरणा होती है, वही 'माया' है।

शुद्ध विद्या और माया में भेद—शुद्धविद्या में विश्वप्रमाता स्वयं को शुद्ध प्रकाश-रूप में अनुभव करता है और साथ ही अपने अहं के साथ इदम् में भासित वेद्यों को भी स्वाभिन्न प्रकाश मानता है; किन्तु माया में इदम् अचित् रूप से अनुभव में आता है।

माया के विभिन्न रूप या प्रकार (पञ्चकञ्चुक)

कला विद्या काल राग नियति (पञ्चकञ्चुक)

ये ही बन्धन हैं—कलाविद्यारागकालनियतिर्बन्ध उच्यते। (अ. प्र. पं.)

त्रिक दर्शन और शांकर दर्शन में माया के सम्बन्ध में दृष्टि-भेद—त्रिक दर्शन में माया असत् नहीं है, किन्तु शांकर दर्शन में वह सत् नहीं है। वह अनिर्वचनीय है।

त्रिक दर्शन में माया भी चिन्मात्र है—जड़ नहीं है; किन्तु शांकर दर्शन में वह जड़ है।

त्रिक शैव दर्शन में माया शक्ति परमेश्वर की निजा शक्ति है, किन्तु शांकर दर्शन में नहीं।

त्रिक दर्शन में माया स्वेच्छा परिगृहीत आवरण है, लीला है, क्रीड़ा है, स्वेच्छा आत्मगोपन है; किन्तु शांकर दर्शन में नहीं।

यदि एकमात्र निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार, निराकार, निर्धर्मक, निष्क्रिय, निर्लेप ब्रह्म ही पारमार्थिक एवं वास्तविक तत्त्व है और—

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम्।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन।।

अर्थात् निर्गुण, निष्कल, सूक्ष्म, निर्विकल्प, निरञ्जन एवं अद्वैत मात्र ब्रह्म ही है और उसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु है ही नहीं तो यह जगत् कहाँ से आया? यदि केवल अद्वैतमात्र ही है और कुछ है ही नहीं तो द्वैत कहाँ से आया? गोस्वामी जी इस उपर्युक्त प्रश्न का मानस में उत्तर देते हैं।

माया एवं जगत्—'मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।'

इसी पारमेश्वरी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी माया से विश्व की सृष्टि होती है। इसी के कारण अद्वैत में द्वैताभास हो रहा है और यद्यपि वह मिथ्या है, किन्तु हटाया नहीं जा सकता—

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि।।

वह माया सर्वत्र व्याप्त है और दुरत्यया है—

गोगोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई।।
माया बस्य जीव सचराचर।
मुधा भेद जद्यपि कृतमाया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।

श्रुति भी कहती है—इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते।

भगवान् शंकराचार्य ने भी ठीक ही कहा है कि चतुष्कोटि विनिर्मुक्ता अनिर्वचनीया अघटनघटनापटीयसी पारमेश्वरी शक्ति माया के कारण ही अद्वैत में द्वैताभास हो रहा है और वही महदादि देहपर्यन्त विश्व-सृजन करती है।

माया माया कार्यं सर्वं महदादि देहपर्यन्तम्।
अव्यक्त नारी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।
(विवेकचूड़ामणि)

माया एवं ब्रह्म—भगवान् शंकराचार्य ने 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' की व्याख्या करते हुए वेदान्तभाष्य में कहा है कि जिस प्रकार मायावी अपनी मायाशक्ति से दर्शकों को उपहित करके असद्रूप मनोमय संसार की सृष्टि कर लेता है और वह सृष्टि दर्शकों को यथार्थ दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार मायावी परमात्मा भी अपनी त्रिगुणात्मिका माया से असद्रूपा होते हुये भी सद्रूपा दिखाई पड़ने वाली संसारलीला की सृष्टि करता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह तथ्य स्पष्ट ही प्रतिपादित है—

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः।

आचार्य स्वामी विद्यारण्य भी पञ्चदशी में यही कहते हैं—'मायी सृजति विश्वं सन्निरुद्धस्तत्र मायया' अर्थात् मायोपाधिक ईश्वर माया की शक्ति से विश्व का सृजन करता है।

माया एवं जीव—यही माया शक्ति ब्रह्म की उपाधि बनने पर उसे ईश्वर बना देती है और अविद्या रूप में परिणत होकर आत्मा की उपाधि बनने पर जीव बना देती है। इसीलिये स्वामी विद्यारण्य ने पञ्चदशी में ईश्वर एवं जीव को मायारूपी कामधेनु के दो बछड़े माने हैं—

मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
आनन्दमयविज्ञानमायीश्वरजीवकौ ।
मायया कल्पितावेतौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम्।

यद्यपि जीवात्मा शुद्ध, बुद्ध, निर्गुण, निर्लेप, निरञ्जन, अखण्ड, बोधस्वरूप, आनन्दरूप, ईश्वरांश है, तथापि माया के बन्धन से उपहित होकर कीर एवं मर्कट की भाँति माया से भ्रान्त हो गया है—

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

सो माया बस भयेउ गोसाई। बँध्यो कीर मर्कट की नाई।
माया बस्य जीव अभिमानी।

यह जीवात्मा इसी माया के कारण ईश्वर से वियुक्त हो जाता है और इस क्षणिक संसार को अपना समझकर ईश्वर को भूल जाता है, जिससे अनेकानेक क्लेश सहता है—

जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो।।
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।।
प्रभु माया बलवन्त भवानी। जाहि न मोह कवन अस प्रानी।।

जीव है ही क्या? अविद्या की उपाधि से युक्त शुद्ध चैतन्य ही तो जीव है। 'अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते' कहकर आचार्य गौड़पाद ने भी जीव की सुषुप्ति एवं अज्ञान का कारण माया को ही बताया है।

माया एवं प्रकृति—दोनों शब्दों का प्रयोग कई रूपों में किया गया है, किन्तु देखना यह है कि क्या वस्तुतः ये भिन्न-भिन्न हैं या एक-दूसरे के पर्याय हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में परा प्रकृति एवं अपरा प्रकृति नाम्नी दो प्रकृतियाँ बतलाई हैं। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार को अपरा प्रकृति कहा है तथा सनातनभूत चैतन्य जीव तत्त्व को परा प्रकृति के रूप में निरूपित किया है। इस प्रकार महदादि से लेकर देहपर्यन्त सभी तत्त्व अपरा प्रकृति के अन्तर्गत हैं तथा यह जीव ही परा प्रकृति है, जो कि भगवान् का अंश है—

ममवांशो हि जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

गीता में उसी त्रिगुणात्मिका प्रकृति को माया भी कहा गया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

सांख्यसूत्रकार कपिल सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की साम्यावस्था को ही प्रकृति नाम देते हैं—सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में प्रकृति का अर्थ इस प्रकार निरूपित है कि 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट एवं कृति—अर्थात् सृष्टि। सृष्टि करने में जो प्रकृष्ट हो, वही प्रकृति है। दूसरा अर्थ यह है कि 'प्र'-सत्त्वगुण 'कृ' रजोगुण एवं ति—तमोगुण से युक्त शक्तितत्त्व ही प्रकृति है। तीसरा अर्थ यह बतलाया गया है कि सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान् स्वतः दो भागों में बँट गये। जिससे प्रकृति दूसरा पुरुष बना, दाहिना अंग पुरुष हुआ एवं वामांग प्रकृति बना।

आचार्य विद्यारण्य ने पञ्चदशी में प्रकृति के दो भेद बतलाये हैं—माया एवं अविद्या। माया अचिन्त्य रचना शक्ति है— अचिन्त्यरचनाशक्तिबीजं मायेति निश्चिनु—एवं अविद्या आत्मा पर स्थित आवरण एवं विक्षेप शक्ति है।

पञ्चदशीकार की दृष्टि में प्रकृति एवं माया निम्न भेद हैं—

सत्त्व की शुद्धि से युक्त प्रकृति माया है और उससे उपहित चैतन्य ईश्वर है तथा सत्त्व की अशुद्धि से युक्त प्रकृति अविद्या है और उससे उपहित चैतन्य जीव है।

श्वेताश्वतरोपनिषदनुसार माया एवं प्रकृति में कोई अन्तर नहीं है—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।'

गोस्वामी तुलसीदासजी प्रकृति शब्द का प्रयोग न करके माया का ही प्रयोग करते हैं। उनकी दृष्टि में मैं-मैं एवं तू-तू की द्वैत बुद्धि ही माया है और वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है—

मैं अरु मोर तोर तै माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई।।

और इसी माया के दो भेद हैं—

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।।

इस प्रकार माया के दो भेद हुये—विद्या माया एवं अविद्या माया। अविद्या माया अतिशय दुःखरूप है और इसी के कारण जीव भवकूप में पड़ा हुआ है। विद्यामाया तो भवकूप से निकालने का मार्ग है, यह भगवान् की सात्त्विकी शक्ति है। इसीलिये गोस्वामीजी ने वैदेहीजी को माया का रूप कहा है—

माया सब सिय माया माहू।
आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।।
श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

इस तरह श्री सीताजी को विद्यामाया कहा गया है। माया संसार का निर्माण करती है और उस पर केवल मायापति भगवान् मात्र का ही अधिकार है। इसीलिये उद्भवस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी राम वल्लभा मात्र ही भवचापरूप पिनाक को उठा पाती हैं और विश्व की अन्य शक्तियां उसे हिला भी नहीं पातीं। और इसी कारण मायापति भगवान् राम मात्र ही 'भंजेउ राम आप भव चाँपू' भवचाप (माया) को अनायास उठा कर तोड़ देते हैं; क्योंकि वे तो भवचाँपरूप माया शक्ति के परे हैं और जीव उसके अधीनस्थ है; इसीलिये तोड़ने की कौन कहे, उसे हिला भी नहीं पाता—

जीव चराचर बस करि राखें। सो माया प्रभु सो भय भाखे।।
व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।।
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस प्रानी।।
ग्यान अखण्ड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर।।
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
परवस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।

भवचाँप को पारमेश्वरी मायाशक्ति ही उठा पाती हैं और मायापति भगवान् मात्र ही उस भवचाँप का भञ्जन कर पाते हैं। गोस्वामी जी की भी दृष्टि में माया एवं प्रकृति में कोई मूल अन्तर नहीं है। माया एवं प्रकृति एक-दूसरे के पर्याय रूप में आये हैं।

माया एवं अज्ञान—सुरेश्वराचार्य जी ने नैष्कर्म्यसिद्धि नामक अद्वैत ग्रन्थ में अज्ञान शब्द की इस प्रकार मीमांसा की है—'शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिष्वनात्मस्वात्मेति नि:सन्धिबन्धनं मिथ्याज्ञानमज्ञानं तन्निबन्धनो ह्यात्मनोनेकानर्थसम्बन्ध:' अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि-रूप अनात्माओं में 'यह आत्मा है' इस प्रकार बिल्कुल भेद का तिरोधान होकर जो ऐक्य का ज्ञान है, वही मिथ्याज्ञान अज्ञान है। इसी मिथ्या ज्ञानरूप अज्ञान से अनेक अनर्थों की उत्पत्ति हुई है। इस अज्ञान की निवृत्ति से ही सम्यक् ज्ञान एवं स्वरूप-लाभ होता है—'अज्ञाननिवृत्तेश्च सम्यग्ज्ञानस्वरूपलाभ:।' 'अज्ञान हानमात्रत्वान्मुक्ति:' (नैष्कर्म्यसिद्धि) अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति ही मुक्ति का स्वरूप है। अज्ञान से ही सारा संसार उत्पन्न होता है और उसके नाश से ही नष्ट होता है—'तन्मूला संसृतिर्यस्मात्तन्नाशोऽज्ञानहानत:' (नैष्कर्म्यसिद्धि)।

द्वैत प्रपञ्च की सृष्टि को 'तस्मादज्ञानविजृम्भितं' अर्थात् अज्ञानमात्र से उत्पन्न कहकर सुरेश्वराचार्य जी भी माया एवं अज्ञान शक्ति में मूल भेद नहीं करते। उनकी दृष्टि में इसी अज्ञान की आवरण एवं विक्षेप नामक शक्तिद्वय होती हैं।

माया एवं अविद्या—वस्तुत: माया एवं अविद्या एक ही वस्तु है। भागवान् शंकराचार्य ने सृष्टि के हेतु में दोनों को कारण बतलाता है—'अविद्याकृतमेतद्यदिदं दृश्यते श्रूयते वा परमार्थतस्त्वेक एवात्मा अविद्यादृष्टे: अनेकवत् आभासते तिमिरदृष्ट्या अनेकचन्द्रवत्' अर्थात् यह जो कुछ देखा या सुना जाता है, सभी अविद्याकृत है। परमार्थत: तो एक ही आत्मा है, जो अविद्यारूपी दृष्टि वाले पुरुष को अनेक-सा प्रतीत होता है, जिस प्रकार कि तिमिर रोगग्रस्त दृष्टि से अनेक चन्द्र प्रतीत होते हैं। द्वैत अविद्याकृत ही है—'अविद्याकृतं द्वैतं' (शंकराचार्य)। इसी अविद्या के नष्ट हो जाने पर प्रज्ञा-प्रतिष्ठा होती है—'अविद्यायामुन्मूलितायां ही एका प्रज्ञाप्रतिष्ठा।' यह अविद्या है क्या? भगवान् शंकराचार्य ने उपदेशसाहस्री में कहा है—'त्वं परमात्मानं सन्तं संसारिणं संसार्यहमस्मीति विपरीतं प्रतिपद्यसे अकर्तारं सन्तं कर्तेति, अभोक्तारं सन्तं भोक्तेति, विद्यमानं च अविद्यमानमिति इयमविद्या' अर्थात् तुम असंसारी परमात्मा होते हुए भी अपने को 'मैं संसारी हूँ'—ऐसा उल्टा समझते हो तथा अकर्ता होते हुए भी कर्ता, अभोक्ता होते हुए भी भोक्ता और विद्यमान होते हुए भी अविद्यामान मानते हो यही अविद्या है।

'अविद्या नाम अन्यस्मिन् अन्यधर्माध्यारोपणा' अर्थात् अविद्या तो अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के धर्मों का आरोप करना है, जैसे कि सीपी में रजत का आरोप एवं स्थाणु में पुरुष का आरोप।

इस अविद्या से अध्यारोपित जो कुछ भी है, सभी असत् है—'ननु अविद्याध्यारोपितं

यत्र यत् तदसत्' (शंकराचार्य)। इसी अविद्या से देह एवं आत्मा में इतरेतराध्यारोपण होता है—'देहात्ममनोरविद्ययैव इतरेतराध्यारोपणा।' सुरेश्वराचार्य भी इसी अविद्या को संसृति का बीज मानते हैं और उसके नाश को मुक्ति मानते हैं—

ऐकात्म्याऽप्रतिपत्तिर्या स्वात्मानुभवसंश्रया।
साऽविद्या संसृतेर्बीजं तन्नाशो मुक्तिरात्मनः।।

अविद्योच्छेदतः ततश्च स्वात्मन्येवावस्थानम्। (नैष्कर्म्यसिद्धि)

एक ओर तो भगवान् शंकराचार्य 'अविद्याप्रभवं सर्वमसत्तस्मादिदं जगत्' कहकर अविद्या को सृष्टि का कारण बताते हैं और दूसरी ओर वेदान्तभाष्यादि सभी ग्रन्थों में माया को भी जगत्सृष्टि का कारण मानते हैं। इस प्रकार शंकराचार्य जी अज्ञान, माया, भ्रान्ति, अविद्या आदि को पर्यायवाची शब्द के रूप में व्यवहृत करते हैं।

आचार्य गौड़पाद द्वैतरूप जगत् मात्र को माया कहते हैं—'मायामात्रमिदं द्वैतं अद्वैतं परमार्थतः।' विद्यारण्य भी जगत् एवं माया में तादात्म्य-सा स्वीकार करते हैं—'अचिन्त्यं रचनारूपं मायैव सकलं जगत्।'

विवरणकार के मत में अविद्या एवं माया दोनों एक ही हैं; किन्तु व्यवहार में विक्षेप शक्ति की प्रधानता से 'माया' एवं आवरण शक्ति की प्रधानता से 'अविद्या' कही जाती है।

वस्तुतः तो वेदान्त में अविद्या का सम्बन्ध विषयी से एवं माया का सम्बन्ध विषय से है। अविद्या बुद्धि का धर्म है और जीव की उपाधि है। माया ब्रह्म की शक्ति है। शुद्ध सत्त्वप्रधाना माया है और मलिन सत्त्वप्रधाना अविद्या है। माया ईश्वर का उपाधि है और अविद्या जीव की उपाधि है—'अविद्योपाधिको जीवो मायोपाधिको खलु।'

स्वामी सदानन्द ने वेदान्तसार में अज्ञान के दो भेद किये हैं—समष्टिगत अज्ञान एवं व्यष्टिगत अज्ञान। यह समष्टिगत अज्ञान विशुद्ध सत्त्वप्रधान है और इसी से उपहित चैतन्य 'ईश्वर' कहलाता है। इसे हम 'माया' कह सकते हैं। व्यष्टिगत अज्ञान मलिन सत्त्वप्रधान है। इसी से उपहित चैतन्य 'प्राज्ञ' कहलाता है। इसे हम अविद्या या अज्ञान कह सकते हैं।

दृग्दृश्यविवेक माया को ही आदि कारण मानकर उसकी विक्षेप एवं आवरण नामक दो शक्तियाँ प्रतिपादित करता है तथा आचार्य सदानन्द वेदान्तसार में अज्ञान को ही आदि कारण मानकर उसी की विक्षेप एवं आवरण शक्ति नाम्नी दो शक्तियाँ मानते हैं। कुछ आचार्यों ने अविद्या की ही तीन शक्तियाँ मानी हैं—मल शक्ति, विक्षेप शक्ति एवं आवरण शक्ति।

आचार्य पद्मपाद ने पञ्चपादिका नामक वेदान्तग्रन्थ में 'अज्ञानमिति च जड़ात्मिकाऽविद्या शक्तिः' कहकर अविद्या को जड़ात्मिका अविद्या शक्ति माना है। भामतीकार आचार्य

वाचस्पति मिश्र ने अनिर्वचनीय पदार्थ कहकर निरूपित किया है—'अनिर्वाच्याविद्या।' सुरेश्वराचार्य एवं संक्षेपशारीरककार ने अज्ञान को आवरण एवं विक्षेप शक्ति वाला अनादि भाव पदार्थ माना है।

भगवान् शंकराचार्य ने प्रकृति को ही माया कहा है और उसे परमात्मा की उपाधि माना है—'माया प्रकृतिः शक्तिः 'तमो' अविद्ययानृतमव्यक्तं मायोपाधिः सन् ईश्वर इत्युच्यते'। अविद्या माया से ही यह प्रपञ्च ब्रह्म में अध्यस्त है और विद्या माया से ही इसका नाश किया जाना चाहिये—'अविद्याकृतो ब्रह्मणि अध्यस्तः नामरूपप्रपञ्चः विद्यया प्रविलापयितव्यः' (शांकर वेदान्तभाष्य)।

मूला विद्या एवं तूला विद्या—शांकरभाष्य की टीका 'भामती' में वाचस्पति मिश्र ने ब्रह्म को 'अविद्याद्वितयसचिव' (दो अविद्याओं से सहचरित) कहा है। जगत् की व्यावहारिक सत्ता का कारण मूलाविद्या है। यह अविद्या मुक्ति के पूर्व विनष्ट नहीं होती। मिथ्या एवं सत्य, भ्रम एवं यथार्थावबोध, प्रमा एवं अप्रमा का भेद व्यावहारिक जगत् में भी है, उसका कारण तूलाविद्या है। तूला विद्या वस्तुतः व्यावहारिक ज्ञान है। शुक्ति में रजत-ज्ञान या रजताध्यास तूलाविद्या है और ब्रह्म में शुक्ति या सम्पूर्ण व्यावहारिक जगत् का अध्यास मूला विद्या है। तूला विद्या का नाश विवेक, बुद्धि एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणों से होता है, किन्तु मूला विद्या का नाश ब्रह्मज्ञान से ही होता है।

बौद्ध दर्शन भी सृष्टि एवं संसरण का कारण अविद्या ही मानता है। प्रतीत्यसमुत्पाद में अविद्या ही जगत् की पहिली कड़ी मानी गई है और उससे संस्कार उत्पन्न होता है। संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नाम-रूप, नाम-रूप से षडायतन, षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जाति एवं जाति से जरा-मरण एवं दुःख उत्पन्न होता है। इस प्रकार मानवीय दुःख एवं संसार का आदि कारण अविद्या ही बतलाया गया है। सुत्तपिटक में कहा गया है कि—अविद्या के रुक जाने से संस्कारप्रत्यय, संस्कारप्रत्यय के रुक जाने से विज्ञानप्रत्यय, विज्ञानप्रत्यय के रुक जाने से नाम-रूपप्रत्यय, नाम-रूपप्रत्यय के रुक जाने से षडायतनप्रत्यय, षडायतनप्रत्यय के रुक जाने से वेदनाप्रत्यय, वेदनाप्रत्यय के रुक जाने से तृष्णाप्रत्यय, तृष्णाप्रत्यय के रुक जाने से उपादानप्रत्यय, उपादानप्रत्यय के रुक जाने से भवप्रत्यय, भवप्रत्यय के रुक जाने से जाति प्रत्यय, जातिप्रत्यय के रुक जाने से जरा-मरण-कष्ट-दुःख दौर्मनस्य रुक जाते हैं एवं सम्पूर्ण दुःखस्कन्ध रुक जाता है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण दुःखस्कन्ध एवं आदि सृष्टि का मूल कारण अविद्या ही है।

जैनियों की 'कार्म्मण वर्गणा' भी अविद्या के ही तुल्य है।

वीरशैव सम्प्रदाय का शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त माया को परशिव ब्रह्म की अविनाभावसम्बद्ध शक्ति मानता है। यह बात 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' शब्द से ही द्योतित हो जाती है, जिसका अर्थ है—'शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती, ताभ्यां विशिष्टौ (जीवेशौ)

तयोरद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्' (स्थूल चिदचिदात्मक शक्तिविशिष्ट जीव एवं सूक्ष्म चिद-चिदात्मक शक्तिविशिष्ट शिव—इन दोनों का अद्वैत या सामरस्य ही शक्तिविशिष्टाद्वैत कहा जाता है)।

'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' कहकर श्रुति ने ब्रह्म को मायासमन्वित (मायी) माना है। 'माया' शब्द की व्युत्पत्ति आचार्यों ने निम्न रूप से की है—'मं शिवम् अयति प्राप्नोति इति माया' अर्थात् जो परब्रह्म शिव को निसर्गत: सम्प्राप्त रहती है, वही शक्ति 'माया' है। शक्तिविशिष्टाद्वैतवादियों की दृष्टि में माया केवलाद्वैतवादियों की मूला अविद्या नहीं है; अपितु यह परब्रह्म की विमर्शशक्ति है। सिद्धान्तागम भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है—

मं शिवं परमं ब्रह्म प्राप्नोतीति स्वभावत:।
मायेति प्रोच्यते ब्रह्म लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।।

श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य जी ने भी महर्षि अगस्त्य से माया तत्त्व का निरूपण करते हुए उसे सच्चिदानन्दलक्षणा, समस्त लोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी, साक्षात्त-त्स्वरूपानुकारिणी कहा है—

तदीया परमा शक्ति: सच्चिदानन्दलक्षणा।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी ।
तदिच्छयाभवत्साक्षात्तत्स्वरूपानुकारिणी ।।

यह विमर्शशक्तिस्वरूपा माया परशिवब्रह्म समवेत होकर विश्व का सृजन करती है।

वीरशैवसिद्धान्त शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद सम्बन्ध मानता है, इसीलिए वह ब्रह्म को निर्विशेष न मानकर सविशेष मानता है। कारण धर्म से ही कार्य के अनु-संक्रमित होने का नियम होने के कारण शक्तिविशिष्ट परब्रह्म का कार्य यह जगत् भी शक्तिविशिष्ट ही है। विश्व के प्रत्येक पदार्थ में विशिष्ट शक्ति है। यथा—पृथ्वी में धारणा-शक्ति, जल में आप्यायन शक्ति, वायु में स्पन्दनशक्ति, आकाश में व्यापनशक्ति, अग्नि में ज्वलनशक्ति आदि। परब्रह्मस्थिता विमर्श शक्ति ही सूक्ष्म चिदचिदात्मिका नामक अभिख्यान से प्रख्यात है। परब्रह्मसमवेता चित् शक्ति सर्वज्ञतास्वरूपिणी है, सूक्ष्म अचित् शक्ति कर्तृत्वस्वरूपिणी है तथा दोनों की आश्रयभूता इच्छाशक्ति विमर्श शक्ति के नाम से प्रख्यात है।

'गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी' कहकर वीरशैवसम्प्रदायाचार्य श्रीरेणुकाचार्य ने गुणत्रयविशिष्टा विमर्शशक्तिस्वरूपा माया को ब्रह्मनिष्ठा एवं सनातनी माना है।

सतोगुण शक्ति, रजोगुण शक्ति एवं तमोगुण शक्ति—तीनों शक्तियाँ इसी माया शक्ति से समुद्भूत होती हैं। तमोगुण शक्ति ही जड़ माया के नाम से विख्यात है। परब्रह्म शिव की विमर्श शक्ति ही सुख-दु:खादिक धर्मों को समुत्पन्न करने वाली सत्त्व-रज-तमो-

गुणात्मिका प्रकृति कही जाती है, जबकि वह प्रतिस्फुरण गति से जड़ माया शक्ति में प्रविष्ट होती है। इसी विमर्श शक्ति से षट्त्रिंशदात्मक जगत् की उत्पत्ति होती है और छत्तीस तत्त्वों का भी प्रादुर्भाव होता है, जो कि निम्न हैं—शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, वाक्, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक्, जिह्वा, घ्राण, नेत्र, पाद, पाणि, पायूपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी। बृहज्जाबालोपनिषद् एवं महानारायणोपनिषद् आदि उपनिषदों में षड्त्रिंशदात्मक जगत् का ही वर्णन है—'कानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानीति। स तस्मा आह शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्या एतानि शुद्धानि पञ्चतत्त्वानि। माया कालो नियतिः कला विद्या रागः पुरुष इति शुद्धाशुद्धानि सप्ततत्त्वानि'।

श्रीकाशीनाथ जी के शब्दों में शुद्ध विद्यातत्त्व मयूराण्डरसन्याय से अपने में लीन भावी प्रपञ्च निर्माणकारणीभूत सूक्ष्म पदार्थों में अन्योन्याभावरूप भेदबुद्धि प्रधान होकर 'माया तत्त्व' कहा जाता है।

कला, विद्या, राग, काल एवं नियति नामक माया के पञ्चकञ्चुकों से युक्त होकर ही जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है और बन्धनग्रस्त हो जाता है।

केवलाद्वैतवादियों की दृष्टि में त्रिगुणात्मिक माया या अविद्या अन्य में अन्य की धर्माध्यारोपणा है। जैसे कि शुक्तिका में रजत् एवं स्थाणु में पुरुष की अध्यारोपणा—'अविद्या नाम अन्यस्मिन् अन्यधर्माध्यारोपणा, यथा प्रसिद्धं रजतं प्रसिद्धायां शुक्तिकायां यथा प्रसिद्धं पुरुषं स्थाणावध्यारोपयति प्रसिद्धं वा स्थाणुं पुरुषे।'

(उपदेशसाहस्री : शंकराचार्य)

आचार्य शंकर कहते हैं कि 'अविद्यामात्र एवातः संसारोऽस्त्वविवेकतः' अर्थात् अविद्यामात्र ही यह संसार है, जो कि अविवेक के कारण अपनी सत्ता रखता है। इस अविवेकस्वरूपिणी अविद्या के नाश से जगत् का भी नाश हो जाता है। आगे फिर शंकर कहते हैं—'ममाह चेत्यतोऽविद्या शरीरादिष्वनात्मसु। आत्मज्ञानेन हेया' अर्थात् शरीरादिक अनात्म वस्तुओं में ममता एवं अहंता ही अविद्या है, जिसका नाश आत्मज्ञान के द्वारा करना चाहिए। वे कहते हैं कि 'अन्यदृष्टिस्त्वविद्या स्यात्तन्नाशो मोक्ष उच्यते' अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की दृष्टि रखना ही अविद्या है और उसका विनाश ही मोक्ष है। 'एवमेतज्जगत्सर्वं भ्रान्तिबुद्धिविकल्पितम्' अर्थात् यह समस्त जगत् भ्रान्तिपूर्ण बुद्धि से प्रकल्पित किया गया है। वस्तुतः तो इसकी सत्ता है ही नहीं। यही भ्रान्ति अविद्या या माया या प्रकृति है।

आचार्य शंकर ने वेदान्तभाष्य के अध्यास प्रकरण में अविद्या या अज्ञान का निरूपण इन शब्दों में किया है—'पुत्रादिषु विकलेषु सकलेषु अहमेव विकलः बाह्यधर्मान् आत्मनि अध्यस्यति, देहधर्मान् स्थूलोऽहं, कृशोऽहं, गौरोऽहं, तिष्ठामि, गच्छामि, लंघयामि तथ इन्द्रियधर्मान् मूकः, काणः, क्लीबो, बधिरो अन्धोऽस्मीति तथा अन्तःकरणधर्मान् काम-

सङ्कल्पविचिकित्सादीन्।' अर्थात् पुत्र-कलत्रादिकों के विकल होने पर 'मैं विकल हूँ' इस प्रकार कहकर बाह्य धर्मों को जो आत्मा में अध्यस्त किया जाता है; मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ, गौर हूँ, स्थित होता हूँ, जाता हूँ, अतिक्रमण करता हूँ' इत्यादि कहकर देहधर्मों को जो आत्मा में अध्यस्त किया जाता है; 'मैं मूक हूँ, काना हूँ, क्लीब हूँ, बधिर हूँ, अन्धा हूँ'— इत्यादि कहकर इन्द्रियधर्मों को जो आत्मा में अध्यस्त किया जाता है तथा काम, संकल्प, विचिकित्सादिक अन्त:करण के धर्मों को जो आत्मा में अध्यस्त किया जाता है—यही अविद्या, अज्ञान या अध्यास कहलाता है।

न्यायदर्शन के भाष्यकार आचार्य वात्स्यायन ने न्यायभाष्य में अज्ञान का निरूपण करते हुए कहा है—'आत्मनि नास्ति इति, अनात्मनि आत्मेति, दु:खे सुखमिति, अनित्ये नित्यमिति, अत्राणे त्राणमिति, सभये निर्भयमिति, जुगुप्सिते अभिमतमिति, हातव्ये अप्रतिहातव्यमिति, प्रवृत्तौ नास्ति कर्म नास्ति कर्मकत्वमिति दोषेषु नायं दोषमिति, प्रेत्यभावे नास्ति जन्तुर्जीवो वा सत्त्व आत्मा, य: प्रेयात् प्रेत्य च भवेत्। अनिमित्तो जन्मोपरम्' अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में यह कहना कि यह नहीं है, अनात्म पदार्थों के सम्बन्ध में यह कहना कि यह आत्मा है, दु:ख को यह कहना कि यह सुख है, अनित्य पदार्थों के सम्बन्ध में यह कहना कि यह नित्य है, अत्राण के सम्बन्ध में यह कहना कि यह त्राण है, सभय के सम्बन्ध में यह कहना कि यह निर्भय है, जुगुत्सित वस्तुओं के सम्बन्ध में यह कहना कि यह अभीष्ट है, हातव्य वस्तुओं एवं विषयों के सम्बन्ध में यह कहना कि यह अप्रतिहातव्य है; प्रवृत्ति मार्ग के सम्बन्ध में यह कहना कि न तो कोई कर्म है और न तो कोई कर्मफल है, दोषों के सम्बन्ध में यह कहना कि यह दोष नहीं है, प्रेत्यभाव के सम्बन्ध में यह कहना कि जीवात्मा या आत्मा का अस्तित्व ही नहीं होता, जो कि प्रयाण कर सके तथा प्रयाण करके भी अस्तित्ववान रह सके तथा यह कहना कि जन्म एवं मृत्यु विना कार्य-कारण या विना कर्मकत्व शृंखला के ही होते हैं—अज्ञान या अविद्या है।

सांख्यसूत्रकार आचार्य कपिल कहते हैं कि प्रकृति (अविद्या या अज्ञान तत्त्व) सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की साम्यावस्था है। उसी से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्व से अहंकार तत्त्व, अहंकार तत्त्व से पञ्चतन्मात्रायें एवं इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राओं से स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। यही प्रकृति तत्त्व माया, अविद्या या अज्ञान है। यही माहेश्वरी शक्ति है, जो कि ईश्वर की अध्यक्षता में विश्व का सृजन करती है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्। (गीता)

योगसूत्रकार आचार्य पतञ्जलि योगसूत्रों में लिखते हैं—'अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या' अर्थात् अनित्य पदार्थों में नित्य-भावना, अशुचि में शुचि-भावना, दु:ख में सुख-भावना तथा अनात्म पदार्थों में आत्म-भावना करना ही 'अविद्या' है। यह अविद्या ही अविद्या, स्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश नामक पञ्चक्लेशों की

जन्मदात्री है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः (योगसूत्र-2.3)।
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् (योगसूत्र-2.4)।

पञ्चदशीकार स्वामी विद्यारण्य ने प्रकृति के ही दो भेद किये हैं—माया एवं अविद्या। दोनों प्रकृति के ही भेद हैं, किन्तु सत्त्व की शुद्धि से एक 'माया' कहलाती है, जो ईश्वर की उपाधि है तथा दूसरी सत्त्व की मलिनता से 'अविद्या' कहलाती है, जो जीव की उपाधि है।

महात्मा तुलसीदास ने माया को 'मैं और मेरा' 'तू और तेरा' का रूप बताया है तथा समस्त गो-गोचर जड़-चेतन जगत् को 'माया' नाम से ही अभिहित किया है—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

इसी माया के विनष्ट होने पर ज्ञानोदय होता है—

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया।।

भगवान् के अपना लेने पर यह दुरत्य माया जीवों को व्याप्त नहीं करती; अन्यथा संसृति के बन्धन में आबद्ध ही रखती है और मुक्त नहीं होने देती—

तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया।।

इस माया की सत्ता भी स्वतन्त्र नहीं है, अपितु भगवान् के ऊपर ही आधारित है—

जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।।

अर्थात् जिसकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवगण एवं असुर हैं तथा जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति वह समस्त दृश्य जगत् सत्य-सा ही प्रतीत होता है।

द्वैताद्वैतवादी निम्बार्क दर्शन के मतानुसार आनन्दस्वरूप ब्रह्म माया शक्ति से समन्वित है, जो कि निसर्गतः उसमें स्थित रहती है। इसी को 'प्रकृति' भी कहते हैं। माया के कारण ही ब्रह्म भी अनन्त आनन्द जगत् में अनन्त रूपों में अनुभूयमान होता हुआ ज्ञान का विषय बन जाता है। 'मीयते अनया इति माया' वह जो अमेय का माप करती है, वह ब्रह्म-अन्तर्भूता शक्ति ही माया है। निम्बार्क शंकराचार्य जी की भाँति माया या प्रकृति को मृगमरीचिका के समान मिथ्या नहीं समझते; अपितु परमात्मा, जीवात्मा एवं प्रकृति तीनों की पृथक्-पृथक् सत्ता मानते हैं और तत्त्वत्रय में विश्वास रखते हैं। इस प्रकार निम्बार्क दर्शन में माया या प्रकृति को एक स्वतन्त्र तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यद्यपि माया एवं जीव दोनों परमात्मा के अधीनस्थ हैं तथापि स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं।

माध्ववेदान्त की दृष्टि में गुणत्रय की प्रसविनी शक्ति ही मूला प्रकृति है। सृष्टि के आरम्भ में भगवान् इसी मूला प्रकृति से ही महदादि तत्त्वों की सृष्टि करते हैं। प्रकृति से शुद्धसत्त्व, सत्त्व एवं तमोगुण के मिश्रण से रजोगुण एवं सत्त्व तथा रजोगुण के मिश्रण से तमोगुण उत्पन्न होता है। गुणों की साम्यावस्था ही 'प्रलय' कहलाता है। अविद्या या माया अनादि तत्त्व हैं। पञ्चभूतों के तमोगुण ही इसके उपादान हैं। अविद्या की पाँच श्रेणियाँ हैं—मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र तथा तम। जीवाच्छादिका, परमाच्छादिका, शैवला एवं माया आदि भी अविद्या के ही भेद हैं। अविद्या जीवाश्रित होती है।

शुद्धाद्वैतवादी आचार्य वल्लभ माया को भगवान् की नित्य शक्ति के रूप में मानते हैं। शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद प्रतिपादित करते हुए आचार्य ने माया को नित्य सत्ता प्रदान की। ब्रह्म की शक्ति माया है, जो कि द्विविधरूपा है। ब्रह्म के सत् अंश की शक्ति क्रियारूपा माया है तथा उसके असत् अंश की शक्ति व्यामोहरूपा माया है। माया त्रिगुणात्मिका है।

प्रकृति भगवान् का ही रूप है। यही जगत् का उपादान कारण है। यह गुणत्रय की साम्यावस्था है। ब्रह्म की ही भाँति इस प्रकृति में भी क्रिया, ज्ञान एवं आनन्द नामक धर्म अवस्थित रहते हैं। इसके दो भेद हैं—व्यामोहिका माया एवं मूल प्रकृति।

शांकर वेदान्त में ब्रह्म को छोड़कर सभी पदार्थ असत् माने जाते हैं। सभी पदार्थों का आरोप ब्रह्म पर होता है। ब्रह्म आरोप का अधिष्ठान है। माया की शक्ति से समुत्पन्न सारी सृष्टि मायिक है, भ्रान्ति है। इस प्रकार शांकर वेदान्त में प्रकृति भी अपारमार्थिक, अनात्म तथा अनित्य तत्त्व सिद्ध हो जाता है। किन्तु आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैतवादी दर्शन में यही माया या प्रकृति भगवान् की नित्य शक्ति के रूप में प्रतिपादित की गई है।

जैन दर्शन में आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष का सम्बन्ध बन्धन एवं मोक्ष से है। अनन्त काल से लोकाकाश में कर्मपुद्गल एवं जीव वर्त्तमान हैं। जीवों के साथ ही उनके कर्म तथा अनादि अविद्या के सम्पर्क से क्रोध, मान, माया एवं लोभरूप कषाय भी हैं। जीवों के समस्त कर्मफल संस्काररूप में सञ्चित होकर पुद्गलों के साथ समवेत रहते हैं। अविद्या के सम्पर्क से ही कर्मपुद्गल जीवों में प्रवेश करके उन्हें बन्धनग्रस्त बनाते हैं। इस प्रकार अविद्या बन्धन का कारण है।

बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद का कारणरत तत्त्व अविद्या ही माना गया है। यह द्वादश कारण-कार्यशृङ्खला निम्न है—

1. अविद्या से संस्कार।
2. संस्कार से विज्ञान।
3. विज्ञान से नाम-रूप।
4. नामरूप से षड़ायतन।
5. षडायतन से स्पर्श।
6. स्पर्श से वेदना।
7. वेदना से तृष्णा।
8. तृष्णा से उपादान।
9. उपादान से भव।
10. भव से जाति।
11. जाति से जरा।
12. जरा से मरण।

इस प्रकार यह समस्त कारण-कार्यशृङ्खला अविद्या से ही समारब्ध होती है, जो कि संसरणचक्र का मूल बीज है।

'माया खलु नर्तकी विचारी'। भक्ति भगवान् को अत्यधिक प्रिय है; अतः माया शक्ति से डरती है (भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया)। उसे देखकर माया संकुचित हो जाती है और अपना सामर्थ्य खो बैठती है—

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।

यद्यपि यह जीवात्मा ईश्वरांश, अविनाशी, चेतन, अमल एवं सहज सुखराशि है, तथापि माया का वशवर्ती होकर ही कीर एवं मर्कट की भाँति संसारचक्र में बँध जाता है और इसी माया के कारण ही जड़ एवं चेतन में ग्रन्थि पड़ जाती है, जो कि मिथ्या होने पर भी छूट नहीं पाती।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो माया बस भयउ गोसाई। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी।।

जीवों के हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार छाया हुआ है, इसी कारण उन्हें ग्रन्थि नहीं दीख पड़ती—

जीव हृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परइ न देखी।।

भगवद्भक्ति करने से संसृति की मूल अविद्या का सद्यः नाश हो जाता है—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा।।

जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है, उसके पास मोह (अविद्या) रूपी दरिद्रता नहीं आती और प्रबल अविद्या की निबिड़ तमिस्रा भी मिट जाती है। यह मोह या अज्ञान (या अविद्या) ही समस्त व्याधियों का मूल है। इसी से सभी अनर्थ उत्पन्न होते हैं। इस माया का नाश भगवद्भक्ति से ही हो सकता है—

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।।

माया ही विश्व का आदिभूत कारण है और इसी आदिभूत कारण से समस्त संसार एवं समस्त जीव उत्पन्न होते हैं—

मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। (गीता)

समस्त जीव माया का वशवर्ती है। 'माया बस्य जीव सचराचर' के अभिमानी जीव माया का वशवर्ती बन जाता है और यही माया ईश्वर की वशवर्तिनी बनकर रहती है। यद्यपि इस माया के द्वारा उत्पन्न किये भेद मिथ्या हैं तथापि ये भगवद् भक्ति के विना नष्ट नहीं हो सकते—

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।।

हरिसेवक को अविद्या व्याप्त नहीं करती, अपितु उसे प्रभु की प्रेरणा से विद्या ही व्याप्त करती है—

हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या।।

माया आवरण पट है—

माया बस मतिमन्द अभागी। हृदयँ जमनिका बहुविधि लागी।।

अर्थात् माया के वशवर्ती मन्द बुद्धि एवं भाग्यहीनों के हृदय पर अनेकों अज्ञान के आवरणपट पड़े रहते हैं, जिससे वह सत्तत्त्व की प्रत्यभिज्ञा नहीं कर पाता!

समस्त प्राणी माया की ही प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव एवं गुणों से घिरा हुआ होकर सदैव भटकता रहता है—

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।

इस माया के इन्द्रजाल से अस्पृष्ट रहने वाला केवल ईश्वरमात्र है—

माया मोह पार परमीसा।

ईश्वर के अतिरिक्त अन्य ऐसा कौन है, जिस पर माया का प्रभाव न हो—

प्रभु माया बलवन्त भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी।।

सिब बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान्।।

को जग जाहि न व्यापी माया।
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा।
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं।।

व्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट दम्भ कपट पाखण्ड।।

ऐसी दुरत्यया माया, जिसे देखकर शिव एवं चतुरानन भी भयभीत हो जाते हैं, परमात्मा की भृकुटी के इशारे पर सपरिवार नटी की भाँति नाचती है—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सोइ प्रभु भ्रूविलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

इस माया या प्रकृति के पार केवल परमात्मामात्र है, इसीलिए उनमें माया का प्रभाव नहीं है—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

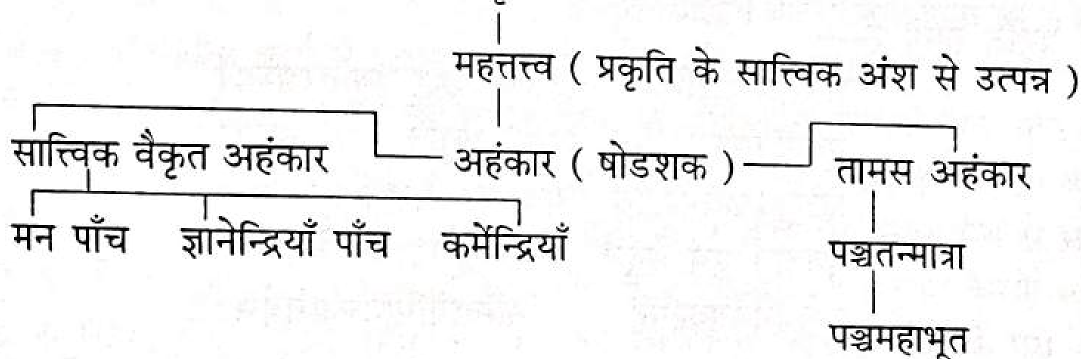
जो माया का वशवर्ती होने के कारण अपने को एवं माया को नहीं जान पाता, वही तो 'जीव' कहलाता है और जो बन्धन-मोक्षप्रदाता सबसे परे माया का प्रेरक चेतनतत्त्व है, वही ईश्वर है—

माया ईस न आपु कहुं जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोच्छप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव।।

विद्या एवं अविद्यारूप माया के भेदद्वय में विद्या माया उद्भवस्थिति-क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी है। यह विद्या माया अनादि अविद्या माया के बन्धनों से जीवों को मुक्त करती है। इस विद्या माया का परम प्रयोजन ही प्राणियों की मुक्ति है। इसी भाव को सांख्य एवं योग दर्शन ने भी प्रतिपादित किया है।

सांख्य दर्शन में प्रकृति ही विश्व का मूल कारण बताई गई है। इसी प्रकृति तत्त्व से ज्ञान, अज्ञान, मोह, तमिस्रा, अन्धतमिस्रा, अविद्या, अस्मिता, द्वेष, राग एवं अभिनिवेश उत्पन्न होते हैं। आठ तम, आठ मोह, दस महामोह, 18 तामिस्र, 18 अन्धतामिस्र (विपर्यय के बासठ भेद) भावाष्टक धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य उत्पन्न होते हैं। इसी से षोडशक उत्पन्न होता है। प्रकृति ही सृष्टि का आदि कारण है, जो कि जीवों के संसरण चक्र की निर्मातृ है। सृष्टि का क्रम निम्न है—

पुरुष एवं प्रकृति का संयोग = प्रकृति



पुरुष का प्रकृति के साथ संयोग एवं उसका प्रकृतिजन्य धर्माधर्मों का अपने में अध्यारोप कर लेना ही अज्ञान या अविद्या है। इसी अज्ञान या अविद्या का नाश मोक्ष या कैवल्य है।

जैन दार्शनिकों की दृष्टि में कर्मबन्धनों का क्षय ही मोक्ष है और इन कर्मबन्धनों का कारण अविद्या या अज्ञान है। अज्ञान या अविद्या ही संसरण चक्र की प्रेरक शक्ति है।

सांख्य एवं योग दर्शन में अविद्या या अज्ञान का कारण पुरुष का प्रकृति के साथ संयोग करना है। इस संयोग के होने पर पुरुष प्रकृति के अनात्म धर्मों को भ्रम से अपने में अध्यस्त कर लेता है।

आचार्य वाचस्पति मिश्र ने सांख्यतत्त्वकौमुदी में इस प्रक्रिया को बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करते हुए कहा है—'बुद्धितत्त्वं हि प्राकृतत्वाद् चेतनम् इति तदीयोऽध्यवसायोऽपि चेतनघटादिवत्। एवं बुद्धितत्त्वस्य सुखादयो परिणामभेदाः अचेतनः। पुरुषस्तु

सुखदु:खानुषङ्गी चेतन:। सोऽयं बुद्धितत्त्ववर्तिना ज्ञानसुखादिना तत्प्रतिबिम्बितस्तच्छायापत्त्या ज्ञानं सुखादिमानिवद्भमवतीति चेतनोऽनुगृह्यते। चितिच्छायापत्त्याऽचेतनाऽपि बुद्धिस्तदध्यवसायोऽप्यचेतनवद्भवतीति। तथा च वक्ष्यति—

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः।।

सारांश यह कि बुद्धितत्त्व में प्रतिबिम्बित प्रकृति के ज्ञानाज्ञान, वैराग्यावैराग्य एवं सुख-दुःखादिक को चेतन पुरुष तच्छापत्त्या अपने में अध्यस्त कर लेता है और वही तादात्म्यभाव अज्ञान या अविद्या का तथा संसरण चक्र का मूलभूत कारण है।

सांख्य एवं योग प्रकृति को भ्रम या माया नहीं समझते, अपितु उसे पारमार्थिक सत्ता प्रदान करते हैं। तथापि उसके गुणागुणों एवं धर्माधर्मों के अपने में किये अध्यारोप एवं अध्यास को अवश्यमेव मिथ्या मानते हैं।

सांख्य की दृष्टि में पुरुष का प्रकृति के साथ संयोग (अविद्या या अज्ञान का मूलभूत कारण) पुरुष को कैवल्य प्राप्त कराने के उद्देश्य से होता है। कैवल्य प्राप्त करा देने पर प्रकृति पुरुष के सम्पर्क से हट जाती है। जैसे कि स्तनपायी वत्सों को पिलाने के लिये दूध स्वत: ही स्तनों में उतर आता है, जिससे कि स्तनपायी वत्स क्षुधा मिटा सकें एवं पुष्ट हो सकें, उसी प्रकार पुरुष के विमोक्ष के निमित्त ही प्रधान की प्रवृत्ति होती है—

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्ति: प्रधानस्य।।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भ:।।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्।।
पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन।।

प्रकृति पुरुष को पुरुषार्थ साधन ही सदैव लक्ष्य में रखती है। जिस प्रकार कि समस्त लोक औत्सुक्य-निवृत्त्यर्थ कार्य किया करता है, उसी प्रकार अव्यक्त प्रकृति पुरुष के विमोक्षार्थ प्रवृत्त हुआ करती है—

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोक:।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्।।

जिस प्रकार नर्तकी दर्शकों को अपना अभिनय दिखाकर रंगमञ्च से निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रकृतिरूपी नर्तकी पुरुष को अपना स्वरूप दिखाकर निवृत्त हो जाती है—

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य निवर्तते प्रकृति:।।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।

यह उपकारिणी प्रकृति अनुपकारी पुरुष को मोक्ष दिलाने के लिये अनेकानेक

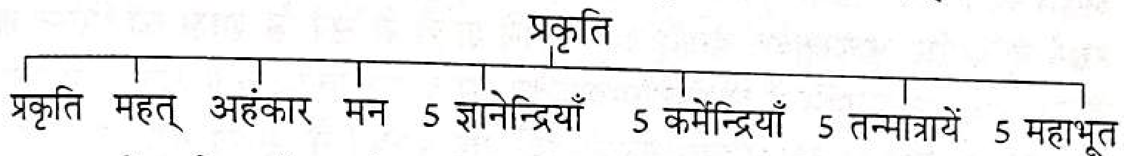
उपायों से पुरुष का निःस्वार्थ कल्याण-साधन करती है—

नानाविधैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्याऽर्थपार्थकं चरति।।

पुरुष एवं प्रकृति का पंग्वन्ध सम्बन्ध (या संयोग) का तथा उससे उत्पन्न सृष्टि का उद्देश्य पुरुष को तत्त्व-दर्शन कराना एवं प्रधान को कैवल्य दिलाना है—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो प्रकृतितत्त्व वेदान्त, न्याय, वैशेषिक आदि में बन्धन का कारण है, वही सांख्य एवं योग में मोक्ष का भी कारण है। इसमें प्रकृति का उद्देश्य ही पुरुष को कैवल्य प्राप्त कराना है। जबकि अन्य दर्शनों में प्रकृति जीवों को बन्धन-ग्रस्त करने मात्र का लक्ष्य रखती हुई-सी प्रतीत होती है। अविद्या एवं भ्रान्ति का कारण-भूत पुरुष-प्रकृति-संयोग बन्धन एवं कैवल्य दोनों का उपाय है। हेय एवं हान दोनों का कारण है। रामानुजीय दर्शन में प्रकृति की सृजन-प्रक्रिया निम्न है—



यहूदी धर्म का ईश्वर-प्रतिपक्षी 'आइवे' वस्तुतः अज्ञान का मूर्तरूप कहा जा सकता है। आदम और हौवा स्वर्ग में अदन के बाग में नंगे घूमते एवं आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। आइवे की इच्छा हुई कि मैं इन दोनों पर आधिपत्य जमाऊँ और भविष्यत में आने वाली इनकी सन्ततियों पर भी प्रभुत्व स्थापित करूँ। उसने इस भोली बुद्धि वाले दम्पति को भयंकर पिशाचलीलाओं से शंकोत्पादक क्रोध एवं मेघगर्जनों से भय-भीत कर दिया। आदम एवं हौवा अपने ऊपर उसकी छाया का अनुभव करके एक-दूसरे से चिपट गए। वे निःसहाय थे। प्रेम एवं प्रकाश से निर्मित, सोने के परों का-सा सर्प हृदय से उन पर द्रवीभूत हो गया। उसने उनके अन्तःकरण को बुद्धि के प्रकाश से आलोकित करने का विचार किया, जिससे कि वे ज्ञान से सतर्क हो जायँ एवं मिथ्या भय तथा भयंकर प्रेतलीलाओं से चिन्तित न हों। दयालु सर्प गुप्त रूप से इन प्राणियों का उद्धार करने का विचार करने लगा। आइवे अपने को अन्तर्यामी समझता था, किन्तु वह सूक्ष्मदर्शी नहीं था। सर्प ने इन प्राणियों के पास जाकर प्रथमतः अपने पैरों की सुन्दरता एवं चर्म-सौन्दर्य से मुग्ध कर दिया। देह से भिन्न-भिन्न आकार बनाकर उसने उनकी विचारशक्ति को जागृत कर दिया। आदम इन आकारों पर हौवा की अपेक्षा अधिक सोचता था, किन्तु लाल मिट्टी से बनाये जाने के कारण स्थूल बुद्धि-सा था और सूक्ष्म विवेचनों को ग्रहण नहीं कर पाता था। किन्तु हौवा अधिक चैतन्ययुक्त होने के कारण इन विषयों में अधिक आसक्ति रखती थी। अतः सर्प से एकान्त में इन विषयों पर निरूपण किया करती और स्वयं दीक्षित होकर बाद में पति को भी दीक्षित करने का विचार करती। सर्प के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को हौवा ने सहर्ष सुना और ज्ञानवृक्ष के समीप जाने को प्रस्तुत

हो गई। इस ज्ञानवृक्ष की शाखायें स्वर्ग तक सिर उठाये थीं। इस वृक्ष की पत्तियाँ समस्त संसार के प्राणियों की बोलियाँ बोलती थीं और उनके शब्दों के मिश्रण से अत्यन्त मधुर संगीत की ध्वनि निकलती थी। जो प्राणी इसका फल खाता था, उसे खनिज पदार्थों का, पत्थरों का, वनस्पतियों का, प्राकृतिक नियमों का एवं नैतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त हो जाता था। इसके फल अग्नि के समान थे। अत: भीरु प्राणी उन्हें ग्रहण नहीं करते थे। हौवा पति का हाथ पकड़कर ज्ञानवृक्ष के पास ले गई। उसने एक प्रज्वलित फल उठाया और उसे थोड़ा-सा काटकर खाया और शेष अपने चिरसंगी को दिया, किन्तु दैववशात् इसी समय आइवे उद्यान में टहल रहा था। ज्यों ही हौवा ने फल उठाया, वह उसके सिर पर आ पहुँचा। किन्तु जब उसे ज्ञान हुआ कि इन प्राणियों के ज्ञानचक्षु खुल गए हैं तो उसने भयंकर क्रोध किया। उसने अपनी सेना बुलाकर पृथ्वी के गर्भ में उपद्रव मचाया और वह दोनों काँपने लगे। फल आदम के हाथ से छूट गया। हौवा ने अपने पति के गर्दन में हाथ डालकर कहा—

मैं भी अज्ञानिनी बनी रहूँगी तथा अपने पति की विपत्ति में उसका साथ दूँगी। विजयी आइवे आदम और हौवा एवं उनकी भविष्य सन्तानों को भय की दशा में रखने लगा। उसने बृहदाकार आकाशवज्र बनाए और अपने शस्त्रों से सर्प के शास्त्र को परास्त कर दिया। अत: उसने प्राणियों को अज्ञानाच्छादित, मूर्ख एवं निर्दय बना दिया तथा संसार में कुकर्म का सिक्का चला दिया। लाखों वर्षों तक मनुष्यों ने सत्पथ नहीं पाया। बड़े-बड़े संतों ने (पीथागोरस, प्लेटो आदि तत्त्वज्ञानियों ने) भी सन्मार्ग खोजने का प्रयास किया, किन्तु वे न पा सके। बाद में नासरा के ईसू ने उस सन्मार्ग को निकाला, जो कि मानव कल्याण का स्रोत है।

उपर्युक्त घटना सृष्टि के आरम्भ में ही घटी। यह तब घटी, जबकि ईश्वर सृष्टि करके विश्राम भी नहीं कर पाये थे। इस कथानक में यह प्रतिपादित किया गया है कि सृष्टि के आदि से ही विद्या एवं अविद्या (ज्ञान एवं अज्ञान, प्रकाश एवं अन्धकार, सतोगुण एवं तमोगुण, दैवी सम्पदा एवं आसुरी सम्पदा) में निरन्तर संघर्ष होता रहा है। सर्प का एवं आदम का कृतकार्य न हो पाने का अर्थ यह है कि विश्व पर अज्ञान या अविद्या का इतना प्रबल आधिपत्य है कि ज्ञान वहाँ पहुँचने में पंगु हो जाता है। ज्ञान के फल का अग्निवत् होने का अर्थ यह है कि वह अग्नि के समान तीक्ष्ण, सूक्ष्म तथा अत्यधिक दुर्ग्राह्य है। आइवे का समस्त विश्व पर एकछत्र राज्य इस बात का प्रतीक है। विश्व में अज्ञान या अविद्या का प्रभाव जितना अधिक प्राणिजगत् पर है, उतना विद्या या ज्ञान का नहीं। इस कथानक से यह सिद्ध होता है कि अविद्या या अज्ञान समस्त विश्व पर एकछत्र राज्य करने वाली दुरत्यया महती शक्ति है; लेकिन इसका सम्बन्ध आइवे से बताकर यह भी सिद्ध किया गया है कि यह अज्ञान शक्ति ईश्वर से असम्बद्ध है, किन्तु भारतीय दर्शनों में आवरण एवं विक्षेप दोनों अज्ञान शक्तियों को पारमेश्वरी शक्ति माना गया है।





एकोनत्रिंश अध्याय

शक्तिपीठ एवं शक्ति-साधना

दक्ष के यज्ञभंग के अनन्तर विष्णु के चक्र से सती का अंग-प्रत्यंग जहाँ-जहाँ गिरा था, वे सभी स्थान देवीपीठ के नाम से प्रसिद्ध हो गए। वे संख्या में इक्यावन पीठ हैं, जो निम्नांकित हैं—

स्थान	अंग/अंगाभूषण	शक्ति	भैरव
1. हिंगुला	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टवीशा	भीमलोचन
2. शर्करा	तीन चक्षु	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
3. सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
4. काश्मीर	कण्ठदेश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर
5. ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्तभैरव
6. जलन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
7. वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
8. नेपाल	जानु	महामाया	कपाली
9. मानस	दक्षिण हस्त	दाक्षायणी	अमर
10. उत्कल में विरजाक्षेत्र	नाभिदेश	विमला	जगन्नाथ
11. गण्डकी	गण्डस्थल	गण्डकी	चक्रपाणि
12. बहुला	वाम बाहु	बहुला देवी	भीरुक
13. उज्जयिनी	कूर्पर	मंगलचण्डिका	कपिलाम्बर
14. त्रिपुरा	दक्षिण पाद	त्रिपुरसुन्दरी	त्रिपुरेश
15. चहल	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
16. त्रिस्रोता	वाम पाद	भ्रामरी	भैरवेश्वर
17. कामगिरि	योनिदेश	कामाख्या	उमानन्द
18. प्रयाग	हस्तांगुलि	ललिता	भव
19. जयन्ती	वाम जंघा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
20. युगाद्या	दक्षिणांगुष्ठ	भूतदात्री	क्षीरखण्डक

स्थान	अंग/अंगाभूषण	शक्ति	भैरव
21. कालीपीठ	दक्षिणपादांगुलि	कालिका	नकुलीश
22. किरीट	किरीट	विमला	संवर्त
23. वाराणसी	कर्णकुण्डल	विशालाक्षी (मणिकर्णिका)	कालभैरव
24. कन्याश्रम	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष
25. कुरुक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु
26. मणिबन्ध	दो मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
27. श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
28. काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु
29. कालमाधव	नितम्ब	काली	असितांग
30. शोणदेश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन
31. रामगिरि	अन्य स्तन	शिवानी	चण्डभैरव
32. वृन्दावन	केशपाश	उमा	भूतेश
33. शुचि	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
34. पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	महारुद्र
35. करतोयातट	तल्प	अपर्णा	वामनभैरव
36. श्रीपर्वत	दक्षिण गुल्फ	श्रीसुन्दरा	सुन्दरानन्दभैरव
37. विभाष	वाम गुल्फ	कपालिनी	सर्वानन्द
38. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
39. जनस्थल	दोनों चिबुक	भ्रामरी	विकृताक्ष
40. सर्वशैल	वाम गण्ड	राकिनी	वत्सनाभ
41. गोदावरी तट	गण्ड	विश्वेशी	दण्डपाणि
42. रत्नावली	दक्षिण स्कन्ध	कुमारी	शिव
43. मिथिला	वाम स्कन्ध	उमा	महोदर
44. नलहाटी	नला	कालिका देवी	योगेश
45. कर्णाट	कर्ण	जयदुर्गा	अभीरु
46. वक्रेश्वर	मन	महिषमर्दिनी	वक्रनाथ
47. यशोर	पाणिपद्म	यशोदेश्वरी	चण्ड
48. अट्टहास	ओष्ठ	कुल्लरा	विश्वेश
49. लंका	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षसेश्वर

किसी ग्रन्थ में दो अन्य शक्तिपीठों का भी नामोल्लेख किया गया है, जो निम्नाङ्कित हैं—

स्थान	अंग/अंगाभूषण	शक्ति	भैरव
विराट	पादांगुलि	अम्बिका	अमृत
मगध	दक्षिणजंघा	सर्वानन्दकरी	व्योमकेश

तन्त्रचूड़ामणि नामक ग्रन्थ में स्थान, अंग, भैरव एवं शक्ति का नामोल्लेख किया गया है; पर देवीभागवतपुराण में नहीं।

देवीभागवतपुराण में 108 पीठस्थानों का भी उल्लेख मिलता है। व्यास जी ने जनमेजय से इन पीठों की चर्चा की है। वे 108 पीठ निम्नांकित हैं—

स्थान	देवता	स्थान	देवता
1. वाराणसी	विशालाक्षी	25. रुद्रकोटि	रुद्राणी
2. नैमिषारण्य	लिङ्गधारिणी	26. कालञ्जर	काली
3. प्रयाग	ललिता	27. शालग्राम	महादेवी
4. गन्धमादन	कामुकी	28. शिवलिंग	जलप्रिया
5. दक्षिणमानस	कुमुदा	29. महालिंग	कपिला
6. उत्तर मानस	विश्वकामा	30. माकोट	मुकुटेश्वरी
7. गोमन्त	गोमती	31. मायापुरी	कुमारी
8. मन्दर	कामचारिणी	32. सन्तान	ललिताम्बिका
9. चैत्ररथ	मदोत्कटा	33. गया	मंगला
10. हस्तिनापुर	जयन्ती	34. पुरुषोत्तम	विमला
11. कान्यकुब्ज	गौरी	35. सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी
12. मलय	रम्भा	36. हिरण्याक्ष	महोत्पला
13. एकाग्र	कीर्तिमती	37. विपाशा	अमोघाक्षी
14. विश्व	विश्वेश्वरी	38. पुण्ड्रवर्धन	पाटला
15. पुष्कर	पुरुहूता	39. सुपार्श्व	नारायणी
16. केदार	सन्मार्गदायिनी	40. त्रिकटु	रुद्रसुन्दरी
17. हिमवत्पृष्ठ	मन्दा	41. विपुल	विपुला
18. गोकर्ण	भद्रकर्णिका	42. मलयाचल	कल्याणी
19. स्थानेश्वर	भवानी	43. सह्याद्रि	एकवीरा
20. बिल्वक	बिल्वपत्रिका	44. हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका
21. श्रीशैल	माधवी	45. रामतीर्थ	रमणी
22. भद्रेश्वर	भद्रा	46. यमुना	मृगावती
23. वराहशैल	जया	47. कोटितीर्थ	कोटवी
24. कमलालय	कमला	48. मधुवन	सुगन्धा

स्थान	देवता	स्थान	देवता
49. गोदावरी	त्रिसन्ध्या	79. सिद्धवन	लक्ष्मी
50. गंगाद्वार	रतिप्रिया	80. भरताश्रम	अनंगा
51. शिवकुण्ड	शुभानन्दा	81. जालन्धर	विश्वमुखी
52. देविकातट	नन्दिनी	82. किष्किन्धा पर्वत	तारा
53. द्वारावती	रुक्मिणी	83. देवदारु वन	पुष्टि
54. वृन्दावन	राधा	84. काश्मीरमण्डल	मेधा
55. मथुरा	देवकी	85. हिमाद्रि	भीमादेवी
56. पाताल	परमेश्वरी	86. विश्वेश्वर	तुष्टि
57. चित्रकूट	सीता	87. शंखोद्धार	धरा
58. विन्ध्य	विन्ध्यवासिनी	88. पिण्डारक	धृति
59. करवीर	महालक्ष्मी	89. चन्द्रभागा	कला
60. विनायक	उमादेवी	90. अच्छोद	शिवधारिणी
61. वैद्यनाथ	आरोग्या	91. वेणा	अमृता
62. महाकाल	महेश्वरी	92. बदरी	उर्वशी
63. ऊष्णतीर्थ	अभया	93. उत्तर कुरु	ओषधि
64. विन्ध्य पर्वत	नितम्बा	94. कुशद्वीप	कुशोदका
65. माण्डव्य	माण्डवी	95. हेमकूट	मन्मथा
66. माहेश्वरीपुर	स्वाहा	96. कुमुद	सत्यवादिनी
67. छगलण्ड	प्रचण्डा	97. अश्वत्थ	वन्दनीया
68. अमरकण्टक	चण्डिका	98. कुबेरालय	निधि
69. सोमेश्वर	वरारोहा	99. वेदवदन	गायत्री
70. प्रभास	पुष्करावती	100. शिवसन्निधि	पार्वती
71. सरस्वती	देवमाता	101. देवलोक	इन्द्राणी
72. तट	पारावारा	102. ब्रह्ममुख	सरस्वती
73. महालय	महाभागा	103. सूर्यबिम्ब	प्रभा
74. पयोष्णी	पिंगलेश्वरी	104. मातृमध्य	वैष्णवी
75. कृतशौच	सिंहिका	105. सतीमध्य	अरुन्धती
76. कार्तिक	अतिशांकरी	106. स्त्रीमध्य	तिलोत्तमा
77. उत्पलावर्तक	लीला	107. चित्रमध्य	ब्रह्मकला
78. शोणसंगम	सुभद्रा	108. सर्वप्राणीवर्ग	शक्ति

देवीगीता में देवीपीठों की संख्या मात्र बहत्तर बताई गई है।

शक्ति-पीठ : उनका विवरण तथा महत्त्व

भगवती 'छाया सती' के अंग जहाँ-जहाँ कट-कट कर गिरते गये, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठ बनते गये। इनकी संख्या इक्यावन है—

पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव।
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन छायासत्या महीतले।।

(देवीभागवतपु.-22.29-30)

इनकी संख्या के विषय में मतभेद भी है। तन्त्रचूड़ामणि नामक ग्रन्थ में इनकी संख्या बावन बताई गई है। देवीभागवतपुराण में इनकी संख्या एक सौ आठ बताई गई है। देवीगीता में इनकी संख्या बहत्तर बताई गई है एवं देवीपुराण (महाभागत) में इनकी संख्या इक्यावन बताई गई है। शक्तिपीठों के निर्माण के विषय में 'सती' ने निर्माण के पूर्व ही भविष्य वाणी कर दी थी—

स देहो बहुधा भूत्वा पतिष्यति धरातले।
तत्र तद्धि महापीठं भविष्यत्यघनाशनम्।। (11.41)

महाभागवतकार कहते हैं—

विष्णुचक्रेण सञ्छिन्नास्तद्देहावयवा पृथक्।
पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव।
अङ्गप्रत्यङ्ग पातेन छायासत्या महीतले।।

तन्त्रचूड़ामणि एवं महापीठनिर्णय आदि ग्रन्थों में भी इक्यावन पीठों का उल्लेख है—

पञ्चाशदेकपीठानि एवं भैरवदेवता:।
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन विष्णुचक्रक्षतेन च।।

ब्रह्मरन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भीमलोचन:।
कोट्टरी सा महामाया त्रिगुणा या दिगम्बरी।।

करवीरे त्रिनेत्रं ने देवी महिषमर्दिनी।। आदि।

देवीभागवतपुराण में एक सौ आठ शक्तिपीठों का उल्लेख किया गया है; किन्तु महापीठों एवं उपपीठों की संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। शिवचरित में इक्यावन पीठों का उल्लेख है। कालिकापुराण (18.42-51) में महापीठों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

देवीकूटे पादयुग्मं प्रथमं न्यपतद्भुवौ।
उड्डीयाने चोरुयुग्मं हिताय जगतां तत:।।

जालन्धरे स्तनयुग्मं स्वर्णहारविभूषितम्।
अंशग्रीवं पूर्णगिरौ कामरूपात् तत: शिर:।।

महाकालसंहिता, देवीपुराण एवं अन्य ग्रन्थों में इक्यावन और एक सौ आठ

शक्तिपीठों का विवरण दिया गया है। तन्त्रशास्त्र में इक्यावन पीठाधिष्ठत्री देवियों को विद्या के रूप में स्वीकार किया गया है।

शक्तिपीठ के तीन अर्थ हो सकते हैं—शक्तिरूप पीठ, शक्ति का अभिव्यञ्जक स्थान एवं शक्ति का आश्रय। भगवती सती के शवरूप दिव्य अंग, केश और उनकी छाया के योग से भूमिविशेष को 'शक्तिपीठ' कहा गया है। उनके वक्ष:स्थल से निर्गत जलधारा, वस्त्राभूषण, लोमादिक के निपातस्थली को 'उपपीठ' कहा गया है। भवगती सती योगनिद्रा हैं। भगवती पार्वती योगमाया हैं। तमोयुक्त सत्त्वप्रधाना प्रकृति योगनिद्रा है; किन्तु विशुद्ध सत्त्वात्मिका प्रकृति योगमाया है।

छायासती के कटे अंग एवं शक्तिपीठ का विवरण

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
1. योनि	कामरूप पीठ (श्रीविद्याधिष्ठित)	अकार की उत्पत्ति	साधना करने पर प्राप्त सिद्धि—अणिमादि सिद्धि (कौल शास्त्र)। लोम से दो 'वंश' नामक उपपीठों का भी आविर्भाव हुआ। यहाँ शाबर मन्त्रों की सिद्धि होती है।
2. स्तन	काशिका पीठ	आकार की उत्पत्ति	यहाँ देहत्याग करने से मुक्ति मिलती है। सती के स्तनों से नि:सृत दो जलधारायें ही असी और वरणा नदी हैं। असी के तट पर 'दक्षिण सारनाथ' एवं वरणा नदी के उत्तर में 'उत्तर सारनाथ' नामक दो उपपीठ हैं। वहाँ क्रमशः दक्षिण एवं उत्तर मार्ग के मन्त्रों की सिद्धि होती है।
3. गुह्य भाग	नेपाल पीठ	इकार की उत्पत्ति	यह पीठ वाममार्ग का मूल केन्द्र है। यहाँ 56 लाख भैरव-भैरवी, 2000 शक्तियाँ, 300 पीठ एवं 14 श्मशान हैं। यहाँ दक्षिणमार्ग के 4 पीठ सिद्धिप्रद हैं। उनमें से 4 में वैदिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। नेपाल से पूर्व 'मल' गिरा। वहाँ किरात रहते हैं। वहाँ 30 हजार देवयोनियाँ रहती हैं।
4. वामनेत्र	रौद्र पर्वत	ईकार की उत्पत्ति	यहाँ वामाचार-साधना से मन्त्रसिद्धि एवं देवदर्शन प्राप्त होता है।

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
5. वाम कर्ण	काश्मीर पीठ	उकार की उत्पत्ति	यहाँ सभी प्रकार के मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। यद्यपि यहाँ अनेक अद्भुत तीर्थ हैं, तथापि वे म्लेच्छ-दूषित हैं।
6. दक्षिण कर्ण	कान्यकुब्ज पीठ	ऊकार की उत्पत्ति	गंगा-यमुना के मध्य अन्तर्वेदी नामक पवित्र स्थल में ब्रह्मादि देवों ने अपने-अपने तीर्थों का निर्माण किया है। वहाँ वैदिक मन्त्रों की सिद्धि होती है। कान के मल के गिरने के स्थान में यमुना तट पर इन्द्रप्रस्थ नामक उपपीठ है। उसके प्रभाव से विस्मृत वेद ब्रह्मा को पुन: प्राप्त हो गए।
7. नासिका	पूर्णगिरिपीठ	ऋकार की उत्पत्ति	यहाँ योगसिद्धि होती है और मन्त्र के अधिष्ठाता देवता का साक्षात्कार होता है।
8. वाम गण्डस्थल	अर्बुदाचल पीठ	ॠकार की उत्पत्ति	यहाँ अम्बिका नामक शक्ति हैं। यहाँ वाममार्ग की सिद्धि होती है। यहाँ दक्षिणमार्ग की साधना में विघ्न पड़ते हैं।
9. दक्षिण गण्डस्थल	आम्रतकेश्वर पीठ	ऌकार की उत्पत्ति	यह धनदा आदि यक्षिणियों का स्थान है।
10. नख	(नख के गिरने के स्थान में) एकाम्र पीठ	ॡकार की उत्पत्ति	यह विद्याप्रदायक पीठ है।
11. त्रिवलि के गिरने से	त्रिस्रोत पीठ का आविर्भाव	एकार का जन्म	इसके पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में वस्त्र के तीन खण्ड गिरे। वे तीनों तीन उपपीठ बन गये। गृहस्थ द्विज को पौष्टिक मन्त्रों की सिद्धि यहीं होती है।
12. नाभि	कामकोटि पीठ	'ऐ' वर्ण का आविर्भाव	यहाँ समस्त काममन्त्रों की सिद्धि होती है। उसके चतुर्दिक चार उपपीठ हैं। वहाँ अप्सरायें रहती है।
13. उँग-लियाँ	हिमालय पर्वत पर कैलासपीठ	ओकार वर्ण का जन्म	उँगलियाँ ही लिंगरूप में प्रतिष्ठित हुईं। यहाँ करमाला से जप करने पर तत्काल सिद्धि होती है।

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
14. दाँत	दाँतों के गिरने से उत्पन्न भृगुपीठ	औकार का जन्म	वैदिक आदि मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।
15. दक्षिण करतल	केदार पीठ	अं की उत्पत्ति	इसके दक्षिण में कंकण के गिरने से अगस्त्याश्रम नामक उपपीठ की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चिम में मुद्रिका गिरने से वहाँ इन्द्राक्षी उपपीठ का आविर्भाव हुआ। इसके पश्चिम में वलय के गिरने से उस स्थान में रेवती तट पर राजराजेश्वरी उपपीठ की उत्पत्ति हुई।
16. वाम गण्ड	चन्द्रपुर पीठ	अः की उत्पत्ति	यहाँ सभी प्रकार के मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।
17. मस्तक	श्रीपीठ	ककार की उत्पत्ति	यह कलि के पापी जीवों के लिए अगम्य है। इसके पूर्व में कर्णाभरण गिरा था; अतः वहाँ जो उपपीठ बना, उसमें ब्रह्मविद्या-प्रकाशिका ब्राह्मी शक्ति का निवास है। उससे अग्निकोण में कर्णाभरण गिरने से जो उपपीठ बना, वहाँ मुखसुद्धिकरी माहेश्वरी शक्ति हैं। दक्षिण में पत्रवल्लकी स्थान में कौमारी शक्तियुक्त तृतीय उपपीठ है। नैर्ऋत्य में कण्ठमाल के गिरने से इन्द्रजाल विद्या-सिद्धिप्रद वैष्णवी शक्तिसम्पन्न चतुर्थ पीठ है। पश्चिम में नासामौक्तिक के गिरने से वाराही शक्ति से अधिष्ठित पाँचवाँ उपपीठ उदित हुआ। वायुकोण में मस्तकाभरण गिरने से चामुण्डा शक्ति-अधिष्ठित क्षुद्रदेवतासिद्धकर छठवाँ उपपीठ उत्पन्न हुआ। ईशान में केशाभरण गिरने से वहाँ महालक्ष्मी-अधिष्ठित सप्तम उपपीठ निर्मित हुआ।
18. कञ्चुकी		खकार की उत्पत्ति	यह ज्योतिर्मन्त्र-प्रकाशक एवं ज्योतिष्मती द्वारा अधिष्ठित है। यह पीठ नर्मदा द्वारा अधिष्ठित है। यहाँ तप करने वाले महर्षि जीवन्मुक्त हो गये।

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
19. वक्षः-स्थल		गकार वर्ण की उत्पत्ति	यहाँ अग्नि ने तपस्या की और देवताओं का मुख बनकर ज्वालामुखी उपपीठ में स्थित हुये।
20. वाम स्कन्ध	मालव पीठ	घकार की उत्पत्ति	यहाँ पर गन्धर्वों ने राग-ज्ञान के लिए तप किया और सिद्धि प्राप्त की।
21. दक्षिण कक्ष	कुलान्तक पीठ	ङकार की उत्पत्ति	यहाँ पर विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण के प्रयोग सिद्ध होते हैं।
22. वाम कक्ष	कोट्टक पीठ	चकार की उत्पत्ति	यहाँ राक्षसों ने सिद्धि प्राप्त की थी।
23. जठर देश	गोकर्ण पीठ	छकार की उत्पत्ति	
24. प्रथम वलि	मातुरेश्वर पीठ	जकार की उत्पत्ति	यहाँ शैव मन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं।
25. अपर वलि	अट्टहास पीठ	झकार की उत्पत्ति	यहाँ पर गणेश मन्त्रों की शीघ्र सिद्धि होती है।
26. तृतीय वलि	विरज पीठ	ञकार की उत्पत्ति	यहाँ पर विष्णुमन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं।
27. वस्ति	राजगृहपीठ	टकार की उत्पत्ति	क्षुद्रघण्टिका के गिरने के स्थान में घण्टिका नामक उपपीठ उत्पन्न हुआ। यहाँ इन्द्रजाल विद्या में सिद्धि प्राप्त होती है। राजगृह में वेदार्थ-ज्ञान प्राप्त होता है।
28. नितम्ब	महापथ पीठ	ठकार की उत्पत्ति	यहाँ अघोर आदि मार्गों का प्रवर्त्तन हुआ।
29. जघन	कौलगिरि पीठ	डकार की उत्पत्ति	यहाँ वनदेवताओं के मन्त्रों की सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है।
30. दक्षिण उरु	एलारपीठ	ढकार की उत्पत्ति	
31. वाम उरु	महाकालेश्वर पीठ	णकार की उत्पत्ति	यहाँ आयुर्वृद्धिकारक मृत्युञ्जय आदि मन्त्र सिद्ध होते है।

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
32. दक्षिण जानु	जयन्ती पीठ	तकार की उत्पत्ति	यहाँ धनुर्वेद की सिद्धि होती है।
33. वाम जानु	उज्जयिनी पीठ	थकार की उत्पत्ति	यहाँ कवचमन्त्रों की सिद्धि होती है। इसका नाम 'अवन्ती' है।
34. दक्षिण जंघा	योगिनी पीठ	दकार की उत्पत्ति	यहाँ कौलिक मन्त्रों की सिद्धि होती है।
35. वाम जंघा	क्षीरिका पीठ	धकार की उत्पत्ति।	यहाँ वैतालिक एवं शाबर मन्त्र सिद्ध होते है।
36. दक्षिण गुल्फ	हस्तिनापुर पीठ	नकार की उत्पत्ति	यहाँ नूपूर गिरा था। उपपीठ—नूपुरार्णव। यहाँ सूर्यमन्त्रों की सिद्धि होती है।
37. वाम गुल्फ	उड्डीशपीठ	पकार की उत्पत्ति	यहाँ उड्डीश तन्त्र सिद्ध होता है। दूसरे नूपुर गिरने का स्थान है—'डामर' उपपीठ।
38. देहरस	प्रयाग पीठ	फकार की उत्पत्ति	यहाँ अस्थियाँ गिरी थीं। गंगा के पूर्व में बगला उपपीठ, उत्तर में चामुण्डा उपपीठ, गंगा-यमुना के मध्य में राजराजेश्वरी पीठ, यमुना के दक्षिण तट पर भुवनेशी उपपीठ है।
39. दक्षिण पृष्णि	षष्ठीश पीठ	बकार की उत्पत्ति	यहाँ पादुकामन्त्र की सिद्धि होती है।
40. वाम पृष्णि	मायापुर पीठ	भकार की उत्पत्ति	यहाँ मायाओं की सिद्धि होती है।
41. रक्त	मलयपीठ	मकार की उत्पत्ति	रक्ताम्बरादिक बौद्धों के मन्त्र सिद्ध होते हैं।
42. पित्त	श्रीशैल पीठ	यकार की उत्पत्ति	यहाँ वैष्णव मन्त्र सिद्ध होते हैं।
43. मेद	हिमालय पर मेरुपीठ	रकार की उत्पत्ति	यहाँ पर स्वर्णाकर्षण भैरव की सिद्धि होती है।
44. जिह्वाग्र भाग	गिरिपीठ	लकार की उत्पत्ति	यहाँ जप करने से वाक् सिद्धि होती है।

सती के अंग	उत्पन्न पीठ (अंग के गिरने का स्थान)	अक्षरोत्पत्ति	विवरण
45. मज्जा	माहेन्द्र पीठ	वकार की उत्पत्ति	यहाँ शाक्त मन्त्रों के जप से सिद्धि होती है।
46. दक्षिण अंगुष्ठ	वामन पीठ	शकार की उत्पत्ति	यहाँ समस्त मन्त्रों की सिद्धि होती है।
47. वामा-ङ्गुष्ठ	हिरण्यपुर पीठ	षकार की उत्पत्ति	यहाँ वाम मार्ग से सिद्धि प्राप्त होती है।
48. रुचि (शोभा)	महालक्ष्मीपीठ	सकार की उत्पत्ति	सभी सिद्धियाँ प्राप्य।
49. धमनी	अत्रिपीठ	हकार की उत्पत्ति	सभी सिद्धियाँ प्राप्य।
50. छाया का सम्पात	छायापीठ	ळकार की उत्पत्ति	
51. केश-पाश	क्षत्रपीठ	क्षकार की उत्पत्ति	यहाँ समस्त सिद्धियाँ शीघ्रता से प्राप्य हैं।





त्रिंश अध्याय

वर्णविज्ञान एवं शक्ति-साधना

आधुनिक विज्ञान के विपरीत भारतीय वर्णविज्ञान की दृष्टि यह है कि—

1. विश्व के समस्त तत्त्व वर्णों के रूप हैं।

2. समस्त जगत् वर्णस्वरूपा शक्ति (कुण्डलिनी = महाकुण्डलिनी) में अवस्थित है।

3. विश्व की प्रथम सृष्टि नादात्मिका सृष्टि है, 'नाद सृष्टि' है और द्वितीय सृष्टि 'आर्थी सृष्टि' है। अत: इस दृश्यमान स्थूल जगत् (आर्थी सृष्टि) के अन्तस्तल में एक शाब्दी सृष्टि भी है और उसी से आर्थी सृष्टि का विकास हुआ है; साथ ही प्रलय के समय यह समस्त आर्थी सृष्टि अपने कारणरूप शाब्दी सृष्टि में लयीभूत हो जायेगी।

4. जो आधुनिक वैज्ञानिक आर्थी सृष्टि के स्थूल धरातल की खोजें करके इसकी सृष्टि के मूल तत्त्व या मूल स्रोत को किन्हीं भौतिक पदार्थों में निहित बताते हैं, वे भूल करते हैं; क्योंकि वे यह तो मानते हैं कि पदार्थों का रूपान्तरण शक्ति में एवं शक्ति का पदार्थों में (स्वरूपान्तर) हो सकता है, तो उन्हें यह भी मानना ही चाहिये कि विज्ञान की इस भौतिक शक्ति का रूपान्तरण भी किसी अचिन्त्य ब्रह्माण्डीय शक्ति में हो सकता है। यही अचिन्त्य, नित्य, सार्वभौम, सर्वानुस्यूत एवं सर्वरूप महाशक्ति ही अध्यात्म शास्त्र की चेतन मूल प्रकृति है। यह वर्णात्मिका है।

5. वर्णविज्ञानियों ने वर्णों को सृष्टि का मूल तत्त्व, स्रष्टा, पालक, संहर्ता माना है। वर्ण नित्य, सार्वभौम, अक्षर एवं सर्वाधिष्ठित चेतन तत्त्व हैं। ये ही जड़-चेतन सृष्टि के मूल कारण हैं। वर्णसमष्टि का भी एक मूल स्रोत है एवं शब्दब्रह्म का भी एक मूल उत्स है और वह है—जगदीश्वरी शक्ति। प्रत्येक वर्ण की भी एक अधिष्ठातृ शक्ति है। अत: प्रत्येक वर्ण एक मन्त्र है, एक चेतन दिव्य शक्ति है और सृष्टि का संघटक तत्त्व है।

उपर्युक्त तथ्यों को भारतीय व्याकरणागम भी स्वीकार करते हुए कहता है कि वर्ण शक्तियों के रूप हैं और सृष्टि की स्रोतस्विनी उन्हीं से नि:सृत हुई है।

व्याकरणागम और सृष्टि-विज्ञान

अकार = ब्रह्मप्रकाशात्मक परमेश्वर

अकारो ब्रह्मरूप: स्यान्निर्गुण: सर्ववस्तुषु।
चित्कलाभि: समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वर:।।

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः।
सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत्।।

ज्ञप्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक् ततः स्मृता।
वक्त्रे विशुद्धचक्राख्ये वैखरी सा मता ततः।

सृष्ट्याविर्भावमासाद्य मध्यमा वाक् समा मता।।

इकार— अकारं सन्निधीकृत्य जगतां कारणत्वतः।
इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं गतम्।।

जगत् स्रष्टुमभूदिच्छा यदा ह्यासीत्तदाभवत्।
कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगाः।।

अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला मता।।

इकार = चित्कला

उकार— उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापिकत्वान्महेश्वरः।

(उकार = व्यापक विष्णु)

ऋ—(ऋ = परमेश्वर। ऌ = माया नामक मनोवृत्ति।
ऋ ने 'ऌ' के द्वारा ही जगत् की सृष्टि की—उपमन्यु।)

ऋऌक् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत्।
तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत्।।

स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मीलयत्यसौ।
वर्णानां मध्यमं क्लीबमृऌवर्णद्वयं बिदुः।।

ए ओ—(ए + ओ = मायेश्वरात्मैक्य विज्ञान)

एओङ्मायेश्वरात्म्यैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु।
साक्षित्वात् सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम्।

ऐ औ—(ऐ = ज्ञानशक्ति। ऐ + औ = ब्रह्म)

ऐऔच्ब्रह्मस्वरूपः सन् जगत् स्वान्तर्गतं ततः।
इच्छया विस्तरं कर्त्तुमाविरासीन्महामुनिः।।

ह य व र ट्—(आकाश-वायु-जल-अग्नि के द्योतक।)

भूतपञ्चकमेतस्माद्धयवरण्कमहेश्वरात् ।
व्योमवाखवम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत्स एव हि।।

हकाराद्व्योमसंज्ञं च यकाराद्वायुरुच्यते।
रकाराद्वह्नितोयं तु वकारादिति सैव वाक्।।

(ह → व्योम। य → वायु। र → वह्नि)

ल ण्— आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम्।
अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम्।।

ञ, म, ङ, ण न म्—

शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाश्च ञमङणनम्।
व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु।।

झ भ ञ्—

वाक् पाणी च झ-भ-ञासीद्विराड्रूपचिदात्मनः।
सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते।
वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियमया हि ते।।

घ ढ ध ष्—

घढधष् सर्वभूतानां पाद पायू उपस्थकः।
कर्मेन्द्रियगणा ह्येते जाता हि परमार्थतः।।

जबगडदश्—

श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वाधीन्द्रियपञ्चकम्।
सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश्।।

ख फ छ ठ थ च ट तव्—

प्राणादिपञ्चकं चैव मनोबुद्धिरहंकृतिः।
बभूव कारणत्वेन ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-व्।
वर्गद्वितीयवर्णोत्थाः प्राणाद्याः पञ्च वायवः।
मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः।।

क प य्—

प्रकृतिं पुरुषश्चैव सर्वेषामेव सम्मतम्।
सम्भूतमिति विज्ञेयं क-प-य् स्यादिति निश्चितम्।।

श ष स र्—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।
समाश्रित्य महोदवः श-ष-सर् क्रीड़ति प्रभुः।।

शकाराद्राजसोद्भूतिः षकारात्तामसोद्भवः।
सकारात् सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः।।

हल्— तत्त्वातीतः परः साक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः।
अहमात्मा परो हल् स्यामिति शम्भुस्तिरोदधे।।

(नन्दिकेश्वर : काशिका)

व्याकरणागम की दृष्टि—पाणिनि का व्याकरण शैवागम के अन्तर्गत ही माना जाता है। यह वह साधना है, जिसके द्वारा साधक संसार से मुक्त होकर परम तत्त्व की प्राप्ति करता है। व्याकरण का दर्शन पतञ्जलि के महाभाष्य, वाक्यपदीय (भर्तृहरि—6 सदी) एवं नागेश भट्ट (18वीं सदी) के लघुमञ्जूषा में प्राप्त होता है। भर्तृहरि और उनका वाक्यपदीय ग्रन्थ व्याकरणागम की दार्शनिक दृष्टि का प्रधान ग्रन्थ है।

भर्तृहरि की शब्दाद्वैतात्मक दार्शनिक दृष्टि—भर्तृहरि के मतानुसार शब्दाद्वैत का अर्थ है—स्फोटरूप शब्द ही सत्यभूत पदार्थ है। समस्त जगत् इसी स्फोट का एक विवर्तमात्र है।

सामान्यत: तो वाणी के चार प्रकार हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। 'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि। तानि विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिण:' कहकर वाणी का चतुर्विधाये विभाजन वेद ने भी स्वीकार किया है; किन्तु भर्तृहरि: ने वाणी के तीन ही प्रकार स्वीकार किये हैं—पश्यन्ती वाक्, मध्यमा वाक् एवं वैखरी वाक्। उनके अनुसार अक्षर, शब्दब्रह्म और परावाक् 'पश्यन्ती वाक्' के ही नामान्तर हैं। आचार्य सोमानन्दपाद ने शिवदृष्टि (2.1) में कहा है—

अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता।
वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थिति:।।

उन्होंने वैयाकरणों के शब्दपरब्रह्माद्वयवाद का खण्डन करके ईश्वराद्वयवाद का प्रतिपादन भी किया है। आचार्य उत्पलदेव ने इसी दिशा में कहा था—'ईश्वराद्वयवाद इति युक्तियुक्तो न तु शब्दपरब्रह्माद्वयवाद इति वक्तुं वैयाकरणोपेतशब्दाद्वैतं तावन्निराकर्तुमुपक्रम-माणा आह—

अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता।
वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थिति:।।

इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम्।
तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक्।।

वैयाकरणों की दृष्टि में पश्यन्ती वाक् ही परब्रह्म है। वैयाकरण यह भी मानते हैं कि शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

पश्यन्ती वाक् चैतन्यरूपा वाक् है। यह अखण्ड, अक्षर, नित्य, अभिन्न एवं अद्वय-तत्त्व है। इसमें ग्राह्य और ग्राहक का भेद भी नहीं है। इसमें देशगत-कालगत क्रम का आभास भी नहीं है। यह अक्रमा, प्रतिसंहृतक्रमा है।

पश्यन्ती ही विवक्षा के उद्देश्य से मनोविज्ञान का स्वरूप धारण करती है और तब उसे मध्यमा वाक् कहा जाता है।

जब इन्द्रियाभिघात के कारण प्राण में स्थूल वृत्ति का उन्मेष होता है तब उसे

वैखरी वाक् कहते हैं अर्थात् पश्यन्ती वाक् ही मुख में आकर कण्ठ, तालु आदि स्थानों के विभाजन से बोली जाने पर वैखरी वाक् कही जाने लगती है। यही वाह्यार्थ की वासना से प्रेरित होकर अविद्या के प्रभाव से घट, पट आदि अर्थ के रूप में इन्द्रियगोचर हो उठती है। इस प्रकार शब्दब्रह्म ही अनादि अविद्यारूपी वासना के कारण अर्थ के रूप में रूपान्तरित हो उठता है।

चूँकि वाच्य की सत्ता वाचक से पृथक् नहीं होती, जो कुछ भी अवस्थित है, वाचक (शब्द) ही है। ज्ञानमात्र ही वाक् का स्वरूप है। यही वाक् परमतत्त्व है। भर्तृहरि इसी बात को इस प्रकार कहते हैं—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।

भर्तृहरि त्रयी वाक् के प्रतिपादक थे—

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाच: परं पदम्।।[1]

यही परा वाक् अन्य दार्शनिकों की दृष्टि में 'परा वाक्' है। हेलाराज कहते हैं— 'संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयीति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते। विवर्तदशायां तु वैखर्यात्मना भेद:।'

भर्तृहरि तान्त्रिक दृष्टि (वाणी के चार भेद) नहीं मानते; किन्तु नागेश ने लघुमञ्जूषा में वाक् के चार भेद स्वीकार किये हैं।

भर्तृहरि मूल तत्त्व को 'प्रतिभा' कहते हैं। वाक् अपनी सम्पूर्णता के स्तर पर यही प्रतिभा है। वैखरी समस्त व्यक्ताव्यक्त वर्ण, साधु-असाधु (अपभ्रंश) शब्द को द्योतित करती है। मध्यमा अन्त:सन्निवेश वाली है और वैखरी की अपेक्षा सूक्ष्मतर है। इसका व्यापार आन्तर व्यापार है। यह सूक्ष्म प्राणशक्ति के द्वारा परिचालित होती है। चिन्तन का कार्य मध्यमा वाक् ही करती है।

भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं—

परा वाक्—कारणविन्द्वात्मकमभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं तदेव च परावागित्युच्यते।

पश्यन्ती वाक्—तदेव नाभिपर्यन्तमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पन्दप्रकाशरूपकार्यबिन्दुमयं सत्पश्यन्ती वागुच्यते।

मध्यमा वाक्—अथ तदेव शब्दब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यन्तमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पन्दप्रकाशरूपनादमयं सन्मध्यमा वागित्युच्यते।

वैखरी वाक्—अथ तदेव वदनपर्यन्तं तेनैव वायुना कण्ठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानम-

1. वाक्यपदीय (1.144)

कारादिवर्णरूपं परं श्रोत्रग्रहणयोग्यस्पष्टतरप्रकाशरूपबीजात्मकं सद्वैखरी वागुच्यते।

शंकराचार्य की दृष्टि—

मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भाव: पराख्य:
पश्चात्पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्य:।
व्यक्ते वैखर्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तो: सुषुम्णा-
बद्धस्तस्माद्भवति पवने प्रेरिता वर्णसंज्ञा।।

नित्यातन्त्र की दृष्टि—

मूलाधारे समुत्पन्न: पराख्यो नादसम्भव:।
स एवोर्ध्वतयानीत: स्वाधिष्ठाने विजृम्भित:।।

पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनै: शनै:।
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिध:।।

सुभगोदयवासना की दृष्टि—

परा भू जन्म पश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ।।

चिदानन्दवासना की दृष्टि—

विवक्षाव्यवसायोक्तिरूपा एतास्त्रिमातर:।
पश्यन्त्यादिमहादेव्या स्वरूपा नात्र संशय:।।

नटनानन्द चिद्वल्ली में कहते हैं—

'इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तय एव पश्यन्त्यादिशक्तित्रितयतामापन्ना:' अर्थात् इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्तियाँ ही पश्यन्ती आदि वाक् त्रय के रूप में रूपान्तरित हो गई हैं।

पश्यन्ती—'इच्छाशक्तिस्तथा वामा पश्यन्ती वपुषा स्थिता।'
इच्छा शक्ति + वामा शक्ति का संयोग।



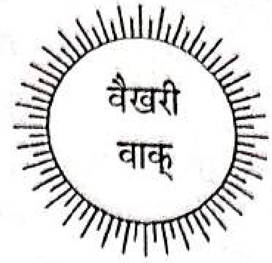
मध्यमा वाक्— ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता।
ज्ञान शक्ति + ज्येष्ठा शक्ति →



वैखरी वाक्—

ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा।
तत्संहृतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता।।

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गारवपुरुज्वला।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा।।



क्रिया शक्ति + रौद्री शक्ति →

पुण्यानन्द की दृष्टि—पुण्यानन्द कामकलाविलास में कहते हैं—'इच्छाज्ञानक्रिया-शान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवा:। व्यस्ताव्यस्तवदर्णद्वयमिदमेकादशात्म पश्यन्ती। एका परा तदन्या, वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा। तेन नवात्मा जाता माता सा। मध्यमाभिधानाभ्याम्।

नटनानन्द—मध्यमा वाक् = स्थूल : नववर्गात्मा। सूक्ष्म : समाधि में अनुभूयमान। नवनादमयी।

पुण्यानन्द—द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा। नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्याख्या।

नटनानन्द—1. सूक्ष्मा मध्यमा : नवनादमयी। 2. स्थूला मध्यमा = नववर्गात्मा।

योगिगम्य नादों वाली मध्यमा

नादों के प्रकार—

1. चिणी	6. तालनाद
2. चिणिचिणी	7. वेणुनाद
3. घण्टानाद	8. भेरीनाद
4. शंखनाद	9. मृदंगनाद
5. तन्त्रीनाद	10. मेघनाद

इनमें नौ नादों का त्याग करके दशम नाद का श्रवण किया जाता है—

नवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत्।(चिद्वल्ली : नटनानन्द)

नाद-मार्ग—नटनानन्द कहते हैं कि 'गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाय स्वाधिष्ठानं प्रदक्षिणीकृत्य, मणिपूरकं गत्वाऽनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान्निरुध्य आज्ञामनुधावत् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् इत्यादिब्रह्मरन्ध्रे ध्यानविशेषमुक्त्वा पुनरपि मूलाधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं व्यापिन्या मूलकुण्डलिन्या: स्वरूपं नादात्मकं इति व्याचष्टे। यदा हंसो विलीनो भवति यदा नाद-माधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्फटिकसङ्काशं स वै ब्रह्म परमात्म्येत्युच्यते।'

यही नाद दस प्रकार का है, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

व्याकरणागम एवं भर्तृहरि के अनुसार शब्द की तीन वृत्तियाँ होती हैं—द्रुत, मध्यम एवं विलम्बित। इन तीनों में पाँच औपाधिक भेद होते हैं—उच्च, मन्द, उपांशु, परमोपांशु एवं संहृतक्रम।

उच्च और मन्द का सम्बन्ध इसमें से वैखरी वाक् से तथा उपांशु और परमोपांशु का सम्बन्ध मध्यमा वाक् से होता है। उपांशु अर्थात् मौन भाषण, अश्रव्य भाषण। परमो-पांशु = जब शब्द बुद्धिस्थ रहते हैं और उनका उच्चारण कथमपि सम्भव नही होता।

उपांशु और परमोपांशु में भेद—उपांशु में प्राणवृत्ति का सञ्चार होता है। परमो-पांशु में बुद्धिवृत्ति का मध्यमा में शब्द की विवक्षाजन्य मानसिक क्रिया होती है अर्थात् वक्ता बोलना चाहता है और बोलने के लिए शब्दों को ढूँढ़कर प्रकट करना चाहता है। वैखरी का क्षेत्र व्यक्त ध्वनि है।

पश्यन्ती मध्यमा वाक् से भी सूक्ष्मतर है और इसका प्रधान लक्षण यह है कि यह प्रतिसंहृतक्रमा होती है (इस समय वर्णों में क्रम की कल्पना नहीं की जा सकती—यह प्रतिसंहृतक्रमा है। यह चला भी है और अचला भी है)।

चूँकि शब्द की अभिव्यक्ति में गति है; अत: वह 'चला' है। वह अपने विशुद्ध स्वरूप में निस्पन्द होने के कारण 'अचला' है।

पश्यन्ती क्रमरहित, स्वप्रकाश तथा संविद्रूप है। नागेश आदि ने जो लक्षण परा में माने हैं, वे भर्तृहरि की पश्यन्ती में भी हैं। भर्तृहरि परावाक् स्वीकार ही नहीं करते और पश्यन्ती वाक् को ही शब्दब्रह्म मानते हैं। भर्तृहरि का प्रधान सिद्धान्त निम्नांकित है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।।

भर्तृहरि यह भी मानते है कि प्राणियों में चेतना शक्ति भी शब्द ही है—

सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते।
तन्मात्रामनतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु।।(वाक्यपदीय-1.33)

वेद शब्द से ही जगत् की उत्पत्ति होती है—

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदु:।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तते।।

(वाक्यपदीय-1.120)

जगत् शब्द का परिणाम है—

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदु:।

जगत् शब्द का विवर्त है—

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।

शब्द अनादिनिधन अक्षर ब्रह्म है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

शब्द से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। भर्तृहरि कहते हैं कि जिसकी प्रथम ज्योति

त्रयी (वेद) रूप में परिणत होती है, वह शब्द है और उसी की मात्रा से जगत् का विवर्त-रूप में जन्म हुआ है और अन्त में यह जगत् उसी शब्द में विलीन हो जाता है—

त्रयीरूपेण तज्ज्योतिः प्रथमं परिवर्तते।
ब्रह्मेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम्।
विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।

नागेशभट्ट की दृष्टि—जब प्रलय-काल में प्राणियों के भोग्य कर्मों का प्रक्षय हो जाता है, तब जगत् माया एवं माया ईश्वर में लीन हो जाती है। यह लय विनाश नहीं, सुषुप्ति है। इसके अनन्तर कर्म फलोन्मुख हुये; अतः उनके कारण भगवान् की माया और पुरुष के रूप में बुद्धि-विरहित सृष्टि होती है। फिर परमेश्वर में सृष्टि चलाने की इच्छारूपा मायावृत्ति का उदय होता है और अव्यक्त, त्रिगुण बिन्दु उत्पन्न होता है। इसे ही शक्तितत्त्व कहते हैं। इस बिन्दु में तीन अंश हैं—चिदंश (बीज), चिदचिन्मिश्र अंश (परा वाक्) एवं चिदंश बिन्दु। इस प्रकार उत्पन्न नाद ही परा वाक् है। यही वाक्यपदीयकार के अनुसार नित्य शब्दब्रह्म है। जगत् शब्दब्रह्म का विवर्त है।

लेकिन नागेश के अनुसार शब्दब्रह्म अनित्य है।

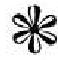
अभिनवगुप्त के अनुसार प्रकाश और विमर्श दो ही वस्तु हैं। प्रकाश शिव है और विमर्श शक्ति है। विमर्श ही शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति है। दोनों चन्द्र-चन्द्रिका के समान अभिन्न हैं। विमर्श ही परा वाक् है। कालिदास ने ठीक ही कहा था—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

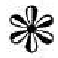
शब्दब्रह्मवादी कहते हैं कि विमर्श (पश्यन्ती) ही ब्रह्म है।



सर्वं खल्विदं शक्तिः नेह नानास्ति किञ्चन।



सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलया
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥



शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥